

निवेदन

भारतवर्ष के पौराणिक साहित्य की शृङ्खला बहुत लम्बी है। अठारह पुराणों के पश्चात् अठारह उपपुराण और अठारह तन्त्रपुराणों की नामावली भी गुनने में आती है। यद्यपि यह साहित्य व्यवस्थित नहीं है, और बाजार में जमीन पर पुस्तक फेंकाकर बेचने वालों के यहाँ पुराणों के नाम पर दो-दो, चार-चार आने की ऐसी छोटी-छोटी पुस्तकें भी विक्रय में आती हैं, जिनकी गिनती कभी प्रामाणिक अथवा पठनीय पुस्तकों में नहीं की जा सकती। ऐसी दुस्मानों पर हमने "सूर्य पुराण" और "गणेश पुराण" आदि पुस्तकें देगी हैं जिनकी पृष्ठ संख्या चालीस पचास से अधिक नहीं होती। पर वास्तविक ज्ञान ऐसी नहीं है। उन पुराणों में भी "देवी भागवत" और "हरिवंश पुराण" जैसे ग्रन्थ पाये जाते हैं, जो कितने ही महापुराणों में बड़े और विषय विवेचन की दृष्टि से उत्तम हैं।

यह "सूर्य-पुराण" भी काफी बड़ा है, और विषय की समझना तथा भाषा की एक रूपता के कारण कितनी ही पौराणिक रचनाओं की अपेक्षा उच्च श्रेणी का माना जा सकता है। सिद्धान्त की दृष्टि में यह पूर्णतया सत्य है और हममें हर जगह नियमों की महानता का ही पटन किया गया है। इनके अनुसार नियम ही परब्रह्म हैं और पार्वती उनकी शक्ति। यह दोनों विद्वत् पाण्डित्य की दृष्टि निर्यात और प्रत्यक्ष करते हैं। इनके अनिर्वच्य शक्ति, विष्णु, इन्द्र आदि देवगण भी हैं, पर वे सब इन्हीं के बनाये और इनकी शक्ति में ही काम करने वाले हैं। अन्य देवता, जो हमें में निदान करते हैं वे तो मर्त्य द्वारा आश्रित रहते हैं, दुस्मानों का उपाय स अज्ञानों तथा की प्रायश्चित्त किया करते हैं। विष्णु देवताओं का पक्ष बहुत बुरा लोगों में गणना करते हैं, उनका नाम काते हैं, पर उनको सब शक्ति नियमों द्वारा ही प्रदीप्त है। 'सूर्य पुराण' में कहा गया है कि विष्णु भगवान् ने महेश्वर नाम द्वारा नियमों की शक्ति की शक्ति उन्हीं द्वारा करते हुए सब एक समस्त काम पद गया तो मर्त्यों

वाँल (कमल रूपी नेत्र) निकालकर चढादी। तब शिवजी ने प्रमत्न होकर उनको सुदशः चक्र दिया। यह क्या हम एकाद्य अन्य पुराण में भी पढ़ चुके हैं।

पर 'सूर्य पुराण' में सब से अधिक निन्दा की गई है वैष्णवों केचार आचार्यों में से एक 'माध्वाचार्य' की। संभवतः उन्होंने शैव सम्प्रदाय का विशेष विरोध किया होगा। इस लिये उनको किसी विधवा ब्राह्मणी का व्यभिचार से उत्पन्न पुत्र बतलाया है, और उनके जन्म का सम्बन्ध कामदेव के दहन की घटना से जोड़ा है। अर्थात् कामदेव के किसी सहयोगी ने माध्वाचार्य के रूप में जन्म लेकर शिवजी से उस घटना का बदला लिया और उनकी निन्दा फैलाई।

भक्ति-मार्ग प्रायः वैष्णवों से सम्बन्धित माना जाता है। उत्तर भारत में तो सूर, तुलसी, मीरा, चैतन्य आदि जितने भक्तों का आविर्भाव हुआ है, वे सब विष्णु और उनके अवतारों—रामकृष्ण आदि के उपासक थे। पर 'सूर्य पुराण' में वैसा ही वर्णन शिव-भक्ति का किया गया है, और वह भी नारद तथा ब्रह्मा ने सम्वाद के रूप में जैसा वैष्णव पुराणों में किया गया है। नारद के भक्ति विषयक प्रश्न करने पर ब्रह्मा जी ने कहा—“भगवान् दम्भु की भक्ति का योग देहधारियों के लिए बहुत ही दुर्लभ है। यदि किसी प्रकार वह भक्ति प्राप्त करनी गई तो फिर उसके लिए कुछ भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहता उस भक्ति के द्वारा ही इन्द्र और विष्णु का पद प्राप्त किया जा सकता है और मुझ ब्रह्मा का दर्जा भी प्राप्त कर लिया जाता है। शिव भाषण द्वारा मोक्ष प्राप्त होने में तो कोई सन्देह ही नहीं। जैसे अग्नि द्वारा ई धन भस्म हो जाता है उसी प्रकार अशुभ और शुभ कर्मों की राशि को भगवान् भव की भक्ति भस्म कर देती है। पर शिव में ऐसी मति का स्थिर होना बड़ा कठिन है हे नरद ! ससार रूपी सर्प के मुख में स्थित देह धारियों को विमोचन कराने में तब महादेव ही है, ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है। श्री शिवजी के पञ्चाक्षरी मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' की प्रशंसा करते हुए कहा है कि 'शिवजी के मुख से सात करोड़ मन्त्र निकले, पर वे सब

मिल कर भी इस मन्त्र की सोनहवीं कला के तुल्य नहीं हो सकते ।”

कलियुग-वर्णन भी पुराणों का एक लक्षण बन गया है । कदाचित् ही कोई ऐसा पुराण होगा जिसमें कलियुगी भ्रष्टाचार, दुराचार आदि का वर्णन हो । “सूर्य पुराण” के लेखक ने भी उम परम्परा का पालन किया है पर अधिक आशेष वैष्णवों पर ही किया है—

“कलियुग पूर्ण ऋह से व्याप्त हो जाने पर अधम नर मायावाद ही किया करेंगे । ये सत्र योग की निन्दा करने वाले होंगे और अग्निहोत्र का विरोध करने लगेंगे । जो नर पुराणों को वेदान्त शास्त्र के समान कहते हैं वे नरकगामी हैं, केवल देखने में ही मनुष्य हैं । उनसे अच्छे तो बौद्ध जैन और बापालिख ही हैं, जो घुले तौर पर वेदों को अप्रामाण्य कहते हैं, और हम भी उनको अहंकारी समझकर उपेक्षा की दृष्टि में देखते हैं । वे तो वैदिक अताबन्गी ही नहीं । पर जो वेदों को प्रमाण मानते हैं और साथ ही अनीश्वरवादियों का सा व्यवहार करते हैं घोर पापी तो वे ही हैं ऐसे लोग सन्यासी का वेप घारण करन पर भी जीविका के लिए तरह-तरह के धंधे किया करते हैं । इनमें बितने ही प्रच्छन्न बौद्ध (वाममार्गी) भी होते हैं । वे किसी सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों को नहीं जानते, बसल दाग नू इन के लिए उन्नी दृष्टि में अन्य सब देवता हेय (व्ययं) ही हैं तो वे बगै बंदों को पढ़ते हैं और बगै उन पर तर्क करते हैं । कलियुग में तेमें किसी भी जाति के व्यक्ति को मर मुडाकर और बापाय (भगवा) बस्या पहिन्कर मठों का अधिपति बना दिया जायगा । इन “इन तत्त्ववादियों” में बंधन पांच ही गुण हाने — मठों का स्वामी बनना, सेवा करना, धन-सम्पत्, शक्तियों में समन और ईश्या-भायना “ये तत्त्ववादी कत्ता करते हैं ति यह मवार ही परम तत्त्व है, क्योंकि वे शुद्ध तत्त्व को तो जानते ही नहीं । त्रिन समन कलियुग में पारो की उत्पत्ति होगी उन समय लोग इसी प्रकार दम्भ का भाव रखकर वैष्णव बन जायेंगे ।”

‘सूर्य पुराण’ की सबसे मुख्य विशेषता मांवात शिव के स्वरूप का विवेचन है, त्रिनके सम्बन्ध में अन्य के आरम्भ में ही मातुःव द्वारा यह

गया है—“यह पुराण सभी वेदों के अर्थों की एक सग्रह स्वरूप है। शूली भगवान् शम्भु का रूप ही परम तत्त्व है। उसके द्वारा ही यह समस्त विश्व व्याप्त है और किसी के द्वारा नहीं—ऐसा श्रुति ने बतलाया है। वही समस्त भूतों की आत्मा हैं और जगदम्बा उमा के साथ एक मात्र चैतन्य स्वरूप बाने हैं। केवल वे एक जिव ही अपनी लीला से बहुत रूपों में शोभित हुआ करते हैं। वही स्वयं ब्रह्मा विष्णु के रूप में देवों के मध्य विराजमान दिखाई दिया करते हैं। एक बार ब्रह्मा आदि देवों द्वारा भगवान् शम्भु में पूछा गया कि हे देव ! आप कौन हैं ? उस समय उन्होंने कहा कि मैं एक ही हूँ और अन्य कोई भी नहीं है।” आदि भूत और लीला विग्रह महादेव से ही आदि-सर्ग-काल में ब्रह्मा विष्णु की उत्पत्ति हुई थी। उन्हीं एक आदि कर्ता—ईश्वर परमात्मा को उनका ज्ञान रखने वाले बहुत प्रकार का कहते हैं। उन्हीं को इन्द्र तथा मित्र भी कहा जाता है—ऐसी श्रुति है।”

इस वर्णन में प्रकट होता है कि ‘सूर्य पुराण’ के रचियता ने आघार को ग्रहण किया है जो भारतीय तत्त्वज्ञान के मूल आधार उपनिषदों और गीता आदि में वर्णित है। उन्होंने केवल राम या कृष्ण के बजाय शंकर का नामोल्लेख कर दिया है। पर इस देश के मनीषी तो पहले ही कह चुके हैं कि कोई मनुष्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही नहीं यदि ईसा, मूसा, मुहम्मद का नाम लेकर भी त्याग, तपस्या, परोपकार का सच्चा धार्मिक जीवन व्यतीत करेगा तो वह अन्न में उस परमात्मा के निकट ही पहुँचेगा, ज्ञान ज्ञानि, धर्म और नाम का कोई भेदभाव शेष नहीं रहना। यह विभिन्न देवताओं अथवा धर्म गुरुओं का नाम लेना तो देश, काल और मनुष्यों की कम या अधिक विकसित मनोवृत्ति से कारण होता है। इसलिये “सूर्य पुराण” के लेखक ने भगवान् शिव को प्रधानता दी तो इसमें कोई अनौचित्य नहीं है। शिवजी तो हमारे यहाँ त्याग, तपस्या और समता के सबसे बड़े प्रतीक हैं, उनही महिमा के सम्मुख कौन नतमस्तक न होगा।

विषय सूची

१. नैमिषारण्य प्रससादि कथन	६
२. शिव महिमा वर्णन	१७
३. सुद्युम्नाख्यान	२८
४. वाराणसी महिम-कलिपुग वर्णन	...	३७
५. महादेव वर-प्रदान	...	४२
६. वाराणसी लिंग महिम वर्णन	४८
७. दक्षेद्वर माहात्म्य	५५
८. त्रिलोचन माहात्म्य	६५
९. शिव भक्त महिमा	..	६९
१०. सात्विक-राजस विघ्नादि कथन	७८
११. हरोत्पत्यादि कथन	...	८३
१२. ब्रह्म पद्मयोनित्वादि कथन	९२
१३. गौरी पृथक् शरीरत्वादि कथन	१०५
१४. सुरासुर सृष्ट्यादि कथन	११०
१५. हिरण्याक्ष वधादिक कथन	११६
१६. प्रह्लाद राज्यारोहण तथा इक्ष्वाकु वग कथन	१२५
१७. शिव महिमा कथन	१३७
१८. कलि प्रवेशादि कथन	१५२
१९. महेश-विष्णु तुल्यत्व करणादि कथन	१५२
२०. विष्णु चक्र प्राप्त कथन	१७६
२१. शिव पूजा विधि	१९८
२२. दुर्वा गणपति स्नान कथन	२०६
२३. शिवालय करणादि कथन	२१६
२४. सप्तमि रत्न पाशुपत व्रत कथा	...	२२६

२५	शिव माहात्म्य कथन	२३६
२६	शरन्वती-सावित्री सम्वाद्	२५०
२७.	शुद्धेयुषास्त्रयान	..	२६६
२८	रक्तामुर वध कथन	२७६
२९.	पार्वती प्रभाव कथन	३०२
३०.	तिथिनिर्णयादि कथन	३१६
३१.	मदन दहन	...	३२६
३२.	महादेव वर प्रदान	..	३३८
३३.	महेश्वर ज्ञान कथन	३४१
३४.	साम्ब विवाह मउप वर्णन	३४६
३५.	कालाग्न्याद्यागमन कथन	३५३
३६.	साम्ब विवाह वर्णन (१)	३६६
३७.	साम्ब विवाह वर्णन (२)	...	३७३
३८.	साम्ब क्रीडादि वर्णन	३८५
३९	पावक स्तुत्यादि कथन	३९६
४०.	परमेश्वर-मुर सम्वादादि कथन	४११
४१.	नारद-इन्द्र सम्वादादि कथन	४२४
४२.	ब्रह्मा नारद सवादादि कथन	४३३
४३.	पंचाक्षर मन्त्र प्रभावादि कथन	४४७
४४.	शिवाचंन माहात्म्यादि कथन	४६०
४५.	महाकाल माहात्म्य कथन	४७२
४६.	तिथि मुहूर्त निर्णयादि कथन	४७६
४७.	देवेन्द्र चरित कथन	४७९
४८.	निरयादि प्रतिपाद्य कथन	४८९
४९.	शिवनीचं कथन	४९४

सूर्यपुराणं

॥ नैमिषारण्य प्रशंसादिकथन ॥

यस्याऽऽज्ञया जगत्त्रया विरञ्चि पालको हरि ।
सहर्ता कालरुद्रारूपो नमस्तस्मि पिनाकिने ॥१
तीर्थानामुत्तम तीर्थं क्षेत्राणा क्षेत्रमुत्तमम् ।
मुनीनामाश्रयो नित्य नैमिषारण्यमुत्तमम् ॥२
शौनकाद्या महात्मानः शिवभवता महौजस ।
दीघसत्र प्रकुर्वन्तस्तत्रेशानस्य तुष्टये ॥३
तस्मिन्सत्रे महाभागो मुनीना भाग्यगौरवात् ।
आजगाम मुनीन्द्रष्टु सूतः पौराणिकात्तम ॥४
तं दृष्ट्वा ते महात्मानो नमिषारण्यवामिनः ।
प्रहृष्टा प्रष्टुमुद्युक्त्वा पप्रच्छ रोमहर्षणम् ॥५
कथं भगवता पूर्वमादित्येनाऽऽत्मरूपिणा ।
पुराणं कथितं सौर तप्तो यवनुमिहाहंसि ॥६
वृष्णद्वैपायनात्साक्षात्पूर्वं हि विदितं स्वया ।
त्वत्तो नास्ति परा यवना पुराणाना महातपः ॥७

जिनकी आज्ञा में ब्रह्माजी इस जगत् का गृहण करने वाले होते हैं भगवान् विष्णु इस जगत् का पालन किया करते हैं तथा कालरुद्र नाम वाले प्रभु सबका महार किया करते हैं उन पिनाकधारी प्रभु के नियम नमस्कार है ॥१॥ ममस्त तीर्थों से उत्तम तीर्थं सब क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र नैमिषारण्य परम उत्तम वन है जो मुनिगणों का नित्य ही आश्रय स्थान रहा करता है ॥२॥ महान् ओत्र में ममस्त शौनकादि महारथ भगवान् जिन से परम भक्त थे ओत्र वन पर भगवान् दिए

की तुष्टि के लिये दीर्घ सत्र कर रहे थे ॥३॥ उस सत्र में मुनि मण्डल के भाग्य के गौरव से महा भाग और पीराणिकों में अत्युत्तम थी सूतजी मुनिया ने दर्शन करने के लिये आ गये थे ॥४॥ उन नैमिषारण्य में निवाम करने वाले महात्माओं ने जब थी सूतजी का दर्शन किया तो परम प्रमन्न हुए और बुद्ध पृच्छने के लिये उत्सुक होकर थी रोमहर्षण जी उन्होंने पूछा ॥५॥ ऋषियो ने कहा—हे भगवान् ! आत्म रूपी आदित्य भगवान् न पहिले कैसे इस सौर पुराण का वर्णन किया था— इसे आप हम लोगों को बतान के लिये परम योग्य है ॥६॥ आपने तो साक्षात् श्रीकृष्ण द्वैपायन जी से पहिले ही सब क्रुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लिया था । आप तो महान् तपस्वी होने के साथ पुराणों के परम श्रेष्ठ वक्ता भी हैं । आप से अधिक अन्य कोई भी वक्ता नहीं हैं ॥७॥

सन्त्यन्ये बहव शिष्या अपि तस्य महात्मनः ।
 तथाऽपि शिष्यवात्सल्यात्त्वं पुराणेषु योजित ॥८॥
 यान्यन्यानि पुराणानि त्वयोक्तानि महामुने ।
 अत्र ते पावंतीकान्तभवतौ भक्तियुत त्विदम् ॥९॥
 न यज्ञैर्न तपोभिर्वा न दानैर्न व्रतैस्तथा ।
 शिवभक्तिमृते यस्मान्मुक्तिर्नास्तीति शुश्रुम ॥१०॥
 देवोऽप्य भगवान्भानुरन्तर्धाभी सनातन ।
 यो ब्रूते सर्वं वस्तूनां तत्त्वं ज्ञात्वा नान्यथा ॥११॥
 अत श्रद्धा हि महती श्रोतु त्वद्ब्रह्मनामृतम् ।
 अस्माक व्रतैस्ते सूत रोमहर्षण सुव्रत ॥१२॥
 नस्था सूर्य पर घाम ऋग्यजु सामरूपिणम् ।
 त्रिसत्य त्रिजगद्योनि त्रिमार्गं च त्रितत्त्वगम् ॥१३॥
 पुराण सप्रवक्ष्यामि सौर शिववद्याश्रयम् ।
 यच्छ्रुत्वा मनुज क्षीघ्र पापत्रञ्चुकमुत्सृजेत् ॥१४॥

उन महान् आत्मा वाले भगवान् वद ध्यात जी ने अथ भी बहुत स्वरूप हैं किन्तु तो भी त्रिपथ पर क्षयित नम होने से उद्धान आपकी

ही पुराणों में योजित किया था ॥८॥ हे महामुने ! यद्यपि अन्य जो भी पुराणों को आप ने कहा है किन्तु वे सब पार्वती के वान्त की भक्ति में समर्थ नहीं हैं और यह सौर पुराण तो उनकी भक्ति से युक्त है ॥९॥ यज्ञ तप दान और धर्मों से बिना भगवान् शिव की भक्ति के जीवों की मुक्ति नहीं हुआ करती है—ऐसा ही हम लोग मुन रहे हैं ॥१०॥ यह भगवान् भानुदेव अन्तर्धामी और सनातन हैं जो कि समस्त वस्तुओं के तत्वों को जानकर ही बोला करते हैं और कभी भी अन्यथा नहीं बोलते हैं ॥११॥ इसी कारण से आपने मुख कमल के द्वारा इस अमृत के श्रवण करने की हे श्री मृत जी ! हे रोमहर्षण जी ! हम लोगों के हृदय में बड़ी भारी श्रद्धा समुत्पन्न हो रही है क्योंकि आप तो गुन्दर घाटी को घरण करन वाले महा पुण्य हैं ॥१२॥ श्री सूत जी ने कहा— ऋग्यजु और साम वेद के स्वरूप धारण करने वाले तीनों कालों में सर्व स्वरूप वाले—तीनों जगतों के समुत्पन्न करने के कारण-परमधाम-तीनों मार्गों वाले और तीनों तत्वों के ज्ञाता भगवान् सूर्य के नमस्कार करके भगवान् शिव की कथा का आश्रय रूप गूय पुराण को मैं बतलाऊंगा जिस पुराण का श्रवण करके मनुष्य इस लोक में बहुत ही शीघ्र पापों की कञ्चुकी का परित्याग कर दिया करता है अर्थात् समस्त पापों के आवरण से विमुक्त हो जाता है ॥१३-१४॥

दलोकद्वय पठेद्यत्तु दलोकमेकयापि वा ।

श्रद्धावान्पापकर्मादि स गच्छेत्सन्नितु पदम् ॥१५॥

पौराणी वृत्तिमाश्रित्य य जीवन्ति द्विजातय ।

तन्मण्डलं विनिर्भित्तं तन्मायुष्यं श्रवन्ति ते ॥१६॥

वक्त्रा यत्र रवि माहाचाष्टना तस्य मुतो मनु ।

माहात्म्यं कथ्यते तमोर्नाम्निपरमानधिकं द्विजा ॥१७॥

इदं पुराणं यवन्ध्य धामिरायाममगूयवे ।

द्विजाय श्रद्धाघानाय शिवं कर्षिणबुद्धये ॥१८॥

आमीन्मनु गूयन्तुो वरुते यो महानपा ।

गणदापिन्वहामागं ताशिरार्यं यने यमी ॥१९॥

प्रतर्दनस्य नृपतेर्यज्ञे विपुलदक्षिणे ।

तत्त्व विचारयामासुर्मिथो यत्न महर्षय ॥२०॥

अशक्तास्ते महाभागा भृग्वाद्यास्तत्त्वनिर्णये ।

एर स्थितेषु विप्रेषु मायया मोहितात्मसु ॥२१॥

इस सौर पुराण की इतनी बड़ी महिमा है कि जो कोई भी इसके दो श्लोक अथवा केवल एक ही श्लोक का पाठ कर लिया करता है और परम श्रद्धा से युक्त होता है वह भवे ही कितना ही पापों के कर्मों का करने वाला क्यों न हो इसके प्रभाव से सीधा पापों से मुक्त होकर भगवान् सूर्य देव के पद को प्राप्त हो जाता करता है ॥१५॥ जो द्विजाति गण पुराण पाठों एवं प्रवचनों की वृत्ति को धारण कर के अपने जीवन का निर्वाह किया करते हैं वे उत्तरे मण्डल का भेदन करके उनके सायुज्य की प्राप्ति किया करते हैं ॥१६॥ हे द्विजो ! जहा पर स्वयं साक्षात् रविदेव वक्ता है और उनके श्रोता उनके सुत मनु हैं उस भगवान् राम्भु के माहात्म्य को कहा जाता है क्योंकि इससे अधिक अन्य कुछ भी नहीं है ॥१७॥ यह पुराण ऐसी उत्तमता और परम गोपनीयता के रखने वाला है कि इसका श्रवण किसी परम धार्मिक और किसी को भी अस्मान करने वाले ऐसे पुरुष को ही कराना चाहिए जो द्विज हो और परम श्रद्धालु एवं भगवान् शिव के चरणों में ही अपनी बुद्धि को समर्पित कर देने वाला हो ॥१८॥ मनु भगवान् सूर्य के सुत थे जो मद्भान् तपस्वी हैं । वह महागण किसी समय में कामिना नामक वन में गये थे ॥१९॥ जहा पर विपुल दक्षिणा वाले प्रतर्दन राजा के यज्ञ में महर्षि लोग परस्पर में तत्त्व का विचार कर रहे थे ॥२०॥ वे सब महाभाग भृगु आदि तत्त्व के निर्णय करने में अगमर्ष हो रहे थे और वही परमाया में मोहित आत्मा करने वाले सब विप्रगण इसी प्रकार में सशय में मग्न गिहन होकर बंटे थे । ॥२१॥

गजयाचिष्टचित्सेषु वागभृदशरीरिणी ।

तत्तु मुग्ध्व विप्रेन्द्रारतपोज्ञानविनिवर्हणम् ॥२२॥

किल्बिष वाले हो गये हैं ॥२९॥ ये सब भी विश्व के अन्तर्यामी विभु
मुझ परम देव का दर्शन प्राप्त करें ॥२८॥

इति दृष्ट्वा रत्रि साक्षात्प्रत्यक्ष पुरत स्थितम् ।
मेने कृतार्थमात्मान मनुर्व्वस्वतस्त्वादा ॥२९॥
आत्मन्यात्मानमाधाय सर्वभावेन स यमी ।
स्तुतिं चकार स मनुमुनिभि सह सुव्रत ॥३०॥
नमो नमो वरेण्याय वरदायाशुमालिने ।
ज्योतिमय नमस्तुभ्यमनन्तायाजिताय ते ॥३१॥
त्रिलोकचक्षुषे तुभ्य त्रिगुणायामृताय च ।
नमो धर्माय ह्यसाय जगज्जननहेतवे ॥३२॥
नरनारीशरीराय नमो मीडुष्टमाय ते ।
प्रज्ञानायाखिलेशाय सप्ताब्दाय क्षिमूर्तये ॥३३॥
नमो व्याहृतिरूपाय त्रिलक्षायाम्शुगामिने ।
ह्यंशुवाय नमस्तुभ्य नमो हरितवाहवे ॥३४॥
एकलक्षविलक्षाय बहुलक्षाय दण्डिने ।
एकसंस्थाद्विमस्थाय बहुसंस्थाय ते नमः ॥३५॥

श्री सूत जी ने कहा—उस समय में षोडशवत मनु ने इस प्रकार
मे साक्षात् भगवान् रत्रि कह अपने सामने स्थित हुए प्रत्यक्ष रूप से
दर्शन किया तो उन्होंने अपने आपको पूर्णतया कृतार्थ मान लिया
था ॥२९॥ उन मुचन मनु जो बहुत ही मयमी थे अपनी आत्मा मे
आत्मा का आधान करने सर्वभोग से उन सब मुनियों के साथ सूर्य
भगवान् का स्तवन किया था ॥३०॥ मनुजी ने कहा—वरदान प्रदान
करने वाले—अनु माली और वरेण्य आपके लिये चारम्बार नमस्कार
है । हे ज्योतिर्मय ! अनन्त एव अजित आपकी सेवा में नमस्कार
है ॥३१॥ तीनो लोकों के चक्षु स्वकृत-त्रिगुण और अमृत आपका
सन्निधि में प्रणाम धर्माय है । इस सम्पूर्ण जगत् के जनन के कारण
धर्म और रम आपने लिये नमस्कार है ॥३२॥ नर और नारी दोनों

के स्वरूप वाले मन्त्रके ईश-प्रज्ञान रूप सात अश्वो वाले-त्रिमूर्ति और भी दुष्टम के लिये हम सबका नमस्कार है ॥३३॥ व्याहृतियों के स्वरूप वाले-आशुगमन करने वाले त्रिलक्ष-हरित बाहुओं वाले और हर्यश्व आपके लिये नमस्कार है ॥३४॥ एक लक्ष विलक्ष बहुलक्ष-दण्डी-एक सस्य द्विसस्य और बहु सस्य आपके लिये नमस्कार है ॥३५॥

शक्तित्रयाय शुभलाय रवये परमेष्ठिने ।

त्व शिवस्त्व हरिर्देव त्व ब्रह्मा त्व दिवस्पति ॥३६

त्वमोकारो वगट्कारः स्वधा स्वाहा त्वमेव हि ।

त्वामृते परमात्मान न तत्पव्यामि दैवतम् ॥३७

एव स्तुत्वा मनु प्राह भगवन् न श्रयोमयम् ।

मृतिभि सह धर्मात्मा सम्यग्दर्शनकाङ्क्षिभिः ॥३८

किं तच्छ्रेयस्कार तत्त्व वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् ।

कस्माद्विद्वमिद जातं कस्मिन्वा लयमेप्यनि ॥३९

फस्य ब्रह्मादयो देवा यथे तिष्ठन्ति सर्वदा ।

तदेकमथवाऽनेकमुभय वा यद प्रभो ॥४०

वेन वा ज्ञायते सम्यग्मश्च ऽतीतिवत् ।

जाते तस्मिस्तु किं रूप तस्य ज्ञान किमात्मकम् ॥४१

चरितं तस्य किं तात किं तीर्थं तदधिष्ठितम् ।

केषामनुग्रहस्तस्य नीर्ये निवसन्ना प्रभो ॥४२

लक्षण च पुराणाना व्रताना च क्रमो यथा ।

वर्णानामात्राणा च वर्णाचारविधि कथम् ॥४३

श्राद्ध कथं वा क्रियते प्रायश्चित्तविधिः कथम् ।

एतत्सर्वं हि भगवन्पृष्ट वक्नुमिहार्हसि ॥४४

एवं मनोर्वचं श्रुत्वा भगवान्भास्वरो द्विजाः ।

यत्पृष्ट तद्दोषेण वक्तुं समुपचक्रमे ॥४५

तीन शक्तिशो वाले-शुभ-परमेष्ठी और रविदेव के लिये नमस्कार है । हे भगवन् ! आप ही निव है-आप ही तीर्थ है-आप ही ब्रह्मा है

और आप ही दिवस्पति हैं ॥३६॥ आप ही ओङ्कार हैं वषट्कार है-और आप ही स्वाहा तथा स्वधा हैं । आपके बिना उन परम देवत परमात्मा को नहीं देख पाता हूँ ॥३७॥ इस रीति से मनु देव ने सूर्य देव का स्तवन करने जो कि भगवान् त्रयीमय हैं भलीभाति दर्शन का आकाङ्क्षा रखने वाले मुनियों के ही साथ में उन भगवान् से कहा-॥३८॥ मनुदेव ने प्रार्थना की-हे भगवन् ! वह कौनसा श्रेय करने वाला तत्त्व है जो कि वेदान्तो में प्रतिष्ठित है ? किस से यह इतना विशाल विश्व समुत्पन्न हुआ है अथवा फिर अन्त में किस में जाकर यह लय को प्राप्त हो जाया करता है ? ॥३९॥ ये समस्त ब्रह्मा आदि देवता सर्वदा किस के वश में स्थित रहा करते हैं । हे प्रभो ! आप हम लोगों को कृपा करके यह बतलाइये कि वह तत्त्व एक है या अनेक या अनेक स्वरूप वाला है अथवा दोनों ही प्रकार का है ? ॥४०॥ यह अर्थ भलीभाति किसके द्वार, जाना जाया करता है और उसका ज्ञान हो जाने पर किस प्रकार का रूप होता है तथा उसका ज्ञान किस स्वरूप वाला है ? ॥४१॥ हे तात ! उसका क्या चरित है और कौनसा तीर्थ उसमें अधिष्ठित है ? हे प्रभो ! और उसके तीर्थ में निवास करने वाले किन के ऊपर उनका अनुग्रह हुआ करता है ? ॥४२॥ पुराणों का व्रक्षण और व्रतों का क्रम तथा षणों का और आश्रमों का वर्णन विधि किस प्रकार की होती है ? ॥४३॥ हे भगवन् ! श्राद्ध कैसे किया जाता है तथा प्रायश्चित्तों के करने का क्या विधान है ? यह सभी हमारे पूछने का विषय है उन गवता आप वर्णन करने के लिये परम गुणोभ्य महापुरुष है ॥४४॥ हे द्विजो ! इस प्रकार से इस वचन को भगवान् भास्कर ने श्रवण किया था और जो भी बुद्ध उन में पूछा गया था वह सभी वचन करना उन ने आरम्भ कर दिया था ॥४५॥

॥ शिव महिम वर्णन ॥

दृगु पुत्र प्रवक्ष्यामि तत्त्वं यत्र प्रतिष्ठितम् ।
 पुराणेऽस्मिन्महाभाग सर्ववेदार्थसंग्रहे ॥१
 तत्तत्त्वं यद्भ्रूगवतो रूपमीशस्य शूलिनः ।
 विश्वं तेनाद्विल व्याप्तं नान्येनेत्यप्रवीच्छ्रुतिः ॥२
 स एवाऽऽत्मा समस्ताना भूताना मनुर्जायित्वा ।
 चैतन्यरूपो भगवान्महादेवः सहोमया ॥३
 एकोऽपि बहुधा भाति लीनया केवलः शिवः ।
 ब्रह्मविष्ण्वादिरूपेण देवदेवो महेश्वरः ॥४
 पृष्टो ब्रह्मादिभिर्देवैः कस्तत्र दशोऽन शकरः ।
 अग्रवीदहमेवैको नान्यः कश्चिदिति श्रुतिः ॥५
 आत्मभूतान्महादेवान्नीत्याविग्रहरूपिणः ।
 आदिसर्गे ममुद्भूतो ब्रह्मविष्णु मुरोत्तमो ॥६
 तमेक परमःत्मानमादिकर्तारमीश्वरम् ।
 प्राहृयंह्रुविध गज्जा इन्द्रं गितमिति श्रुति ॥७

श्री भानुदेव ने कहा—हे पुत्र ! जिसमें जो भी शिव प्रतिष्ठित है
 उमरी में बालाऊ गा तुम गावपान होकर धवन करो । यह पुराण
 है महाभाग । सभी वेदों के अर्थों का एक संग्रह स्वल्प है ॥१॥ तुम्हीं
 ईश भगवान् का जो रूप है यही परम तत्त्व है । उमके द्वारा ही मनुजों
 विश्व व्याप्त है अथर्विणों के द्वारा मनी है—तेजा ही श्रुति न
 यतमाया है ॥२॥ है मनुजों के स्वामिन् । यह ही मयात्त भूतों की
 आत्मा है और जगदम्बा उमादेवी के साथ भगवान् महादेव चैतन्य
 स्वल्प भावे है ॥३॥ केवल के एक ही शिव अन्ती सीता में बहूत
 प्रकार के स्वरूपों में लोभित हुआ करते हैं । यही स्वयं ब्रह्मा-विष्णु
 शक्ति के स्वल्प के द्वारा देशों के भी देव महेश्वर सर्वत्र विराजमान
 विष्णुसर्ग विना करते हैं ॥४॥ एक बार ब्रह्मा शक्ति देवों के द्वारा
 भगवान् मनुजों : पूजा कदा का कि हे देव ! शिव कहे है । तुम स्वयं

म उनसे उन्होंने स्वय ही कहा था कि मैं एक ही हूँ और अन्य कोई भी नहीं है—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है ॥५॥ आदि भूत और लीला से विग्रह तथा रूप के धारण करने वाले महादेव से ही जो आत्म भूत हैं, आदि सर्ग काल में सुरो में उत्तम ब्रह्मा और विष्णु ये दोनों समुत्पन्न हुए थे ॥६॥ उन्ही एक आदि कर्त्ता ईश्वर परमात्मा को उसके ज्ञान रखने वाले उनको बहुत प्रकार का कहते हैं । उन्ही को इन्द्र तथा मित्र भी कहा करते हैं—एसी श्रुति है ॥७॥

न तस्मादधिक कश्चिन्नाणीयानां प कश्चन ।

तेनेदमखिल पूर्ण शक्रेण मदात्मना ॥८

मुमुक्षुभि सदा ध्येय शिव एको निरञ्जन ।

सवमन्यत्परित्यज्य मुक्त एव विमुच्यते ॥९

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रायणे कारण परम् ।

शिवभक्ति सदा सत्य नान्यत्किंचन भूतले ॥१०

त्रिलोका सुखकामो यस्तेन पूज्यः सदाशिव ।

शिवभक्तिमूले मौर्य कुत स्यातावर्द्धनाम् ॥११

शिवभक्त्या धन विद्या यश शत्रुक्षयस्तथा ।

प्राप्यते विजय सर्व सत्यमतत्र सशय ॥१२

रोगक्षयस्तथाऽऽरोग्य यद्यद्धि मनसेच्छ्रुति ।

जनस्तत्सर्वमानोति वेदस्य वचन यथा ॥ १३

यदा लनाटे धात्रा हि लिखित सौख्यमुत्तमम् ।

शिवभक्तौ तदा बुद्धिर्जायते नान्यथा ध्रुवम् ॥१४

उनसे अधिप भी कोई नहीं है और उनसे अणीयान् अर्थात् मूर्ख भी कोई नहीं है । उन्हीं महारमा भगवान् वाङ्मूर के द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व परिपूर्ण हो रहा है । तात्पर्य यह है कि हम विश्व में जो भी कुछ जट-चेतन दिग्गोई देना है वह सभी उन्ही का स्वप्न है ॥८॥ जो मुक्ति की अभितापा राग काये प्राणी हैं उनके द्वारा एक निरञ्जन भगवान् शिव का ही सदा ध्यान करना चाहिये और अन्य सबका त्याग कर देना चाहिए । हमसे जो मुक्त होता है वह भी विमुक्त हो जाता करता है ॥९॥ धर्म अर्थ-काम और मोक्ष के प्रायण में शिव भगवान्

ही परम कारण स्वरूप है । भगवान् शिवजी भक्ति सर्वदा सत्य है और इसके सिवाय भूतल में अन्य कुछ भी नहीं है अर्थात् यही एक परमसार वस्तु है ॥१०॥ जो इस त्रिलोकी में सुख की कामना करने चला है उसको सदा भगवान् शिव की पूजा करनी ही चाहिए । भगवान् शिव की उपासना के बिना सब देहधारियों को सुख वहाँ पर है अर्थात् सुख ही नहीं सकता है ॥११॥ भगवान् शिव की भक्ति के द्वारा ही घन-विद्या-यश-शत्रुनाश-विजय सभी कुछ प्राप्त किया जाता है—यज्ञ सर्वथा सत्य है और इसमें लेशमात्र भी सदाय नहीं है ॥१२॥ रोगों का क्षय आरोग्य आदि जो-जो भी प्राणी मन से चाहा करता है मनुष्य उन सभी को प्राप्त कर लिया करता है—ऐसा ही वेद के वचन के द्वारा प्रतिपादित किया जाता है ॥१३॥ जय ऐसी ही शिव भक्ति की महिमा है तो मनुष्य उसे क्यों नहीं किया करते हैं—इस आश्चर्य का समाधान बताया जाता है कि यदि विधाता ने ललाट में जिस समय में परमोत्तम सुख की प्राप्ति का उल्लेख कर दिया है तो ही मनुष्यों की बुद्धि में शिव की भक्ति समुत्पन्न हुआ करती है अन्यथा निश्चित रूप से ऐसी बुद्धि ही नहीं हुआ करती है ॥१४॥

न तस्य कर्मकायं वा चण्डमुवनी महेशितुः ।

आनन्दरूपया गौर्या प्रीडति स्म महेश्वरः ॥१५॥

अक्षर परम व्योम शैवं ज्योतिरनामयम् ।

यस्तन्न वेद किं वेदग्राह्यस्य भविष्यति ॥१६॥

नान्यो वेद्य म्वयं ज्योती र्द्र एको निरञ्जनः ।

तस्मिज्जातेऽखिलं ज्ञातमित्याहूर्वे देवादिनः ॥१७॥

अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च शक्रश्चान्ये दिवोकसः ।

अद्याप्युपायैर्विविधैः शंभोर्दशं नकाङ्क्षिणः ॥१८॥

न दानेनं तपोभिर्वा नाश्वमेधादिभिर्मयै ।

भक्त्यै वानयया राजञ्जायते भगवाञ्जिवः ॥१९॥

यनो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनना मत् ।

भर्गाद्विश्वस्य भरणाद्विश्वयोनेरुमापते ॥२०

तस्य ज्ञानमयी शक्तिरव्यया गिरिजा शिवा ।

तया सह महादेव सृजत्यवति हन्ति च ॥२१ /

उन महेश्वर भगवान् का न तो कर्म करने के योग्य है अर्थात् कोई भी कर्म नहीं करना है और न उनका तन्मय तथा मुक्ती ही है । महेश्वर भगवान् आनन्द स्वरूप वाली जगदम्बा गौरी के साथ क्रीडा किया करते थे ॥१५॥ भगवान् शिव अक्षर-परम व्योम अन्तमय शैव ज्योति हैं । जो उनको नहीं जानता है उस ब्राह्मण वा वेदों से क्या कल्याण होमा ॥१६॥ इस लोक में अन्य कोई भी जानने के योग्य नहीं है । केवल एव स्वयं ज्योति निरञ्जन रत्न भगवान् ही जानने के योग्य तत्त्व है । वेदों के वाद्य करने वाले लोग यही कहते हैं कि उस ज्योति के ज्ञान प्राप्त हो जाने पर सभी कुछ का ज्ञान प्राप्त हो जाया करता है ॥१७॥ मैं ब्रह्मा-विष्णु इन्द्र तथा अन्य देवगण हूँ । आज भी विविध उपायों के हूँ प्राणी भगवान् राम्भु के दर्शन की आवाङ्मूखा रखने वाले हैं ॥१८॥ भगवान् शिव का ज्ञान हे राजन् ! केवल एव अनन्य भक्ति द्वारा करता है अन्य कोई भी इसके प्राप्ति करने का नहीं है । दान-तप और अभ्यस्य आदि बड़े-बड़े मत्त भी इसके साधन नहीं हो सकते हैं ॥१९॥ भर्ग-विश्व के भरण विश्व की रानि और उमा के स्वामी भगवान् शिव का स्थल है जहाँ पर मनके ही गाय वाणी भी विवृत हो जाया करती हैं । अर्थ यह है कि यही मन-वाणी और बुद्धि विही की भी पद्विष नहीं है ॥२०॥ उनको ज्ञानमयी शक्ति अव्यया गिरिजा शिवा ही है । उन्हीं के साथ महादेव जगन् का सृजन-पालन और महार किया करते हैं । तात्पर्य यह है कि शिव की शक्ति ही की महिमा से सभी कुछ हुआ करता है ॥२१॥

आचक्षते तयोर्भेदमज्ञा न परमायंत ।

अभेदं शिवयो-मिदं वल्लिदाहययोरिव ॥२२

माया मा परमा शक्तिरशरा गिरिजाव्यया ।

मायाविश्वारम्भो रश्मिन्शारा तन्मूनी जयेन् ॥२३

स्वात्मन्यवस्थितं देवं विश्वश्यापिनभीश्वरम् ।
 भक्त्या परमया राजञ्ज्ञात्वा पार्श्वं विमुच्यते ॥२४
 सकलं तस्य भासैव भाति नान्येन श करः ।
 तस्मिन्प्रकाशमाने हि नैव भान्त्यनलादयः ॥२५
 तास्मिन्महेश्वरे गूढे विद्याविद्ये क्षराक्षरे ।
 विधातरि जगन्नाथे विश्वं भाति न वस्तुतः ॥२६
 तास्मिन्महेश्वरे विश्वमोतं प्रोतं न संशयः ।
 तरिमञ्ज्ञातेऽखिलं पार्श्वं मुच्यते मनुजेश्वरः ॥२७
 ब्रह्मविष्णवादयो देवा मुनयो मनवस्तथा ।
 सर्वे क्रीडनकास्तस्य देवदेवस्य गूलिनः ॥२८

जो अथा पुरुष हैं वे ही उन दोनों का भेद बतलाया करते हैं कि शिव और उमा दो भिन्न शक्तिया हैं परमार्थ रूप से शिव और शिवा का भेद नहीं होता है—यह परम सिद्ध सिद्धान्त है जैसे अग्नि और मे कोई भेद नहीं हुआ करता है क्योंकि जो अग्नि है वह दाहक भी है ॥२२॥ उमा साक्षात् माया स्वरूपिणी है। वही परमाशक्ति है। वह अक्षरा-अव्यया गिरिजा है। उद्र माया विश्व स्वरूप वाणे है। उनका ज्ञान प्राप्त करके प्राणी अमृती हो जाता करता है ॥२३॥ हे राजन् ! अपनी ही आत्मा के अन्दर अन्तर्यामी के स्वरूप से विद्यमान है अर्थात् बहुत ही निकटनम है। विश्व में भी सर्वत्र व्यापी है ऐसे देव ईश्वर है। उनका ज्ञान परमोत्कृष्ट भक्ति के ही द्वारा होता है और उतको पाकर यम की पाशां से छुटकारा पा जाया करता है ॥२४॥ उनकी दीप्ति से इस सबका भान होना है अन्य के द्वारा यह मागित नहीं हुआ करता है ऐसे ही भगवान् शङ्कर हैं। उनके प्रकाशमान होने पर तेजस्वी भी परम तेजः सम्पन्न अग्नि आदि कुछ भी प्रकाश नहीं दे सकते है ? अर्थात् इम तेज के सामने मनी अन्य तेज गिरोभूत में हो जाया करते हैं ॥२५॥ उन परम गूढ़-विद्या को अविद्या रूप माने—क्षर एव अक्षर एव-विद्या-जगत् के मध्यामी महेश्वर प्रभु में

वास्तविकता से यह विश्व भान नहीं किया करता है ॥२६॥ उस विश्वेश्वर में महेश्वर में यह सम्पूर्ण विश्व ओन-प्रोत है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है। उन प्रभु का ज्ञान हो जाने पर मनुज समस्त पाशों से विमुक्त हो जाया करता है ॥२७॥ उन्हीं देवों के भी देव भगवान् शूली के ये सब ब्रह्मा-विष्णु आदि समस्त देवगण-मुनिमण्डल तथा मनु प्रभृति सब खिलीने हैं ॥२८॥

स एवँ को न चानेको न द्विरूप कदाचन ।

तस्याऽऽज्ञयाऽखिलं विश्व वर्तते तन्नियन्त्रितम् ॥२९॥

आदिसर्गे महादेवो ब्रह्माणममृजत्प्रभुः ।

दक्षिणाङ्गाद्विरूपाक्ष सृष्ट्यर्थं लीलया किल ॥३०॥

तस्मै वेदान्पुराणानि दत्तवानग्रजन्मने ।

वासुदेव जगद्योनि सत्त्व द्विक्त सनातनम् ॥३१॥

असृजत्पालनार्थं च वामभागान्देश्वरः ।

हृदयात्काल रुद्रारय जगत्संहारकारकम् ॥३२॥

असृजद्योगिना ध्येयो निर्गुणस्तु स्वयं शिवः ।

विश्व तस्माद्वि सभूत तस्मिंस्तिष्ठति श करे ॥३३॥

लयमप्यति तत्रैव त्रयमेतत्स्वलीलया ।

स एवाऽऽत्मा महादेव सर्वेषामेव देहिनाम् ॥३४॥

ज्ञानेन भवित्युषतेन ज्ञानोऽयः परमेश्वरः ।

न पश्यामि महादेवादधिक देवतान्तरम् ॥३५॥

ये प्रभु सर्वदा एक ही हैं और कभी भी दो रूप वाले नहीं हैं और वे अनेक नहीं हैं। उनकी आज्ञा से यह सम्पूर्ण विश्व उनके ही द्वारा नियन्त्रित रहा करता है। २९॥ सर्ग के आदि काल में प्रभु ने ब्रह्माजी का गृहन किया था। उग्न समय में विरूपाक्ष प्रभु ने लीला में ही सृष्टि की रचना करने के लिये अपने दाहिने अङ्ग से इनका गृहन किया था ॥३०॥ फिर उनको जो वि अग्रजन्मा थे सब वेदों को और पुराणों को प्रभु ने दे दिया था। इनके अन्तर रचना की हुई सृष्टि के

पालन करने के लिये सत्त्वादित्त जगत् की योनि-सनातन वासुदेव की रचना की थी ॥३१॥ महेश्वर भगवान् ने विष्णु भगवान् की रचना अपने बाये भाग में की थी और आपने हृदय के भाग से काल रुद्र नाम वाले देव की रचना की थी जो इस जगत् के सहार को करने वाले हैं ॥३२॥ योगियों के ध्यान करने के योग्य निर्गुण शिव भगवान् ने स्वयं विश्व का सृजन किया था तथा उन्हीं से यह समुत्पन्न हुआ था उसी में शङ्कर स्थित भी रहा करते हैं ॥३३॥ ये तीनों उनकी ही लीला से उन्हीं में लय को प्राप्ति हो जायेंगे । वे ही महादेव सब देहधारियों की आत्मा हैं । वे परमेश्वर भक्ति से युक्त ज्ञान के द्वारा ही जानने के योग्य होते हैं । मैं तो महादेव भगवान् से अधिक अन्य किसी भी देवता को नहीं देखता हूँ ॥३४-३५॥

वेदा अपि तमेवार्थमाहुः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।

य प्रपश्यन्ति विद्वांसो योगिनः क्षपिताशयाः ।

नियम्य करणग्रामं स एवाऽऽत्मा महेश्वरः ॥३६

ब्रह्मविष्ण्वन्द्रचन्द्राद्या यस्य देवस्य किंकराः ।

यस्य प्रसादाज्जीवन्ति स देवः पार्वतीपतिः ॥३७

न जागन्नि परं भावः यस्य ब्रह्मादयः सुराः ।

अद्यापि न वयं विद्मः स देवास्त्रिपुरान्तकः ॥३८

शृण्वन्तु देवता सर्वा मत्पुत्रमस्मद्वचः परम् ।

नास्ति रुद्रान्महादेवादधिकं देवतं परम् ॥३९

न यथा ब्रह्मरोमाणि शूद्रा न शशमस्तके ।

न यथाऽस्ति वियत्पुष्पं तथा नास्ति हरात्परम् ॥४०

शिवभक्तिमृते यन्तु मुग्धमाप्तुमिहेच्छति ।

अजागलस्तनादेव स दुग्धपातुमिच्छति ॥४१

महादेव विजानीयाद्दहम्मोर्तिपण्डिताः ।

अन्यत्किमस्मादप्यस्ति शतशः सुविवाहेनवे ॥४२

स्वाम्भुव अन्तर में वेद भी उगी की ही अर्थ के रूप में बतलाते

हैं। वेदों ने कहा था—अपित आशय वाले विद्वान् योगिगण जिसको देखा करते हैं और अपनी सब इन्द्रियों को नियमित कर लिया करते हैं वह ही महेश्वर भगवान् आत्मा हैं ॥३६॥ जिन देवेश्वर प्रभु के ब्रह्मा-विष्णु इन्द्र और चन्द्र प्रभृति समस्त देवगण सिद्धर हैं और जिनके ही प्रसाद से ये सब जीवित रहा करते हैं वह पावंती के पति महादेव ही सर्वोपरि देवेश्वर हैं ॥३७॥ ब्रह्मादि देवगण भी जिसके प्रभाव को नहीं जानते हैं और अभी तक भी हम लो० भी उनके स्वप्न को नहीं समझा करते हैं वही देव त्रिपुरामुर के अन्त करने वाले हैं ॥३८॥ सब देवगण अब हमारा यह परम सत्य वचन श्रवण कर लेवें कि महादेव भगवान् रुद्र से अधिक अन्य कोई भी परम देव नहीं है और वही सर्वोपरि विराजमान् देव हैं ॥३९॥ जिस तरह से कर्म के रोम नहीं होते हैं और शश (खरगोश) के मस्तक में सीग नहीं रहा करते हैं तथा जैसे आकाश में पुष्प नहीं होने हैं तात्पर्य यह है कि ये उपर्युक्त तीनों बातें असम्भव है ठीक उसी भाँति यह भी सत्य है कि हर भगवान् से पर कोई देवता नहीं है ॥४०॥ जो पुरुष भगवान् शिव की भक्ति के बिना ही इस लोक में सुख प्राप्त करने की इच्छा किया करता है उसकी यह इच्छा भी इसी तरह से समझना चाहिए जिस तरह से अजा के गले में होने वाले स्तन से कोई दूध पीने की इच्छा किया करते हों क्योंकि गले के स्तन से दूध कभी निकलता नहीं है और ऐसी इच्छा करना निरर्थक ही होती है। वैसे ही शिव भक्ति के बिना सुख भी नहीं पाया जा सकता है ॥४१॥ मैं पण्डित हूँ—अर्थात् ज्ञाता हूँ—इस भावना से महादेव प्रभु का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। मुक्ति के लिये इसका ज्ञान करना परमावश्यक है कि अन्य भी कुछ उनके अतिरिक्त है क्या ॥४२॥

ब्राह्मी नारायणी रौद्री पूजयित्वा महेश्वरीम् ।

यत्प्रपश्यन्ति योगीन्द्रास्तद्विद्याच्छांकरं गदम् ॥४३॥

क्रमाच्चक्राणि चक्रम्य शङ्खिन्यामुपरि स्थितम् ।

यदभिव्यज्यते ज्योतिस्ताद्विद्याच्छांकरं पदम् ॥४४॥

देवयानपथं हित्वा पितृयाण तथोत्तरम् ।

गगनाद्यो रत्र. सूक्ष्मः शकरस्य स वाचकः ॥४५॥

विश्वतश्चक्षुरीशानस्त्रिगुली विश्वतोमुख. ।

जनकः सर्वभूतानामेक एव महेश्वर. ॥४६॥

वालाग्रमात्रं हृत्पद्मे स्थित देवमुमापतिम् ।

येऽनुपग्यन्ति विद्वासरतेषा शान्तिर्हि शाश्वती ॥४७॥

पृथिव्या तिष्ठति विभुः पृथिवी वेत्ति नैव तम् ।

रूपं च पृथिवी यस्य तस्मै भूम्यात्मने नमः ॥४८॥

अप्सु तिष्ठति नैत्राऽऽरत विदुः परमेश्वरम् ।

आपो रूपं च यस्यैव नमस्तस्मै जलात्मने ॥४९॥

ब्राह्मी-नारायणी-रोत्री महेश्वरी शक्ति को पूज करके योगीन्द्र लोग जिसको देखा करते हैं उसी पदको शङ्कर यह जान लेना चाहिए ॥४३॥
 श्रम से चक्र चक्रमण करके शक्तिनी के ऊपर स्थित जो ज्योति अभिव्यक्त होती है । उसी को शङ्कर भगवाद् का पद (स्थान) समझना चाहिए ॥४४॥ देवयान पथ का त्याग करके उत्तर में पितृयाण है । यहा पर गगन से जो सूक्ष्म रव होता है वही भगवाद् शङ्कर का वाचक है ॥४५॥
 विश्व तश्चाक्षु-ईशान-त्रिगुली विश्वतोमुख और समस्त भूतो के जनक एक ही भगवान महेश्वर हैं ॥४६॥ हृदय रूपी कमल में वाक्त्रे अग्रभाग से परिमाण वाले उमापति देव स्थित रहा करते हैं । जो विद्वान लोग उनका दर्शन किया करते हैं उनको शाश्वती शान्ती हुआ करती है ॥४७॥
 विभु इसी पृथ्वी पर स्थित रहा करते हैं किन्तु यह पृथ्वी उनको नहीं जानती है । जिसका यह पृथ्वी रूप है उन भूम्यात्मा के लिये नमस्कार है ॥४८॥
 वे जलों में भर गमवारिष्य रहा करते हैं किन्तु जो उन परमेश्वर को नहीं पहिचानते हैं । ये आप (जल) त्रिवारा स्वरूप है उन जलात्मा श्रु के लिये नमस्कार है ॥४९॥

योऽग्नी तिष्ठत्यमेयारमा न त वेत्ति वदाचन ।

अग्नी रूपं भवेत्तरय तरमं यज्ञघातने नमः ॥५०॥

तिष्ठत्यजस्र यो वायौ न वायुर्वेत्ति तं परम् ।
 वायुयंस्य भवेद्रूप तस्मै वाय्वात्मने नमः ॥५१॥
 व्योम्नि तिष्ठति यो नित्य व्योम वेत्ति न ते हरम् ।
 व्योम यस्य भवेद्रूप तस्मै व्योमात्मने नमः ॥५२॥
 सूर्ये तिष्ठति यो देवो न सूर्यो वेत्ति शकरम् ।
 यस्य सूर्यो भवेद्रूप तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥५३॥
 यश्चन्द्रे तिष्ठति विभुश्चन्द्रो वेत्ति न शाश्वतम् ।
 चन्द्रो यस्य भवेद्रूप तस्मै चन्द्रात्मने नमः ॥५४॥
 यजमनि तिष्ठति यो न त वेत्ति कदाचन ।
 यजमानोऽपि यद्रूप यजमानात्मने नमः ॥५५॥
 त्वत्तो वयं समुद्भूतास्त्वय्येव विलयस्तथा ।
 प्रमाणपद्मारूढास्त्वत्प्रसादाद्वृषव्वज ॥५६॥
 एव वेदस्तुति श्रुत्वा भगवान्गिरिजापति ।
 प्रत्यक्ष समभूतोपा वेदाना मनुजाधिप ॥५७॥
 सूर्यकोटिप्रतीकाशः सहस्राशः सहस्रपात् ।
 सहस्रशीर्षा पुरुष सूर्यसोमाग्निलोचन ॥५८॥
 स्थूलात्स्थूलतरः स्थूल सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरः परः ।
 वेदानुवाच भगवान्देवदेवो महेश्वर ॥५९॥

जो अभेयात्मा अग्नि में विराजमान रहा करते हैं और वह अग्नि उनका ज्ञान ही नहीं रखता है । उन अग्नि के स्वरूप वाले प्रभु अन्यात्मा के लिये नमस्कार है ॥५०॥ जो निरन्तर वायु में स्थित रहा करते हैं उन परमेश्वर को यह वायु नहीं जानता है । वायु जिनका रूप होता है उन वाय्वात्मा के लिये नमस्कार है ॥५१॥ जो नित्य ही व्योम में रहते हैं और उन हरको यह व्योम नहीं जानता है । यह व्योम उनका रूप होता है उन व्योमात्मा प्रभु के लिये नमस्कार है ॥५२॥ जो देवेश्वर सूर्य मण्डल में विद्यमान रहा करते हैं किन्तु सूर्य देव स्वयं उन शङ्कर भगवान् का ज्ञान नहीं रखते हैं । सूर्य त्रिनका रूप होने हैं उन सूर्यात्मा

प्रभु के लिये नमस्कार है ॥१३॥ जो चन्द्रमा मे स्थित रहते हैं और चन्द्र उन शाश्वत प्रभुको नहीं पहिचानते हैं किन्तु चन्द्रमा जिनका रूप है उन चन्द्रात्मा प्रभु की सेवा मे हमारा प्रणाम है ॥१४॥ वे यजमान ही एक मे भी विराजमान रहा करते हैं किन्तु यजमान को उनकी स्थिति का ज्ञान नहीं होता है वह यजमान भी उनका ही एक स्वरूप होता है अतः उस यजमानात्मा प्रभु के लिये हमारा प्रणाम है ॥१५॥ हे वृष ध्वज ! हम लोग सब आप से समुद्धन हुए है और आप मे ही विलय को प्राप्त होंगे । आपके ही प्रसाद मे हम सब प्रमाण पद पर समारूढ हुए हैं ॥१६॥ भगवान् भानु देव ने कहा—इस प्रकार से वेदो के द्वारा की हुई स्तुति का श्रवण करके भगवान् गिरिजा के स्वामी हेमनु जाधिय ! फिर उन वेदो के सामने प्रत्यक्ष हो गये थे ॥१७॥ करोडो सूर्यो के साप्ताह दीप्ति वाले—सहस्र नेत्रो से युक्त-महस्र चरणो से समन्वित-सहस्र शीर्षो से सम्पन्न पुरुष थे जिनके सूर्य और चन्द्र एव अग्नि लोचन थे ॥१८॥ वे म्यूल से भी अधिक म्यूल थे तथा सूक्ष्म से भी अधिक सूक्ष्म देवो के भी देव भगवान् महेश्वर वेदो से बोले—॥१९॥

मत्प्रसादाद्भविष्यध्व हे वेदा लोकपूजिता ।
युष्मानाश्रित्य विप्रेन्द्राः कर्भं कुर्वन्ति नान्यथा ॥६०॥
ये युष्मान्समतिक्रम्य यत्किञ्चित्कर्म कुर्वते ।
निष्फलं तद्भवेत्कर्म तेषां युष्मदैवज्ञया ॥६१॥
नित्यं निर्मात्तकं काम्यं यच्चान्यन्मोक्षसाधनम् ।
युष्मद्वचो नान्यदिति मत्वा धीरो न शोचति ॥६२॥
ये वै युष्माननादृत्य शास्त्रं कुर्वन्ति मानवाः ।
निरये ते विपश्यन्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥६३॥
श्रेयसे त्रिषु लोकेषु न वेदादधिकं परम् ।
विद्यते नास्य सदेह इति दत्तो वरो मया ॥६४॥
युष्मद्वृत्तं परं स्तोत्रं ये पठिष्यन्ति वै द्विजाः ।
तेषामध्ययनं पुण्यं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥६५॥

प्रत्यक्ष सर्वभूतानामज्ञाना तद्विपर्यय ।

विश्वमायाविधातार द्विष्टादशरूपिणम् ॥३॥

भक्तिग्राह्य महादेव जानीह्यात्मनि सस्थितम् ।

आत्मभूते महादेवे योगिध्येये सनातने ॥४॥

भक्तिमास्थाय परमा वर निर्वाणमाप्नुहि ।

तीर्थयात्रा बहुविधा यज्ञाश्च विविधा कृता ॥५॥

येषा जन्मसहस्रेषु तेषा भक्तिर्भवेच्छिवे ।

अक्षय परमो धर्मो भक्तिलेगेन जायते ॥६॥

नास्ति तस्मात्परो धर्म इत्याहुर्वेदवादिन ।

धर्मो बहुविध प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्रदशभि ॥७॥

श्री भानु देव ने कहा— जो यह ईश्वर का तेज है वह सर्वत्र गमन करने वाला है और यदि परम पद प्राप्त करने की इच्छा है तो केवल उनकी ही शरणागति में चले जाओ ॥१॥ वह ही समस्त भूतों में स्थित है । वह ज्ञानमय और तम से परे है—अक्षर—निर्गुण—शुद्ध—आनन्द और यह परम अन्यय है ॥२॥ वह ईश्वरीय तेज समस्त भूतों को प्रत्यक्ष है किन्तु जो अज्ञ पुरुष हैं उनको उससे विपर्यय होता है अर्थात् उनको प्रत्यक्ष नहीं होता है । वे विश्व की माया के विधाता और छत्तीस स्वरूप वाले हैं ॥३॥ श्रीमहादेव भक्ति के द्वारा ग्रहण करने के योग्य है और उनको अपनी आत्मा में ही सस्थित समझ लेना चाहिए । वह आत्मा के भी आत्म के भी आत्मभूत है और सनातन तथा योगियों के द्वारा ध्यान करने के योग्य महादेव हैं ॥४॥ परम भक्ति में समास्थित होकर परम निर्वाण को प्राप्त करो । अनेक प्रकार की तीर्थों की यात्रा और बहुत तरह के यज्ञ किये हैं ॥५॥ ये जीवजन्म सहस्रों जन्म धारण कर लेते हैं तब वहीं भगवान् शिव के चरणों में भक्ति उत्पन्न हुआ करती है । भगवान् शिव की भक्ति के लेश मात्र में ही परम अक्षय धर्म होता है ॥६॥ वेदों का बधन करने वाले ज्ञाता

पुरुष यही कहते हैं कि शिव से पर कोई भी धर्म नहीं है। तत्त्व दर्शो मुनियो के द्वारा बहुत प्रकार का धर्म बतलाया गया है ॥७॥

सत्राक्षय परो धर्मं शिवधर्मं सनातन ।

यज्ञात्तीर्थज्जपादानाद्धर्मं स्याद्बहुसाधन ॥८॥

साधनप्रार्थनावलेश परसपत्तिदुःखद ।

य पुन शिवधर्मस्तु न साधनमपक्षते ॥९॥

सचित जन्मासाहस्रैः पाप मेरूपम यदि ।

करोति भस्मसाच्छक्ति शभोरमिततेजस ॥१०॥

कुर्वन्नपि सदा पाप सकृदेवाचयेच्छिवम् ।

लिप्यते न स पापेन याति माहेश्वर पदम् ॥११॥

ये स्मरन्ति महादेव यदि पापरता अपि ।

ते विज्ञेया महात्मान इति सत्य ब्रवीम्यहम् ॥१२॥

नामानि च महेशस्य गृणस्त्यज्ञानतोऽपि वा ।

तेषामपि शिवो मुक्ति ददाति किमत परम् ॥१३॥

अत्राह सप्रवक्ष्यामि कथा गापप्रणाशनीम् ।

पाप्मकल्पसमुद्भूता ब्रह्मणा समुदीरिताम् ॥१४॥

भगवान् शिवजी भक्ति में अक्षय पर धर्म है और शिवधर्म सनातन अर्थात् 'सर्वदा चले आने वाला है। घन मे—तीर्थ'से—जय से और दान से बहुत साधनो वाला धर्म होता है ॥८॥ वह धर्म साधनो और प्रार्थनाओं के क्लेश वाला होता है तथा पराई सम्पत्ति के दुःख का देने वाला हुआ करता है। जो यह शिवभक्ति रूप धर्म है वह किसी भी साधन की अपेक्षा नहीं रखता करता है ॥९॥ यदि सहस्रो जन्मो में 'संजित किया हुआ पाप मेरु पर्वत के समान है तो उसको भी 'अपरिमित तेज' वाले भगवान् शम्भु की शक्ति भस्म कर दिया करती है ॥१०॥ मनुष्य सदा पापो को करता हुआ भी यदि एक वार भी भगवान् शम्भु की अर्चना करता है तो वह पाप से कभी भी लिप्त नहीं हुआ करता है शिवाचन की ऐसी ही महिमा है और अन्त में महेश्वर के पद को प्राप्त

क्रिया करता है ॥११॥ यदि अहर्निश पापो म रति रखने वाले भी पुरुष हैं वे भी महा देव का स्मरण किया करते हैं तो उनको महान् आत्मा वाले ही समझना चाहिए—यह मैं सर्व पर सत्य कह रहा हूँ ॥१२॥ यदि कोई अज्ञान से भी महेश्वर भगवान् के नामों का कीर्तन करते हैं तो उनको भी परम दयालु भगवान् शिव मुक्ति दे दिया करते हैं—इससे अधिक और क्या हो सकता है ॥१३॥ यहाँ पर मैं एक पापो का विनाश कर देने वाली कथा बतलाऊँगा जो पापकल्प मे समुत्पन्न हुई थी और ब्रह्मा जी द्वारा कही गयी थी ॥१४॥

श्रद्धया परया राजञ्छृणु त्व गदनो मम ।

वक्ष्येऽह त प्रणम्याऽऽदावीश भुवननायकम् ॥१५॥

आसीदाद्ये कृतयुगे सप्तद्वीपैकराड्वली ।

इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो राजा परमधार्मिक ॥१६॥

पूवो महाभाग सुद्युम्न इति विश्रुत ।

ऐश्वर्यैरखिलैर्भाति यथा दिवि शचीपति ॥१७॥

प्रतिष्ठानपुरे रम्ये गङ्गातीरे मनोरमे ।

तत्र स्थित्वाऽखिला पृथ्वी तस्मिन् राजनि शासति ॥१८॥

कदाचित्तत्र भगवास्तृणाबिन्दुर्महामुनि ।

आजगाम स त द्रष्टु सुद्युम्न प्रियदर्शनम् ॥१९॥

तमायान्त मुनि दृष्ट्वा राजा रुद्रार्चने रत ।

उद्वास्यार्चा महाबाहुस्तथाय च कृताञ्जलि ॥२०॥

यथावदभिवाद्याथ ददावासनमुत्तमम् ।

यथावन्मधुपर्कादि तस्मै सर्वं न्यवेदयत् ॥२१॥

हे राजन् ! परमाग्रिक श्रद्धा से उसका आय दामण करो । मैं उसको बतलाता हूँ । मैं प्रारम्भ मे समस्त भुवनो के नामक ईश उनको प्रणाम करके उस कथा का वर्णन करूँगा ॥१५॥ सबसे आदि मे होने वाला कृत युग मैं सातों दीपो के एक छत्र राजा तथा बलवान् और परम धार्मिक इन्द्र पुम्न नाम वाला राजा प्रसिद्ध ब्रह्मा था ॥१६॥

उसका एक पुत्र था जिसका नाम सुद्युम्न प्रसिद्ध था । वह महान् भाग्य
 वाला सम्पूर्ण ऐश्वर्यो स दिविलोक म इन्द्र के ही समान शोभित होता
 था ॥१७॥ गङ्गा के तट पर परम मनोरम एवं अत्यधिक सुरम्य प्रति-
 छान पुर मे वह राजा रहा करता था और समस्त पृथ्वी का वही पर
 स्थित होकर शासन किया करता था ॥१८॥ वहा पर किसी समय मे
 महामुनि भगवान् वृष बिन्दु उस सुद्युम्न से मिलने के लिये समागत
 हुए थे । सुद्युम्न परम प्रिय दशन था ॥१९॥ राजा उस समय मे भग
 वान् इन्द्र के अर्चन मे निरत था । उस समय मे समागत मुनि को देखकर
 महाबाहुओं वाले राजा ने अर्चा को उद्घासित करके उठ गया और हाथो
 को जोडकर खडा हो गया था ॥२०॥ पश्चात् मुनि को अभिवादन
 करके इसके अनन्तर उसने मुनि के बैठने के लिये उत्तम आसन दिया
 था । तथा विधि विधान के साथ गधुपक आदि सभी पूजनीय चार
 उनकी सेवा मे समर्पित किये थे ॥२१॥

अद्य धन्य कृतार्थोऽस्मि सफल जीवित मम ।

भगवानागतो यस्मान्मा द्रष्टु मुनिसत्तम ॥२२॥

किमथ मतो ब्रह्मन्कृयकृत्योऽस्मि सुव्रत ।

विशेषाच्छकरे भक्तो न दुर्लभमिहास्ति ते ॥२३॥

सुद्युम्नस्य वच श्रुत्वा मुनिराह महामना ।

शिवभक्त्यमृतास्वादपरानन्दैर्कान्भर ॥२४॥

राजन्यदुक्त भवेत्ता तत्ताथैव न सशय ।

तथाऽपि चरित श्रुत्वा तवाह विस्मयान्वित ॥२५॥

प्रष्ट समागतो राजञ्जन्मनस्तव गौरवम् ।

कथयस्व महाबाहो श्रोतु कोतूहल हि मे ॥२६॥

जन्मन्यहमतीतेऽस्मिन्बराधोऽह गोमतीतटे ।

देवतानामह द्वेषा सर्वेषा प्राणिनामपि ॥२७॥

सुव्याडिर्गिरातनामाऽह श्यातोऽह व्याधाराड्मुनेः ।

न कश्चिद्धर्मलेशोऽस्ति पापकर्मन्वह रत ॥२८॥

राजा ने कहा हे मुनि श्रेष्ठ ! आज मैं परम धन्य एव कृतायं होगया हूँ और मेरा यह जीवन भी आज सफल होगया है क्योंकि आप स्वयं कृपा करके मुझे दर्शन देने के लिये मेरे घर पर पधारे हैं ॥२२॥ हे ब्रह्मन् ! आप तो परम सुमुत हैं । आप यहाँ किस प्रयोजन से पधारे हैं ? मैं तो परम कृतकृत्य हो गया हूँ । आप तो विशेष रूप से भगवान् शङ्कर के भक्त हैं । आपको इस लोक में कुछ भी दुर्लभ वस्तु नहीं है ॥२३॥ श्री भानुदेव ने कहा—सुद्युम्न राजा के इस वचन का श्रवण करके महामना मुनि ने कहा जो कि मुनि भगवान् शिव की भक्ति रूपी अमृत के आस्वाद में परमाधिक आनन्द में निमग्न हो रहे थे ॥२४॥ तृण विन्दु ने कहा—हे राजन् ! आपने जो कुछ भी कहा है वह वस्तुतः वंसा ही है और इसमें कुछ भी सशय नहीं है तो भी मैंने आपके चरित का श्रवण किया था तो मुझे परम विस्मय हो गया था ॥२५॥ हे राजन् ! मैं आपके जन्म का गौरव पूछने के ही लिये यहाँ पर आया हूँ । हे महाबाहो ! आप उसे मेरे सामने कहिये क्योंकि मेरे हृदय में उसके श्रवण करने का बड़ा भारी कीतूहल उत्पन्न हो रहा है ॥२६॥ राजा सुद्युम्न ने कहा—हे मुनिवर ! मैं अपने प्रथम जन्म में गोमती के तट पर एक व्याध था । मैं सभी देवों का द्वेषी था और सभी प्राणियों के साथ भी सदा द्वेषभाव रक्खा करता था ॥२७॥ हे मुने ! मेरा नाम 'सुव्याधि' था और मैं व्याधो का राजा प्रसिद्ध हो रहा था । मेरे अन्दर उस व्याध जीवन में धर्म का तो लेशमात्र भी नहीं था तथा मैं रातदिन पाप पूर्ण कर्मों में ही निरत रहा करता था ॥२८॥

मया ये निहिता मार्गे तेया सहया न विद्यते ।

परस्व यदपहृत तत्पाप पवंतोपमम् ॥२९

एव बहुतिथे काले गतेऽह पञ्चता गतः ।

धर्म राजस्य पुरतो नीतोऽह यमार्किकरः ॥३०

मा दृष्टवाऽथाब्रवीद्धर्मश्चित्तगुप्त विचारकम् ।

किमनेन कृतो धर्मलेशोऽस्ति वद सूत्रत ॥३१
 अनेन यत्कृतं पुण्य मया ववतुं न शक्यते ।
 जानाति भगवानेको विश्वव्यापी महेश्वरः ॥३२
 इदं पुण्यमिति ज्ञात्वा कृतं नानेन यद्यपि ।
 आहर प्रहरेत्यादि नामसकीर्तनं च यत् ॥३३
 करोति तेन पुण्येन दुष्कृतं भस्मसात्कृतम् ।
 पापलेशोऽपि नास्तास्ति इति मे निश्चिता मतिः ॥३४

मैंने उस समय मे मार्ग मे जिनका धर्म किया था वे अशुभित प्राणी थे और उनकी सख्या कुछ भी नहीं बतलायी जा सकती है । दूसरो का धर्म जो मैंने अपहरण किया था वह पाप भी साधारण नहीं था प्रत्युत एक पर्वत के ही समान महान् था ॥३६॥ इस प्रकार से बहुत-समय व्यतीत हो जाने पर मैं मृत्युवश हो गया था । यम के किकरो के द्वारा मुझे धर्मराज के समक्ष मे प्राप्त किया गया था ॥३०॥ मुझको देखकर धर्मराज ने पाप-पुण्यो के लेखा-जोला करने वाले चित्रगुप्त से कहा— हे सुब्रत ! यह बनल/ओ कि इसने क्या किया है? क्या इसके जीवन मे धर्म का भी थोडा बहुत लेश है ? ॥३१॥ चित्रगुप्त ने कहा—इसने जो पुण्य किया है वह ऐसा है कि मेरे द्वारा कहा नहीं जा सकता है । उसको विश्व मे व्याप्त रहने वाले एक भगवान् महेश्वर ही जानते हैं ॥३२॥ यद्यपि यह कोई पुण्य का कार्य है—यह जानकर इसने नहीं किया था । यह सदा 'आहर'—'प्रहर' इत्यादि नामो का सकीर्तन किया करता था । इन दोनो शब्दो के कथन का अर्थ अपहरण करो और मार डालो—यही होता था किन्तु उन दोनो शब्दो मे "हर" का नाम आता है ॥३३॥ उसी पुण्य से जो भी कुछ इसके जीवन मे दुष्कृत थे वे सब भस्म हो गये थे । अब इसमे पाप का लेशमान भी शेष नहीं रह गया है—मेरे बुद्धि तो यही निश्चय करती है ॥३४॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा चित्रगुप्तस्य धीमतः ।

सुव्याडि पूजयामास यथावद्विधिपूर्वकम् ॥३५

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानं सार्वकामिकम् ।
 सूर्यायुतप्रतीकाशं दिव्यस्त्रीभिर्विराजितम् ॥३६॥
 देवदूतं समानीतमारुह्य मुनिपुंगव ।
 धर्मराजमनुज्ञाप्य गतोऽहममरावतीम् ॥३७॥
 तत्र भुक्त्वा महाभोगान्युगानामयुतं ततः ।
 गतोऽस्मि ब्रह्ममदनं ब्रह्मणाहं प्रपूजितं ॥३८॥
 तत्राह कल्पपयन्तं भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् ।
 ततस्तु कर्मणो शेषं भोक्तुमत्र महीतले ॥३९॥
 इन्द्रद्युम्नस्य राजपते कुले जातोऽस्मि सुव्रत ।
 स्मरामि पूर्विकां जातिं प्रमादाच्छूलिनो मुने ॥४०॥
 ईश्वरे सहस्रा भक्तिर्मम त्रिदशपूजिते ।
 जानाति को महेशम्य माहात्म्यं परमात्मनः ॥४१॥
 यस्य नाम्नः फलमिदमज्ञानोच्चारणादपि ।
 ज्ञात्वा यः कीर्तयेच्छ्रमोर्नामान्यमिततेजसः ॥
 मुक्तिं वरतलं तस्य स्थितिं मुनयो जगुः ॥४२॥

राजा सुद्युम्न ने कहा—धीमान् चित्रगुप्त के इस वचन को सुनकर धर्मराज ने उस सुव्यादि का विधि पूर्वक यथावत् पूजन किया था ॥३५॥ इसी बीच में वहाँ पर सब कामनाओं के पूर्ण करने वाला एक विमान आ गया था जो दस हजार सूर्यों के समान दीप्तिमान् और दिव्य स्त्रियों से समन्वित था ॥३६॥ उस विमान को देवदूत वहाँ लाये थे और उनके द्वारा मुझसे कहा गया था कि हे मुनिश्रेष्ठ ! इस पर समाह्वय होइये । मैं भी मुनि श्रेष्ठ ! उस पर चढ़कर तथा धर्मराज की आज्ञा प्राप्त करके अमरावती में चला गया था ॥३७॥ फिर वहाँ पर दस सहस्र युगों तक मैंने महान् भोगों का उपभोग किया था और इसके उपरान्त मैं ब्रह्माजी के सदन में चला गया जहाँ पर ब्रह्माजी के द्वारा मेरी पूजा की गयी थी ॥३८॥ वहाँ पर मैं एक कल्प तक यथेप्सित भोगों का उपभोग करके इसके पश्चात् शेष कर्म का फल भोगने के लिये इस

महीतल में आगया है ॥३६॥ हे सुव्रत ! यहाँ पर मैं राजर्षि इन्द्र घुम्न के कुल में समुत्पन्न हुआ हूँ । हे मुने ! मैं अभी भी भगवान् शूली के प्रभाव से अपनी पहिली जाति का स्मरण करता हूँ । अर्थात् भगवान् शङ्कर का ही यह प्रभाव है जिससे अपनी प्रथम जन्म की बात अभी तक याद है ॥४०॥ देवों के द्वारा समर्पित ईश्वर में मेरी सहसा भक्ति है । परमात्मा महेश के माहात्म्य को कौन जानता है । अर्थात् कोई भी नहीं जानता है ॥४१॥ जिन भगवान् शङ्कर के नाम का यह फल है जो कि बिना ही ज्ञान के उच्चारण करने ही प्राप्त होगया है । जो मनुष्य उनके नाम के माहात्म्य को जानकर अमित तेज वाले शम्भु के नामों का कीर्तन करता है उसके तो हाथ में ही मुक्ति स्थित रहा करती है—ऐसा मुनियो ने बतलाया है ॥४२॥

इति सर्वमशेषेण चरित तस्य धीमत ।

सुद्युम्नस्य मुनि श्रुत्वा विस्मितोऽभूत्पुनः पुन ॥४३

समालिङ्ग्य महात्मान सुद्युम्न राजपुंगवम् ।

राजन्स्वमाश्रयद यामीत्युक्त्वा जगाम स ॥४४

एतत्ते चरित राजन्सुद्युम्नस्य महात्मन ।

कथित प पठेद्भक्त्या ब्रह्मलोक स गच्छति ॥४५

भानुदेव ने कहा—परम बुद्धिमत् उस सुद्युम्न के सम्पूर्ण चरित को पूर्ण रूप से सुनकर मुनि बारम्बार विस्मित होगये थे ॥४३॥ उस मुनि ने महात्मा श्रेष्ठ राजा सुद्युम्न का भनीभाँति आलिङ्गन किया और फिर कहा—हे राजन् ! अब मैं अपने आश्रय को जाता हूँ—इतना कहकर वह वहाँ से चले गये ॥४४॥ हे राजन् ! यह महान् आत्मा वाले सुद्युम्न का चरित आपसो बतला दिया है । जो मनुष्य इसको भक्ति की भावना से पढ़ता है वह सोचा ब्रह्मलोक में गमन किया करता है ॥४५॥

॥ वाराणसी महिम-कलियुग वर्णन ॥

राज्ञ. सकाशात्स मुनिर्गत्वा किं कृतवान्पुनः ।
 तस्याऽऽश्रमस्य किं नाम भगवन्ब्रूहि मे प्रभो ॥१॥
 रेवातीरे महन्पुण्य जालेश्वरमिति स्मृतम् ।
 आश्रमं तृणबिन्दोस्सु मुनिसिद्धनिपेविनम् ॥२॥
 गत्वा तत्र मुनिश्रेष्ठो भवभावसमन्वितः ।
 शिवलिङ्ग प्रतिष्ठाप्य तीर्थयात्रा चकार सः ॥३॥
 कानि तीर्थानि गुह्यानि येषु सनिहितः शिवः ।
 ब्रूहि मे तानि भगवन्नन्यान्यपि च तत्त्वतः ॥४॥
 तीर्थानामुत्तम तीर्थं क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम् ।
 वाराणसीतिनगरी प्रिया देवस्य शूलिनः ॥५॥
 यत्र विश्वेश्वरो देवः सर्वेषामिह देहिनाम् ।
 ददाति तारकं ज्ञानं ससारान्मोचकं परम् ॥६॥
 गङ्गां ब्रह्ममयी यत्र मूर्तिश्चोत्तरवाहिनी ।
 सहस्रैः सर्वपापानां दृष्टा स्पृष्टा नमस्कृता ॥७॥

मनुजी ने कहा—हे भगवन् ! हे प्रभो ! अब कृपा करके मुझे यह बतलाइये कि वह मुनि उस राजा सुद्युम्न के समीप से जाकर फिर उन्होंने क्या किया था और उनके आश्रम का क्या नाम है ? ॥१॥ भानुदेव ने कहा—रेवा नदी के तट पर महान् पुण्यमय एव पवित्र जालेश्वर नाम से कहा गया है वह तृण बिन्दु मुनि का आश्रम है जो मुनियों और सिद्धों के द्वारा सेवित है अर्थात् मुनि और सिद्ध वहाँ पर निवास किया करते हैं ॥२॥ वह मुनियों में श्रेष्ठ वहाँ पर जाकर भगवान् भव (शङ्कर) के भाव से परिपूर्ण होगया था । और वहाँ पर एक शिव लिङ्ग की प्रतिष्ठा की थी और इसके पश्चात् उसने तीर्थयात्रा की थी ॥३॥ मनुजी ने कहा—वे कौन २ सँ तीर्थ हैं जिनमें भगवान् शिव सन्निहित रहा करते हैं और जो तीर्थ परमगुह्य हैं । हे भगवन् !

आप उनको मुझे बतलाइये और जो अन्य तीर्थ हो उनको भी तात्त्विक रूप से बतलाइये ॥४॥ भानुदेव ने कहा—समस्त तीर्थों में उत्तम तीर्थ और सब क्षेत्रों में अत्युत्तम क्षेत्र वाराणसी-इस नाम वाली नगरी है जो भगवान् शूली देव की परम प्रिया है ॥५॥ जहाँ पर विश्वेश्वर देव हैं जो यहाँ पर सभी देहधारियों को मसार से भोजन कराने वाला ताम्बक ममज्ञ तथा ज्ञान प्रदान किया करते हैं ॥६॥ जिसमें ब्रह्ममयी गङ्गा की उत्तर की ओर बहने वाली विद्यमान है जिसका दृष्ट किया जाने पर व्यथा स्पर्श मात्र और नमस्कार की हुई होने पर वह मण्डल मनुष्यों के पापों का संहार करने वाली होती है ॥७॥

नास्ति गङ्गासम तीर्थं वाराणस्या विशेषतः ।

तत्रापि मणिकर्णार्थ्यं तीर्थं विश्वेश्वरप्रियम् ॥८॥

तस्मिस्तोर्थे नरः स्नात्वा पातकी वाऽप्यपातकी ।

दृष्ट्वा विश्वेश्वरं देव मुक्ति भाग्जायते नरः ॥९॥

विश्वेश्वरस्य माहात्म्यं प्रदुक्तं ब्रह्मसूनुना ।

तदहं सप्रवक्ष्यामि व्यासापमिततेजसे ॥१०॥

घोरं कलियुगं प्राप्य कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।

किं तच्छ्रेयस्करमिति हृदि कृत्वा जगाम सः ॥११॥

नन्दीश्वरस्य यः शिष्यो योगिनामग्रणीः स्वयम् ।

सनत्कुमारो भगवान्यत्राऽऽरते हिमवन्दिरो ॥१२॥

नानादेवगणाकीर्णं पक्षगन्धवंसेविते ।

सिद्धचारणकूष्माण्डैरप्सरैर्भिरश्च सकुले ॥१३॥

गङ्गा मन्दाकिनी यत्र राजते दुःखहारिणी ।

शोभिता हेमकमलैः पुष्परन्यैर्मनोहरैः ॥१४॥

तस्याऽऽश्रममनुप्राप्य पाराशर्यो महानुविः ।

अभिवाद्य यथाऽन्वयं तस्याम् उपविश्य च ॥१५॥

व्रतान्जलिपुटो भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥१६॥

भागीरथी गङ्गा के तुल्य अन्य कोई भी तीर्थ नहीं है और विशेष रूप से वागणसी में तो यह गङ्गा ही सर्वोत्तम तीर्थ है । और उम गङ्गा तट में भी जो भणिकर्ण नाम वाला घाट है वह तो भगवान् विश्वेश्वर का परम प्रिय तीर्थ है ॥८॥ उम तीर्थ में मनुष्य स्नान करके चाहे वह महायात की ही क्यों न हो अथवा अयातकी ही भगवान् विश्वेश्वर का दर्शन प्राप्त करके मुक्ति का प्राप्त करने का सच्चा अधिकारी हो जाता करता है अर्थात् उस मनुष्य की निश्चय ही मुक्ति हो जाती है ॥९॥ अपरमिता त्रेतवारी भगवान् व्यासजी को ब्रह्माजी के पुत्र ने भगवान् विश्वेश्वर का जो महारम्य कहा है उसी को मैं आपको बतलाऊँगा ॥१०॥ इस महान् घोर कलियुग प्राप्त करके श्रीकृष्ण द्वैपायन प्रभु इस ससार में क्या श्रेय का सम्पादन करने वाली है—यह आपन मन में विचार करके ही वहाँ पर वे गये थे ॥११॥ जो नन्दीश्वर के सिष्य हैं और स्वयं योगियों में सबसे अग्रणी अर्थात् परम प्रधान हैं ऐसे सनत्कुमार भगवान् हिमवान् गिरियद जहाँ पर विराजमान रहा करते हैं ॥१२॥ वह हिमालय पर्वत का स्थान अनेक देवों के समुदाय के द्वारा समाकीर्ण है तथा यक्षों और गन्धर्वों के द्वारा सेवित रहा करता है एवं बड़े बड़े सिद्ध चारण और कूष्माण्डों से तथा अनेक अप्सराओं से घिरा हुआ रहा करता है ॥१३॥ जहाँ पर मन्दाकिनी गङ्गा विराजमान रहती है जो समस्त दुखों का हरण कर देने वाली है । उस गङ्गा में हम कमल तथा अन्य विविध प्रकार के अत्युत्तम पुष्प विकसित होकर उसकी शोभा की वृद्धि किया करते हैं ॥१४॥ उसके आश्रम में पराभर मुनि के पुत्र व्यास देव जो मुनि प्राप्त हो गये थे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने यथोचित रूप से सनत्कुमारजी का अभिवादन किया था और फिर उन्हीं के सामने उपविष्ट हो गये थे ॥१५॥ व्यास देवजी ने अपने दोनों हाथों को जोड़कर उस समय में वह वाक्य कहा था ॥१६॥

प्राप्त कलियुग घोर पृथ्व्यमार्गवहिष्कृतम् ।

पासण्डाचारनिरत म्लेच्छान्घ्नजनसतुलम् ॥१७॥

अधार्मिकाः क्रूरसत्त्वा ह्यनाचारात्ममेघसः ।
 तस्मिन् युगे भविष्यन्ति ब्राह्मणाः शूद्रपाजकाः ॥१८॥
 स्नानं देवाचनं दानं होमं च पितृनर्पणम् ।
 स्वाध्याय न करिष्यन्ति ब्राह्मणा हि कलौ युगे ॥१९॥
 न पठन्ति तथा वेदाञ्श्रेयसे ब्राह्मणाघमाः ।
 प्रतिग्रहार्थं वेदांश्च पठिष्यन्ति कलौ युगे ॥२०॥
 पुरुषोत्तममाश्रित्य शिवनिन्दारता द्विजाः ।
 कलौ युगे भविष्यन्ति तेषां ज्ञाता न माधवः ॥२१॥
 स्वां स्वा वृत्तिं परित्यज्य परवृत्त्युपजीवकाः ।
 ब्राह्मणाद्या भविष्यन्ति संप्राप्ते तु कलौ युगे ॥२२॥

श्री व्यास देव जी ने कहा—हे भगवान् ! यह महान् घोर कलि-
 युग प्राप्त हो गया है जिसमें पुण्य का मार्ग एकदम दूर हो गया है और
 सर्वत्र पाण्डु पूरणं आचार लोग किया करते हैं तथा सर्वत्र म्लेच्छों के
 समान ही आन्धुजन हो गये हैं और सब स्थान इन्हीं से घिरे हुए हैं ॥१७॥
 इस युग में ब्राह्मण लोग भी शूद्रों को भजन कराने वाले हो जायेंगे यह
 ऐसा ही घोर युग है कि उसमें लोग अधार्मिक-महान् क्रूर- आचार से
 रहित तथा अत्यल्प भेषा वाले हो जायेंगे ॥१८॥ इस कलियुग में ब्राह्मण
 गण स्नान देवों का अभ्यर्चन-दान-होम और पितृगणों का भी तर्पण नहीं
 किया करेंगे और न वेदों का स्वाध्याय ही करेंगे ऐसे ही अनाचारी विप्र
 हो जायेंगे ॥१९॥ ये अधम ब्राह्मण अपने श्रेय का सम्पादन करने के
 लिये भी वेदों का पठन पाठन नहीं किया करेंगे और इस घोर कलियुग
 में केवल दान ग्रहण करने के ही लिए वेदों का अध्ययन किया करेंगे ॥२०॥
 भगवान् पुरुषोत्तम का समाधाय ग्रहण करने भगवान् शिव की निन्दा
 करने में निरत रहेंगे ऐसे द्विज इस कलियुग में समुत्पन्न होंगे जिनका
 ज्ञान माधव भी नहीं किया करते हैं ॥२१॥ विप्रगण अपनी २ वृत्ति का
 परित्याग करदेंगे और दूसरे वर्णों की वृत्ति से उपजीवित रहने वाले हो

जायेंगे । इस महान् घोर कलियुग के आने पर सभी ब्राह्मण आदि वर्ण ऐसे ही अपने २ कर्मों का त्याग करेंगे- ऐसे ही हो जायेंगे ॥२२॥

एतान्पापरतान्दृष्ट्वा राजानश्चाविचारका ।
 भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते वृथा जात्यभिमानिन ॥२३॥
 उच्चासनगता शूद्रा दृष्ट्वा च ब्राह्मणास्तदा ।
 न चलन्त्यल्पमतयः सप्राप्ते तु कलौ युगे ॥२४॥
 कापायिणश्च निर्ग्रन्था नग्नाः कापालिकास्तथा ।
 बौद्धा वैशेषिका जैना भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२५॥
 तपोयज्ञफलाना तु विक्रेतारो द्विजाधमा ।
 यतयश्च भविष्यन्ति शतशोऽप्य सहस्रश ॥२६॥
 विनिन्दन्ति महादेव संसारान्मोचक परम् ।
 तद्भक्ताश्च महात्मना ब्राह्मणाश्च कलौ युगे ॥२७॥
 ताडयन्ति दुरात्मानो ब्राह्मणा-राजसैवका ।
 न निवारयते राजा तान्दृष्ट्वाऽपि कलौ युगे ॥२८॥
 एव घोरे कलियुगे किं तच्छ्रेयस्कर द्विज ।
 ब्रूहि तद्भगवन्मह्य ससारान्मोचक परम् ॥२९॥

राजा लोग भी केवल अपनी जाति का वृथा अभिमान रखने ही वाले हो जायेंगे और इन सबको पाप कर्मों में रत देखकर भी कोई विचार नहीं किया करेंगे ॥२३॥ यह कलियुग प्राप्त हो जायगा तो उस में शूद्र लोग ब्राह्मणों को देखकर भी ऊँचे आसनों पर बैठे रहा करेंगे तथा अपने आसन से बिल्कुल भी ये अल्प मति वाले शूद्र जरा भी नहीं हटा करेंगे ॥२४॥ कलियुग में कपाय वर्ण के वस्त्रों को धारण करने वाले—निर्ग्रन्थि अर्थात् ज्ञान दून्य—नग्न—कापालिक स्वर्णधारी-बौद्ध और वैशेषिक अनेक सम्प्रदायों वाले समुत्पन्न हो जायेंगे ॥२५॥ अधम द्विज अपना तप और यज्ञों के फल को बेच देने वाले हो जायेंगे तथा कलियुग में संतकों और सहस्रों ही यति होकर भ्रमण करते हुए सर्वत्र

दिललाई देंगे ॥२६॥ इस ससार से मोचन कर देने वाले भगवान् महा-
 देव जी की विशेष निन्दा किया करेंगे । कलियुग में ऐसे ही लोग हो
 जायेंगे कि महात्माओं और उनके भक्तों तथा ब्राह्मणों की भी निन्दा
 किया करेंगे ॥२७॥ दुष्ट आत्मा वाले राजा के सेवकगण ब्राह्मणों को
 ताड़ित किया करते हैं । इन कलियुग का ऐसा ही प्रभाव होगा कि
 राजा लोग विप्रों को सताने वाले अपने दुष्ट सेवकों को देखकर भी
 उन्हें इस दुष्ट कर्म के करने से नहीं हटाया करेंगे ॥२८॥ हे द्विज ।
 आप अब यही बतलाइये कि जब ऐसा महान् घोर कलियुग होगा तो
 उस समय में श्रेय करने वाला क्या होगा ? हे भगवन् । इस ससार से
 छुटकारा दिलाने वाला क्या साधन होगा—यह हमको आप बतला
 दीजिए कि प्राणियों का कल्याण होवे ॥२९॥

॥ महादेव वर-प्रदान ॥

गच्छ वाराणसी व्यास यत्र विश्वेश्वर शिव ।
 न तत्र युगधर्मोऽस्ति नैव लग्ना वसुधरा ॥१॥
 विश्वेश्वरस्य याल्लिङ्ग ज्योतिर्लिङ्ग तदुच्यते ।
 यास्मिन्दृष्टे क्षणाज्जन्तु स सार न पुनर्विशेत् ॥२॥
 गत्वा पश्य पर लिङ्ग तत्र सत्यवतीसुत ।
 प्राप्स्यसे परमा मुक्ति देवैरपि सुदुर्लभाम् ॥३॥
 स्नात्वा गङ्गाजले पुण्ये पश्य विश्वेश्वर परम् ।
 स दास्यति पर ज्ञान येन मुक्तो भविष्यसि ॥४॥
 दृष्ट्वा विश्वेश्वर देव यावत्सिष्ठति (त्स्यास्यसि) तत्क्षणात् ।
 आगन्निष्यन्ति मुनयस्त्वा द्रष्टु सर्व एव ते ॥५॥
 विश्वेश्वरस्य माहात्म्य प्रक्षयन्ति त्वा महामुने ।
 ब्रूहि मद्बचनारोपा ज्ञान माहेश्वर परम् ॥६॥

एव सत्यवतीसूनुस्तन्माहात्म्यमशेषत ।

सनत्कुमारात्स्वगुरो श्रुत्वा माहेश्वराग्रणी ॥७

प्रणिपत्य गुरु भक्त्या रुद्र ब्रह्मादिसेवितम् ।

सशिष्य प्रययौ शीघ्र व्यासो वाराणसी प्रति ॥८

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—हे व्यास देव । आप अब वाराणसी पुगी म चने जाइये जहाँ पर माक्षात् विश्वेश्वर शिव स्वय विराजमान रहा करते हैं । महा पर इस कलिपुग का धर्म सर्वथा नहीं है और न यह वसुधरा भी लगना है ॥१॥ भगवान् विश्वेश्वर का वहा पर लिङ्ग है वह ज्योति लिङ्ग कहा जाता है । जिसके एक बार दर्शन मात्र कर लेने पर क्षणभार मे ही प्राणी फिर इस ससार मे जन्म ग्रहण नही किया करता है ॥२॥ हे सत्यवती के पुत्र । आप वहा पर गमन करके उस ज्योतिलिङ्ग का दर्शन करो । आप वहा पर परमोत्तम मुक्ति को प्राप्ति कर लेंगे जोकि देवगणो को भी महान् दुर्लभ होती है ॥ ॥ वहाँ पर वाराणसी पुगी मे भागीरथी गङ्गा के परम पुण्यमय जल म स्नान करके परम विश्वेश्वर प्रभु का दर्शन करो । वे स्वय ही आपको परम ज्ञान का उपदेश करेंगे जिससे आप मुक्त हो जायगे ॥४॥ भगवान् विश्वेश्वर देव का दर्शन करके जितनी देर भी आप वहा पर ठहरेंगे तो उसी समय मे सभी मुनिगण आपका दर्शन करने के लिए वहा पर आ जायगे । ५॥ हे महा मुने । वे सब मुनिगण आपसे भगवान् विश्वेश्वर का माहात्म्य पूछेंगे तो आप उस समय म मेरे बचन जो उन्ही के द्वारा उनको भगवान का परम माहेश्वर ज्ञान प्रदान कर देना ॥६॥ इस प्रकार मे सत्यवती के पुत्र ने उनके माहात्म्य को पूर्ण रूप से महेश्वर देव के भक्तो मे अग्रणी ने अपने गुरुदेव सनत्कुमार जी से श्रवण किया था । फिर व्यासजी ने अपने गुरुदेव को भक्ति पूर्वक प्रणाम किया था । और ब्रह्मादि देवो के द्वारा सेवित श्री रुद्रदेव को भी प्रणाम किया था और इसके अन्तर व्यास देव अपने शिष्यों के गतिन ही वाराणसी को चने गये थे ॥७॥८॥

गत्वा वाराणसी व्यास सिद्धर्षिमुनिसेविताम् ।
 अकरोत्कि तदाचक्ष्व भगवान्विश्वपूजित ॥६॥
 सप्राप्य काशी धर्मात्मा कृष्णद्वैपायनो मुनि ।
 स्नात्वा यथावज्जाह्लव्या तर्पयित्वा सुरान्पितन् ॥१०
 ययौ विश्वेश्वर द्रष्टु ज्योतिर्लिङ्गमनामयम् ।
 सपूज्य सवभावेन दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥११
 देवस्य दक्षिणा मूर्तावुपविश्य महामुनि ।
 पश्यन्विश्वेश्वर लिङ्ग जपन्वै शतरुद्रियम् ॥१२
 क्षणाल्लिङ्गात्पर ज्योतिराविर्भूत निरञ्जनम् ।
 सूक्ष्मात्सूक्ष्म च परममानन्द तमस परम् ॥१३
 आदिमध्यान्तरहित सूयकोटिसमप्रभम् ।
 यत्तन्माहेश्वर ज्योतिर्वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम् ॥१४

श्री मनुदेव ने कहा—हे भगवान् ! आप तो सम्पूर्ण विश्व के द्वारा पूजित हैं अब मुझको यह बतला दीजिए कि व्यास देवजी ने सिद्ध ऋषि और मुनिगण से सेवित वाराणसी पुरी में पहुँचकर फिर क्या किया था ? ॥६॥ श्री भानुदेव ने कहा—श्री कृष्ण द्वैपायन परम महान आत्मा वाले मुनि जो बहुत ही अधिक धर्मात्मा थे वाराणसी पुरी में पहुँच गये और उन्होंने भगवती जा हवी देवी के पवित्र जल में विधि पूर्वक स्नान किया और देवों का तथा पितृगणों का तर्पण वहा पर सविधिक्रिया था ॥१०॥ इसके उपरान्त के अनमय ज्योतिर्लिङ्ग भगवान् विश्वेश्वर के दर्शन करने के लिये गये थे । वहाँ पर सर्व भाव से उनका भली भाँति अम्यर्चन किया था और उनको प्रणाम किया था जोकि भूमि पर एक दशा के ही समान विर कर साष्टांग प्रणाम किया था ॥११॥ फिर देव की दक्षिणा की थी और वहा पर मुनि उपविष्ट हो गये थे । मूर्ति के सामने ही दक्षिण भाग में बैठकर उन्होंने विश्वेश्वर प्रभु के ज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन करते हुए और शतरुद्रिय का जाप करते हुए ध्यानमान हो गये थे । एक ही क्षण में उमशिव लिङ्ग से एक निरञ्जन ज्योति का आवि-

भाव हुआ था जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पद्म आनन्द स्वरूप और तम से परे थी ॥१३॥ वह ज्योति आदि-मध्य और अन्त से रहित तथा करोड़ों सूर्या के समान प्रभा से युक्त थी । वह महेश्वर प्रभु की ज्योति वेदान्तों में प्रतिष्ठित है ॥१४॥

दर्शनात्तस्य च मुने पाराशर्यस्य धीमत ।
 दिव्य माहेश्वर ज्ञानमुद्भूत केवल शिवम् ॥१५
 मेने कृतार्थमात्मामाम दुःखत्रयविवर्जितम् ।
 अद्वयं निर्गुणं शान्तं जीवन्मुक्तस्तदा मुनि ॥१६
 अहो विश्वेश्वरो देव कथं कर्वा न सेव्यते ।
 यस्मिन्मृष्टे क्षणाज्ज्ञानमुदितं भमं निर्मलम् ॥१७
 नमो भगवते तुभ्य विश्वनाथाय शूलिने ।
 पिनाकिने जगत्कर्त्रे विश्वमायाप्रवर्तिने ॥१८
 दुर्विज्ञेयाप्रमेयाय परमानन्द रूपिणे ।
 भक्तिप्रियाय सूक्ष्माय पावंतीशाय ते नमः ॥१९
 नमो जगत्प्रतिष्ठाय जगज्जननहेतवे ।
 सहर्षे ऋग्यजु साममूर्त्ये तत्प्रवर्तिने ॥२०
 जानाति कस्त्वा विश्वेश तत्त्वतो माहसो जनः ।
 वेदा अपि न जानन्ति साङ्गोपनिषदक्रमाः ॥२१

उस परम दिव्य ज्योति के दर्शन करने से परादार के पुत्र बुद्धिमान उन मुनि को परम दिव्य माहेश्वर ज्ञान उत्पन्न हुआ था जो केवल शिव था ॥१५॥ उस समय म मुनि देव ने अपने आपको परम कृतार्थ एवं तीनों प्रकार के दुःखों से रहित माना था मुनि अद्वय निर्गुण और शान्त ज्योति का दर्शन करके जीवन मुक्त हो गये थे ॥१६॥ ओहो ! यह भगवान् विश्वेश्वर देव की महिमा का आह्वन है । क्या कारण है कि किस प्रकार से किनके द्वारा इनका सेवन नहीं किया जाता है । अभिप्राय यही है कि इनकी सेवा सभी को करनी चाहिए जो भी नहीं करते हैं

वे महान् मूर्ख हैं। जिनका इतना प्रबल प्रभाव है कि दर्शन करने पर एक ही क्षण भर में मुझे परम निर्मल ज्ञान उत्पन्न हो गया है ॥१७॥ भगवान् विश्वनाथ शूल धारी आप के लिए मेरा प्रणाम है। आप पिनाक घनुप के धारण करने वाले—जगत् के कर्ता और विश्व की माया के प्रवृत्त करने वाले प्रभु की सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है ॥१८॥ जो बहुत ही कठिनाई से जानने के योग्य हैं—अप्रमेय हैं और परमानन्द रूप वाले हैं तथा भक्ति से प्यार करने वाले और परम सूक्ष्म हैं ऐसे पावती के ईश के लिये नमस्कार है ॥१९॥ जो इस जगत् की प्रतिष्ठा हैं और जगत् के जन्म देने के हेतु हैं तथा इसका सहार करने वाले हैं और ऋक-यजुर्वेद और सामवेद की भूक्ति हैं तथा उनको प्रवृत्त कराने वाले हैं उनके लिए नमस्कार है ॥२०॥ हे विश्वनाथ ! तार्किक रूप से मुझे जैसा कौन मनुष्य आपको जानता है जबकि साङ्ग और उपनिषदों से युवन साक्षात् वेद भी आपको नहीं जान पाते हैं ॥२१॥

अथ तस्मिन्महादेवे परज्योतिषि विश्वभुक् ।
 शूलपाणिश्चैवात्मा प्रादुरासीद्वृषध्वजः ॥२२
 ततस्तमब्रवाद्वाक्यं कारुण्याच्छ्रुभया गिरा ।
 वर वरम दास्यामि यत्ते मनास रोचते ॥२३
 भगवन्कृतकृत्योऽस्मि दर्शनात्तव शंकर ।
 जात त्वद्विषय ज्ञान देवानामपि दुर्लभम् ॥२४
 भक्ति परे भगवति त्वय्येवाव्यभिचारिणीम् ।
 देहि मे देवदेवेश नान्यदिष्ट वर मम ॥२५
 एवमस्त्विति देवेशो ष्पासायामिततेजसे ।
 वर दत्त्वा मृतीन्द्राय क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥२६
 तस्माच्चासात्परो नान्यः शिवभक्तो जगन्त्रये ।
 कृष्णो वा देवकीसूनुरजुंनो वा महामतिः ॥२७
 एवं हराल्लब्धवरः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
 तत्र यानि च सिद्धानि तानि द्रष्टुं यगो मुनिः ॥२८

श्री भानु देव ने कहा—इसके अनन्तर उस ज्योति में जो परम दिव्य महादेव जी की थी इस विश्व का भोग करने वाले वृषमध्वज-अभेय आत्मा वाले शूनपाणि प्रभु प्रादुर्भूत हुए थे ॥२२॥ इसके पश्चान् परम वरुणा पूर्ण वाणी के द्वारा भगवान् विश्वनाथ ने उस मुनि व्यास देव से कहा था कि तुम वरदान माग लो । मैं वही हूँ जो भी तुम्हारे मन में हो ॥२३॥ श्री व्यास देव जी ने कहा—हे भगवान् ! हे शङ्कर ! आपके चरणों के दर्शन प्राप्त करके मैं तो वृत्त कृत्य हो गया हूँ । मुझे आपके विषय का ज्ञान भी प्राप्त हो गया है जोकि देवा को भी परम दुर्लभ होता है ॥२४॥ सबसे पर भगवान् आपके चारणों में ही अव्यभिचारिणी भक्ति होवे—हूँ देव देवेश्वर । मुझे यही एक वरदान आप प्रदान करिए । इसके अनिर्विकल्प अन्य कोई भी वरदान प्राप्त करने की मेरी इच्छा ही नहीं है ॥२५॥ भानुदेव ने कहा—फिर देवेश्वर ने ऐसा ही होगा—यह उन अमित तेज से युक्त व्यास देव को वर दे दिया था जोकि व्यास देव महामुनीन्द्र थे और फिर एक ही क्षण में भगवान् शङ्कर अन्तर्हित हो गये थे ॥२६॥ तीना सौरां में उन श्री व्यास देव जी से अधिः अन्य कोई भी शिव का भक्त नहीं है । अथवा देवकी दत्ता के पुत्र श्रीकृष्ण या महा भतिमान् अर्जुन है । इस तरह से श्रीकृष्ण द्वैपायन प्रभु ने श्री हर से वर प्राप्त कर लिया था और फिर वहाँ पर जो भी भगवान् शिव के लिङ्ग विराजमान थे उनके दर्शन करने के लिए वे मुनि चले गये थे ॥२७॥२८॥

॥ वाराणसी लिंग महिम वर्णन ॥

कानि दिव्यानि लिङ्गानि यानि द्रष्टुं ययौ मुनिः ।
 आचक्ष्व तानि नः सूत माहात्म्य चापि कृत्स्नशः ॥१
 यदुक्तं भानुना पूर्वं मन्वे मुनिसत्तमाः ।
 तदेव कथयिष्यामि शृणुष्व गदतो मम ॥२
 आग्नेय्यामविमुक्तस्य वापी त्रैलोक्यविश्रुता ।
 यत्र सनिहितो देवो नित्य विश्वेश्वरः शिवः ॥३
 यत्र स्नानं द्विजश्रेष्ठा देवानामपि दुर्लभम् ।
 भक्त्या यैस्तज्जल पोतं ते रुद्रा एव भूतले ॥४
 तेषां लिङ्गानि जायन्ते हृदये त्रीणि सुव्रताः ।
 दुर्लभं तज्जल तस्मात्तिष्ठत्येव हि मुद्रितम् ॥५
 तत्र सत्यवतीसूनुः स्नात्वा चैव यथाविधि ।
 अविमुक्तेश्वरं दृष्ट्वा लाङ्गलीशं ततो ययौ ॥६
 तत्र ब्रह्मादयो देवाः सेवन्ते शूलपाणिनम् ।
 तस्य दर्शनमात्रेण ज्ञान पाशुपत भवेत् ॥७

ऋषियों ने कहा—वे कौन-कौन से शिर्वालङ्ग दिव्य हैं जिनका दर्शन प्राप्त करने के लिये व्यास मुनि गये थे ? हे सूतजी ! उनको आप हमको बतलाइये और उन का पूर्ण माहात्म्य भी कहिए ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—हे मुनि श्रेष्ठो ! पहिले मनुजी को भानुदेव ने जो कहकर बताया था । वही मैं आपको बतलाऊंगा । मुझसे आप श्रवण करिए ॥२॥ आग्नेयी विदिशा मे एक अविमुक्त नी लोको मे परम प्रसिद्ध वाणी है जहा पर विश्वेश्वर देव शिव नित्य ही सनिहित रहा करते हैं ॥३॥ द्विज श्रेष्ठो ! जहाँ पर स्नान करने की बहुत बड़ी महिमा है जो स्नान देवो को भी परम दुर्लभ हुआ करता है । जिन्होने भक्ति से उस जन का पान किया था वे रुद्र भूतल मे ही विद्यमान हैं ॥४॥ हे सुव्रतो ! उनके हृदय मे तीन लिङ्ग उत्पन्न होने हैं । वह जल बहुत ही दुर्लभ है । इसी

कारण से वह मुद्रित स्थित रहा करता है ॥१॥ वहाँ पर उस जल में विधि-विधान के साथ सत्यवती के पुत्र श्री व्यास देवजी ने स्नान किया था । फिर वहाँ अविमुक्तेश्वर प्रभु का उन्होंने दर्शन किया था तथा इसके पश्चात् लाङ्गलीदा के समीप में वहाँ से वे चले गये थे ॥६॥ वहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण भगवान् शूलपाणि की सेवा किया करते हैं । उनके दर्शन की ऐसी महिमा है कि केवल उनके दर्शन भर ही से पानु-पत ज्ञान का उदय हो जाता करता है ॥७॥

जगाम स मुनिः पश्चाद्द्रष्टुं वै तारकेश्वरम् ।

यत्नान्तकाले भगवाञ्जान तत्सप्रयच्छति ॥८

यत्रैवानेन देवस्य स्थापित लिङ्गमुत्तमम् ।

यस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महृत्मा व्यरोहति ॥९

तदृष्ट्वा परम लिङ्ग व्यास सत्यवतीमुतः ।

ययो शुक्रेश्वर द्रष्टुं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥१०

आराध्य मुनिना यत्र शुक्रेणामिततेजसा ।

प्राप्ता सजीवनी विद्या सुराणामपि दुलभा ॥११

देवस्य बह्निदिग्भागे कूपस्तिष्ठति दोभनः ।

स्नान तत्राश्रमेवस्य फल यच्छ्रति दोभनम् ॥१२

तस्मिन्कूपे मुनिः स्नात्वा दृष्ट्वा शुक्रेश्वर शिवम् ।

ब्रह्मेश्वर ययो द्रष्टुं तत्र ब्रह्मा विराट् स्वयम् ॥१३

तपस्तप्तवा महाघोर प्रीतये पावंतीपतेः ।

ब्रह्मत्व प्राप्तवान्ब्रह्मा योग चान्ये महर्षयः ॥१४

इसके पश्चात् वे महामुनि भगवान् तारकेश्वर प्रभु से दर्शन करने के लिये चले गये थे जहाँ पर भगवान् अन्न बाल में अपना ज्ञान प्रदान किया करते हैं ॥८॥ जहाँ पर ही इनने देवेश्वर के एक उत्तम लिङ्ग की स्थापना की थी । जिसके दर्शन करने से ही ब्रह्म हृत्मा के अद्वैत, शून्य, शै, आद्य, अज्ञे, ई ॥९॥, माहजती, के पृथ, अयमोश्, के, अण, परमोत्तम लिङ्ग का दर्शन करने फिर समस्त निद्रियों के प्रदान करने

वाले भगवान् शुक्रेश्वर का दर्शन प्राप्त करने के लिये वहाँ से गमन किया था ॥१०॥ जहाँ पर अपरिमित तेज वाले शुक्र देवाचार्य मुनि ने आराधना की थी और भगवान् शिव के प्रसाद से सजीवनी विद्या को प्राप्त किया था जो विद्या सुरो को भी परम दुर्लभ है ॥११॥ देवेश्वर के अग्नि कोण के भाग में एक परम सुन्दर कूप विद्यमान है । वहाँ पर स्नान करने से वह कूप अश्वमेध महायज्ञ का परम शोभन फल प्रदान किया करता है ॥१२॥ उस कूप में मुनिवर व्यासजी ने स्नान किया था और शुक्रेश्वर शिव का दर्शन भी किया था । इसके पश्चात् वे ब्रह्मेश्वर प्रभु के दर्शन करने के लिये चले गये थे वहाँ पर विराट् ब्रह्माजी स्वयं ही विराजमान रहा करते हैं ॥१३॥ वहाँ पर ब्रह्माजी ने पार्वती के स्वामी भगवान् शिव की प्रीति प्राप्त करने के लिये सहान धोर तप किया था जिसके प्रभाव से ब्रह्माजी ने ब्रह्मत्व प्राप्त कर लिया था और अन्य महर्षियो ने योग की प्राप्ति कर ली थी ॥१४॥

दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य सर्वयज्ञफल लभेत् ।
 पुनर्जंगाम भगवानोकारेश्वरमव्ययम् ॥१५
 स्मरणाद्यस्य लिङ्गस्य मुच्यते सर्वापातकैः ।
 यत्र साक्षाच्छिवः सूक्ष्मो नित्य तिष्ठति वै द्विजाः ॥१६
 अनुग्रहाय लोकता पशुपाशविमोचक ।
 यत्र पाशुपताः सिद्धा ओकारेश्वरमीश्वरम् ॥१७
 सपूज्य परमा सिद्धि प्राप्तवन्तो द्विजोत्तमा ।
 कृष्णपक्षे चतुर्दश्या तस्मिन्नलिङ्ग उपोषितः ॥१८
 यदि जागरण कुर्यात्परा सिद्धिमवाप्नुयात् ।
 सतः सत्यवतीसूनुः कृत्तिवासेश्वर ययौ ॥१९
 उपासते महादेवं यत्र ब्रह्मादयः सुराः ।
 मुनयः शसितात्मानो रुद्रजाप्यपरायणाः ॥२०
 कृत्तिवासेश्वरे लिङ्गे लीला (ना, श्र्व बहवो द्विजाः ।
 देवस्य पूर्वदिग्भागे ह्यतीर्थ महत्सरः ॥२१

उस शिवलिङ्ग का ऐसा अभूतपूर्व प्रभाव है कि उसके दर्शन से प्राणी सभी प्रकार के यज्ञों के करने का पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है । फिर भगवान् ध्यान देव अथवा ओङ्कारेश्वर के समीप में चले गये थे ॥१५॥ जिस लिङ्ग के स्मरण कर लेने भर से ही मनुष्य समस्त प्रकार के महा-पानको से छुटकारा पा जाया करता है । हे द्विजो ! जहाँ पर सूक्ष्म स्वरूप वाले भगवान् शिव साक्षात् नित्य ही स्थित रहते हैं ॥१६॥ पशुपति के विमोचन करने वाले प्रभु ने लोको पर अनुग्रह के लिये ही ऐसा किया है । जहाँ पर सिद्ध पाशुपत ईश्वर ओङ्कारेश्वर का भली भाँति पूजन करके हे द्विजोत्तमो ! उत्तम सिद्धि को प्राप्त कर चुके हैं । मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि के दिन में उपासित होकर उस लिङ्ग के समीप में स्थित रहे ॥१७-१८॥ यदि उस दिन रात्रि जागरण करे तो परमोत्तम सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है । इसके परवान् सरयवती के पुत्र धी व्यास देवजी कृत्तिवासेश्वर जी के स्थान में गमन कर गये थे ॥१९॥ जहाँ पर ब्रह्मा आदि देवगण भगवान् महादेव जी की उपासना किया करते हैं । ससित आत्मा वाले मुनिगण रुद्र मन्त्र के जप में परायण रहा करते हैं ॥२०॥ हे द्विजगण ! कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग में बहुत से लीन हैं । देवेश्वर के पूर्व दिशा के भाग में हम तीर्थ नाम वाला एक महान् सरोवर है ॥२१॥

स्नात्वा तत्र महानेव कृत्तिवासेश्वर शिवम् ।
 ये द्रक्ष्यन्ति महात्मानस्ते वै ब्रह्मादिवन्दिता ॥२२
 सङ्कल्पश्यति यो भक्त्या कृत्तिवासेश्वर विभुम् ।
 न पतत्येव सारारे रुद्र एव न सशय ॥२३
 ह्रमतीर्थे नर स्नात्वा कृत्तिवासेश्वर विभुम् ।
 सपूज्य परया भक्त्या कृत्तिवासेश्वर शिवम् ॥२४
 न पतत्येव सारारे नाम्नायां विचारणा ।
 ययो रत्नेश्वर द्रष्टुं मोक्षो यत्र प्रतिष्ठित ॥२५

दर्शनात्तस्य लिङ्गस्य फल वक्तुं न शक्यते ।
 सर्वस्मादधिको योगो वेदविद्भिर्निषेव्यते ॥२६॥
 योऽय पाशुपतो योगः पशुपाशविमोचक ।
 वर्षेर्द्वादशभिः सम्पन्नकृते पाशुपते द्विजाः ॥२७॥
 रत्नेश्वरे तदा ज्योतिर्दर्शनान्मनुजोत्तमः ।
 रत्नेश्वर तु संपूज्य पाराशर्यो महामुनिः ॥२८॥

उस सरोवर में स्नान करके कृत्तिवासेश्वर महादेव शिव का जो दर्शन करेंगे वे महान् आत्मा वाले लोग ब्रह्मा आदि देवों के भी पूजित हो जाया करते हैं ॥२२॥ कृत्तिवासेश्वर विभु को जो केवल एक बार भी दर्शन करते हैं और भक्ति की भावना से उनका अथलोकन किया करते हैं वे फिर कभी भी इस ससार में आकर जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं वे तो साक्षात् रुद्र का ही स्वरूप प्राप्त कर लिया करते हैं—इस में लेशमात्र भी सशय नहीं है ॥२३॥ उस हसतीर्थ में मनुष्य स्नान करके कृत्तिवासेश्वर प्रभु का पराप्रति से अन्वर्चन करता है तो फिर वह इस ससार में कभी पतन प्राप्त ही नहीं किया करता है—यह सर्वथा सत्य है और इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए । फिर व्यास देव ने रत्नेश्वर भगवान् का दर्शन प्राप्त करने के लिये वहाँ से चले गये थे जहाँ पर मोक्ष को प्राप्त कर लेना तो प्रतिष्ठित ही होता है ॥२४-२५॥ उस लिङ्ग के दर्शन प्राप्त करने से जो भी पुण्य-फल प्राप्त होता है वह तो मुख से कहा ही नहीं जा सकता है । सब से अधिक योग तो वेदों के वेत्ता लोगों के ही द्वारा निषेवित किया जाया करता है ॥२६॥ जो यह पाशुपत योग है वह पशुपाश का विमोचन करने वाला होता है । हे द्विजो ! बारह वर्ष तक इस पाशुपत योग को भली भाँति कर लेने पर उस समय में रत्नेश्वर में ज्योति आविर्भूत होती है । मनुजोत्तम उसका दर्शन करने से श्रेय प्राप्त किया करता है । रत्नेश्वर प्रभु का भली भाँति पूजन करके पराशर मुनि के पुत्र महामुनि व्यासदेव आगे की ओर बढ़ गये थे ॥२७-२८॥

द्रष्टु देवाधिदेवेश वृद्धकालेश्वर ययी ।
 तस्मिन्लिङ्गे महादेव सदा तिष्ठति लीलया ॥२६
 अनुग्रहाय लोकानामुमया सह विश्वभुक् ।
 पृथिव्या यानि लिङ्गानि सन्ति दिव्यानि वै द्विजाः ॥२७
 वृद्धकालेश्वरे दृष्टे दृष्टान्येव न सशय ।
 देवस्य पूर्वदिग्भागे कूपो मुनिनिषेवित ॥२८
 पूरित पुष्पसलिलैर्देवदेवेन शमुना ।
 यं पीत तस्य सलिल प्राकृतेश्चुलुङ्गयम् ॥२९
 प्रकृतिमुच्यते नेभ्यो मुक्तात्मानो भवन्ति ते ।
 तत्र द्वैपायनो विप्रा स्नान कृत्वा समाहितः ॥३०
 वृद्धकालेश्वर लिङ्ग सपूज्य च ततो ययी ।
 मन्दाकिनीतटे रम्ये मुनिसिद्धनिषेविते ॥३१
 मध्यमेश्वरनामान मोक्षलिङ्गमनुत्तमम् ।
 यत्र ब्रह्मादयो देवा मुनय सनकादय ॥३२

फिर वे वहाँ मे देवाधिदेव श्री वृद्ध कालेश्वर प्रभु का दर्शन करने
 के लिये गये थे । उम लिङ्ग मे महादेव सर्वदा ही लीला से समवस्थित
 रहता करते हैं ॥२६॥ समस्त लोकों के ऊपर अपना परम अनुग्रह करने
 के लिये विश्व का भोग करने प्रभु जगदम्बा उमादेवी के साथ ही वहाँ
 पर स्थित रहते हैं । हे द्विजो ! इस पृथ्वी पर जिनने भी दिव्य दिव
 लिङ्ग हैं उन सबके दर्शन केवल एक वृद्ध कालेश्वर के दर्शन कर लेने
 पर ही हो जाया करते है—इसमें मग्य नहीं है । देवेश्वर के पूर्व दिशा
 के भाग मे एक कूप मुनिग के द्वारा निषेवित है ॥२७-२८॥ देवी के भी
 देव भगवान् सम्भु के द्वारा वह पुण्य जलों व द्वारा पूरित कर दिया
 गया था । जिन साधारण मनुष्यो न उमका नीव चुन्नू जन का पान
 किया है प्रकृति उनसे मुक्त हो जाग करती है और वे मुक्तात्मा ही जाया
 करते हैं । हे विप्रो ! वही पर द्वैपायन मुनि ने स्नान किया था और
 समाहित हो गये थे ॥२९-३०॥ फिर वृद्ध कालेश्वर लिङ्ग का भयी

भाति पूजन किया था और वहाँ से भी गमन करके चले गये । मन्दा-
किनी के तट पर परम गम्य स्थल है जो मुनि और सिद्धों के द्वारा सेवित
है । वहाँ पर मध्यमेश्वर नाम वाले परमोत्तम मोक्ष लिङ्ग विराजमान
है जहाँ पर ब्रह्मा आदि देव और सनकादि मुनिगण वहाँ पर भगवान् की
सेवा के लिये रहा करते हैं ॥३४-३५॥

उपासते परं लिङ्गं शिवदर्शनकाङ्क्षिणः ।

मन्दाकिन्यां मुनिः स्नात्वा दृष्ट्वा वै मध्यमेश्वरम् ॥३६

घण्टाकर्णहृदे स्नात्वा लिङ्गं तद्विमलं शिवम् ।

प्रतिष्ठाप्य मुनिश्चेष्टो सुब्रह्मवाङ्मनमुत्तमम् ॥३७

घण्टाकर्णहृदे तत्र दृष्ट्वा व्यासेश्वरं शिवम् ।

यत्र यत्र मृतो वार्ष्णि कारणस्या मृतो भवेत् ॥३८

ततः सत्यवतीसूनुः कपर्दीश्वरमीश्वरम् ।

द्रष्टुं जगाम विप्रेन्द्रा लिङ्गं तत्पारमेश्वरम् ॥३९

पिशाचमोचनं नाम तत्र तीर्थमनुत्तमम् ।

रुद्रलोकम्य सोपानमिति प्राह महामुनिः ॥४०

ये द्रक्ष्यन्ति कपर्दीशं कृतार्थास्ते न सशयः ।

मानुषी तनुमाश्रित्य रुद्रा एव न सशयः ॥४१

तस्मिंस्तीर्थे मुनिः स्नात्वा सतर्प्य च सुरान्पितृन् ।

कपर्दीश्वरमीशानं सगूज्य प्रययी मुनिः ॥४२

वे सभी भगवान् शिव की दर्शनाकाक्षा रखने वाले होकर ही उनकी
उपासना किया करते हैं । व्यास मुनि ने भी मन्दाकिनी में स्नान करके
मध्यमेश्वर प्रभु का दर्शन किया था ॥३६॥ फिर घण्टाकर्ण हृद में स्नान
करके वहाँ पर विमल शिव लिङ्ग की प्रतिष्ठा करके यष्ट मुनि ने उत्तम
ज्ञान का लाभ लिया था । जहाँ-जहाँ पर भी मृत्यु को प्राप्त होने वाला
मनुष्य वाराणसी में ही मृत हुआ करता है ॥३७-३८॥ हे विप्रेन्द्रो !
इसके अनन्तर सत्यवती के पुत्र महामुनि ईश्वर कपर्दीश्वर का दर्शन
प्राप्त करने के लिये उत्त पारमेश्वर लिङ्ग के समीप गे गये थे । वहाँ पर

पिशाच मोचन नामक एक उत्तम तीर्थ है। महामुनि ने यही कहा था यह तीर्थ रुद्र लोक में पहुँचने का सोरान है। जो कपर्दीश्वर प्रभु का दर्शन करेंगे वे निश्चित रूप से कृतार्थ हो जाया करते हैं—इसमें सशय विल्कुल भी नहीं है। वे लोग मानुषी शरीर को आश्रय लेते हुए भी साक्षात् रुद्र ही होते हैं—इसमें विश्विन्मान भी संशय नहीं होता है। उस तीर्थ में मुनीन्द्र ने स्नान किया था और फिर सुरों तथा पितृगणों का तर्पण किया था। इसके अनन्तर कपर्दीश्वर का भवी भाँति किया और फिर वहाँ से प्रस्थान कर गये थे ॥३६-४०-४१-४२॥

॥ दक्षेश्वर माहात्म्य ॥

पुनर्जंगम भगवान्कृष्णद्वैपायन प्रभुः ।

द्रष्टुं दक्षेश्वर देव भक्तानां सिद्धिदायकम् ॥१॥

यच्छिद्धवावज्ञया पापं जातं दक्षप्रजापतेः ।

तस्य पापस्य मोक्षाय तस्मिँलिङ्गे द्विजोत्तमा ॥२॥

आराध्य देवदेवेशं बहुन्यन्दशतानि वै ।

तस्य प्रसन्नो भगवान्देवदेवः सहोमया ॥३॥

ददौ माहेश्वरं योगं तस्मै दक्षाय धीमते ।

लब्ध्वा तं परमं योगं तस्मिँलिङ्गे लयं गतः ॥४॥

ततः प्रभृतिं तस्मिँलिङ्गं योगिभिः मेव्यते द्विजाः ।

योगं ददाति सर्वेषां देवो दक्षेश्वरः शिवः ॥५॥

गङ्गायां प्रयत्नं स्नात्वा दृष्ट्वा दक्षेश्वरं शिवम् ।

प्राप्नोति परमं योगमिति द्वैपायनोऽश्वधीन् ॥६॥

स्नात्वा सत्यवतीमृगुगङ्गायां प्रयत्नो द्विजाः ।

दृष्ट्वा दक्षेश्वरं देवं ययो पञ्चाप्रलोचनम् ॥७॥

धीं मुत्तजी ने कहा—फिर भगवान् कृष्ण द्वैपायन प्रभु दक्षेश्वर देव का दर्शन करने के लिये यद्ये ये जो वि अपने मनो की तिष्ठियों के प्रदान

करने वाले है ॥१॥ दक्ष प्रजापति को भगवान् शिव की आज्ञा से जो पाप हुआ था । हे द्विजोत्तमो ! उस पाप से मोक्ष पाने के लिये उस लिङ्ग में देव देवेश्वर की बहुत-से सैकड़ों वर्षों तक आराधना करके उन की उपासना की । फिर देवों के देव उमादेवी के साथ प्रमत्त हो गये थे ॥२-३॥ फिर भगवान् ने प्रपन्न होकर उस धीमान् दक्ष के लिये माहेश्वर योग प्रदान कर दिया था । उम परमोत्तम योग को प्राप्त करके वह उसी लिङ्ग में लय को प्राप्त हो गया था ॥४॥ हे द्विजो ! तभी से लेकर योगियों के द्वारा उम लिङ्ग की सेवा की जाया करती है और वे देव दक्षेश्वर शिव सभी को वह योग दिया करते हैं ॥५॥ द्वैपायन मुनि ने यह कहा है कि भागीरथी गङ्गा में प्रपन्न होकर स्नान करे और फिर दक्षेश्वर भगवान् शिव का दर्शन करके परम योग को प्राप्ति कर लिया करता है ॥६॥ हे द्विजगण ! सत्यवती के पुत्र व्यास देव ने प्रभत होकर गङ्गा में स्नान किया था और इसके पश्चात् दक्षेश्वर देव का दर्शन किया और इसके पीछे वे त्रिलोचन प्रभु के स्थान पर चले गये थे ॥७॥

हेतुना केन दक्षस्य निन्दाऽभूच्छ्राकरी पुरा ।
कारण वक्ष्यते तत्सूत श्रोतु वाञ्छया प्रवर्तते ॥८
आमीहृद्दामुतो दक्ष पुन प्राचेतसोऽभवत् ।
शप्तो देवेन रुद्रैः क्रोधाच्छमारेवजया ॥९
वैर निघाम मनसि श भुना सह सुव्रता ।
दक्ष प्राचेतसो यजमकरोज्जाह्नवीतटे ॥१०
तस्मिन्यजे सम हूता इन्द्राद्या देवतागणा ।
श्रुपयो मूनय सिद्धा राजान प्रथितोजस ॥११
ब्रह्मा च विष्णुना सार्धमाहून्मन्वेन धीमता ।
देवान्सर्वाश्च भागार्थमाहूतान्शसमव ॥१२
दृष्ट्वा शिवेन रहितान्दद्या प्रत्येवमग्नीन् ।
अहो दक्ष महामूढ दुर्बुद्धे किं कृत त्वया ।
देवा सर्वे ममाहूना शङ्करेण विना कथम् ॥१३

अन्तर्यामी स विश्वेशः सर्वेषामेव देहिनाम् ।

भोक्ता न सर्वयज्ञानां शङ्करः परमार्थतः ॥१४

ऋषियों ने कहा—पूर्व काल में किम हेतु से दक्ष प्रजापति को शङ्कर भगवान की निन्दा हुई थी । हे मृत ! उम कारण को बतलाने को कृपा करिए उसके श्रवण करने की हमारी बड़ी प्रबल इच्छा है । ॥८॥ श्री मूनजी ने कहा—दक्ष ब्रह्माजी का पुत्र था और फिर वह प्राचेतस हो गया था । शम्भु की अवज्ञा के होने से क्रोध से रुद्र देव ने उम दक्ष को शाप दे दिया था ॥९॥ हे मुनयो ! शम्भु भगवान के माथ मन में बैंग रखकर प्राचेतस दक्ष ने जाह्नवी के तट पर यज्ञ किया था ॥१०॥ उस यज्ञ में इन्द्र आदि देवनागण सब बुलाये गये थे और ममस्त ऋषि-गण-मुनिगण-मिद्ध और प्रथिन ओज वाले राजा लोग भी बुलाये गये थे ॥११॥ उम घीमान ने भगवान विष्णु के साथ ब्रह्माजी भी बुलाये गये थे । पद्य शम्भु ब्रह्माजी ने ममस्त देवों को अपना भाग ग्रहण करने के लिये बुलाया था । जब उन देवों को दिव में रहित उन्होंने देखा था तो ब्रह्माजी दक्ष से यह बोले—॥१२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—अहो ! दक्ष ! तुम महान् मूढ़ हो तेरी बहूत ही दुष्ट युद्धि है । यह तूने क्या किया है । बिना भगवान शङ्कर के ये ममस्त देवगण क्यों बुलाये गये हैं ? ॥१३॥ यह विश्वेश अन्तर्यामी है जो सभी देहपाशियों के अन्दर विराजमान रहा करते हैं । यह सब यज्ञों के भोग करने वाले परमार्थ से भगवान् शङ्कर ही होने हैं ॥१४॥

एते च मुनयः सर्वे तव माहात्म्यकारिणः ।

न जानन्ति पर भाव महादेवस्य शूनिनः ॥१५

एते च देवा शम्भो आगता, यज्ञभगिनः ।

तन्मायामोहिताः सर्वे न जानन्ति विनाकिनम् ॥१६

यस्य पादस्य स्वर्गोद्भिन्नस्य प्राप्तशानहम् ।

शान्तिनाशपि गदा मूर्ध्ना प येधे क शिरात्परः ॥१७

यस्य वामाङ्गजो विष्णुदक्षिणाङ्गाङ्गवाम्यहम् ।

यस्याऽऽङ्गऽखिल विश्वं सूर्यो भ्रमति सर्वदा ॥१८

चन्द्रश्च तारकाश्चैव ग्रहाश्च भुवनानि च ।

धर्माधर्मव्यवस्था च वर्णाश्रैवाऽऽश्रमाणि च ॥१९

तिष्ठन्ति शासनात्तस्य देवदेवस्य शूलिन ।

सा च शक्ति परा गौरी स्वेच्छाविग्रचारिणी ॥२०

तव पुत्रीति दुर्बुद्धे मन्यसे तमसाऽऽवृत ।

करता जानानि विश्वेशीमीश्वराधशरीरिणीम् ॥२१

ये सब मुनिगण तुम्हारी सहायता करने वाले हैं और शूली महा-
देव का जो परम भाव है उसको नहीं जानते हैं । ये इन्द्र आदि देवगण
यज्ञ के भाग ग्रहण करने वाले यहाँ पर आ गये हैं । ये सभी उनकी
माया से मोहित हुए हैं और इनमें किसी को भी भगवान् पिनाकी की
महिमा का किञ्चि मात्र भी ज्ञान नहीं है । जिसके चरणों से स्पर्श की
हुई रज के छू लेने मात्र से मीने ब्रह्मत्व को प्राप्त किया है । शार्ङ्ग धनुष
के धारण करने वाले भगवान् विष्णु के द्वारा भी उनके चरणा की रज को
सदा किर के द्वारा धारण किया जाया करती है तो भला बताइये शिव
से पर अन्य कौन है ? ॥१६॥१७॥ जिनके वाम अङ्ग से भगवान् विष्णु
समुत्पन्न हुए हैं और दक्षिण अङ्ग से मैं पैदा हुआ हूँ और जिसकी
आज्ञा निरोधार्य कर सूर्य देव सर्वदा सम्पूर्ण विश्व में भ्रमण किया
करत हैं । उसी देवों के देव भगवान् शूली के शासन से ये सब चन्द्र-
तारा ग्रह और भुवन धर्म और अधर्म की व्यवस्था सब वर्ण तथा समस्त
आश्रम स्थित रहा करते हैं । और वह गौरी स्वेच्छा विग्रह का धारण
करन वाली उनकी ही परा शक्ति स्वरूप है ॥१८॥१९॥२०॥ हे दुष्ट
बुद्धि वाले ! तू तप से ही ममावृत होकर उसको अपनी पुत्री समझ रहा
है । कौन है जो उस विश्व की स्वामिनी और महेश्वर के अर्ध शरीर
को धारण करने वाली को जानता है अर्थात् एसा कोई भी नहीं है ॥२१॥

अज्ञान ही है और तुम्हारे विनाश का कारण है जोकि किसी विशेष हेतु से ही तुमको हो गया है—ऐसा ही मुझे निश्चित रूप से प्रतीत हो रहा है ॥३१॥३२॥ इस प्रकार से दधीचि मुनि के बधन का श्रवण करने विचक्षण दक्ष ने सब शक्र आदि देवों की सन्निधि में ही दधीचि मुनि से हे विप्रो ! कहा था ॥३३॥ दक्ष ने कहा—हे द्विजोत्तम ! मैं नारायण भगवान से अन्य किसी भी देव को नहीं देखता हू । शिव ही सब वस्तुओं के कारण नहीं है—ऐसा मुझे निश्चय है ॥३४॥ केवल एक नारायण ही सबके कारण हैं और भगवान विष्णु से अन्य कोई भी कारण नहीं हैं—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है । उमा देवी के साथ जो देव है वही बुधों के द्वारा सोम ऐसा कहा जाता है भगवान विष्णु कभी वही कारण है—ऐसा दधीचि ने कहा था ॥३५॥

तस्माद्य सर्वदेवानामधिकश्चन्द्रोत्तरः ।

इज्यते सर्वयज्ञेषु कथं दक्ष न पूज्यते ॥३६

यज्ञस्य पालको विष्णुरिति यन्निश्चितं त्वया ।

भविष्यत्यन्यथैवाऽऽनु पश्यत कमनापतेः ॥३७

एते च ब्राह्मणाः सर्वे ये द्विपन्ति महेश्वरम् ।

भवन्तु वेदवाह्यस्ते तमोपहतचेतसः ॥३८

पापण्डाचारनिरता सर्वे निरयगामिनः ।

कलौ युगे तु संप्राप्ते दरिद्रा शूद्रयाजकाः ॥३९

सर्वस्मादधिको रुद्रः पशुपाशविमोचकः ।

पराङ्मुखस्तु युष्माकं मा भूदिज्याकरी गतिः ॥४०

इति शपत्वा ययौ विप्रो दधीचिमुनिपुङ्गवः ।

स्वाश्रमं मुनिभिर्जुष्टमोकारं नमंदातटे ॥४१

एतस्मिन्नन्तरे गौरी परब्योमार्मिका शिवा ।

दक्षयज्ञस्य वृत्तान् श्रुत्वा देवशृणुषुं गीता ॥४२

प्राह विश्वाधिकं रुद्रं प्रणतान्तिप्रभञ्जनम् ।

निरोदयमाणं देवेशो परानन्देन विग्रहम् ॥४३

दधीचि ने कहा—भगवान् शिव तो सभी यज्ञों में यजन किये जाया करते हैं । हे दक्ष ! तुम्हारे द्वारा उनका यजन फिर क्यों नहीं किया जा रहा है ? ॥३६॥ यह तुम्हारा जो निश्चित है कि यज्ञ के पालक भगवान् विष्णु है यह बात भी अभी शीघ्र चमत्पापति के देखते देखते अन्यथा ही हुई जाती है ॥३७॥ और ये सब ब्राह्मण जो महेश्वर भगवान् से द्वेष बिया करते हैं वे सब तम से उपहत चित्त वाले वेद बाह्य हो जायेंगे ॥३८॥ ये सब पापण से पूर्ण आचार में ही निरत हैं और नरकों के गमन करने वाले ही हैं तथा कनियुग के सम्प्राप्त होने पर ये क्षुद्रों को यजन कराने वाले हरिद्र हो जायेंगे ॥३९॥ सबसे अधिक भगवान् रुद्र देव ही हैं जो यशु पाशों के विमोचन करने वाले हैं । जो पराङ्मुख आप जैसे हैं आपकी इच्छा करने वाली गति कभी नहीं होगी ॥४०॥ वे मुनियों में महान् श्रेष्ठ दधीचि विप्र—इस प्रकार से शपथ देकर वहाँ से चले गये थे । और नर्भदा के तट पर मुनियों के द्वारा सेवित ओङ्कार को जपते हुए अपने आश्रम को वे चले गये थे ॥४१॥ इसी बीच में परध्योमातिका तिता गौरी ने देव श्रुति के मुख में दक्ष के यज्ञ का वृत्तान्त सुन लिया था और विश्वाधिक रुद्र देव से जोकि प्रजनों के आत्तियों का भङ्ग करने वाले हैं । परमानन्द स्वरूप विग्रह वाले हैं और सभी कुछ देखने वाले हैं देवेशो ने कहा—॥४२॥४३॥

योष्य प्राचेतसो दक्षः पिता मे पूर्वजन्मनि ।

आवामवज्ञाय कथं यज्ञं कर्तुं प्रचक्रमे ॥४४॥

देवाः सर्वे समाहूता विष्णुना सह दांकर ।

आदित्या वसवो रद्राः साध्याश्चैव मरुदग्नाः ॥४५॥

ऋषयो मुनयः सिद्धा दैतया दानवाश्च ये ।

राजानश्च महाभागा गन्धर्वाः किनरास्तथा ॥४६॥

अवज्ञाकारिणस्तस्य यज्ञं शीघ्रं विनाशय ।

तेन मे जायते प्रीतिरतुला भक्तवत्सल ॥४७॥

एव देव्या वच श्रुत्वा देवदेव पिनाकधृत् ।
 असृजत्तत्क्षणाच्छंभुर्वीरभद्र महाबलम् ॥४८॥
 सहस्रसिंहवदन प्रलयान्निसमप्रभम् ।
 सहस्रबाहु जटिल दुष्टाना च भयकरम् ॥४९॥

श्री देवी ने कहा—जो यह प्राचेतस दक्ष है वह मेरे पूर्व जन्म मे पिता था । वह हम दोनों की अवज्ञा करके कैसे यज्ञ करने में संलग्न हो गया है ॥४८॥ हे शङ्कर ! विष्णु देव के साथ अन्य सभी देवों को बुलाया है जिनमें अब आदित्य है वसुगण रुद्रगणसाध्य तथा भद्रगण भी हैं—ऋषि—मुनि—सिद्ध—सिद्ध—हैतेय और दानव भी हैं । सब मही भाग नृप हैं तथा गन्धर्व और किन्नर भी हैं ॥४९॥४९॥ हे भक्त बत्सले ! उस अवज्ञा करने वाले के यज्ञ को आप बहुत ही शीघ्र विनष्ट कर दें । इससे मुझे बहुत अधिक प्रीति होगी ॥४७॥ इस तरह से कहे हुए देवी के वचनों को सुनकर दवा के देव पिनाकधारी प्रभु ने उसी क्षण में शम्भू न महान् बलवान् वीरभद्र था गुजन किया था । उसका वदन एक सहस्र सिंहों क महान था और प्रलय काल की अग्नि के समान प्रभा से युक्त था । एक सहस्र उसकी बाहुएँ थीं मस्तक पर जटाएँ थीं तथा वह वीरभद्र दुष्टों के लिये महान भयङ्कर था ॥४८॥४९॥

भक्ताना वरद देव सूर्यसोमाम्गिलोचनम् ।
 उमाकोपोद्भवा देवी भद्रकाली भयकरो ॥५०॥
 अन्याश्च देव्यो रुद्राश्च शतशा रोमसभवा ।
 भद्रकाल्या सह तदा वीरभद्रो महाबल ॥५१॥
 प्रहितो देवदेवेन दक्षयज्ञजिघासया ।
 गत्वा स यज्ञ दक्षम्य भम्मसादकरोद्द्विजा ॥५२॥
 दक्षस्नदद्भुत कर्म दृष्ट्वाऽथ भयविह्वल ।
 गतस्नच्छरण शीघ्र वीरभद्रस्य शूलिन ॥५३॥
 उवाच वीरभद्रस्त दक्ष प्राचेतस द्विजा ।
 तस्य पापविमोक्षाय वारुण्यामृतदारिधि ॥५४॥

गच्छ वाराणसी दक्ष सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
 अनुग्रहार्थं लोकानां यत्र तिष्ठति शकरः ॥५५
 अनुग्रहाद्भूगवतो देवदेवस्य शूलिनः ।
 अनेनैव शरीरेण तत्र मोक्षं गमिष्यसि ॥५६

वह वीर भद्र शिव भक्तों को वरदान देने वाला और सूर्य तथा और अग्नि के समान नेत्रों वाला देव था। उमा देवी के क्रोध से समुत्पन्न देवी महेश्वरी भद्र काली थी जो बहुत ही अधिक भयङ्करी थी ॥५०॥ अन्य भी बहुतसी देवियों और रोमों से समुत्पन्न सँकड़ों ही रूद्र थे उस समय में भद्रवाली के साथ महान बल वाले वीर भद्र को दक्ष के यज्ञ को विध्वंस करने की इच्छा से देवों के देव ने वहाँ पर भेजा था। हे द्विजो ! उस वीरभद्र ने वहाँ पहुँचकर दक्ष के यज्ञ को भस्मी भूत कर दिया था ॥५१॥५२॥ प्रजापति दक्ष ने उरा अत्यन्त अद्भुत कर्म को देखा तो वह भय से विह्वल हो गया था। वह शीघ्र ही शूली वीरभद्र के शरणगति में प्राप्त हो गया था। हे द्विजो ! वीरभद्र ने प्राचेतस दक्ष से कहा था जो वीरभद्र उसके पापों का विमोचन करने के लिए हम करुणामृत के सागर के समान ही हो गये थे ॥५३॥५४॥ वीरभद्र ने कहा—हे दक्षी अब आप सब पापों के विनाश करने वाली वाराणसी में शीघ्र चले जाइये जहाँ पर लोको के ऊपर अनुग्रह करने के लिये शङ्कर भगवान स्वयं विराजमान रहा करते हैं ॥५५॥ देवों के भी देव शूली भगवान के अनुग्रह से इसी शरीर से तेरा मोक्ष वहाँ पहुँचने पर हो जायेगा ॥५६॥

वीरभद्रस्य वचनं श्रुत्वा दक्षो महामतिः ।
 गत्वा वाराणसी शीघ्रं सर्वसङ्गविवर्जितः ॥५७
 प्रतिष्ठाप्य महालिङ्गं गङ्गातीरे मनोरमे ।
 आराध्य परया भक्त्या तस्मिँल्लिङ्गे लय गतः ॥५८
 दक्षेश्वरस्य माहात्म्यं कथितं मुनिपुङ्गवाः ।
 त्रिलोचनस्य माहात्म्यं साप्रतं वर्णयते मया ॥५९

श्री सूत्रजी ने कहा—महामति मान दक्ष ने वीर भद्रग बचन सुनकर वह सब सज्जा से रहित होकर शीघ्र ही वाराणसी पुरी में चला गया था । वहाँ पर परम मनारम गङ्गा के तट पर एक महालिङ्ग की प्रतिष्ठा की थी । वहाँ पर परम भक्ति से आराधना करके वह उसी लिङ्ग में लीन हो गया था ॥५७॥५८॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! मैंने यह दशेश्वर प्रभु का माहात्म्य आपके सामने वर्णित कर दिया है । अब अगे मेरे द्वारा भगवान् त्रिलोचन के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है ॥५९॥

॥ त्रिलोचन माहात्म्य ॥

त्रिलोचनात्पर लिङ्ग वाराणस्या न दृश्यते ।
 सदा मनिहितो नित्य यस्मिंस्त्रिङ्गे शिव स्थित ॥१॥
 यानि स्थितानि लिङ्गानि वाराणस्या द्विजोत्तमा ।
 दृष्ट न्येव भवन्त्येव दृष्टे लिङ्गे त्रिलोचने ॥२॥
 अस्स्यात्तानि पापानि ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ।
 कृतानि नाशयत्येव देवदेवस्त्रिलोचन ॥३॥
 मायापाशेन बद्धाना सर्वेषा प्राणिनामपि ।
 मुक्तिं ददाति परमा देवदेवस्त्रिलोचन ॥४॥
 पश्चिमाभिमुख लिङ्ग सर्पमेगलमण्डितम् ।
 तस्य दर्शनमात्रेण कोटिलिङ्गाचनं फलम् ॥५॥
 त्रिलोचन मुगपूज्य वृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
 यथो कामेश्वर द्रष्टुं मिद्वलिङ्गमनुत्तमम् ॥६॥
 ददौ दुर्वाससे यत्र देवदेवो महेश्वर ।
 प्रमत्तो विविधा मिद्धि सर्वेषामपि दुर्लभा ॥७॥

श्री सूत्रजी ने कहा—इस वाराणसी पुरी में भगवान् के त्रिलोचन लिङ्ग में महान् अन्य कोई भी लिङ्ग नहीं है जो वहाँ पर दिग्गद्गई देना हो । जिस लिङ्ग में सदा ही भगवान् निवसित रहा करते हैं ॥१॥

हे द्विजोत्तमो ! वाराणसी पुरी में जो अन्य जितने भी शिव के लिङ्ग विराजमान हैं उन सबका दर्शन केवल एक ही त्रिलोचन लिङ्ग के दर्शन करने पर ही होजाया करते हैं ॥२॥ देवों के देव भगवान त्रिलोचन जितने भी परम हैं उन सबका तुरन्त नाश कर दिया करते हैं चाहे वे बसध्यात और ज्ञान से अथवा अज्ञान से किसी भी तरह से किये गये हो । देव देव त्रिलोचन प्रभु माया के पाश से बद्ध समस्त प्राणियों को परम मुक्ति प्रदान कर दिया करते हैं ॥३॥४॥ पश्चिम दिशा की ओर मुख वाले—सर्षों की मेखला से मण्डित वह लिङ्ग है । उस लिङ्ग के दर्शन मात्र से ही कोरिलिङ्गों के अर्चन कर फल प्राप्त हो जाया करता है ॥५॥ श्री कृष्ण द्वैयापन मुनि ने त्रिलोचन प्रभु का पूजन भली भाँति किया था और इसके पश्चात् कामेश्वर सब लिङ्गों में उत्तम लिङ्ग के दर्शन प्राप्त करने के लिए वहाँ से आगे गमन कर गये थे ॥६॥ जहाँ पर देवों के देव महेश्वर ने प्रसन्न होकर अनेक सिद्धियाँ दुर्वासो मुनि को प्रदान की थी जो देवों को भी परम दुर्लभ होती हैं ॥७॥

अन्यश्चापि वरो दत्तो देवदेवेन शूनिना ।

कृताना क्रियमाणाना सर्वेषा तपसामपि ॥८

क्रोधो नाशकर प्रोक्तो ह्यन्यथैव मुनेऽस्तु ते ।

तस्य दक्षिणदिग्भागे कामकुण्डमिति स्मृतम् ॥९

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या दृष्ट्वा कामेश्वर शिरम् ।

ब्रह्महत्यादिभिर्पापमुक्तो याति परा गतिम् ॥१०

अन्यान्यपि च लिङ्गानि वाराणस्या स्थितान्यपि ।

सख्यामपि न जानाति तेषा देवश्चतुर्मुख ॥११

को वा वदति माहाम्ममृते देवान्महेश्वरात् ।

नन्दीश्वरो वा जानाति प्रसादाग्दिरिजापते ॥१२

अथ सत्यवतीसूनुर्द्विष्टु देवी शिवा पराम् ।

विशालाक्षी द्विजश्रेष्ठा यत्र सतिहिना शिवा ॥१३

ता दृष्ट्वा विधिद्भक्त्या मपूज्य च महामुनि ।

परानन्दात्मिका गौरी स्तुति मत्वा चकार स ॥१४

देव देव शूनी ने अन्य भी वरदान दिया था जो किये हैं और जो भी इन समय में किये जा रहे हैं उन सब तपो का नाश करने वाला क्रोध होता है ऐसा कह गया है। अतएव मुनिवर आपका यह सब किया हुआ तन व्यर्थ ही हो जाया करता है क्यों कि आप में बड़ा भारी उग्र क्रोध विद्यमान है। इसलिये उसके दक्षिण दिशा के ओर एक काम कुण्ड नाम वाला सरोवर कहा जाता है विद्यमान है ॥८॥१६॥ उस कुण्ड में मनुष्य भक्तिभाव से स्नान करके और कामेश्वर प्रभु शिव का दर्शन करके ब्रह्म हत्या आदि महा मानकी से भी मुक्त हो जाया करता है तथा परमगति की प्राप्त कर लेता ॥१०॥ इनके अतिरिक्त अन्य भी शिवलिङ्ग वाराणसी में स्थित हैं उन सबकी सरया को चतुर्मुख देव भी नहीं जानते हैं इतनी अधिक सन्या है ॥११॥ उन सब सबके माहात्म्य को महेश्वर देव के बिना अन्य कौन कह सकता है अर्थात् किसी में भी ऐसी सामर्थ्य नहीं है। केवल एक नन्दीश्वर रही गिरिजा पति की कृपा से उसको जानता है ॥१२॥ इसके अनन्तर मन्वन्ती के पुत्र पराश्रिता देवी का दर्शन करने के लिये गये थे जहाँ पर ८ द्विजों में परम श्रेष्ठो ! विशालाक्षी शिवा स्वयं सम्मिहित रहा करती है। यहाँ मुनि ने उनका दर्शन करके भवती भाँति से उनका अभ्यर्चन किया था तथा गौरी को परानन्दात्मिका मान कर उन महा मुनि ने उनका स्तवन भी किया था ॥१३॥ १४॥

विशालाक्षि नमस्तुभ्य परब्रह्मात्मिणे शिवे ।

स्वमेव माता सर्वेषां ब्रह्मादीनां दिगौरसाम् ॥१५

इच्छानक्ति क्रियाशक्तिर्ज्ञानविभ्रममेव हि ।

शृङ्खली कुण्डलिनी मूढमा योगसिद्धिप्रदायिनी ॥१६

स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मी. सरस्वती ।

गती दाशायणी विद्या सर्वशक्तिमयी शिवा ॥१७

अपर्णा चैकपर्णा च तथा चैकैकपाटला ।
 उमा हैमवती चापि कल्याणी चैव मातृका ॥१८॥
 ख्यातिः प्रजा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता ।
 गणाम्बिका महादेवी नन्दिनी जातवेदसी ॥१९॥
 सावित्री वरदा पुण्या पावनी लोकविश्रुता ।
 आयती निमती रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी ॥२०॥
 कालरात्री महामाया रेवती भूतनायिका ।
 गौतमी कौशिकी चाऽऽर्पा चण्डी कात्यायनी सती ॥२१॥

श्री व्यासदेव जी ने कहा था—हे विशाल नेत्रों वाली भगवती !
 आपको मेरा प्रणाम है । हे शिव ! आप तो परब्रह्म के ही स्वरूप वाली
 हैं । ब्रह्मा आदि समस्त देवों की आप ही माता हैं ॥१८॥ इच्छा शक्ति-
 ज्ञान-शक्ति और क्रिया शक्ति आप ही तो हैं । आप ऋग्वेदी सूक्ष्मा
 कुण्डलिनी हैं जो योग की सिद्धियों को प्रदान करने वाली होती हैं ।
 ॥१९॥ स्वाहा-स्वघा-महाविद्या-मेघा लक्ष्मी-सरस्वती-सती दाशारणी-सर्व
 शक्तिमयी शिवा-अपर्णा-एक पर्णा-ऐकैक पाटला-उमा-हैमवती-कल्याणी-
 मातृका आप ही हैं ॥१७-१८॥ ख्याति-प्रजा-महाभागा और लोक में
 प्रसिद्ध गौरी भी आप ही हैं । गणाम्बिका-महादेवी नन्दिनी-जात वेदसी-
 सावित्री-वरदा-पुण्या-पावनी-लोकविश्रुता-आयती-निमती-रौद्री-दुर्गा-भद्रा-
 प्रमाथिनी-कालरात्री-महामाया-रेवती-भूतनायिका-गौतमी-कौशिकी-आर्पा-
 चण्डी-कात्यायनी-सती भी आप ही हैं अर्थात् ये सब आपके ही भिन्न रूप
 हैं ॥१९-२०-२१॥

वृषध्वजा शूलधरा परमा ब्रह्मचारिणी ।
 महेंद्रोपेन्द्रमाता च पार्वती सिंहवाहना ॥२२॥
 एवं स्तुत्वा विशालाक्षी दिव्यैरेतैः मुनामभिः ।
 कृतकृत्योऽभवद्व्यासो धाराणस्या द्विजोत्तमाः ॥२३॥
 धाराणस्यां विशालाक्षी गङ्गा विश्वेश्वरः निवः ।
 भक्तिं पशुपती तप दुर्लभं हि चतुष्टयम् ॥२४॥

य पश्यति विशालाक्षी स्नात्व गङ्गाम्भसि द्विजाः ।

अश्वमेघसहस्रस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम् ।२५।

वाराणस्यास्तु माहात्म्यमिति किञ्चिन्मयोदितम् ।

य पठेच्छृणुमाद्वाऽपि यानि माहेश्वरं पदम् ।२६।

वृषध्वजा-शूनधरा-परमा-ब्रह्मचारिणी महेंद्रोपेन्द्रमाना-शर्वती-
मिहवाहनानी आप ही हैं । इस प्रकार से उम विशालाक्षी का दिव्य
गु दर नामो के द्वारा स्तवन करके व्यासदेव हे द्विजो । उस वाराणसी
पुगी में कृतकृत्य हो गये थे ।२२ २३। वाराणसी पुगी में ये चार वस्तुएं
बहुत ही दुर्लभ हैं जो अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकती हैं—एक तो
विशालाक्षी देवी—दूमरी भागीरथी गङ्गा—तीमरी विश्वेश्वर मंत्र और
चतुर्थ पशुपति भगवान् में भक्ति ।२४। हे द्विजो ! जो पुरुष गङ्गा के
परम पावन जल में अवगाहन करके विशालाक्षी भगवती जगदम्बा का
दर्शन किया करता है वह एक सहस्र अश्वमेघ यज्ञों के पुण्य फल को
उत्तम रूप से प्राप्त कर लिया करता है ।२५। वाराणसी पुरी का माहात्म्य
अद्भुत विनाल है । मैंने तो यहाँ पर कुछ छोटा सा ही बतला दिया है ।
जो भी इस माहात्म्य का श्रवण करता है अथवा इसको पढ़ता है वह
भीषा महेश्वर भगवान् के पद को प्राप्त किया करता है ।२६।



। शिव भक्त महिमा ।

अन्यद्यत्नमिदं वदते शृणुष्व मूनिपुङ्गवा ।

शिवेन कथितं माहात्म्यं च्छन्दाय पृच्छते ।१।

शिवदेव महादेव शशाङ्कजननेश्वर ।

भर्गं विश्वेश्वरेशानं वाग्भ्यामृतवारिधे ।२।

षस्य प्रसीदति शिप्रं वेन वा ज्ञायते भवान् ।

योगस्त्रवद्विषयं को वा ज्ञानं त्वद्विषयं च किम् ।३।

शर्वमेतन्महादेव पुत्रस्नेहाह्वरीहि मे ।४।

मद्भक्त सर्वदा स्कन्द मत्प्रियो न गुणाधिक ।
 सर्वाशी सर्वभक्षी वा सर्वाचारविलोपक ॥५॥
 मरुपरो वड्भन कार्यमुक्त एव न सशय ।
 नाह प्रसन्नस्तपमा न दानेन न चेज्यया ॥६॥
 तुष्टोऽह भक्तिलेशेन क्षिप्र यच्छे पर पदम् ।
 त्रिपुण्ड्रधारी सतत शान्तो रुद्राक्षरङ्गण ॥७॥
 निर्दम्भ सत्यसकल्पो भक्त स्यादुत्तमो मम ।
 सूर्यवह्नीन्दुभक्तानामुत्तमो वैष्णव पर ॥८॥

श्री सूतजी ने कहा—हे मुनिथोष्ठो ! मैं अब एक अन्य व्रत के विषय में बतलाऊंगा । आप लोग उसका श्रवण करिए सेनाती स्कन्द के पुछने पर उनको साक्षात् भगवान् शिव ने ही स्वयं इनको कहा है ॥१॥ स्कन्दजी ने कहा—हे देवो के भी देव ! आप तो महान् देव हैं और आपने चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण कर लिया है । हे भर्ग ! आप इस विश्व के ईश्वर के भी ईशान हैं तथा परुषारूपी अमृत के महासागर हैं ॥२॥ आप वृषा कर यही बतलाइये कि आप किस के ऊपर बहुत शीघ्र प्रसन्न होने हैं और जिसके द्वारा आपका ज्ञान प्राप्त किया जाता है ? आपके विषय का योग क्या है और आपमें सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान क्या होता है ? ॥३॥ हे महादेव ! यही सब कुछ आप मुझे अपना पुत्र समथर स्नेहपूर्वक बनाने की वृषा कीजिये ॥४॥ ईश्वर ने कहा—हे स्कन्द ! मेरा भक्त सर्वदा मेरा हृदय हुआ करता है । कोई गुणों में अधिक हो वह मेरा प्रिय नहीं होता है चाहे सभी कुछ का अंग बनने वाला हो, भले ही सर्वभक्षी हो और सभी आचारों का विनाश ही पान करने वाला हो किन्तु मन-वाणी और शरीर से मुझमें ही परायण रहने वाला हो तो वह निश्चय ही मुक्त हो जाया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । मैं अधिक तपस्वियों से—दान से तथा इत्यादि सभी प्रसन्न नहीं हुआ करता हूँ । मैं तो केवल भक्ति के योगमान के ही सम्पुष्ट हो जाया करता हूँ और उस अनेक भक्त को ही ही परम पद प्रदान

कर दिया करता हूँ । जो त्रिपुण्ड्र को धारण करने वाला हो, निरन्तर दान्त रहता हो और खद्राक्ष का कङ्कण रखता हो —तथा दम्भ से रहित और सत्य सङ्कल्प हो वही मेरा उत्तम भक्त होता है । सूर्य-अग्नि-चन्द्र-इनके भक्तों में वैष्णव पद एक उत्तम होता है ।५। ६। ७। ८।

वैष्णवाना सहस्रेभ्य शिवभक्तो विशिष्यते ।

यदि पापरत क्रूर स्वाश्रमाचारवर्जितः ॥६

मम भक्तो यदि भवेत्पूज्यो मान्य स एव हि ।

येऽपि दम्भ श्रमाश्रित्य भक्तानामुरजीविका ।१०।

मसार।त्तेऽपि मुच्यते किं पुनर्मत्परा जना ।

मद्भक्ताना च माहात्म्यं को वा जानाति तत्त्वत ।११।

जानेऽहं त्वं च जानासि नन्दो जानाति व गुह ।

मार्गस्थो वाऽप्यमार्गस्थो मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा ।१२।

मम भक्तो यदि भवेत्सर्वस्मादधिको हि स ।

भक्त प्रियो मे सतत यया त्वं क्रीञ्चपूदन ।१३।

तस्मात्तत्पूजनाद्वत्स पूजितोऽहं न मगयः ।

मद्भवत द्वेष्टि यो मोहात्म मा द्वेष्टि सनातनम् ।१४।

सहस्रो वैष्णवो मे शिवभक्त विशिष्ट होता है । यदि पापो मे रत हो—क्रूर हा और अपने आश्रम के आचार से भी वंचित हो यदि वह मेरा भक्त है तो वह परम पूज्य और मान्य ही हुआ करता है । जा भी कुछ लोग दम्भ का सहारा लेकर भक्तों के उप जीविका होते हैं वे भी दण मसार से मुक्त हो जाया करत हैं फिर जो मेरे ही ध्यानार्चन में तस्वर रहा करते हैं उनकी ता बान ही क्या है । मेरे जो भक्त हैं उनका माहात्म्य को ताद्विक रूप से कोन जानता है अर्थात् कोई भी नहीं जाना करता है ।६। १०। ११। मैं जनता हूँ और तुम जानने हो—नन्दो भयवा गुह जानता है । मार्ग में स्थित भयवा भयार्थ में रहने वाला हो—पण्डित हो या मूर्ख हो ।१२। यदि वह मेरा भक्त है तो वह मगये अगिर लया है । मेरा भक्त मुझे मना ही प्यारा हुआ है जैव हे श्रीशिवानन्द !

तुम मेरे प्यारे हो ॥१३॥ है वत्स । इसीलिए उस मेरे भक्त के पूजनार्चन से मैं ही साक्षात् पूजा मया होता हूँ—इससे बुद्ध भी सशय नहीं है । जो मोह के कारण से मेरे भक्त से द्वेष करता है वह मुझ सनातन से ही द्वेष किया करता है क्योंकि मेरे भक्त बहुत ही प्रिय और प्राणों के समान होते हैं ॥१४॥

त पूजयति यो भक्त्या स मा पूजितवान्गुह ।
 भक्तिरष्टविधा स्कन्द सर्वशस्त्रेषु पठ्यते ॥१५॥
 तामह कथयिष्यामि भक्ति भवविनाशिनीम् ।
 मद्भक्तजनवात्सल्य पूजायाश्चानुमोदनम् ॥१६॥
 स्वयम्भ्यर्चन भक्त्या ममार्थं चाङ्गवेष्टितम् ।
 मत्कथाश्रवणे भक्ति स्वरनेत्राङ्गविक्रिया ॥१७॥
 ममानुस्मरण नित्य गश्च मा नोपजीवति ।
 भक्तिरष्टविधा ह्येषा गस्मिल्लेदोऽपि वसति ॥१८॥
 स विप्रेन्द्रो मृनि श्रीमान्स यतिः स च पण्डित ।
 तस्मै दान सदा देय तस्माद्ब्राह्म पठानन ॥१९॥
 सकृदभ्यर्चयेन्मा यो भक्तिलेशसमन्वित ।
 स महापातकैर्मुक्तो मम लोके महीयते ॥२०॥
 स्वहस्ताहृतपुष्पाणि मामृद्दिश्व प्रयच्छति ।
 तद्दान सर्वदानानामत्तम रिपठग्ने ॥२१॥

हे गुह । जो मेरे भक्त की पूजा करता है उगरी भक्तिभाव से मेरा ही पूजन किया हुआ समझना चाहिए हे स्कन्द । यह भक्ति आठ तरह की होती है जो कि सभी शास्त्रों में पढ़ी गयी है ॥१५॥ मैं अब उगी सगार के अर्थात् विनाश करने वाली भक्ति के विषय से बतलाता हूँ । मेरे भक्तियों के ऊपर वात्सल्य अर्थात् हादिक अनुराग पूजा का अनुमोदन करना—स्वयं भी भक्ति में यत्न करना—मेरे लिये अङ्ग वेष्टित—मेरी कथा से श्रवण करने से भक्तिभाव—स्वर नेत्र और अङ्गों की विक्रिया का होना—मेरा ही नित्य स्मरण करना और जो मुझसे

उपजीवन रहता है—यही आठ प्रकार की भक्ति होती है जिसमें इस भक्ति का लेशमात्र भी विद्यमान है वही विप्रोद्भ—मुनि, श्रीमान् यति और वह ही पण्डित है। उसको ही सदा दान देना चाहिये। हे पण्डित ! उससे ग्रहण करना चाहिए ।१६। १७। १८। १९। जो मुझको एकबार ही अभ्यर्षित कर देता है वह भक्ति के लेश में युक्त होता है। वह महान् पातको से मुक्त होकर मेरे लोक में ही प्रतिष्ठित हुआ करता है। अपने हाथ से लाये हुए कुमुदों को जो मेरा उद्देश्य करके समर्पित किया करता है वह दान अन्य सभी दानों से उत्तम परिपठित किया जाना है ।२०। २१।

मयि भक्ति सदा कार्या भवपाशविमोचनी ।

भक्तिगम्प्रस्त्वह् वत्स मम योगो हि दुर्लभ ।२२।

योगात्मजायते ज्ञान योगो मय्येकचित्तता ।

ऽ न स्वरूपमेव स्याद्विद्रूपमजमव्ययम् ।२३।

आनन्दमजरं शुद्धमज्ञानेन निरोहितम् ।

वेदान्तवाक्यबोधेन तच्चाज्ञान निवर्तते ।२४।

ज्ञान नैत्राऽऽत्मनो धर्मो न गुणो वा कश्चन ।

ज्ञानस्वरूपमेवाऽऽत्मा नित्य सर्वगत शिव ।२५।

अहमात्मा समस्ताना भूताना परमेश्वर ।

एक एव पदायेंश्च कल्पितो मयि पण्मुष ।२६।

अद्वैतमेक परममात्मानं ज्ञानविग्रहम् ।

नानात्मान प्रपद्यन्ति मायया मोहिता जना ।२७।।

नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका ।

सदगद्म्यामन्यरूपा मिथ्याभूता सनातना ।२८।

हे वत्स ! मेरी भक्ति सदा ही करनी चाहिये क्योंकि यह भव के पाशों का विनाश कर देने वाली होती है। मैं भक्ति के ही द्वारा गम्य होता हूँ और मेरा योग तो अत्यन्त दुर्लभ होता है ।२२। योग से ज्ञान समुत्पन्न हो जाता है और यह योग मुझमें एक चित्तता का होना ही

होता है। ज्ञान तो मेरा स्वरूप ही होता है जो चिद्रूप अर्थात् ज्ञान के स्वरूप वाला—अध्यय-आनन्द-अजर-और शुद्ध है जो कि अज्ञान के द्वारा ही तिरोहित (छिपा हुआ) रहा करता है। वेदान्त के वाक्यों के अवबोध होने से वह अज्ञान निवृत्त होता है। १२३। १२४। ज्ञान आत्मा का धर्म और कोई गुण नहीं है। प्रत्युत यह आत्मा ज्ञान स्वरूप वाला ही होता है—वह नित्य है—सर्वगत और शिव है। १२५। मैं ही समस्त भूतों का आत्मा एवं परमेश्वर हूँ हे पण्डित ! और—एक ही पदार्थ मुझमें लक्षित है। १२६। माया से मोहित जन अद्वैत—एक—ज्ञान के निग्रह वाले परमात्मा को अनेक आत्माओं वाला देखा करते हैं। १२७। मेरी माया न सद्रूप वाली है और न असद् रूप वाली है तथा वह माया सभयात्मिका भी नहीं है। वह मेरी माया सद और असद से अन्य ही स्वरूप वाली होती है तथा मिथ्याभूत है और सनातना भी है अर्थात् सर्वदा से चली आने वाली है। १२८।

विज्ञानमेवमखिल विश्वाकारमबुद्धयः ।

पश्यन्ति ज्ञानिनस्त्वेकमात्मरूपमिदं जगत् ॥२९॥

अहमात्मा विभुः शुद्धः स्फटिकोपलसनिभः ।

उपाधिरहितः शान्तः स्वयज्योतिः प्रकाशकः ॥३०॥

आत्मन्येवाखिल भाति शुक्तिकारजत यथा ।

शुक्तितत्त्वपरिज्ञानात्तन्नाशस्तद्वदात्मनि ॥३१॥

कर्तृत्व नैव भोवतृत्वमास्तनोऽस्ति कदाचन ।

अहङ्काराविधेकेन कर्तृत्वमिति निश्चितम् ॥३२॥

आत्मनो नित्यमुक्तस्य निविभागस्य पण्डित ।

नैवास्ति किञ्चित्कर्तव्यमित्याहुर्वेदवादिनः ॥३३॥

कर्तृत्व करणस्यैव नाऽऽत्मनोऽस्ति हि तत्त्वतः ।

न तेन लिप्यते ह्यात्मा पुण्यापुण्याख्यकर्मणा ॥३४॥

जो बुद्धि से रहित होते हैं वे समस्त विश्व के आवार वाला विज्ञान को ही देखा करते हैं और जो जानी होते हैं वे इस जगत् को एक ही

आत्मरूप देखते हैं । १२६। मैं आत्मा हूँ—एक हूँ—विभु-बुद्ध-स्फटिक के समान हूँ—उपाधि से रहित-शान्त स्वयं ज्योति और प्रकाशक हूँ । १२७। जिस तरह से सीप में रजत (चाँदी) का भ्रम उसके चरुचिक्क के कारण में हो जाया करता है वैसे ही यह सम्पूर्ण आत्मा में ही विभात हुआ करता है । जब शक्ति के तत्त्व का परिज्ञान हो जाता है तो वह रजत का भ्रम दूर हो जाया करता है उसी तरह से तत्त्वज्ञान होने से उमी की भाँति आत्मा में उमका नाश हो जाया करता है । १२१। इस आत्मा में कभी भी न तो कर्तृत्व होता है अर्थात् यह किसी भी कर्म का कर्ता नहीं होता है और भोक्तृत्व इन आत्मा में होता है अर्थात् यह किसी भी कर्म का जय कर्ता ही नहीं है तो भोगने वाला भी नहीं हुआ करता है । यह कर्तृत्व आत्मा में अहङ्कार और अविवेक से ही हुआ करता है—यही निदिधत है । १२२। हे करमुख ! यह विभाग से रहित है—नित्य मुक्त है, इसको कुछ भी कर्ताव्य नहीं होता है ऐमा ही वेदों के ज्ञाता पुण्य रहा करते हैं । १२३। सात्त्विक रूप में आत्मा को कर्तृत्व और करणत्व कुछ भी नहीं होता है जो कुछ भी कर्म जाना है उममें यह आत्मा-कर्म भी निग्न नहीं हुआ करता है चाह वह कर्म पुण्य स्वरूप हो । किसी भी प्रकार के कर्म से आत्मा निष्पन्न नहीं होती है । १२४।

बुद्धधादयो गुणा सर्वे ह्यभूद्बुन्देरहृष्टति ।

अहकारान्च सूक्ष्माणि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ॥ ३५

सूक्ष्मेभ्य पञ्च भूतानि तेभ्य म्यूतमिद जगत् ।

चतुर्विंशत्समध्यन्त पुण्य पञ्चविंशत् ॥ ३६

न तस्य कार्यं करणं त्रिव्यारूपं च विद्यते ।

स्वाज्ञानात्प्रवृत्तं सर्वमात्मन्गेवेति च श्रुति ॥ ३७

इति मद्रिपयं जान कथितं तव पुत्रव ॥ ३८

बुद्धि आदि में सब गुण हैं । बुद्धि में अहकार हुआ था और अहकार में सूक्ष्म तन्मात्राएँ होती हैं और इन्द्रियाँ हुआ करती हैं । १२५। उन्हीं सूक्ष्म तन्मात्राओं में पांच भूत होते हैं और उन्हीं पञ्च-भूतों में यह सम्पूर्ण स्वरूप जगत् उत्पन्न हुआ करता है । यह अहकार ही ही तत्त्व जाना जाता है और पञ्चोक्तों में यह पुण्य हुआ

करता है। मन बुद्धि अहङ्कार-माँच तन्माना-पञ्चभूत-ग्यारह इन्द्रियाँ
में २४ हुए ॥२५॥ उमनी न तो कार्य है और न करण है और न वह
क्रिया रूप ही है, अपने ही अज्ञान से ये मय आत्मा में कहे गये हैं—
ऐसी श्रुति है ॥२७॥ यही मेरे से सम्बन्ध रखने वाला ज्ञान है। हे पुत्र
वही मैंने आपको बतला दिया है ॥२८॥

भूतकार्यमिदं देहभापद्रोगाकुल परम् ।

विषयं पीडयते देव सुखदुःखात्तकं सदा ॥१॥

अभिभूतो यदा योगी दुःखैरध्यात्ममभवौ ।

किमुपाय तदा तस्य यदा वै भौतिकस्य च ॥२॥

न्रूह्याधिदैविकस्यापि योगसिद्धये प्रभो ।

यातनायोपसर्गाणां प्रसादाद्योगिना वद ॥३॥

सात्त्विका राजसा विघ्नास्तामसास्त्रिवह योगिनाम् ।

योगरासररा सर्वे भवन्ति भवतामपि ॥४॥

प्रातिभाश्रवणावातदिशनास्वादवेदना ।

उपसर्गा भवन्त्येते सात्त्विकास्तु पडेव हि ॥५॥

वरिद्रोऽहमहं चाऽऽद्य शूरोऽहं दूर्बलस्तया ।

मूर्खाऽहं च सुविद्वांश्च सुत्पोऽहमरूपवान् ॥६॥

दीप्ताऽहं कपणश्चाहं सुखी भोग्यहमेव च ।

अवृलीन कुलीनश्च कण्ठक कण्ठकोज्जित ॥७॥

श्री स्वप्न देवजी ने कहा—यह देह तो भूतों का ही कार्य है और
आपत्ति तथा रोगों में परम व्याकुल रहा करता है। यह शरीर विषयों
के द्वारा जो सुख-दुःख स्वल्प सदा पीड़ित रहा करता है ॥१॥
जिम समय में अध्यात्म सम्भव दुःखा से योगी सदा अभिभूत
रहा करता है उस समय में जबकि ऐसी परिस्थिति हो तो इस
भौतिक का क्या उपाय है ॥२॥ हे प्रभो अधिदैविक की भी योग की
सतिद्धि के लिये बतलाइए। योगियों को उपसर्गों की यातना के लिये
भी प्रसन्नता से बतलाइये ॥३॥ श्री ईश्वर ने कहा—यहाँ पर योगियों के
विघ्न सात्त्विक-राजस और तामस हुआ करते हैं। ये सभी आपको योग

के त्रास करने वाला होते हैं । ४। सास्त्रिक उपसर्ग के बल छै ही हुआ करते हैं जो प्रातिभ-श्रवण-वार्ता-दर्शन-आस्वाद वेदन्त सून है । ५। मैं दरिद्र हूँ और मैं शूर वीर हूँ और दुर्बल हूँ—मैं मूर्ख हूँ और बड़ा विद्वान् हूँ—मैं सुन्दर रूप वाला हूँ और अरूप वाला हूँ—दाता हूँ और कृष्ण हूँ—मैं सुखी और भोगी हूँ—अकुलोन हूँ और कुलीन हूँ—कण्ठक और कण्ठकोसित हूँ । ६। ७। ✓

✓ मदीय सर्वभेतद्धि वस्त्वित्यादिप्रजल्पनम् ।

अहकारमय किञ्चिद्यत्तत्कुत्स्न हि राजमम् ॥८

अन्धत्व चैव वाधियै पङ्गुत्व दूष्टरोगता ।

शिरोरोगो ज्वर शूलयक्ष्ममूर्च्छाभ्रमादय ॥९

राजसास्तामसा सर्वे तमोहकारसयुता ।

व्याधयो मिश्रभावेन पीडयन्तीह देहिनम् ॥१०

केवलं जाड्यभावेन मूढत्व मोहन तथा ।

अज्ञानत्व च मूकत्वमित्याद्यास्तामसा स्मृता ॥११

गुह्यका यातुधानाश्च किन्नरोरगराक्षसा ।

देवदानवरौद्राश्च दैत्या मातरजा गणा ॥१२

तामसान्तु ग्रहा भूता वायुभूता नर सदा ।

पीडयन्तीह विघ्ना हि योगाम्यासरत ग्रहै ॥१३

एवमाद्युपसर्गानां वारणाय च धारणाम् ।

वक्ष्यामि विधिया बल्म योगिना सिद्धिहेतवे ॥१४

यह समस्त वस्तु जान म ही हैं—इत्यादि प्रजल्पन जो कुछ भी अहङ्कार से परिपूर्ण है वह सम्पूर्ण राजस अर्थात् रजोगुण से युक्त है । ८। अन्धापन-बधिरता-भगलापन होना दुष्ट रोग का हो जाना-सिर में रोग-ज्वर-शूल-राजयक्ष्मा-मूर्च्छा-भ्रम प्रभृति ये सब तम और अहङ्कार से युक्त राजस तथा तामस हैं । ये व्याधियाँ मिश्र भाव में देह घाती को पीडा दिया करती हैं । ९। १०। केवल जाड्य भाव म मूढता तथा मोह का होना-अज्ञान होना और मूक होना इत्यादि सब तामस

कहे गये है '११। गुहमहा-प्रातुवा-विन्नर-उरग-राशम-देव-दानव-रोद्र-
दैत्य और सप्तवग गुण-ग्रहभूत तथा वायुभूत तामस हैं जो मनुष्य को
सदा ग्रहों के द्वारा जो योग के अभ्यास में रत है उसको पीडा दिया
करते हैं और ये सभी विघ्न होते हैं ।१२॥१३। इन प्रकार के उपसर्गों
के अनवारण करने के निधे हे वत्स ! योगियों की सिद्धि के लिये विविध
प्रकार की धारणा को मैं बतलाता हूँ ।१४।



॥ सात्विक-राजस विघ्नादि कथन ॥

त्वगादिसप्तधातूनामेकीभूत विचिन्तयेत् ।
प्रणव कण्ठनासाग्रे सवीज वह्निदीपितम् ॥१५
वाहणेषु च सर्वेषु उपसर्गेषु योगवित् ।
एतदेव चरेन्नित्यमुपसर्गदियो ययु ॥१६
पित्तरोगाभिभूतो वा योगी योगपरायण ।
ध्यानभेतत्प्रकुर्वीत तथाऽन्यच्छृणु पुत्रक ॥१७
सुवृत्त चोडुनाथस्य चाक्षर तत्र चिन्तयेत् ।
सुधाभिलषित ध्यायेत्स्वस्य मूर्ध्नि शिवात्मकम् ॥१८
प्रविश्य ब्रह्मरन्ध्रेण देहं निवाणज स्मरेत् ।
शीतलेन मुगन्ध्रेण हृत्तत्त्व चापि तेन वै ॥ १९
पैत्ति ऋचोपसर्गश्च भानुना तिमिर यथा ।
विपज्वरजराद्याश्च नश्यन्त्यभ्यासतो ध्रुवम् ॥ २०
नाशयेदन्धता योगी दिव्यदृष्टि प्रजामते ।
उत्क्षिप्यापानमन्य च चन्द्रदैवत्यया पिबेन् ॥ २१

सृक् आदि जो शरीर में सात धातुओं है वे सभी एकीभूत है—
या विचिन्तन करना चाहिए और कण्ठनासाग्रे में बीज के सहित
हेमदीपित प्रणव है । योग के सत्वा पुरुष को सभी उपसर्गों में वर्ण
रने में यही नित्य चरण करना चाहिए तो सभी उपसर्ग आदि चले

जाते है । १५॥१६। अथवा कोई योगाम्यास में तत्पर पुरुष जो योगी है पित्त के रोग से अभिभूत न होवे तो उसको ध्यान करना चाहिए । हे पुत्र ! तथा अन्य भी श्रवण करो । १७। यहाँ पर उडुनाय के सुवृत्त अक्षर का चिन्तन करना चाहिए । सुधा से अभिलाषित शिवात्मक का अपने मूर्धा में ध्यान करें । १८। ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा प्रवेश करके देह को निर्वाणज स्मरण करें और उसके द्वारा शीतल सुगन्ध से हृत्तत्त्व का भी स्मरण करे । १९। पँक्तिक जो उपसर्ग हैं और विष ज्वर जरा आदि है वे सब योग के अम्यास से भानु के द्वारा अन्धकार के ही समान निश्चय ही नष्ट हो जाया करते है । २०। योगी अन्धता का विनाश कर दिया करता है और दिव्य दृष्टि हो जाया करती हैं । अपान का और अन्य का उत्क्षेप करके चन्द्र देवत्यया से पान करना चाहिए । २१।

पीत्वा पार्थिवतत्त्वेन स्तम्भ वायोविनाशयेत् ।
 पुष्टिरेवातुला तस्य स्थिरत्व रजहीनता ॥ २२
 हृत्तत्त्व च सुपीताभममरत्व तथा स्मरन् ।
 श्रोत्रमाकाशवाय्वोश्च अत्रैकत्व विचिन्तयत् ॥ २३
 मोचयेत् पुनर्वायु वधिरत्वविनाशनम् ।
 शृणोति तूरते सर्व श्रुतधारी भवेत्सदा ॥ २४
 वियन्मयोज्य सचारी सतताम्यासयोगत ।
 सरोज रसनाया च तद्द्रष्टार मर्कणिकम् ॥ २५
 स्मृत्वा मध्ये पुनर्ध्यायेच्छुक्लवर्णां म्वरस्वतीम् ।
 जडत्व च शिरोरोग मुखरोगान्विनाशयेत् ॥ २६
 प्रज्ञा चैवं स्मृतिमोघा कवित्व बुद्धिरत्तमा ।
 स्तम्भन दुष्टमत्त्वानां सर्ववायुञ्जयत्सदा ॥ २७
 हृत्तरोजगत देवमष्टादशभुर्जयुत्तम् ।
 नीलारण महावाय त्रिदशचन्द्रजटाघरम् ॥ २८

पार्थिव तत्त्व के द्वारा पान करके वायु का जो स्तम्भ है उमका विनाश कर देना चाहिए । जगती जगत पृष्टि हो जाती है और जगती

स्थिरता तथा रोग हीनता भी हुआ करती है । २२) और गुपीनाम हृत्तत्त्व का तथा अमरत्व का स्मरण करता हुआ श्राव्य और आनाम वायु की एकता का विस्तार करे । २३) फिर उस वायु का मोचन करे तो वधिरता का विनाश हो जाता करता है । वह पुरुष सदा श्रूतघारी होता है और दूर स ही सभी कुट्ट का श्रवण कर लिया करता है । २४) निरन्तर अभ्यास के योग से यह वियन्मय संज्ञरण करने वाला सरोज को रसना म कणिका व सहित उसके दृष्टा स्मरण करके पुन ध्यान करे कि शुभ्र वर्ण वाली सरस्वती देवी है । वह जडता सिर का रोग और सुख के रोगों का विनाश कर दिया करता है । २५) २६) इस इस प्रकार से प्रजा-स्मृति मेधा-व्यतिर और उत्तम बुद्धि-दुष्ट मत्त्वा का स्तम्भन हो जाता है और सदा सब वायुओं को जीन लेवे । २७) अठारह मुजाआ से युक्त देव को हृदय हृषी कनल मे स्थित का स्मरण करे जो नील और अरुण वर्ण वाले हैं—महात् परम विद्वान विग्रह से युक्त हैं तथा तीन नैत्रा से सयुक्त एव जटाओं म चन्द्रमा को धारण किये हुए हैं । २८)

सिंहचर्माम्बर भीम सर्वाभरणभूषितम् ।

भुजङ्गहाराभरण सबकङ्कणनूपुरम् ॥ २९

ज्वालामालाकुल दीप्त भाभासितदिगाननम् ।

अभेद्य विजय रौद्रमक्षोभ्य त्रिदशेश्वरम् ॥ ३०

कपालमालिन चोश्र भीम दष्टाकरालिनम् ।

अस्त्रैर्व्यग्रकर देवममोषैर्वह्निकारणम् ॥ ३१

स्मरणाद्यजनाद्येव तैजसैतिघ्ननाशनम् ।

शूल मुन्दरवज्रे पुदण्डकाभुं कशकल्पसि ॥ ३२

पद्मान्ते दक्षिणे भागेऽविनाश परमेमेश्वरम् ।

परिघघ्वजखट्वाङ्गै रङ्कू श च धनुर्गदाम् ॥ ३३

ज्वालाननेन पाशेन वामभागेऽभयप्रदम् ।

अनेन ध्यानयोगेन सर्वविघ्नान्निवारयेत् ॥ ३४

ईश्वर चिन्तयेत्स्थायुं ज्ञानमानन्दविग्रहम् ।
 उभावपि स्थिरीकृत्य योगी मोक्षाय कल्पते ॥ ३६
 बाह्यं चित्तं समारोप्य बायो परमकारयत् ।
 ततो द्वाराणि सयम्य ब्रह्मरन्ध्रे लय गतः ॥ ४०
 लक्षमाधाय तत्रैव योजयेन्मयि पण्मुख ।
 घृत घृतेष्वेव यथा नियुक्तं प्रयाति चैवयादविशेषभावम् ।
 तथैव लीनो न भवेत्स भूय परे चतुर्थे त्वनया च युक्तया ॥ ४१

जो योग का ज्ञाता है और योग से युक्त आत्मा वाला है वह परम निर्वर्ण को प्राप्त किया करता है । पञ्च मे आदित्य मण्डल को और फिर सौम्य पावक को तथा हृदय रूपी गुहा में आवास करने वाले आत्मा का महामुनि को चिन्तन करना चाहिए और इसके अनन्तर मुनिमंल-परम शांति-ईश देव का ध्यान करना चाहिए ॥ ३६॥ ३७॥ सम्पूर्ण इस जगत् को व्याप्त करके समवासित और काल तथा अकाल से विवर्जित विपद्देश में अथवा हृदय रूपी कुभज में विराजमान ईश्वर का योग के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ योगी आनन्द के विग्रह वाले स्थाण्ड ज्ञान स्वरूप ईश्वर का चिन्तन करे । दोनों को स्थिर करके योगी मोक्ष को प्राप्त किया करता है । ॥ ३८॥ ३९॥ वायु के बाह्य में चित्त को समारोपित करके परम करे । इसके पश्चात् द्वारों का सयम करके ब्रह्म रन्ध्रे में लय को प्राप्त हो जाता है हे पण्मुख । वही पर लक्ष का आधान करके मुखा में योजित करे । घृत जैसे घृत में मिल जाता है उसी भाँति ऐव्य हो जाने में नियुक्त होकर अविशेष भाव को प्राप्त किया करता है । उसी भाँति से इसी युक्ति के द्वारा पुनः चतुर्थ परमे वह लीन हो जाया करता है ॥ ४०॥ ४१॥

॥ हरोत्पत्त्यादि कथन ॥

सतः ससर्ज भगवान्देवोऽसावन्त्मनः सुतान् ।
सनातन च सनक सनन्दनमयापि च ॥१
शम्भु सनत्कुमारं च पञ्च तान्पद्मसभवः ।
न सृष्टौ दधिरे बुद्धि शिवैकध्यानतत्पराः ॥२
सृष्टौ तेऽप्यनपेक्षं पु मोहाविष्टः प्रजापतिः ।
सपस्तताप परम न किञ्चित्प्रत्यपद्यत ॥३
गते बहूतिथे काले समभूत्क्रोधमूर्च्छितः ।
प्राणात्मकः समुद्भूतो ललाटाह्वह्यणो हरः ॥४
केनापि हेतुना विप्राः सूर्यकोटिसमप्रभः ।
निश्चक्राम ततो भित्त्वा भाल भगवतो विधेः ॥५
रोदयित्वाऽब्जजन्मान तस्माद्बुद्ध इति स्मृतः ।
अन्यानि सप्त नामानि शृणुष्व मुनिपु गवाः ॥६
भवः शर्वस्तयेशानः शशूना पतिरेव च ।
भीमश्रोत्रो महादेव इति नामानि सत्तमाः ॥७

श्री मृतजी ने कहा—इसके अनन्तर भगवान् इन देव ने अथवा पुत्रों का सृजन किया था । सनातन सनक-सनन्दन और शम्भु सनत्कुमार इन पाँचों को पद्म सम्भव ब्रह्माजी ने समुत्पन्न किया था । ये सबके सब एक मात्र भगवान् शिव के ध्यान में ही तत्पर रहा करते थे और इन्होंने सृष्टि की रचना करने में अपने बुद्धि को नहीं लगाया था ॥१॥२॥ सृष्टि की रचना करने के कार्य में वे जब सबके सब अनपेक्ष हो गये थे तो प्रजापति मोह से एक दम आविष्ट हो गये थे । फिर उन्होंने परम धोर सपदचर्या की थी और फिर उनको कुछ भी ध्यान नहीं रहा था ॥३॥ जब बहूत काल व्यतीत हो गया तो ब्रह्मा जी क्रोध से मूर्च्छित हो गये थे । उसी समय में उनके ललाट में प्राणात्मक हर समुद्भूत हो गये थे ॥४॥ हे विप्रो ! किसी भी हेतु से करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा व ले

वे भगवान विधि के भाल का भेदन करके निकले थे ॥५॥ अद्य जन्मो
के वे रोदन करते हुए निकले थे इसी कारण से उनको रुद्र कहा गया
है । हे मुनि पुद्गवा ! अन्य जो सात नाम है । उनको भी आप श्रवण
कीजिये ॥६॥ हे सत्तमो ! उनके ये सात नाम है—भव-शर्व-ईशान-
पशुपति-भीम-उग्र और महादेव ॥७॥

भूमिरापोऽनलो वायुर्धर्मो सूर्यश्च चन्द्रमाः ।

अष्टमी दीक्षितस्तत्र मूर्तिरीशस्य शूलिनः ॥८

याभिर्वाप्तमिदं विश्वं विश्वस्यास्य जगन्मय ।

तेन विश्वेश्वरो देव इति नाम्ना शिव स्मृतः ॥९

प्रजा सृजेति निर्दिष्टश्चन्द्रमौलिविरञ्चिता ।

ससर्ज मनसा रुद्रानात्मतुल्यान्महेश्वरः ॥१०

नीलकण्ठास्त्रिनेत्रांश्च जटामुकुटमण्डितान् ।

वृषध्वजान्वीतरागाञ्छरामरणवर्जितान् ॥११

सर्वज्ञाञ्शतकोटीस्तान्सर्वानुग्राहिणः परान् ।

दृष्ट्वा तान्विविधान् रुद्रान्विरञ्चिचः प्राह शक्यम् ॥१२

जरामरणनिर्मुक्तामीदृशी मा सृजः प्रजाम् ।

सृजस्वान्या सुरेक्षान् प्रजा मृत्युसमन्विताम् ॥१३

ब्रह्माणमग्रवीच्छेभुर्नास्ति मे तादृशी प्रजा ।

ततः प्रभृति विश्वात्मा न प्रासूत शोभा प्रजाः ॥१४

ईशशूरी की आठ मूर्तियाँ हैं—भूमि—जल—अतल—वायु—

व्योम—सूर्य—चन्द्रमा और आठवीं मूर्ति दीक्षित है । जिन आठ

मूर्तियों के द्वारा इस विश्व का जगन्मय विश्व व्याप्त है । इसीसे विश्वे-

श्वर देव 'शिव'—इस नाम से बह्ये गये है ॥८॥९॥ विरञ्चि ने चन्द्र

मौलि वायु भगवान से निर्देश दिया था कि तुम प्रजा का सृजन करो ।

उम समय में महेश्वर भगवान ने अपने ही समान रत्नों का मनमे सृजन

किया था । ये सबके सब नीचे बण्डों वाले—तीन नेत्रों के धारण करने

वाले—जटा और मुकुटों के मण्डित थे—हे वृषध्वज—वीतराग और

जरा तथा मृत्यु से वर्जित थे ॥१०॥११॥ वे सर्वज्ञ गायत्री-मन्त्र पर

अनुग्रह करने वाले और पर थे । उन सब बिबिध प्रकार के रदो को देखकर ब्रह्माजी ने भगवान् शङ्कर से कहा था ॥१२॥ जो प्रजा जरा और मरण में रहित हो ऐसी प्रजा का मृजन मत करो । हे सुरेशान ! अन्य ऐसी प्रजा की रचना करो जो मृत्यु से समाश्रित हो ॥१३॥ शम्भु भगवान् ने ब्रह्माजी से कहा—मेरी प्रजा उस प्रकार की नहीं है । तब से लेकर विश्वात्मा ने फिर शुभ प्रजा को प्रसूत नहीं किया था ॥१४॥

रुद्रं रात्मममुद्भूतं क्रीडायुक्तस्तदाऽभवत् ।
 स्थाणुर्वान्निश्चली यस्मात्स्थित स्थाणुरिति स्मृतः ॥१५॥
 ज्ञान वैराग्यमैश्वर्यं तप सत्य क्षमा धृति ।
 द्रष्टृत्वमात्मसबोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च ॥१६॥
 अव्ययानि दशैतानि नित्य तिष्ठन्ति शकरे ।
 स एव भगवानीशो विश्वेशो नीललोहिनः ॥१७॥
 ततस्तमाह भगवान्ब्रह्मा सवीक्ष्य शकरम् ।
 अनुगृह्य यथा मा त्व पुत्रत्वे दत्तवान्वरम् ॥१८॥
 अद्य तत्सफल जात चिन्तित यन्मयेऽसितम् ।
 एव विश्वेश्वर शम्भु समाभाष्य चतुर्मुख ॥
 स्वोत्रेणानेन तुष्टाव शिरस्याधाय चाञ्जलिम् ॥१९॥
 नमस्तेऽस्तु महादेव नमस्ते परमेश्वर ।
 नम शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ॥२०॥
 नमोऽस्तु तु महेशान नम शान्ताय हेतवे ।
 प्रधानपुरुषाय योगाधिपतये नमः ॥२१॥

५. उस समय में भगवान् शम्भु अपनी आत्मा से समुत्पन्न रदो के साथ क्रीडा युक्त हो गये थे । वे स्थाणु के समान एकदम निश्चल थे इसी कारण से उनको स्थाणु—इस नाम से कहा गया है ॥१५॥ ज्ञान—वैराग्य—ऐश्वर्य—तप—सत्य—क्षमा—धृति—द्रष्टृत्व—आत्म सबोध—अधिष्ठातृत्व—ये दश अव्यय हैं जो भगवान् शङ्कर में नित्य ही स्थित रहा करते हैं । वह ही भगवान् ईश विश्व के ईश और नील

लोहित है ॥१६॥१७॥ इसके पश्चात् भगवान् ब्रह्माजी ने उन शङ्कर को देखकर उनसे कहा था । तुम मुझ पर अनुग्रह करके ऐसा करो । मैंने पुत्रत्व होने में तुमने वरदान मुझको दिया था । अर्थात् मैं तुम्हारा पुत्र-
 होऊँगा—ऐसा कृपा करके मुझे वरदान प्रदान किया था । आज वह वरदान सफल हो गया है और जो मैंने सोचा था वह मेरा अभीष्ट मनोरथ पूर्ण हो गया है । इस प्रकार से विश्वेश्वर शम्भु से भगवान् चतुर्मुख ने कहकर अपने मस्तक पर दोनो हाथों को जोड़ते हुए रसकर द्रव निम्नलिखित श्लोक के द्वारा उनका स्तवन किया था—
 ॥१८॥१९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे महा देव ! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार अर्पित है । हे परमेश्वर ! आपके लिये मेरा प्रणाम है । शिव देव के लिये और ब्रह्म के रूप बाने आपके लिए मेरा नमस्कार है ॥२०॥ हे महेशान ! आपको मेरा प्रणाम है । परमशान्त स्वरूप और हेतु रूप आपके लिए मेरा प्रणाम है । आप प्रणान-पुरुष के ईश है और योग के अधिपति हैं । ऐसे आपके लिए मेरा वारम्बार नमस्कार है ॥२१॥

नमः कालाय रुद्राय महाशक्त्याय शूलिने ।

नमः पिनाकहस्ताय त्रिशूलाय नमो नमः ॥२२

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्य ब्रह्मणो जनकाय च ।

ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने ॥२३

नमो वेदरहस्याय कालकालाय ते नमः ।

वेदान्तमारमाराय नमो वेदात्ममूर्तये ॥२४

नमः शूद्राय बुद्ध्याय योगिना गुरवे नमः ।

प्रहीणशोकं विविधभूतं परिवृत्ताय ते ॥२५

नमो ब्रह्मण्यदेनाय ब्रह्माधिपतये नमः ।

ऋश्वकाय च देवाय नमस्ते परमेश्विने ॥२६

नमो दिग्वाससे तुभ्य नमो मुण्डाय दण्डिने ।

अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः ॥२७

नमस्ताराय तीर्थाय नमो योगद्विहेतवे ।

नमो धर्माधिगम्याय योगगम्याय ते नमः ॥२८

कान्तस्वरूप-रुद्र-महाप्राप्त तथा शुभघारी आपके लिए मेरा नमस्कार है । पिनाक धनुष को हाथ में धारण करने वाले त्रिनेत्र में लिए मेरा नमस्कार है और वारम्बार प्रणाम है ॥२२॥ त्रिमूर्ति आपके लिये मेरा नमस्कार है । ब्रह्मा के जनक आपके लिए मेरा प्रणाम है । ब्रह्म विद्या के अधिपति और ब्रह्म विद्या के प्रदान करने वाले के लिए मेरा प्रणाम है ॥२३॥ वेदों के रहस्य स्वरूप और काल के भी काल आपके लिए नमस्कार है । आप वेदान्त के सार के भी सार हैं तथा वेदों की आत्म मूर्ति हैं ऐसे आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥२४॥ शुद्ध-बुद्ध और योगियों के गुरुदेव आपकी सेवा में मेरा प्रमाण समर्पित है प्रहीण शोक वाले अनेक भूतों के द्वारा परिवृत्त आप के लिए मेरा नमस्कार है । ब्रह्मण्य देव तथा ब्रह्म के अधिपति आपको मेरा प्रणाम है । त्र्यम्बक देव परमेशी आपके लिए मेरा प्रणाम है ॥२५॥२६॥ दिग्म्बर (नग्न) आपको प्रणाम है । गुण्ड और दण्डी, आपके लिए नमस्कार है । अनादि मल से हीन तथा ज्ञान जानने के योग्य आपके लिये नमस्कार है ॥२५॥२६॥२७॥ सार और तीर्थ के लिए तथा योग की श्रद्धि के हेतु-धर्म से अधिगमन करने के योग्य और योगगम्य आपको नमस्कार है ॥२८॥

नमस्ते निष्प्रपञ्चाय निराभासाय ते नमः ।

ब्रह्मणे विद्वरूपाय नमस्ते परमात्मने ॥२९

त्वयैव सृष्टमस्मिन्न त्वय्येव सकल स्थितम् ।

त्वया सहियते विद्व प्रधानान्य जगन्मय ॥३०

त्वमीश्वरो महादेव पर ब्रह्म महेश्वर ।

परमेशी शिव शान्त पुरपो निष्कलो हरः ॥३१

स्वमक्षर पर ज्योतिरोकारः परमेश्वर ।

त्वमेव पुरुषोऽनन्त प्रधान प्रकृतिस्तथा ॥३२

भूमिरापोऽनलो वायुव्योमाहंकार एव च ।
 यस्य रूपं नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मासजितम् ॥३३॥
 यस्य घोरभवन्मूर्धा पादौ पृथ्वी दिक्षो भुजाः ।
 आकाशपुदर तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम् ॥३४॥
 सतापयति यो नित्यं स्वभामिर्भासयन्दिशः ।
 ब्रह्मतेजोमयं विश्वं तस्मै सूर्यात्मने नमः ॥३५॥

अपक्ष से रहित आपको नमस्कार है और निराभास आनेके लिये प्रणाम है । विश्व रूप ब्रह्मा परमात्मा के लिये नमस्कार है ॥३३॥ हे जगन्मय ! आपने ही इस सम्पूर्ण विश्व की रचना की है और आपमें ही यह सपस्त विश्व स्थित रहा करता है । आपके द्वारा इस विश्व का सञ्चार किया जाता है जो कि प्रधानाख्य है । ३०॥ आपही महादेव हैं—ईश्वर हैं—परम ब्रह्मा और महेश्वर हैं । आपही परमेश्वरी—शान्त—शिव—पुरुष—निष्कल और हर है ॥३१॥ आप अक्षर—परम ज्योति—ओङ्कार और परमेश्वर हैं । आपही पुरुष हैं जोकि अनन्त हैं—तथा आपही प्रधान प्रकृति हैं ॥३२॥ आपही भूमि-जल-अनल-वायु-व्योम और अहङ्कार हैं । आप ब्रह्मा की संज्ञा वाले हैं जिनके रूप को मैं नमस्कार करूँगा ॥३३॥ जिसका मूर्धावौ हुजा था—पृथ्वी चरण हुए और दिशाएँ भुजाएँ थी । आकाश जिसका उदय है उस विराट् के लिए मैं प्रणाम करता हूँ ॥३४॥ जो अपनी दीप्तियों के द्वारा सभस्त दिशाओं को भासित करते हुए नित्य ही सतप्त किया करते हैं और ब्रह्म ने जो भय विश्व हैं उन आप सूर्यात्मा के लिए मेरा नमस्कार है ॥३५॥

हृद्य वहति यो नित्यं रौद्री तेजोमयी तनुः ।
 कव्यं विनृगणानां च तस्मै बह्मचात्मने नमः ॥ ३६॥
 आप्याययति यो नित्यं स्वघाम्ना सकलं जगत् ।
 पीयते देवतासर्वस्तस्मै चन्द्रात्मने नमः ॥ ३७॥
 विभत्यसंपभूतानि योऽन्तश्चरति सर्वदा ।
 शक्तिमहिेश्वरी तुभ्यं तस्मै वाय्वात्मने नमः ॥

मृजत्यशेषमेवेद यः स्वकर्मनिरूपतः ।
 स्वात्मन्यवस्थितन्तस्मै चतुर्वेवत्रात्मने नमः ॥ ३६
 यः शेते शेषशयने विश्वमावृत्य मायया ।
 आत्मानुभूतियोगेन तस्मै विश्वात्मने नमः ॥ ४०
 विभक्तिं शिरसा नित्यं द्विमस्रभुवनात्मकम् ।
 ब्रह्माण्ड योऽखिलाधारं तस्मै शेषात्मने नमः ॥ ४१
 यः परान्ते परानन्दं पीत्वा दिव्यैकसाक्षिणम् ।
 नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥ ४२

जो नित्य ही हव्य का हवन किया करते हैं वही तेजोमयी रौद्री तनु है और पितृगणों के लिये कष्ट का वहन किया करते हैं उन बद्धि रूप के लिये प्रणाम है । ३६। जो इस सम्पूर्ण जगत् को नित्य ही अपने धाम के द्वारा आप्यायित किया करते हैं और देवता सध्यों के द्वारा दैत्य किया करते हैं । उन आप चन्द्रात्मक के लिये मेरा नमस्कार है । ३७। जो सब भूतों का मरण किया करते हैं और जो सर्वदा अन्त करण में अन्तर्यामी रूप में चरण किया करते हैं ऐसी जो महेश्वर शक्ति है उन वायु के स्वरूप वाले आपके लिये मेरा नमस्कार है । ३८। जो अपने २ वर्मों के अनुरूप ही इस सम्पूर्ण विश्व का मृजन किया करते हैं । और स्वात्मा में ही अवस्थित है उन चार मुखों वाले के स्वरूप धारी आपको मेरा नमस्कार समर्पित है । ३९। जो अपनी माया के द्वारा इस समस्त विश्व को समावृत करके शेष की शय्या पर क्षीर सागर में शयन किया करते हैं और आत्मानुभूति के योग के द्वारा ही सोते रहा करते हैं उन विश्वात्मा आपके लिये मेरा प्रणाम है । ४०। इन चौदह भुवनो को जो अपने शिर पर नित्य ही धारण किया करते हैं जो यह सबका आधार ब्रह्माण्ड है उसे आप धारण कर के विराजमान हैं उन शेषात्मा आपके लिये मेरा प्रणाम समर्पित है । ४१। जो परान्तमें दिव्यैकसाक्षी परानन्द का मान करके अनन्त महिमा वाले नृत्य किया करते हैं उनके रुद्रात्मा आपके लिये मेरा नमस्कार है । ४२।

योऽन्तरा सर्वभूताना नियन्ता तिष्ठतीश्वर ।
 त सर्वसाक्षिण देव नमस्ते परमात्मने ॥ ४३
 यस्य केशेषु जीमूता नद्य सर्वाङ्गसधिषु ।
 कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै व्योमात्मने नमः ॥ ४४
 य विनिद्रा यतश्चासा सतुष्टा समदर्शिन ।
 ज्योति पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः ॥ ४५
 यस्य भासा विभातीद तदह तमस परम् ।
 तत्त्व सदा निराकार चिद्रूप पारमेश्वरम् ॥ ४६
 यया सतरते माया योगी सक्षीणकल्पम् ।
 अपरान्तामपर्यन्ता तस्मै विद्यात्मने नमः ॥ ४७
 नित्यानन्द निराधार निष्फल परम शिवम् ।
 प्रपद्ये परमात्मान भवन्त परमेश्वरम् ॥ ४८
 एव स्तुत्वा महादेव ब्रह्मा तद्भावाभावित ।
 प्राञ्जलि प्रणतस्तस्थौ गृणन्ब्रह्म सनातनम् ॥ ४९

जो समस्त प्राणियों के अन्दर नियन्ता होकर ईश्वर समावस्थित
 रहा करते हैं उही सबके साक्षी रूपी देव परमात्मा के लिये नमस्कार
 है ॥४३॥ जिनके केशों में मेघ हैं और जिसकी सब सधियों में नदियाँ
 हैं जिसकी कुक्षि में चारों समुद्र विद्यमान रहा करते हैं उन व्योमात्मा
 आपके लिये मेरा प्रणाम है ॥४४॥ जिस ज्योति को जगत निद्रा वाले—
 यतश्चासौ वाले सन्तुष्ट और समदर्शी युञ्जान होकर अर्थात् योगाभ्यास
 करते हुए देखा करते हैं उन योगात्मा आपके लिये मेरा नमस्कार है ।
 ॥४५॥ जिसकी दीप्ति से यह सम्पूर्ण विकसित हुआ करता है उस तमसे
 परे- निराकार तत्त्व को जो सदा चिद्रूप पारमेश्वर है । जिसके द्वारा
 योगी सक्षीणकल्प वाला माया का सतरण किया करता है जो कि
 माया अपरान्ता और अपर्यन्ता है उस विद्यात्मा के लिये मेरा प्रणाम
 है ॥४६॥४७॥ नित्य ही आनन्द स्वरूप निराधार निष्फल परम पर
 मात्मा आप परमेश्वर शिवकी म धारणागति में जाता हूँ ॥४८॥ इस

प्रकार में उनके ही भाव में भावित होना वाले ब्रह्माजी ने महादेवजी की स्तुति करके सनातन ब्रह्म को ग्रहण करने हुए प्रणत और प्रञ्जलि होकर वहीं पर स्थित हो गये थे ॥४६॥

ततस्तस्य महादेवो नित्ययोगमनुत्तमम् ।
 ऐश्वर्यं ब्रह्मसद्भाववैराग्यं च ददौ हर ॥ ५०
 कराम्या मुगुभाम्या च उपस्पृश्य महेश्वर ।
 व्याजहार महादेव सोऽनुग्रह्य पितामहम् ॥ ५१
 यत्स्वयाऽभ्यर्चितो ब्रह्मन्पुनस्त्वेऽहं मया वृतम् ।
 त्वमिदानीं ममाऽऽदेशात्सृजस्व विवधा प्रजा ॥ ५२
 त्रिधा भिन्नोऽभ्यह ब्रह्मन्ब्रह्मविष्णुहराख्याया ।
 सर्गं रक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽहं न सदाय ॥ ५३
 मत्त्वममग्रतः पुनः सृष्टिहेतोर्विनिमित्तम् ।
 ममैव दक्षिणादङ्गाद्वामाङ्गात्पुरुषोत्तमम् ॥ ५४
 ममैव हृदयादुद्रे सजातं कामरूपधृक् ।
 ब्रह्मविष्णुहराख्यानां य परं परमेश्वरम् ॥ ५५

इसके पश्चात् हर महादेवजी ने उनके नित्य एवं परमोत्तम योग-ऐश्वर्य और ब्रह्मसद्भाव वैराग्य प्रदान किया का ॥५०॥ महेश्वर प्रभू ने अपने परमगुण करा में उन ब्रह्माजी का उपस्था किया था और उनसे परम अनुग्रह करके ही पितामह में महादेवजी ने कहा था । हे ब्रह्मन् ! जो आपन मेरी अभ्यर्चना की थी । वही मैंने उनके पुत्र होने के रूप में उपस्थित होने का कार्य किया है । अब आप मेरे आदेश से विविध भाति की प्रजा का सृजन करिए । ५१।५२॥ हे ब्रह्मन् ! मैं तीन प्रकार में ब्रह्मा विष्णु और हर इन नामों से भिन्न २ स्वरूप बनाया गया हूँ । सर्ग रक्षा और लय के गुणों में मुक्त होता हुआ भी मैं निर्गुण ही हूँ—इसमें तनिक भी सदाय नहीं है ॥५३॥ वह आप मेरे आगे पुत्र हैं जो सृष्टि की रचना करने के ही लिये निमित्त किये गये हैं आप मेरे ही दक्षिण अङ्ग में समुत्पन्न हुए हैं और मेरे वाम अङ्ग में

पुरोत्तम हुए हैं। मेरे ही हृदय से रूद्र उत्पन्न हुए हैं जो कामरूप को धारण करने वाले हैं। ब्रह्मा-विष्णु और हर नामा वाला मैं जो पर है वह परमेश्वर हूँ ॥५४॥५५॥

त महान्त महादेव ब्रह्मज्ञानन्ति सूरय ।
 एव ब्रह्माणमाभाष्य दत्त्वा च विविधान्वरान् ॥ ५६
 अन्तर्हितो महादेव पश्यत पद्मजन्मन ।
 अनुग्रहात्ततस्तस्य तस्माज्ज्ञानोदयो भवेत् ॥ ५७
 ततश्च पाशविच्छ्रित्ति शिव एव भवेत्तत ।
 नश्यन्ति व्याधयस्तस्य गलगण्डग्रहादय ॥ ५८
 ऐहिकी लभते सिद्धिं चिरजीवित्वमेव च ।
 सर्वपापविनिर्मुक्त शिवलोके महीयते ॥ ५९

हे ब्रह्मा ! उन महात् महादेव को सूरिगण जानते हैं। इस रीति से ब्रह्माजी से कहकर और अनेक वरदान देकर पद्मजन्मा ब्रह्माजी के देखते हुए महादेवजी अन्तर्धान हो गये थे। इसके अनन्तर उनके ही अनुग्रह से उन ब्रह्माजी के हृदय में ज्ञान का उदय हो गया था। और इसके पश्चात् शिव ही पाशविच्छ्रित हो गये थे। उसकी सब गलगण्ड यहादि व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं ऐहिकी सिद्धि को प्राप्त करता है और चिरजीवित्व भी प्राप्त किया करता है। वह सब पापों में छुटकारा पाकर अन्त में शिवलोक में अधीष्ठित हुवा करता है ॥५६॥५६॥

॥ ब्रह्म पद्मयोनित्वादि कथन ॥

कथं स भगवाञ्शुभु सर्वस्याऽऽद्योऽपि सन्विभु ।
 चतुर्मुखस्य पुनरत्वमगमत्केन हेतुना ॥ १
 दक्षिणाङ्गभवो ब्रह्मा महादेवस्य शूलिन ।
 कथं तत्पद्मयोनिव विरश्चेरिति नो वद ॥ २

आसीदेकार्णवे घोरे नटे वै सचाराचरे ।
 देवाश्च दानवाश्चैव मुनयो मनवस्तथा ॥ ३
 निर्विद्यन्ते तदा तस्मिन्सजाते प्रतिसचरे ।
 नारायणो महायोगी शेते तस्मिन्स्तमोमथे ॥ ४
 योगनिद्रां समासाद्य शेषाहिशयने द्विजा ।
 उद्भूत पङ्कज तस्य नाभौ भगवतो हरे ॥ ५
 दिव्यगन्धसमोपेत शतयोजनविस्तृतम् ।
 तस्यैव शयनस्थस्य दिव्य वर्षशत मतम् ॥ ६
 ब्रह्मा जगाम त देश यत्राऽऽस्ते पुरुषोत्तम ।
 समुत्थाप्य च त ब्रह्मा करेण मधुसूदनम् ॥
 मायया मोहितो ब्रह्मा तमुवाच सुरेश्वरम् ॥ ७

ऋषियो ने कहा— हे भगवान् ! वह भगवान् शम्भु, जब सबके आदि म रहने वाले विभु है तो वे किम कारण से ब्रह्माजी के पुत्रत्व को प्राप्त हुए थे ॥१॥ शूली महादेवजी के दक्षिण अङ्ग से समुत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी हैं तो विरश्चि से पद्म से समुत्पन्न होना कैसे हो गया था— यह सब हमारे सामने आप वर्णित कीजिए ॥२॥ श्री सूत ने कहा— जब यहा पर एकार्णव ही था अर्थात् केवल एक समुद्र था और वह भी परम धीर रूप वाला था सभी चर और अचर नष्ट हो गये थे । उस समय मे उस प्रति सञ्जट के हो जाने पर कोई भी विद्यमान नहीं रहा था न तो कोई देव ही थे—न दानव थे—न मुनिगण थे और न मनु गण थे । उम तमोमय काल मे केवल एक महायोगी भगवान् नारायण ही शयन किया करते हैं ॥३॥४॥ हे द्विजो ! शेष नाग की शय्या पर योग निद्रा से प्राप्त होकर वे भगवान् नारायण शयन कर रहे थे । उनकी नाभि मे एक पद्म उत्पन्न हुआ था और वे भगवान् श्री हरि थे ॥५॥ वह पद्म माधारण पद्म नहीं था । वह तो परम दिव्य गन्ध मे मुक्त था और नौ योजन के विस्तार मे युक्त था । इस प्रकार शयन मे स्थित उनकी दिव्य सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे ॥६॥ ब्रह्माजी उग देग मे गये

थे जहा पर परम पुरुषोत्तम शयन किये हुए थे । ब्रह्माजी न कर के द्वारा उन मधुसूदन को उठाया था और माया से मोहित होकर ब्रह्माजी ने उन सुरेश्वर प्रभु से कहा था ॥७॥

अस्मिन्नेकार्णवे घोरे शैते कोऽत्र भवानहो ।
 ब्रूहोत्युक्तेऽब्रवीद्विष्णुर्ब्रह्माण तेजसां निधि ॥ ८
 न जानासि कथं मूढ मामन्तर्यामिणं विभुम् ।
 सर्वस्याऽऽद्य सुरश्रेष्ठ जानीहीत्यब्रवीद्विभु ॥ ९
 एवमुक्त्वा पुनश्चक्री जानन्नपि पितामहम् ।
 को भवानिति तं प्राह ब्रह्मा हरिमथाब्रवीत् ॥ १०
 अहं वै सर्वभूतानामाद्यं सर्वजगत्पति ।
 ब्रह्माणं मां परं देवं जानीहि पुरुषपंभ ॥ ११
 चराचरात्मकं विश्वं मयि निष्ठति सर्वदा ।
 मध्येव विलसच्चान्ते पुनरेव न सशय ॥ १२
 एवंपितामहेनोक्तो भगवान्कमलापति ।
 प्रविष्टो ब्रह्मणो देहं तत्र लोकानन्ददर्शनात् ॥ १३
 विस्मितः कमलाकान्तो निर्गतश्च विधेमुखात् ।
 सहस्रशीर्षा पुरुषं पुनर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥ १४

इस परम घोर एकार्णव में जो आप शयन कर रहे हैं वे आप कौन हैं—यह बतलाओ—ऐसा कहने पर तेजो के निधि भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी से कहा था—हे मूढ़ ! क्या तुम नहीं जानते हो और तुम मुझको क्यों नहीं जानते हो मैं तो सबका अन्तर्यामी और विभु हूँ । मैं तो सभी का आद्यगुरु ग श्रेष्ठ हूँ । विभु ने कहा—अच्छा, अभी मुझे जान लो ॥८॥११॥ इस प्रकार में बह्मण फिर चक्री भगवान् में जानते हुए भी पितामह से पूछा था कि आप कौन हैं ? इनके उत्तर में ब्रह्मा जी ने श्री हरि से कहा था ॥९०॥ मैं मय भूना का आद्य हूँ और हम गमस्त जगत् का स्वामी हूँ । हे पुत्रो मे परम श्रेष्ठ ! मुझको ब्रह्मा गमणो जो नि परम देव है ॥११॥ यह गन्तुं चर-अनगम्या विश्व

मुझमें ही स्थित रहा करता है और अन्त में मुझमें ही पितृत्व की प्राप्ति हो जाया करता है इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥१२॥ इस प्रकार से पितामह के द्वारा भगवान् कमलापति से कहा गया था तो उस समय में वे ब्रह्माजी के देह में प्रविष्ट हो गये थे और कहा पर सभी लोगो को देखा था । कमलान्त विष्णु यह देखकर बहुत ही विस्मित हो गये थे और फिर वे विजाता के मुख से बाहिर निकल आये थे । सहस्र शीशों वाले पुरुष फिर ब्रह्माजी से बोले ॥१३॥१४॥

विधे त्वमपि मद्देहं प्रविश्यासु विलोकथ ।

चराचरात्मकाँल्लोकान्सदेवासुरमानुषान् ॥ १५

ततो विरिञ्चिर्भगवानुदरं कमलापते ।

प्रविश्य भुवनान्सर्वान्दृष्ट्वाऽभूद्विस्मितो विधि ॥ १६

नापश्यन्निर्गमद्वारे पिहितानि च चक्रिणा ।

ततोऽग्नौ नाभिपद्मस्य नालमार्गमविन्दत ॥ १७

तेन मार्गेण निर्गत्य ब्रह्मा ब्रह्मविदा वर ।

रेजे पङ्कजमध्यस्थो देवर्देव पितामह ॥ १८

तमब्रवीद्ददापाणिर्ब्रह्माणमभितद्युति ।

लीलार्थमेतत्सकल पितामह कृत मया ॥ १९

न मात्सर्यात्सुरश्रेष्ठ द्वाररोधो मया कृत ।

त्वमेव जगतो मान्य सर्वस्याऽऽद्य पितामह ॥ २०

पुनरत्रे त्वामह याचे देहि मे कमलासन ।

पद्मयोनिरिति रद्याति मत्प्रितार्थं गमिष्यसि ॥ २१

हे ब्रह्मन् ! आप भी मरे देह में प्रविष्ट होकर शीघ्र ही देखिए । जहां पर चराचरात्मक सब लोक विद्यमान हैं जिनमें सभी देव-असुर और मनुष्य हैं ॥१५॥ इसके अनन्तर फिर भगवान् कमलापति के उदर में प्रवेश करके उन्होंने समस्त भुवना को देखा था जो ब्रह्माजी को अत्यधिक विस्मय उत्पन्न हो गया था ॥१६॥ भगवान् चक्रीने सभी द्वारों को बन्द कर दिया था अतएव ब्रह्माजी को अपने बाहिर निकलने

का कोई भी द्वार ही नहीं मिला था । तब वे नाभि पद्म के नाल पर प्राप्त हो गये थे ॥१७॥ ब्रह्म के जानाओं ने परम अष्ट ब्रह्माजी उसी मार्ग से बाहिर निकल कर आये थे और देवों के देव ब्रह्माजी उस कमल के मध्य में स्थिर होकर परम शोभित हुए थे ॥१८॥ अपरिमित द्युति वाले गदापाणि ने उन ब्रह्माजी से कहा था — हे पितामह ! लीला के ही लिये मैंने यह सभी कुछ किया है ॥१९॥ मैंने किसी मत्सरता की भावना से द्वारों का अवरोध नहीं किया था । आप ही जगत् के मान्य सबके आदि में होने वाले पितामह है ॥२०॥ हे कमलासन ! मैं आपसे याचना करता हूँ कि आप पुत्रत्व में प्राप्त हो वही मुझे दीजिए । मेरे श्रिय के लिये आप पद्म योनि हैं—इस प्रतिदि को प्राप्त हो जायेंगे ॥२१॥

तत स्वयंभूविश्वादिश्चक्रिणो वरमुत्तमम् ।
 दत्त्वा प्रहर्षमगमत्सर्वाभूतात्मको विभु ॥ २२
 तनस्तमद्भवीद्विष्णु नाऽऽवाभ्यां विद्यते परम् ।
 त्वन्मय मन्मय सर्वमिका मूर्तिद्विधा स्थिता ॥ २३
 एण निगदितो विष्णुर्ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
 विरश्च्येय प्रतिज्ञा ते निष्फलैव भविष्यति ॥ २४
 किं न पश्यसि विश्व शे स्वयंज्योति सनातनम् ।
 सर्वात्मकमुमागन्तमन विनिधन परम् ॥ २५
 गच्छाऽऽवाभ्या पर देवमधिक शरण विद्ये ।
 एवा हरेनिगदिते श्रुत्वा ब्रह्मा तमब्रवीत् ॥ २६
 आवाम्यामधिक कश्चिद्विद्येतेति मुधा हरे ।
 भापसे निद्रयाऽऽविष्टस्त्यज मोह महामते ॥ २७

इसके पश्चात् विद्व के आदि स्वयंभू ने भगवान् चक्रों को यह उताम वरदान दिया था और सर्वभूतात्म विभु परम प्रहर्ष को प्राप्त हो गये थे ॥२२॥ इसके अनन्तर फिर ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु से कहा था कि हम दोनों व पर कोई भी विद्यमान नहीं है । त्वन्मया और मन्मया

अर्थात् तुम्हारे स्वरूप में रहने वाली और मेरे रूप में रहने वाली सब एक ही मूर्ति हैं केवल दो रूपा में ही स्थित रहा करती हैं ॥२३॥ परमेष्ठी ब्रह्माजी के द्वारा जब भगवान् विष्णु से इस प्रकार से कहा गया तो भगवान् विष्णु ने कहा—हे विरञ्जे ! यह तो आपकी प्रतिज्ञा निष्कन ही हो जायेगी ॥२४॥ क्या आप स्वयं ज्योति समातन विश्व के ईश को नहीं देख रहे हैं ? वे सबकी आत्मा-उमादेवी के स्वामी अनादि निघन और परम है ॥२५॥ हे विधे ! अब आप हम दोनों से पर अधिक देह की शरण में गमन करो । इस प्रीति से भगवान् श्री हरि के कथन का श्रवण कर ब्रह्माजी ने उनसे कहा—॥२६॥ हम दोनों से भी कोई अधिक विद्यमान है हूँ हरे ! यह तो सर्वथा मिथ्या ही है । हे महामते ! आप निद्रा से आविष्ट होकर हो ऐसा कह रहे हैं । आप इस मोह का त्याग कर दीजिए ॥२७॥

मेव विधे यदज्ञात्वा परे भाव महेश्वरे ।
 अस्तीति नान्यथाऽहं ते ब्रवीमि कमलासन ॥ २८
 मोहितात्मा न सदेहो मायया परमेष्ठिन ।
 मायो विश्वात्मको रुद्रो मायाशक्तिन्तु शाकरी ॥ २९
 यस्मात्सर्वमिदं ब्रह्मन्विष्णुरुद्रं न्द्रपूर्वकम् ।
 महाभूतेन्द्रिये मयी प्रथमं संप्रसूयते ॥ ३०
 सर्वेश्वर्येण सपन्नो नाम्ना सर्वेश्वर स्वयम् ।
 मदीर्णुं मुखुभिर्घ्येयं शभुराकाशमध्यग ॥ ३१
 योऽग्रे त्वां विदधे पुन तव वेदाश्च दत्तवान् ।
 यत्प्रमादात्त्वया लब्धं प्राजापत्यमिदं पदम् ॥ ३२
 एको बहूना जन्तूना निष्क्रियाणा च सत्क्रिया ।
 य एव बहुधा बीजं करोति स महेश्वर ॥ ३३
 जीवैरेभिरिमांल्लोमान्मवनिवो य ईगते ।
 य एको भगवान् रुद्रो न द्वितीयोऽग्निं वदचन ॥ ३४

सदा जनाना हृदये सैनिविष्टोऽपि य परे ।

अलक्ष्यो लक्षयन्विश्रमधितिष्ठति सर्वादा ॥ ३५ ॥

भगवान् विष्णु ने कहा—हे विधे ! ऐसा मन कहे महेश्वर मे परम भाव को आप जानते नहीं है । हे कमलासन ! हम दोनों से भी पर कोई देवेश्वर है—यह मैं आपको अन्यथा अर्थात् मिथ्या नहीं बोल रहा हूँ ॥२८॥ आप परमेष्ठी की माया से मोहित आत्मा वाले है अनएव आप उनके स्वरूप को नहीं जानते है किन्तु मेरे इन कथन मे बिल्कुल भी सन्देह नहीं है । विश्वात्मक रुद्रयार्थ हैं अर्थात् माया वाले है और माया शक्ति ही शाङ्करी है ॥२९॥ जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व समुत्पन्न हुआ है हे ब्रह्मा ! उन्ही से विष्णु—रुद्र और इन्द्र आदि महाभूत और सब इन्द्रियो से प्रथम ही सम्प्रसूत हुआ करते है ॥३०॥ वे सभी प्रकार से ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं और उनका स्वय सर्वेश्वर है । वे सभी मुमुक्षुओं के द्वारा ध्यान करने के योग्य हैं ऐसे वे आकाश के मध्य मे गमन करने वाले शम्भु देव हैं ॥३१॥ जिन्होंने अपने आपको पुत्र बनाया था और आपको वेदो का ज्ञान प्रदान किया था । यह प्रजापत्यके पद को भी उन्ही के प्रमाद से आपने प्राप्त किया है ॥३२॥ जो एक ही बहुत से जन्तुओं की मस्त्रियाओ का करने वाला है । जो एक ही है और बहुत प्रकार के बीज को किया करता है नही महेश्वर है ॥३३॥ इन जीवो से इन समस्त लोको का वह एक ही शासन करने वाला ईश है । वे ही एक भगवान् रुद्र हैं और दूसरा कोई भी नहीं है ॥३४॥ सर्वदा मनुष्यो हृदयो मे सन्निविष्ट भी है तथापि वह हमरे वे द्वारा अलक्ष्य रहा करते है और स्वय वे सम्पूर्ण विश्व को देखते हुए ही अघिष्ठित रहा करते है ॥३५॥

यस्तु कालात्मयुवनानि कारणान्यपि लीलया ।

अमन्तशक्तिरेकात्मा भगवानभित्तिष्ठति ॥३६॥

यस्य शभो परा शक्तिर्भविगम्या मनोहरा ।

निगुंणा रक्षगुणैरेव निगूडा निष्कला शिवा ॥३७॥

एष देवो महादेवो विज्ञेय. सर्वदा जनै ।
 न तस्य परम किञ्चित्पद समधिगम्यते ॥३८
 अयमादिरनाद्यन्तः स्वभावादेव निर्मल. ।
 अनन्तः परिपूर्णश्च स्वेच्छाधीनश्चराचरः ॥३९
 उत्तरोत्तरभूतानामुत्तरश्च निरुत्तरः ।
 अनन्तमहिमा भूमिरपरिच्छिन्नवैभवाः ॥४०
 अनेन वित्रकृत्येन प्रथम मृज्यते जगत् ।
 अन्तकाले पुनश्चेदमस्मिन्प्रलयमेप्यति ॥४१
 दृश्यश्च पतितैर्मूर्खैर्दुर्जनैरपि कुत्सितैः ।
 भक्तैरन्तर्वहिष्चापि पूज्य. सम्भाव्य एव च ॥४२

जो कालात्मक कारणों को भी, अपनी लीला ये अधिक न रहा करते हैं क्योंकि वे अनन्त शक्ति वाले और एकात्मा भगवान् हैं ॥३६॥ जिन भगवान् शम्भु भी शक्ति पर है । वह भाव गम्या एव परम मनोहरा है । शम्भु देव की वह शक्ति निगुणा है और अपने ही गुणों के द्वारा वह निगुणा है—किष्कला एव शिवा है ॥३७॥ यही देव महादेव है जो सर्वेदा जनों के द्वारा जानने के योग्य हैं । उनका जो कुछ परम पद है वह समधिगत नहीं किया जाया करता है ॥३८॥ यह आदि हैं और आदि अन्त से रहित हैं तथा स्वभाव से ही परम निर्मल हैं । वे भगवान् शम्भु अनन्त-परिपूर्ण-स्वेच्छा के अधीन रहने वाले तथा चराचर स्वरूप हैं ॥३९॥ उत्तरोत्तर भूतों का उत्तर एव निरुत्तर हैं । वे अनन्त महिमा की भूमि हैं तथा अपरिच्छिन्न वैभव वाले हैं ॥४०॥ विचित्र कृत्यों वाले इनके ही द्वारा यह जगत् सर्वप्रथम मृजित हुआ करता है और अन्त काल जब उपस्थित होता है तो उस समय में यह सम्पूर्ण जगत् इसी में प्रलय को प्राप्त हो जाया करता है ॥४१॥ जो पतित-मूर्ख-कुत्सित और दुर्जन हैं तथा मेरे भक्ति हैं उनके द्वारा वे दृश्य भी होते हैं—पूज्य एव सम्भाव्य हुआ करते हैं ॥४२॥

तदीय त्रिविध रूप स्थूल सूक्ष्म ततः परम् ।

अस्मदाद्यैः सुरैर्दृश्य स्थूल सूक्ष्म तु योगिमिः ॥४३

तत पर तु यन्नित्य ज्ञानमानन्दमव्ययम् ।
 तन्निष्ठस्तत्परैर्भक्तैर्हृदयते व्रतमास्थिते । ४४
 बहुनाऽत्र किमुक्तेन ब्रह्म-सर्वेश्वरे शिवे ।
 भक्तिरेव सदा कार्या यया युवतो विमुच्यते ॥४५
 प्रसादादेव सा भक्ति प्रसादो भक्तिर्भव ।
 यथेहाङ्कुरतो बीज बीजनो वा यथाऽङ्कुर ॥४६
 तस्य प्रसादलेशेन पशौ पाशपरिक्षय ।
 तस्मात्पशुपति शशु पशवस्त्वस्मदादय ॥४७
 सर्वेषां मुक्तिद शशुस्तेषां भावानुरूपत ।
 गर्भस्थो मुच्यते कश्चिज्जागमानस्तथा पर ॥४८
 वालो वा तरुणो वाऽथ वृद्धो वा मुच्यते पर ।
 त्रियग्योनिगत कश्चिन्मुच्यते नारकी पर ॥४९

उन भगवान् शम्भू क अनक रूप है । वे स्थूल भी हैं—सूक्ष्म भी हैं—और उससे भी पर रूप पाते हैं । अस्मादादि के द्वारा जा सुर हैं स्थूल रूप ही दृश्य है । जा सूक्ष्म उनका रूप है वह तो यागियों के द्वारा ही दखन के योग्य होता है ॥४३॥ उनसे भी पर जो नित्य ज्ञान और आनन्द एव अव्यय उनका रूप है वह तो उनम ही परायण एव शम्भु म दृढ निष्ठा रखने मात्र और व्रतों म समास्थित भक्ता के द्वारा ही दिखाई दिया करता है ॥४४॥ हे ब्रह्मन् ! महा पर बहूना अधिक बहूने से क्या लाभ है । सर्वेश्वर भगवान् शिव म ही सदा भक्ति करनी चाहिए जिसके द्वारा मुक्त मनुष्य इस भव चक्कन म विमुक्त हो जाया करता है ॥४५॥ यह भगवान् शम्भु की भक्ति उनका प्रसाद म ही हुआ करती है और उनका प्रसाद भक्ति से हुआ करता है जिस तरह से बीज म अंकुर हुआ करना है और उस अंकुर म फिर बीज उत्पन्न हुआ करता है ॥४६॥ उनके प्रसाद कला मात्र म ही पशु के पाशना परिक्षय हो जाता है । इसीम भगवान् शम्भु पशु पति कहे जाते है और अस्मादादि मय सब पशु है ॥४७॥ उनके भावा के अनुरूप भगवान् शम्भु

सबको मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। कोई तो गर्भ में स्थित रहने हुए ही मुक्त हो जाया करता है तथा कोई ज्वलमान होकर के मुक्त हो जाता है। चाहे गाल हो—तर्षण हो अथवा वृद्ध हो सभी मुक्त हो जाया करते हैं। कोई शम्भु के प्रसाद से तिर्यग्गोत्रि में रहने वाला भी मुक्त हो जाता है और जो नारकी होता है यह भक्ति के प्रभाव में मुक्ति प्राप्त कर लिया करता है ॥४८॥४९॥

अपरस्तूदरप्राप्तो मुच्यते श्वपदक्षयान् ।

कश्चिन्क्ष्णपदो भूत्वा पुनरावृत्यं मुच्यते ॥५१॥

कश्चिद्दुर्ध्वगतस्तस्मिन्स्थित्वा स्थित्वा विमुच्यते

तस्मान्नेकप्रकारेण नराणां मुक्तिरिच्छते ॥५१॥

ज्ञानभावानुरूपेण प्रसादेनैव निर्वृतिः ।

त्वमेका भगवन्मूर्तिरन्या नारायणी परा ॥५२॥

रौद्री तृतीया कथिता जगत्संहारकारिणी ।

एनासा प्रेरक शम्भु स्वे स्वे कार्ये चतुर्मुख ॥५३॥

निर्गुणोऽपि गुणाच्छक्तः स्वतन्त्रैश्वर्यविग्रहः ।

तमीश्वर महादेव न पश्यसि कथं विधे ॥५४॥

दिव्य ददामि ते चक्षुर्येन पश्यसि तं शिवम् ।

विष्णोर्भगवतो ब्रह्मा दिव्य चक्षुरवाप्य तु ॥५५॥

अपश्यत्स महादेव प्रत्यक्ष पुरतः स्थितम् ।

ब्रह्मा लब्ध्वा परं ज्ञानमेश्वरं निर्गुणं परम् ॥५६॥

दूसरा उदर में प्राप्त ही स्वपद के क्षय से मुक्त हो जाता है और कोई क्षीणपद होकर पुनः आवृत्ति करके अर्थात् जन्म ग्रहण करके मुक्त हो जाया करता है ॥५०॥ कोई ऊर्ध्वगत उसमें स्थित-स्थित रहता ही हुआ विमुक्त हो जाया करता है। इस कारण से नरो की जो मुक्ति होती है अनेक प्रकार से होती है तात्पर्य यह है कि मुक्ति के प्राप्त करने का एक ही नहीं अनेक मार्ग होते हैं ॥५१॥ ज्ञान के भाव के अनुरूप प्रसाद से ही निर्वृति होती है। भगवात् के मूर्ति भी अनेक है—

अन्यापरा नारायणी मूर्ति है—तीसरी रोद्री कही गयी है जो इस जगत् के सहार के करने वाली है । हे चतुर्मुख । इन सबको प्रेरणा देने वाले अपने अपने कार्य में भगवान् शम्भु ही हैं । ॥५२॥५३॥ वे स्वयं गुणों से रहित हैं तथापि गुणों के अध्यक्ष हैं और स्वतन्त्र ऐश्वर्य के विग्रह बाने हैं । हे विधे । उन ईश्वर महादेव को आप क्यों नहीं देखते हैं । ॥५४॥ अब मैं आपको दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ जिससे आप उन भगवान् शिवको देख लेंगे । भगवान् विष्णु से ब्रह्माजी ने दिव्य चक्षु की प्राप्ति करके उन्होंने फिर प्रत्यक्ष रूप में अपने ही समक्ष में स्थित महा देवजी का साक्षात् दर्शन प्राप्त किया था ब्रह्माजी ने परम ज्ञान का लाभ प्राप्त किया था और परम निर्गुण ऐश्वर्य को प्राप्त किया था ॥५५॥५६॥

तमेव शरण गत्वा सस्तूय विविधै स्तवै ।
 प्रीतो भूत्वा महादेवश्चतुर्भुजमथाब्रवीत् ॥५७
 स्तोत्रै बंधुविधैर्भक्त्या तापिनोऽह विधे त्वया ।
 मुक्तो भविष्यासि क्षिप्र मत्समश्च न सशय ॥५८
 मयैव सृष्ट सृष्टचर्यं त्वमेव च जनार्दन ।
 वर वदामि ते ब्रह्मन्वरयस्व यथेप्सितम् ॥५९
 एव शभोनिगदित श्रुत्वा चैव पितामह ।
 विष्णु निरीक्ष्य पुरत स्थितमाह महेश्वरम् ॥६०
 भगवन्देवदेश सर्वज्ञ गिरिजापते ।
 त्वामेव पुत्रमिच्छामि त्वया वा सदृश सुतम् । ६१
 त्वन्मायामोहित शभो न वेत्ति त्वा पर शिष्यम् ।
 नमामि तव पादाब्ज योगिना भवभेषजम् ॥६२
 श्रुत्वा विरञ्चैर्वचन देवदेव पिताकृष्क ।
 ब्रह्मणपत्रवीत्तुष ममालोकयाथ चाक्रमम् ॥६३

तय ता ब्रह्माजी उन्हीं की शरणागति में प्राप्त हो गये थे और फिर उन्होंने भी महादेवजी की अनेक स्तवों के द्वारा स्तुति की थी । इस पर

महादेवजी परम प्रसन्न हो गये और ब्रह्माजी से बोले—॥५७॥ ईश्वर ने कहा—हे विधे ! आपने बहुत से स्रोत्रो के द्वारा स्तुति करके और भक्ति की भावना मुझसे तोषित कर दिया है । अब आप शीघ्र ही विभुक्त हो जायें और मेरे ही समान भी हो जायेंगे—इसमें तनिक भी मशय नहीं है ॥५८॥ मैंने ही इस विरव की मृष्टि के लिए आपका मूजन किया है हे ब्रह्मन् ! मैं वरदान देता हूँ आपका जो भी अभीष्ट हो उसे और वरदान प्राप्त कर लीजिए ॥५९॥ पितामह ने इस प्रकार का कथन शम्भु भगवान का श्रवण करके और सामने विष्णु देखकर आगे स्थित महेश्वर से कहा है ॥६०॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवान् ! देवदेवेश ! आप गिरजा के स्वामी और सर्वज्ञ हैं । मैं तो अपना पुत्र चाहता हूँ अथवा आपके ही समान मेरे सुत होवे ॥६१॥ हे शम्भो ! मैं तो आपकी माया से मोहित हो रहा हूँ अतएव आप परात्पर शिव को भी नहीं जानता हूँ । मैं आपके चरण कमलों में नमस्कार करता हूँ जो आपका पादपद्म योगियों के सत्कार का भेषज है ॥६२॥ पितामहारी देवदेवमें विरञ्जि के कथन को श्रुतकर इसके अनभार चक्री को देखकर पुत्र ब्रह्मा जी से कहा—॥६३॥

प्रायित यत्त्वया ब्रह्म स्तस्करिष्यामि पुनक ।

अहमशेन भविता पुत्रस्तव पितामह ॥६४

ज्ञान महिषय क्षिप्र भविष्यति तवानघ ।

सृज त्व मत्प्रसादेन चराचरमिद जगत् ॥६५

एव योगीश्वर शार्ङ्गी ममैवाशो न सशय ।

साहाय्ये भविता ब्रह्मन्ममाऽऽदेशात्तवानघ ॥६६

एव दत्त्वा वर शम्भुर्ब्रह्मणे द्विजसत्तमा ।

अथाब्रवीद्ब्रह्मणोऽपि केश प्राञ्जलि पुरतः स्थितम् ॥६७

वर वरदा दास्यामि तव नारायणाव्यय ।

नाऽऽवाभ्या विद्यते भेदो मच्छक्तिस्त्व न सशय ॥६८

त्वन्मय मन्मय सर्वमव्यक्त पुरुषात्मकम् ।

ज्ञानज्ञेयात्मक विश्व त्वन्मय मन्मय हरे ॥६९

ज्ञाताऽह ज्ञानरूपस्त्व मन्नाऽह त्व मतिहरे ।
प्रकृतिस्त्व सुरश्रेष्ठ पुरुषोऽह न सशय ॥७०

हे पुत्र ब्रह्मन् ! आपने जो प्रार्थना की है उसे हे पुत्र ! मे करूँगा । हे पितामह ! मैं अपने अश से तुम्हारा पुत्र बनूँगा । हे अमथ ! मेरे विषय मे तुमको बहुत ही शीघ्र ज्ञान होगा । मेरे प्रमाद से अब आप इस चगचर जगत् का मृजन करो ॥६४॥६५॥ यह जो योगीश्वर शास्त्रु धारी है यह भी मेरा ही एक अश है—इसमे सशय नहीं है । हे ब्रह्मन् ! आप तो निरुपाय है । यह भी मेरे आदेश से आपकी मद्रायता म होगे ॥६६॥ इस तरह से शम्भु भगवान् ने हे द्विजोत्तमो ! ब्रह्माजी को वरदान देकर उसके पश्चात् अपने सामने म ही स्थित ऋषीवेश से शम्भु ने कहा—हे अद्यय नारायण ! आपभी वरदान माँग लीजिए । मैं आप को भी दूँगा । हम दोनों मे कोई भेद नहीं है । आप भी मेरी ही शक्ति है—इसमे सशय नहीं है । यह पुरुषात्मक अद्यय त्वन्मय और सब-मन्मथ ही है अर्थात् तुम्हारा और मेरा ही स्वरूप है । हे हरे ! यह विश्व ज्ञान के द्वारा ही जेमात्मक है जोनि त्वन्मय और मन्मय है मैं तो ज्ञाता हूँ और आप ज्ञान रूप हैं । ह हरे । मैं तो मन्ता हूँ और मति हैं । हे मुरश्रेष्ठ ! आप प्रकृति हैं और मे पुरुष हूँ—इसमे सशय नहीं है ॥६७॥६८॥६९॥७०॥

त्व चन्द्रमा अह सयः शर्वरी त्वमह दिनम् ।
त्वमेव माया विश्वम्य मायाऽह परमा विभो ॥७१
एव शभोर्वच श्रुत्वा वासुदेवो निरञ्जन ।
अश्र्वीत्परमात्मान महादेव द्विजोत्तमा ॥७२
निञ्चला त्रयि मे भक्तिर्भवंत्वव्यभिचारिणी ।
वरं विमयीर्भगवन्करोमि मुग्धपूजिन ॥७३
एवमस्त्वित्ययाऽऽभाऽत्र समालिङ्ग्य च शान्तिं नमः ।
पालयेन्ममाऽऽदेशादित्युवयाऽऽर्त्तितो हर- ॥७४

अभवद्ब्रह्मण पुत्रो यथा देवस्त्रिलोचन ।
तथा सर्वमशेषेण कथित मुनिपुंगवा ॥७१॥

आप च दू हैं तो मैं सूर्य हूँ । आप रात्रि हैं और मैं दिन हूँ । आपही इस विश्व की माया हैं और मैं परमा विभो माया हूँ ॥ ७१॥ निरञ्जत चामुद्रेय इन प्रकार के शम्भु के वचन का श्रवण कर रहे द्विजोत्तमो । परमात्मा महादेवजी से वे बोले—॥७२॥ भगवान् विष्णु ने कहा—हे भगवान् आपम मेरी व्यवभिचारिणी भक्ति होवे । हे सूर पूजित । इसके अतिरिक्त अन्य वरा को प्राप्त कर मैं करूँगा ॥७३॥ इसने अन्तर ऐसा ही होवे—यह इतना कहकर शार्ङ्गी भगवान् का उन्होंने आलङ्घन किया था और कहा था कि मेरे आदेश से इस समस्त विश्व का आप परिपाला करिए । इतना कहकर भगवान् हर वही पर अन्तर्धा न हो गये थे ॥७४॥ किस तरह स त्रिलोचन देव ब्रह्माजी के पुत्र हुए थे वह सब पूर्ण रूप से हे मुनि श्रेष्ठा । मैंने बर्णित कर दिया है ॥७५॥

॥ गौरी पृथक् शरीरत्वादि कथन ॥

कथं भगवती गौरी शकरार्धशरीरिणी ।
परब्रह्मात्मिका नित्या परमाऽऽकाशमध्यगा ॥१॥
सर्वशक्तिमयी शान्ता निर्गुणा निरुपद्रवा ।
आदिमध्यान्तरहिता सर्वोपाधिविजिता ॥२॥
स्वभाभिर्भावयन्तीद विश्वमेतत्सुरेश्वरी ।
नित्यानन्दा निरातङ्का निर्विभागा निरञ्जना ॥३॥
पृथक्शरीरमकरोत्कथं सा परमेश्वरी ।
वयं तच्छ्रोतुमिच्छाम स्मृतं वक्तुमिहार्हसि ॥४॥
विश्वेदेवरान्महादेवाद्धर लब्ध्वा पितामह ।
प्रजा ससर्जं भगवान्न व्यवर्धन्त ता प्रजा ॥५॥

दुःखितोऽभूत्तदा ब्रह्मा प्रजा दृष्ट्वा तु दुर्बला ।

नेनेऽकृताथमात्मानं प्रादुर्भूतस्ततो हर ॥६॥

ब्रह्माणमत्रवीच्छमुर्जातं त्वद्दुःखकारणम् ।

सर्वतः शर्मणे यत्र भाविष्यति तवानघ ॥७॥

ऋषियो ने कहा— भगवती गौरी शङ्कर भगवान की अर्ध शरीरिणी कैसे हुई थी ? वह तो परम ब्रह्मात्मिका नित्या और परमाकाश के मध्य में रहने वाली है । वह सर्वशक्ति मयी—शान्ता—निर्गुणा और निरूप द्रवा हैं । वह आदि मध्य और अन्त से रहिता हैं तथा सब प्रकार की उपाधियों से रहिता है ॥१॥२॥ वह सुरेश्वरी इस सम्पूर्ण विश्व को अपनी विभाओं से भासिक किया करती हैं । वह नित्य ही आनन्द स्वरूपिणी निरातङ्का निर्विभागा और निरञ्जना हैं ॥३॥ उस परमेश्वरी ने कैसे पृथक् शरीर को दिया था ? हम यही श्रवण करने की इच्छाएं रखते हैं । हे सूतजी यह बताने की परम सुयोग्य है ॥४॥ सूतजी ने कहा—पितामह ने विश्व के ईश्वर महादेव जी से वर प्राप्त करके भगवान् परमेश्वरी ने प्रजा का मृजन किया था किन्तु वजित नहीं हुई थी ॥५॥ उस समय में ब्रह्माजी बहुत ही दुःखित हुए थे जब कि उन्होंने अपनी रची हुई प्रजा को दुर्बल देखा था । तब उन्होंने अपने आपको असफल ही समझ लिया था । उसी समय में भगवान् हर प्रादुर्भूत हो गये थे ॥६॥ भगवान् शम्भु ने ब्रह्माजी से कहा था कि हमने तुम्हारे दुःख का कारण जान लिया है । हे अनघ ! सभी ओर से यहाँ पर आपके कल्याण के लिए होगा ॥७॥

क्रियता वै तथेत्युक्त्वा कर्तुं समुपचक्रमे ।

अर्धनारोश्वरो देव स्वयं विश्वेश्वर शिव ॥८॥

नारीभागान्महादेव ससजं पृथगीश्वरीम् ।

ब्रह्मात्मिका परा शक्तिं कोटिवालाकंभामुराम् ॥९॥

न तस्या त्रिदशे जन्म जातेति किल भाति या ।

परं भाय न जानन्ति यस्या ब्रह्मादय मुरा ॥१०॥

यस्यास्तु शक्तिभिर्वाच्या ब्रह्माण्डाना च कोटयः ।
 भतुरङ्गाद्विभक्तेव दृष्टा सास्य विराञ्चना ॥११
 अब्रवीत्प्राञ्जलिभूत्वा विश्वेश्वरी पितामह ॥१२
 त्वा नमामि शिवा शान्तीमीश्वराधंशरीरिणीम् ।
 अनाद्यनन्विभवा मूलप्रकृतिमीश्वरीम् ॥१३
 जन्ममृत्युजरातीता जन्ममृत्युजरापहाम् ।
 क्षेत्रज्ञशक्तिनिलया परमाकाशमध्यगाम् ॥१४

करो उस प्रकार से कहकर करना आरम्भ कर दिया था । विश्वेश्वर शिव देव स्वयं अर्ध नारीश्वर हो गये ॥८॥ नारी भाग से महादेव ने ईश्वरी का पृथक् सृजन किया था जो ब्रह्मात्मिका-करोड़ों बाल सूर्या के समान भामुरा पराशक्ति थी ॥९॥ उसका जन्म नहीं है जोकि अमृत्युज हई-एसी प्रणीत ही होती है । जिसके परम भाव को ब्रह्मा आदिक सुर भी नहीं जानते हैं ॥१०॥ जिसकी शक्तियों से करोड़ों ब्रह्माण्डों को कहना चाहिए विरज्जि ने भर्ता के श्रद्ध से विभक्ता होती हुई है । उसको देखा था ॥११॥ पितामह ने प्राञ्जति होकर विश्वेश्वरी से कहा था ॥१२॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—ईश्वर के अध शरीर वाली-शान्ता—गिवा आपको मैं नमस्कार करता हू । आप अनाद्यन्त विभव-वाली—मूल प्रकृति और ईश्वरी हैं । आप जन्म मृत्यु और जरा से परे हैं और प्राणियों के जन्म—मृत्यु और जरा का अपहरण करने वाली हैं । क्षेत्रज्ञ शक्ति की निलया है तथा आप परमाकाश के मध्य में गमन करने वाली अर्थात् स्थित रहने वाली हैं ॥१३॥१४॥

ब्रह्मेन्द्र विष्णुनमितानष्टमूर्त्येङ्गिनीमजाम् ।
 प्रधानपुरुषातीता सावित्री वेदभातरम् ॥ १५
 ऋग्यजु मामनिलयामृज्वी कुण्डलिनी पराम् ।
 विश्वेश्वरी विश्वमयी विश्वेश्वरपतिप्रताम् ॥ १६
 विश्वसंहारकरणी विश्वमायाप्रवर्तिनीम् ।
 गर्गम्यत्यन्तवरिणी व्यक्ताव्यक्तम्बन्धिनीम् ॥ १

पाहि माँ देवदेवेशि शरणागतवत्सले ।
 नान्या गतिर्महेशानि मम त्रैलोक्यवन्दिते ॥ १७
 त्वा माता मम कल्याणि पिता सर्वेश्वर शिव ।
 सृष्टोऽहं त्रिपुरघ्नेन सृष्ट्यर्थं शकरप्रिय ॥ १६
 विविधाश्च प्रजा सृष्टा न वृद्धिमुपयान्ति ता ।
 तत पर प्रजा सर्वा मय्युत्प्रभवा किल ॥ २०
 सवर्धयितुमिच्छामि कृत्वा सृष्टिमत परम् ।
 शक्तीना खलु सर्वासा त्वत्त सृष्टि प्रवर्तते ॥ २१

आप ब्रह्मा इन्द्र और विष्णु ने द्वारा वन्दिता है तथा अष्टमूर्ति भगवान् शिवकी अङ्गिनी और अजा हैं । आप प्रधान पुत्र्य स भी अतीत्य हैं और वेदों की माता आप सावित्री हैं १५। ऋग्वेद-यजुर्वेद और सामवेद इनका आप निलया हैं । आप अर्ज्वी पर कुण्डलिनी हैं । आप इम विश्वकी ईश्वरी है—विश्वमयी और विश्वेश्वर प्रभु की पत्नीप्रता हैं ऐसी आपने में प्रणाम करता हूँ । १६। आप विश्व का महार करने वाली हैं तथा विश्व की माया का प्रवर्तन करने वाली है । आप सर्ग और स्थिति एव अन्त के करने वाली हैं । तथा व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाली हैं । १६। हे शरणागता पर ध्यान करने वाली । हे देव देवेश्वरी । मेरी रक्षा करो । हे त्रैलोक्य द्वारा वन्दिते । हे महेशानि । मेरी अन्य कोई भी गति नहीं है । हे कल्याणि । आप मेरी माता हैं और मेरे पिता सर्वेश्वर शिव हैं । हे शङ्कर प्रिय । त्रिमुरारि ने मुझे गृष्टि करने के लिये ही गृष्टि किया है । मैंने अनक प्रकार की प्रजाप्रा या गृजन किया है किन्तु वे वृद्धि का प्राप्त नहीं होती है । इनके पदचान् सभी प्रजा मय्युत् स समुत्पन्ना हुई थी । १८। १९। २०।। इसमें आगे गृष्टि कराने का वर्णन करने की इच्छा करता हूँ । समस्त शक्तियाँ ही गृष्टि तो आप मे ही प्रवृत्त होती हैं । २१।

नैव गृष्ट त्वया पूर्वं शक्तीना मत्तुल्य निवे ।

मर्त्या देहिना देवि मयं शक्तिप्रदायिनी ॥ २२

त्वमेव नात्र सदेहस्तस्मात्त्व वरदा भव ।
 मम मृष्टिविवृद्धचर्यममेनैकेन आश्रते ॥ २३
 मम पुत्रस्य दक्षस्य पुत्री भव शुचिस्मिते ।
 मार्यिता वी तदा देवी ब्रह्मणा मुनिपु गवा ॥ २४
 एका शक्ति भ्रुवोर्मेव्यात्मसर्जाऽऽत्मसमप्रभाम् ।
 आह तां प्रहसन्प्रेक्ष्य देवी विश्वेश्वरो हर ॥ २५
 ब्रह्मणो वचनाहं वि कुह तस्य यथेप्सितम् ।
 आदाय शिरसा शभोराज्ञा सा नरमेश्वरी ॥ २६
 अमवदक्षदुहिता स्वेच्छया ब्रह्मरूपिणी ।
 पुनराद्या पया शक्ति शमोदेह ममाविशत् ॥ २७
 अर्धनारीश्वरो देवो विमानीति हि न श्रुति ।
 तत् प्रभृति विप्रेन्द्रा मैयुनप्रभवा प्रजा ॥ २८
 एव व र्यिता विद्या देव्या मभूतिस्तमः ।
 पठेद्य शृणुयाद्वापि सततस्नम्य वर्धते ॥ २९

ह निध । अपने पूर्व में शक्तिया के गुण का मृगन किया था ।
 ह दवि । गव दहचारिया को अत्य ही गति के प्रदान करने वाली है ।
 ॥२२॥ आपही हैं इसम कुछ भी सन्देह नहीं है । इसकारण म वरदान
 दन वाली होइय । एक शास्त्र अज्ञ म मरी मृष्टि क विषयन करने
 क निग हे शुचिस्मिते । मर पुत्र प्रभापति दक्ष की आज पुत्री होइय । ते
 मुनि गद्गवा । उम गमय म ब्रह्मर्षी क द्वारा देवी की प्रार्थना की
 गयी थी । २३।२४। उम देवी न अपने ही समान प्रभावशाली एक शक्ति
 का मृकुटिया क मध्य म मृष्ट किया था और उम देवी को दगार
 एवम हृण विश्वेश्वर हर बोले । ह दवि । ब्रह्मर्षी क वचन म उनका
 आ भी परप्लित हा उम पून कर दो । मगवान् गम्भु की आगा का
 गिर ने स्वीकार कर क यह परमेश्वर ब्रह्म शक्ति के अर्पण इच्छा म
 ही दान की पुत्री हा गर्द थी । गिर यह भयदा पून गति मन्वान् गम्भु
 क दह म गमावि न होई था । २५।२६।-७। यह दन अर्द्ध नारीश्वर

गोभित होत है—यह हमारी श्रुति है तभी से आरम्भ करके हे
 वप्रेन्द्र ! मैधुन के द्वारा उत्पन्न होने वाली प्रजा हुई थी ।२८। हे
 विप्रो ! इस प्रकार से आप सबके सामने मैंने देवी की उत्तमा सभूति का
 वर्णन कर दिया है । जो इसको पढ़े या सुनेगा उसकी सन्नाति की वृद्धि
 होगी ।२९।

॥ सुरासुर सृष्टयादि कथन ॥

स्वयभुवा समादिष्ट पूर्वं दक्ष प्रजापति ।
 प्रजा सृजेति सर्गादौ ससर्ज च सुरासुरान् ॥ १
 प्रजापतेर्वीरणस्य कन्याऽसिक्रीति विश्रुता ।
 पठि दक्षोऽसृजत्कन्या असिकन्या वं प्रजापति ॥ २
 ददौ च दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
 सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥ ३
 द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे वृशाश्वाय धीमते ।
 द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वद्ददौ दक्ष प्रजाति ॥ ४
 साध्या विश्वा च सकल्पा मुहूर्ता च ह्यरुन्धती ।
 भरुत्वती वसुभानुलम्बा जामीति ता दश ॥ ५
 धर्मस्य पत्न्यत्त्वंतास्तासा सततिरुच्यते ।
 साध्या वभूवु साध्याया विश्वाया विश्वदेवता ॥ ६
 सकल्पायास्तु सकल्पो मुहूर्तास्तु मुहूर्तजा ।
 अरुन्धत्यास्त्वरुन्धत्या नरत्त्वत्या भरुत्वत ॥ ७

श्री गूजजी ने कहा—स्वयम्भू भगवान् म सबसे पूर्व मे दक्ष प्रजा-
 पति को समादिष्ट किया था । सर्ग के आदि म यही आदेग दिया था
 कि प्रजा का गृजन करो और सुरा तथा अगुरो का गृजा किया था । ।
 जापति दीरण की एफ कन्या अतिन्वी थी और ह्गी नाम स वह

दिश्रुत थी । प्रजापति दक्ष ने असिन्वी मे पण्डि कन्याओं का मृजन किया था । दश तो धर्म के लिये दे दी थी और तेरह कश्यप के लिये दी थी । सत्ताईस मोम को दी थी और चार अरिष्ट नेमि को प्रदान की थी । २।३। दो बहु पुत्र को और दो घीमातृ कृशाश्व को प्रदान की थी । उसी भांति दक्ष प्रजापति ने दो अङ्गिरा मुनि को प्रदान की थी । ४। वे दश थे थी — साध्या-विश्वा-सकल्या-मुहूर्ता-अरन्वती-मरत्वती-बसु-भानु-लम्बा-जामी । ५। धर्म की ये दश पत्निया थी अब उनकी सन्नि वतलायी जाती हैं । साध्या मे साध्यगण समुत्पन्न हुए थे और विश्वा मे विद्व देवता उत्पन्न हुए थे । ६। सकल्या से सद्कृत्य उत्पन्न हुए और मुहूर्ता से सम्पन्न हुए थे । अरन्वती मे अरन्वत्य और मरत्वती मे मरु त्वत् हुये थे ॥७॥

वसोन्तु वसव प्रोक्ता भानोस्ते भानव स्मृता ।
 लम्बाया घोपनामानो नागवीथीस्तु जामिजा ॥ ८
 ज्योतिष्मन्तस्त्रयो देवा व्यापका सर्वतोदिशम् ।
 वसवस्ने ममास्त्राता सर्वाभूतहितैषिण ॥ ९
 आपो नलश्च मोमश्च ध्रुवश्चैवानिलोज्ज्वल ।
 प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता ॥ १०
 ध्रुवस्य पुत्र बाल स्यात्मर्लोकभयङ्कर ।
 विश्वरर्मा प्रभामस्य धर्मस्यैषा तु नरति ॥ ११
 अदितिश्च दिनिश्चैव दनुरित्यपरा मता ।
 अरिष्टा मुरसा प्रोक्ता स्वधा मुरभिरेव च ॥ १२
 विन्दता च तथा नाघ्रा वद्रू क्रोधवशा न्विरा ।
 मुनेश्च पत्नयस्त्वेता कश्यपस्य द्विजोत्तमा ॥ १३
 अंशुर्धाता भगम्बटा मित्रोऽय वरणोऽयंमा ।
 त्रिवश्वान्मविता पूषा अंशुमान्विष्णुग्रेव च । १४
 तुषिता नाम ते पूर्वा चाशुगम्यान्तरं मनो ।
 आदिग्या अदिने पुत्रा प्रांता शैवस्वनेऽन्तरे ॥ १५

वसु से वसुगण हुए तथा भानु से भानव उत्पन्न हुए बनलाये गये है। लम्बामे घोष नाम वाले तथा जामि से नागबीबी हुए। ८। तीनों देव ज्योतिष्मान् है और सब दिशाओ मे व्यापक है। जो वसुगण समाख्यात हुए हैं वे समस्त प्राणियो के हितैषी है। आप-बल-सोम-ध्रुव-अनिल-अनल-प्रत्यूष-प्रभास-ये ही आठ वसुगण कहे गये है। ९। १०। ध्रुव का पुत्र कान है जो सभी लोगो को भय करने वाला है। प्रभास का पुत्र विश्वकर्मा है—यही कर्म की सन्तियाँ है। ११। आदिति—दिति और अपरा दनु मानी गयी हैं। अरिष्ठा सुरसा-स्वधा-मुरभिविन्ता-ताभ्रा-वद्रू-क्रोधवशा-त्वरा कश्यप मुनि की ये हे द्विजोत्तमो। पत्निया थी। १२। १३। असु-धाता-भग-स्वप्ता-मित्र-वरुण-अर्यमा विवस्वान्-सविता-पूषा-अशुमान् और विष्णु हैं। तुषिता नाम वाले वे है जो पूर्व म चरक्षुप गनु के अन्नर मे थे। १४। आदित्य अदिति के पुत्र है जो वैवस्वमम्यन्तर म कहे गये हैं। १५।

पुनर्द्वय दिति सूते कश्यपान्मुनिपु गवात् ।

हिरण्यकशिपु त्वेक हिरण्याक्षमनन्तरम् ॥ १६

हिरण्यकशिपुर्योऽसौ ब्रह्मणो वरदपित ।

शक्राद्या देवता सर्वास्तिनेन दैत्येन वाधिता ॥ १७

ब्रह्माण शरण गत्वा प्रोचु प्राञ्जलय सुरा ।

देवदेव जगन्नाथ चतुर्मुख सुगोत्तम ॥ १८

हिरण्यनेन दैत्येन शस्त्राम्त्रै सूदिता वयम् ।

दाराश्चापहृतास्तेन वज्रादीन्यायुधानि च ॥ १९

शायम्वाग्मान्भयत्रस्ताऽशरण नान्यदस्ति न ।

एव मुरैर्निगदित श्रुत्या वैव पितामह ॥ २०

देवं मह ययो तूर्ण यत्राऽऽस्ते विष्णुरव्यय ।

सस्तूय विविधै स्तोत्रैरत्रवीत्वमलामन ॥ २१

दिति ने दो पुत्र प्रग्न किय थे जो कि मुनि पुत्रुत्र कश्यप से सम्पन्न हुए थे। एक तो हिरण्यकशिपु था। और दूसरा हिरण्याक्ष था।

११६) जो यह हिरण्याशिपु था वह ब्रह्माजी के वरदान से हर्षित हो गया था । स्रक आदि देवता उस दैत्य ने बाधित कर दिये थे । १७) सब सुरगण हाथ जोड़कर ब्रह्माजी की शरणागति में पहुँचकर बोले— देवों ने कहा—हे देवों के देव ! आप तो जगत् के नाथ हैं । हे चतुर्मुख ! आप सब सुरों में श्रेष्ठ हैं । १८) हिरण्यकशिपु दैत्यने स्रक असजो द्वारा हम सबको मूर्खित कर दिया है । उसने हमारी स्त्रियों का हरण कर लिया है और वज्र आदि सब आयुध भी छीन लिये हैं । १९) इस भय से परम तस्त हैं हमारी आप रक्षा कीजिए । हमारा आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी रक्षा करने वाला नहीं है । इस प्रकार से सुरों के द्वारा कथित को श्रवण कर पितामह उन समस्त देवगणों के साथ शीघ्र ही वहाँ पर गये जहाँ पर अव्यय भगवान् विष्णु विराजमान थे । अनेक स्त्रियाँ के द्वारा सस्त्रयन करके कमलासन ने कहा— । २०। २१।

हिरण्यकशिपुर्देव मद्वरेणातिर्गवित ।

बाधते सकलान्देवान्मुनीन्निधूँतकल्मषान् ॥ २२

यस्त हनिष्यति क्षिप्रं न त पश्यामि माधव ।

त्वमेव हन्ता तस्येति मत्वा वयमुभागता ॥ २३

हन्तुमर्हसि त शीघ्रं देवानां कार्यसिद्धये ।

श्रुत्वा नारायणो वाक्यमीरित त्रिदिवीवसाम् ॥ २४

नरस्यार्धतनु वृत्वा मिहस्यार्धतनुं तथा ।

नृसिंहरूपी भगवान्हिरण्यकशिपो पुरे ॥ २५

आविर्भाभूव भगवान्देवो नारायण प्रभु ।

मुखन्नाद महाघोरनमुराणां भयङ्करम् ॥ २६

हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा नृसिंहमतिभीषणम् ।

वधाय प्रेपयाभास प्रह्लादादीन्महामुरान् ॥ २७

प्रह्लादश्चानुह्लादश्च मह्लादो ह्लाद एव च ।

हिरण्यकशिपो पुत्राश्चत्वार प्रथितोजग ॥ २८

श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे देव ! हिरण्यकशिपु मेरे द्वारा वरदान

प्राप्त कर अत्यन्त गर्वित हो गया है वह समस्त देवों को बाधा देता है और जो निर्घूँतकल्मष मुनिगण हैं उनको भी सताता है । २२। हे माधव जो कोई उसको शीघ्र ही मार देगा ऐसा अन्य कोई भी मैं नहीं देख रहा हूँ । केवल आप ही उसके दमन करने वाले हैं—यही समझकर हम सब आपकी समाधि में उपस्थित हुए हैं । २३। देवों के कार्य की सिद्धि के लिये आप उसका शीघ्र ही दमन करने में समर्थ होते हैं । देवों की कथित उस रात का श्रवण करके भगवान् नारायण ने आधा शरीर नर का तथा आधा सिंह का शरीर धारण किया और नरसिंह रूपी भगवान् हिरण्यकशिपु के नगर में आविर्भूति हो गये थे । वे साक्षात् भगवान् देव नारायण प्रभु ही थे । उन्होंने महान् घोर नाद किया था जो सभी असुरों को अत्यन्त भयकर प्रतीत हो रहा था । हिरण्यकशिपु ने अत्यन्त भीषण भगवान् नृसिंह को देखा था । हिरण्यकशिपु के चार पुत्र थे जिनके नाम प्रह्लाद-अनुह्लाद-सह्लाद और ह्लाद थे । ये सभी प्रथित भोज वाले थे । २४।

नरसिंहेन ते सार्धं युयुधुर्दानवास्तदा ।

प्रह्लाद प्राहिणोह्लाह्यमन्त्र त नरवेसरिम् ॥२६

वैष्णवाश्रमनुह्लाद कौमार च तथाऽनर ।

प्राहिणोद्घ्राद आग्नेय तथा चान्ये महासुरा ॥३०

चत्वार्यंश्राणि सन्नाप्य भगवन्त नृकेसरिम् ।

वभूवस्तानि भग्नानि यथा वञ्चाहता द्रुमा ॥३१

गृहीत्या चतुरः पुत्रान्हस्ताभ्यां नरकेसरि ।

चिक्षेप गगनाद्भ्रूमौ गृहीत्वैव पुन पुन ॥३२

एव तान्प्रथितान्हृष्टा हिरण्यकशिपु स्वयम् ।

जाज्वल्यमान कोपेन ययौ यत्र नृकेसरि ॥३३

विनिवृत्तोऽथ सङ्ग्रामात्प्रह्लादो देत्यराट् तत ।

शात्वा तु भगवद्भ्राय नृसिंहस्यामिनोऽत्रम ।

ध्यात्वा नारायण देव वारयामास दानवान् ॥३४

एष नारायणो योगी परमात्मा सनातनः ।

ध्यातव्यो न तु योद्धव्यो भवद्भिरिति निश्चितम् ॥३५

पुनोदितमनाहत्य हिरण्यकशिपुः पुनः ।

युयुधे हरिणा सार्धं यावद्वर्षशतत्रयम् ॥३६

अथ विश्वारमको विष्णुः क्रोधसंरक्तलोचनः ।

नखैर्विदारयामास हिरण्यकशिपु तदा ॥३७

उस समय में भगवान् नरसिंह के साथ उन दानवों ने युद्ध किया था । प्रह्लाद ने उन नरकेशरी प्रभु पर ब्रह्म अस्त्र का प्रहार किया था ॥२६॥ अनुह्लाद ने वैष्णवास्त्र का प्रक्षेप किया था तथा दूसरे ने कौमार अस्त्र चनाया था । ह्लाद ने आग्नेय अस्त्र चलाया था और अन्य असुरों ने जो बड़े महान् ये दूसरे २ अस्त्रों से प्रहार किया था ॥३०॥ ये चारों अस्त्र भगवान् नरसिंह जी के पास पहुँच कर सब के सब भग्न हो गये थे जैसे वज्र से द्रुमहत हो जाया करते हैं ॥३१॥ नरकेशरी ने उन चारों पुत्रों को हाथों से पकड़ लिया था और उनको ले लेकर वारम्बार आकाश से भूमि में गिरा दिया था । इस प्रकार से उन अपने पुत्रों को व्यथित देखकर हिरण्यकशिपु स्वयं क्रोध से जाज्वल्यमान होकर वहाँ पर पहुँच गया था जहाँ पर भगवान् नृसिंह देव विराजमान थे । ॥३२-३३॥ फिर दैत्यराट् प्रह्लाद सप्राम से विनिवृज हो गया था क्यों कि उसने अपरिमित ओज वाले भगवान् नृसिंह जी का भगवद्भाव जीत लिया था । नारायणदेव का ध्यान करके उसने दानवों को निवारित किया था । ३४॥ उसने सब दानवों से कहा था कि यह परमात्मा-सनातन योगी नारायण हैं । इनका ध्यान करना चाहिये और इनसे आपको युद्ध नहीं करना चाहिए यह निश्चित बात है । ३५॥ इस पुत्र के कथन का निरादर करके हिरण्यकशिपु ने पुनः हरिभगवान् के साथ तीन सौ वर्ष तक घोर युद्ध किया था । ३६॥ इसके अनन्तर निश्चारमक भगवान् विष्णु ने क्रोध से खान नेत्र बनाकर उसी समय में अपने परम तीक्ष्ण नखाँ से हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को खिटीका कर दिया था ॥३७॥

॥ हिरण्याक्ष बधादिक कथन ॥

हते हिरण्यकशिपो प्रह्लादो दैत्यसत्तमः ।

हिरण्याक्षं महाबाहु राज्ये समभियोजयत् (?) ॥१॥

सोऽपि देवान् रणे जित्वा स्वर्गात्ते वै पलायिता ।

हिरण्याक्षे महादेव तपसाऽऽराध्य चान्तकम् ॥२॥

लेभे पुत्र महाबाहु सर्वाभरनिपूदनम् ।

हिरण्याक्षभयाद्देवा शार्ङ्गिण शरण गताः ॥३॥

दृष्ट्वाऽथ भगवान्देवान्हिरण्याक्षवधाय वै ।

वाराह रूपमास्थाय हिरण्याक्षो निपूदितः ॥४॥

हते तस्मिन्हिरण्याक्षे प्रह्लादो वैष्णवाग्रणी ।

त्यक्त्वा तु तामसी वृत्तिं स्वकीयं राज्यमास्थित ॥५॥

तत कदाचिद्देवाना मायया मोहितोऽभवत् ।

कचन ब्राह्मण दृष्ट्वा कृशाङ्ग गृहभागनम् ॥६॥

अवज्ञामकरोद्दैत्य शप्तस्तेनाग्रजन्मना ।

बल यस्य समार्थत्य दैत्य मामवमन्यसे ॥७॥

श्री मूतजी ने कहा—हिरण्यकशिपु के निहत् हो जाने पर दैत्यो मे श्रेष्ठ प्रह्लाद राज्य पर महाबाहु हिरण्याक्ष को समभियोजित किया था ॥१॥ उसने भी देवो को रण मे जीतकर उनको स्वर्ग से भगा दिया था । हिरण्याक्ष ने अन्तक महादेवजी को तपस्या के द्वारा आराधना कर के सब दशो को मार देने वाले महाबाहु पुत्र को प्राप्त किया था । हिरण्याक्ष के भय से गमस्त दशगण भगवान् शार्ङ्गी के शरण मे प्राप्त हुए थे ॥२-३॥ भगवान् ने हिरण्याक्ष के वध के लिये मगागत दशो को देमकर वाराह का स्वरूप धारण करके उन हिरण्याक्ष को भगवान् ने मार दिया था ॥४॥ उन हिरण्याक्ष के मारे जाने पर वैष्णवो मे अग्रणी प्रह्लाद ने तामसी वृत्ति का त्याग कर दिया था और अपने राज्यासन पर समस्थित हो गया था ॥५॥ इनके पदवान् विगी समय ने देवों को माया से यह मोहित हो गया था । तभी शून अङ्ग वाले घर मे आवे

हुए ब्राह्मण को देखकर दैत्य ने उसकी अवज्ञा कर दी थी । फिर उस ब्राह्मण ने उसका शाप दे दिया था—हूँ दैत्य ! जिसके बल का समाश्रय करके तू मेरा अपमान कर रहा है ॥६-७॥

भक्तिर्विनश्यतु क्षिप्रं तव देवे जनार्दनने ।

इति ऋचा ययौ विप्रं स्वाश्रमं मुनिपुङ्गवा ॥८॥

अथ दैत्यपतियुंद्धमकरोद्विष्णुना सह ।

पितुर्वधमनुस्मृत्य देवाश्चान्ये विनिजिता ॥९॥

अनुग्रहाद्भगवतः पूर्वस्माद्दैत्यराट् पुनः ।

त्यक्त्वा मायामयं सर्वं शार्ङ्गं शरणं ययौ ॥१०॥

अभिषिच्यान्धकं राज्ये योगवृत्तोऽभवत्स्वयम् ।

अथ देवो महादेवः शरण्यं सर्वदेहिनाम् ॥११॥

केनापि हेतुना भिक्षामकरोद्ब्राह्मणं सह ।

सस्थाप्य मन्दिरे देवीं गिरिजां गिरिजापति ॥१२॥

सनारायणकान्देवानकरोत्याश्रमं गाञ्जिवं ।

स्त्रीरुन्धारिणीं देवाः सेवन्ते पार्वतीं तदा ॥१३॥

सस्थाप्य नन्दिप्रमुखानसख्यातान्गणेश्वरान् ।

भैरवश्च समादिश्य नन्दिनं द्वारदेशतः ॥१४॥

उन देव जनार्दन मे तेरी भक्ति बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जायगी— इस प्रकार से शाप देकर वह विप्र है मुनि पुङ्गवो ! अपने आश्रम में चला गया था ॥८॥ इसके अनन्तर दैत्यपति ने भगवान् विष्णु के ही शाप मुद्र किया था । उसने अपने पिता के वध का अनुसरण किया था और सब देवों को भी विनिजित कर दिया था ॥९॥ भगवान् के पहिले अनुग्रह से पुनः दैत्यराट् ने सब मायामय का त्याग कर दिया था और वह भगवान् शार्ङ्गों को शरण में चला गया था ॥१०॥ राज्यासन पर अधक का अभिषेक करने स्वयं योग में युक्त हो गया था । इसके अनन्तर देव महादेव सभी देहधारियों के शरण्य हैं ॥११॥ किसी हेतु उहोंने ब्राह्मणों के साथ भिक्षाटन किया था और गिरिजापति ने देवी

गिरिजा को एक मन्दिर में स्थापित कर दिया था ॥१२॥ शिव ने नारायण के सहित सब देवों को पार्श्ववर्ती कर दिया था । सब देवगण सती का रूप धारण करने वाले होकर सदा पार्वती की सेवा करते थे । १३॥ वहाँ पर नन्दी प्रमुख असुरगणों को और गणेश्वरों को स्थापित करा दिया था और भैरव को भी आदेश दे दिया था तथा द्वादश पर नन्दी को नियुक्त कर दिया था ॥१४॥

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्नो मन्दर चान्धकामुरः ।
 आहूतुं कामः शर्वाणी त दृष्ट्वा कालभैरवः । १५॥
 ताडयामास शूलेन पपात भुवि मूर्च्छितः ।
 पुनरुत्थाय वेगेन गदामादाय दैत्यराट् । १६॥
 भैरव ताडयामास तथा चान्यान्गणेश्वरान् ।
 दृष्ट्वा तदद्भुत युद्धं विष्णुर्दानवमर्दनः । १७॥
 अमृजच्चक्रत्यो दिव्यास्ताभिर्दैत्यैः पराजितः ।
 ततो वधाय भगवान् रुद्रो मन्दरपर्वतम् । १८॥
 प्राप्नो यत्र स्थिता देवी देवैः सह गणेश्वरैः ।
 दृष्ट्वा विश्वेश्वर देवी शीघ्रं परमया मुद्रा । १९॥
 ननाम शिरसा भक्त्या भर्तुं श्वरणपङ्कजम् ।
 प्रणम्य दण्डवद्विष्णु यद्वृत्तं तन्न्यवेदयत् । २०॥
 श्रुत्वा तद्विस्मितो भूत्वा देव्या सह वरासने ।
 उपविष्टस्तदा सर्वे देवाः प्राञ्जलय तास्थितः । २१॥

इसी बीच में वह अन्धकार गुरु मन्दरगिरि पर प्राप्त हो गया था । वह शर्वाणी का आहरण करना चाहता था । उसको काल भैरव ने देख लिया था । ॥१५॥ भैरव ने शूल से ताड़ित किया था और वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर गया था । फिर वह दैत्यराट् वड़े वेग से उठकर गदा लेकर आक्रमण करने के लिये आया था ॥१६॥ उसने गदा से भैरव पर तथा अन्य गणेश्वरों पर प्रहार किया था । उस अद्भुत युद्ध को देखकर दानवों के मर्दन करने वाले विष्णु ने दिव्य शक्तियों का

करिए जिससे यह दैत्य मर जावे इस प्रकार के श्रीहरि को वचन का श्रवण करके भगवान् क्षण्ण ने काल भैरव को उस बलवान् दैत्य के वध के लिये भेजा था । इसके पश्चात् वह काल भैरव प्रभु शम्भु शिव की आज्ञा का परिपालन करके सहसा सूत्र को ग्रहण करके दैत्य के युद्ध में पहुँच गये थे । सूत्र के अग्रभाग से उसका निर्मोदन करके अपनी आत्म-लीला से वे नृत्य करने लगे थे । सूत्र के अग्रभाग में उस दैत्य के स्थापित करने पर ब्रह्माद्य मुनिगण ने उस समय में अनेक स्तोत्रों के द्वारा स्तवन किया था और उस समय में सब लोक परम प्रसन्न हो गये थे । ॥२२॥
मे ॥२३॥

नमामि मूर्ध्ना भगवन्तमेक समाहिता य विदुरीशतत्त्वम् ।
पुरातनं पुण्यमनन्तरूप काल कवि योगवियोगहेतुम् ॥२८॥
दंष्ट्राकराल दिवि नृत्यमान हुताशवक्त्रं ज्वलनार्करूपम् ।
सहस्रपादाक्षिशिरोभियुक्त भवन्तमेक प्रणमामि रुद्रम् २९॥
जयादिदेवामरपूजिताङ्घ्रि विभागहीनामलनत्त्वरूपम् ।
त्वमग्निरेको बहुधा विभज्यसे वाद्यादिभेदैरखिलात्मरूप ॥३०॥
त्वामेकमाहु पुरुष पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
त्व पश्यमीद परिपास्यजसं त्वमन्तको योगिगणाभिजुष्टः ॥३१॥
एकान्तरात्मा बहुधा निर्विष्टो देहेषु देहादिविशेषहीनः ।
त्वमात्मतत्त्व परमार्थशब्द भवन्तमाहु. शिवमेव केचित् ॥३२॥
त्वमक्षर ब्रह्म परं पवित्रमानन्दरूप प्रणवाभिधानम् ।
त्वमीश्वरो वेदविदेषु सिद्धः स्वायम्भुवोऽशेषविशेषहीनः ॥३३॥
त्वमिन्द्ररूपो वरुणोऽग्निरूपो हसः प्राणो मृत्युरन्नाधियज्ञः ।
प्रज.पतिर्भगवानेकरूपो नीलग्रीवस्तूयसे वेदविद्भिः ॥३४॥
नारायणस्त्व जगतामनादिः श्रितामहस्त्व प्रपिताममश्च ।
वेदान्तगुह्योपनिषत्सु गीतः स शशिवस्त्व परमेश्वरोऽसि ॥३५॥

अधिक ने कहा—मैं एक भगवान् को नमस्कार करता हूँ जिनको परम समाधि में होकर लोग ईश तत्त्व को जान पाते हैं । आप परम पुरा-

तन-पुण्य-स्वरूप-अनन्त रूप वाले-काल-रवि और योग तथा वियोग के हेतु है ॥२८॥ देहा से कराल-दिवलोक में नृत्य करते हुए—अग्नि को मुख में धारण करने वाले—ज्वलन (अग्नि के स्वरूप वाले—सहस्रशिर-आक्षि पादो से युक्त आप एक म्द्र भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२९॥ हे जय आदि देव और असुरों के द्वारा पूजित चरण वाले ! आप विभाग में हीन अमल तत्व रूप वाले हैं । आपको एक ही पुराण पुण्य—आदित्य के समान वर्ण वाले और तम से परे कहते हैं । आप इमको निरन्तर देगा करते हैं और परिपालन किया करते हैं । आप ही अन्तव हैं और योगी गणों के द्वारा सेवित है ॥३०॥३१॥ आप एक ही अन्तरात्मा है और बहुत से रूपों में विनिविष्ट हैं । देहों में रहते हुये भी आप देहादि विशेषता में रहित हैं आप ही आत्म तत्व है—आप पर-मार्थ शब्द हैं । बुद्ध लोग आपको ही दिव ही कहा करते हैं ॥३२॥ आप अधर परम ब्रह्म है—आप परम पवित्र और आनन्द स्वरूप है तथा प्रणव के नाम वाले हैं । आप ईश्वर हैं जो वेदों के वेत्ता हैं उनमें आप मिष्ट हैं । आप स्वाध्भुय और समस्त विशेषताओं से हीन हैं ॥३३॥ आप इन्द्र रूप हैं—वरुण-अग्नि भी आपके ही रूप हैं । आप इन्द्र-प्राण-मृत्यु और अन्मापिपत्त हैं । आप प्रजापति भगवान् अनेक रूपों वाले हैं आप नीनी घीवा वाले हैं तथा वेदों के ज्ञाता के द्वारा आपका मन्वन किया जाया करता है ॥३४॥ जपनों से अनादि आप ही नारायण हैं । आप ही पिता मह और प्रतितामह हैं । आरुको वेदान्त और गोपनीय उपनिषदों में गाया रथ है । आप सदा दिव और परमेश्वर हैं ॥३५॥

नमः परस्ताप्तमम परस्मै परात्मने पञ्चपरान्तराय ।

त्रिमूर्त्यतीताय निरञ्जन य सहस्रनाम्यामनसोन्मिषनाय ॥३६॥

त्रिमूर्तदेऽनन्तरात्ममूर्तये जगन्निव.गाय जगन्ममाय ।

नमो ललाटागितलोचनाय नमो जनानां हृदि गन्धिताय ॥३७॥

कणीन्द्रहाराय नमःऽतु गुह्यं दुर्नीन्द्रमिन्द्राचिन्वादिपद्य ।

ऐश्वर्यमर्मात्मनस्यिताय नम परान्ताप भयोऽयम् ॥

सहस्रचन्द्रार्कसमूहमूर्तये नमोऽग्निचन्द्रार्कत्रिलोचनाय ।
 नमोऽस्तुते सोमायनमध्याय नमोऽस्तु देवाय हिरण्यवाहवे ॥३६॥
 नमोऽतिगुह्याय गुहान्नराय वेदान्तविज्ञानविनिश्चिताय ।
 त्रिकालहीनामलघामघाम्ने नमो महेशाय नमः शिवाय ॥५०॥
 स्तघेनानेन भगवान्प्रीतो भूत्वाऽथ भैरवः ।
 अवरोह्य च शूलाग्नादुवाच परमेश्वरः ॥४१॥
 त्वयाऽहं स्तोत्रवर्षेण तोषितो दैत्यपुङ्गव् ।
 प्रीतोऽस्मि तव दास्यामि गाणपत्यं हि दुर्लभम् ॥४२॥

समसे भी पर—परम स्वरूप वाले—परमात्मा पञ्चपरान्तराय—
 त्रिमूर्ति में भी अतीत—निरञ्जन और सहस्र शक्तियों से आमन पर
 संस्थित आपके लिये मेरा नमस्कार है ॥३६॥ त्रिमूर्ति—अनन्त परात्म-
 मूर्ति—जगत् के निवास—जगन्मय—ललाट में अर्पित नेत्र वाले के लिये
 नमस्कार है और जनों के हृदय में संस्थित के लिये नमस्कार है ॥३७॥
 सगराजों के हार पहिने वाले आपके लिये प्रणाम है । आपके चरण
 कमलों को मुनीन्द्र और सिद्ध समर्पित किया करते हैं ऐश्वर्य और धर्म के
 आसन पर समवस्थित आपके लिये नमस्कार है और परान्त एवं मन के
 उत्पन्न करने वाले आपकी नमस्कार है ॥३८॥ एक सहस्र चन्द्र और
 सूर्य के समूह के समान दीदीप्यमान मूर्ति वाले और अग्नि तथा चन्द्र
 एवं सूर्य के नेत्रों वाले आपकी सेवामें नमस्कार है । सोमायन मध्यम के
 लिये नमस्कार है । देव हिरण्य वाहु के लिये प्रणाम है ॥३९॥ अत्यन्त
 गुह्य—गुहान्नराय और वेदान्त के विज्ञान के द्वारा निश्चित होने
 वाले के लिए नमस्कार है । तीनों धानों में हीन एक अमल घाम के तैल
 धान के लिये प्रणाम है । महेश के लिये एवं शिव के लिये नमस्कार है
 ॥५०॥ इस प्रकार की सन्तुति से भगवाद् भैरव प्रसन्न होकर उन्होंने
 धूम के अग्रभाग में भींचे उस दैत्यको उतार कर परमेश्वर ने कहा—हे
 दैत्यो मे श्रेष्ठ ! आपके इस स्तोत्र में परम श्रेष्ठ के द्वारा तुमने मुझको

अनन्तर भैरव ने उनका दर्शन करके बड़े ही आनन्द से उसका परिष्वजन किया था । ४८। फिर उन भैरव और शार्ङ्गी की एक ही मूर्ति हो गई थी जो कालाग्नि भैरव है वे ही स्वयं नृहरि है । ४९।

भगवान् नृहरियोऽसौ स एव किल भैरवः ।

नृहरे पूजनान्नून प्रीतो भवति भैरवः ॥ ५०

पूजनाद्भैरवस्यैव नृहरिः पूजितो भवेत् ।

ये पश्यन्ति तयोर्भेदं मायया मोहिता जनाः ॥ ५१

निरये ते विपच्यन्ते मावदाभूतसम्भवम् ॥ ५२

तस्मात्पूज्या सदा मूर्ती रुद्रनारायणात्मिका ।

प्रीता भूत्वा भगवती भवत्यज्ञानहारिणी ॥ ५३

एव सक्षेपतः प्रोक्तो मयाऽन्धकवधो द्विजाः ।

प्रादुर्भावो भैरवस्य तस्य चैव पराक्रमः ॥ ५४

इमं यः पठतेऽध्यायं महादेवस्य सनिधौ ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवस्यानुचरो भवेत् ॥ ५५

जो भगवान् नृहरि हैं वह ही काल भैरव हैं । नृहरि भगवान् के अम्बर्धन करने से भगवान् भैरव भी निश्चय ही प्रगल्भ हो जाया करते हैं क्योंकि दोनों में कोई भेद ही नहीं है । ५०। भैरव के पूजन में भी भगवान् नृहरि पूजित हो जाया करते हैं । जो लोग उन दोनों में कोई भेद देखा करते हैं वे माया से मोहित ही मनुष्य हुआ करते हैं । ५१। वे मनुष्य नरक में यातनाओं का विषाग भोगा करते हैं जब तक भूत सृष्ट होता है नरक में ही पड़े रहा करते हैं । ५२। इस कारण से सर्वदा रुद्र नारायणात्मिका मूर्ति का पूजन करना चाहिए । भगवती परम प्रगल्भ होकर अज्ञान के हरण करने वाली हो जाती है । ५३। हे द्विजो ! इस प्रकार से मैंने यह अन्धक का वध परम सज्जद में ही बना दिया है । भैरव का प्रादुर्भाव होना उन्नी का पराक्रम है अर्थात् उन देव के पराक्रम के कारण ही भगवान् भैरव का प्रादुर्भाव हुआ था अन्यथा नहीं होता । इस अध्याय को जो भगवान् महादेवजी की

सन्निधि मे बैठकर जा पढा करता है वह सभी पापा मे निनिमुक्त होकर अन्त मे भगवान् शिव का ही अनुचर हो जाया करता है । १५।



॥ प्रह्लाद राज्यारोहण तथा दृक्ष्वाकु वंश कथन ॥

हिरण्यकशिपो पुत्र प्रह्लादो दैत्यसत्तम ।
 अन्धके निहते दैत्ये तत्र राज्ये स्थित स्वयम् ॥ १
 कृत्वा म सुचिर काल राज्य परमधार्मिक ।
 राज्य विरक्तो मतिमाञ्क्षमादिगुणसद्युत ॥ २
 राज्ये मतिमता श्र छो ह्यभिपिच्य विरोचनम् ।
 तपोवन गत सोऽय वासुदेवपरायण ॥ ३
 विरोचनश्च निहतो देवदेवेन चक्रिणा ।
 बलिस्तस्याभवत्पुत्रो दैत्यो धर्मपरायण ॥ ४
 बद्ध्वा नीत स पाताल देवदेवेन चक्रिणा ।
 वाणासुरस्तस्य सुतो भक्तो विश्वेश्वरे शिवे । ५
 दत्ता भगवता तस्मै गाणपत्भमनुत्तमम् ।
 तारश्च शम्बरश्चैव कपिल शङ्करस्तथा ॥ ६
 स्वर्भानुर्वृषपर्वा च वाणस्यैते सुता द्विजा ।
 वश्यपात्सुरसा जज्ञे खेचरान्गृनिपु गवा ॥ ७

श्री सूतजी ने कहा — हिरण्यकशिपु का पुत्र दैत्य श्रेष्ठ प्रह्लाद अन्धक दैत्य के निहत हो जाने पर वहाँ राज्यासन पर स्वय ही स्थित हो गया । १। उस परम धार्मिक ने बहुत समय तक राज्य का शासन धरके वह मतिमान् राजशासन करने से विरक्त हो गया था और शम आदि गुणा से युक्त बन गया था । २. फिर उस राज्यासन पर मतिमानो मे परम श्रेष्ठ प्रह्लाद ने विरोचन को अभिशिक्त कर दिया था और वह स्वय भगवान् वासुदेव की भक्ति म परायण होकर तपोवन में बना

गया था । ३। देवों के देव भगवान् ने विरोचन को निहित कर दिया था । उसका पुत्र बलि धर्मपरायण दैत्य हुआ था । देवदेव भगवान् चक्रधारी न उसको भी बाँधकर पातान मे पहुँचा दिया था । उसका पुत्र वाणामुर हुआ था जो भगवान् विश्वेश्वर शिव का परम भक्त था । भगवान् ने परमोराम, गणपत्य यह प्रदान कर दिया था । हे द्विजो ! वाणामुर के तार शम्बर-कपिल शङ्कर स्वर्भानु वृषपर्वो ये इतने पुत्र हुए थे । हे मुनि पृङ्गवो ! सुरसा न कश्यप मुनि से खेचरो का जन्म दिया था । ४। ५। ६। ७।

अनन्ताद्या काद्रवेया बलिनो बलवत्तरा ।
 गन्धर्वाञ्जनयामास तथाऽरिष्टा तु कश्यपात् ॥ ८
 विनता जनयामास विरयाती गरुडारुणौ ।
 पश्चादीन्स्थावरान्ताञ्च तथाऽन्यान्सुपुबुद्धिजा ॥ ९
 स्थावराश्वङ्गमाश्र्वैव समुत्पाद्याथ कश्यप ।
 पुन सतानवृद्धचर्यं तताप परम तप ॥ १०
 तपःप्रभावात्सभूतो वत्सरश्चासित सुतो ।
 नैध्रुवो वत्सराज्जातो रैभ्यश्चै व महामति ॥ ११
 सुमेधा सुपुवे पुत्रान्नैध्रुवान्कुण्डपायिन ।
 असितादेकपर्णया समभूद्द्वेलो मुनि ॥ १२
 आराध्य देवल शभु परा सिद्धिमवाप्तवान् ।
 शाण्डिल्यो देवलाज्जात एतेऽपत्यास्तु वाश्यपा ॥ १३
 तृणविन्दुस्तु राजपि कन्यामिलविलाभिधाम् ।
 पुलस्त्याय ददौ तस्या विथवा समजायत ॥ १४

ये काद्रवेय अनन्ताद्य हैं ये बलपारी और विगेष बलवान् थे । अरिष्टा नाम वाली पत्नी ने कश्यप ऋषि से गन्धर्वों को समुत्पन्न किया था । ८। विनता ने परम विख्यात गरुड और अरुण इन दोनों को जन्म दृष्टन कराया था । हे द्विजो ! पशुआ से आरम्भ करने स्थावरा के भन्त तब और अन्यो को भी प्रमूत किया था । ९। कश्यप मुनि ने

स्थावरो को और जङ्गमो को ममूत्वन्न करके पुन सन्तानो की वृद्धि के निचे परम तपश्चर्या की थी । १०। उप तप के प्रभाव से बत्सर और असित य दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । बत्सर से नैध्रुव उत्पन्न हुआ था और महामनि रंभ्य पैदा हुआ था । ११। नैध्रुव से सुमेधा ने कुण्डपाभी पुत्रा को समुत्पन्द किया था । एकपर्णा के आसत्र से देव न मुनि समुत्पन्न हुए थे । १२। देवल ने शम्भु की समार, घना करके परम सिद्धि प्राप्त की थी । देवल से शाण्डिल्य उत्पन्न हुए । ये कश्यप की सन्तनिया हैं तृणविन्दु राजर्षि ने इलविला नाम वाली कन्या को पुलस्त्य मुनि को प्रदान कर दी थी उसी से विश्रवा समुत्पन्न हुआ था । १३। १४।

पुष्पोत्कटा तथा वाका कैकसी देववर्णिनी ।

चतस्र पत्नयस्तस्य पौलस्त्यस्य महात्मन ॥ १५

कुबेरो देववर्णिन्या कैकस्या रावणस्तथा ।

कुम्भकर्णं शूपणखा तथैव च विभोपण ॥ १६

पुष्पोत्वटायामभवस्तत्र पुत्राश्च कन्यका ।

महोदर प्रहस्तश्च महापार्श्वस्तथाऽपर ॥ १७

तथा कुम्भनग्वी कन्या तरय विश्रवसो द्विजा ।

त्रिशिरा दूपणश्चैव विद्युज्जिह्वो महाबल ॥ १८

वाकायामभवन्पुत्रा राक्षसा क्रूरकर्मिण ।

भूता मृगा पिशाचाश्च सर्वे वै दक्षिणस्तथा ॥ १९

पौलस्त्या इति ते सर्वे मरीचे, कश्यप सुत ।

भृगो सकाशादभवच्छुक्रो दैत्यगुरुर्महान् ॥ २०

प्राप्ता सजीविनी विद्या येन शुक्रेण धीमता ।

महादेव समाराध्य पुरा बदरिकाश्रमे ॥ २१

महात्मा प्रलस्त्य की चार पत्नियां हुई थी । एक का नाम पुष्पोत्कटा था—दूसरी वाका थी—कैकसी और देव वर्णिनी थी । देववर्णिनी पत्नी के उदर मे कुबेर पैदा हुए और कैकसी के गर्भ से रावण उत्पन्न हुआ था तथा साय हो छोटें भाई कुम्भकर्ण और विभोपण हुए और

एक बहिन दूर्पणखा हुई थी ११५।१६। पुष्पोत्कर मे तीन पुत्र और कन्या हुई थी । उनके नाम ये है—महोदर-प्रहस्त और महापार्षा । उस विश्रवा कुम्भनखी एक कन्या भी हुई थी । बकामे त्रिशिरा दूषण-विद्युज्जिह्व-महाबल ये पुत्र समुत्पन्न हुए थे जो क्रूर कर्मों के करने वाले राक्षस थे । भूत-मृग और पिशाच ये सभी देष्ट्राघारी थे ११७।१८। ११९। सभी पीलस्त्य हैं और मगीचिका कश्यप पुत्र था । भृगु के सकाश से महाव दैत्य गुरु शुक्र हुए थे १२०। जिस परम श्रीगाम् शुक्र ने सजीविनी विद्या प्राप्त करली थी और पहिले बदरिका ध्रम मे शुक्राचार्य ने श्री महादेवजी की समाराधना करके ही सजीविनी विद्या उनके प्रसाद से प्राप्त करली थी १२१।

जरामरणनिर्मुक्तो वञ्चकायो महामुनिः ।

योगाचार्यं इति ख्यातः प्रसादान्दिरिजापतेः ॥ २२

अनसूया तु सुपुत्रे क्रमत्पुत्रत्रयं द्विजाः ।

दत्तात्रेय चन्द्रमसं तथा दूर्वासिमं मुनिम् ॥ २३

आत्रेया इति ते ख्याता निरपत्यस्तथा क्रतुः ।

वसिष्ठाय ददौ कन्या नारदो मुनिपुंगवाः ॥ २४

अरुन्धतोमरुन्धत्या शक्तिर्नाम वभूव ह ।

शक्तेः पराशरस्तस्मात्कृष्णद्वं पायनो मुनिः ॥ २५

द्वं पायनाच्छुक्तो जज्ञे पञ्च पुत्राः शूकस्य ते ।

भूरिश्रवाः प्रभुः शंभुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः ॥ २६

कन्या कीर्तिमती नाम वशा एते प्रकीर्तिताः ।

कश्यपाददितिर्लभे भास्कर तेजसाऽधिषम् ॥ २७

राजा राजी प्रभा दद्या भावोर्भार्याः स्मृतास्त्विमाः ।

गूते मूर्धान्मनुं राज्ञा यम्य वंशोऽभवन्नृपाः ॥ २८

भगवान् गिरिजापति के प्रसाद में यह महामुनि जरा (वृद्धता) और मरण में निर्मुक्त होकर वञ्चकाय हो गये थे तथा योगाचार्यगमागत हुए थे १२२। १२३। अनसूया ने क्रम में तीन पुत्रों को प्राप्त किया

था । वे तीनों दत्तात्रेय-चन्द्रमा और दुर्वासा मुनि थे । १२३। ये सब आत्रेय-इस नाम से ही ख्यात हुए थे और ऋतुमुनि अपत्य (सन्तान) से ही वही रह गये थे । हे मुनिपुङ्गवो ! नारदजी ने वसिष्ठजी के लिये कन्या प्रदान करदी थी । १२४। उस कन्या का नाम अरन्वती था । उस अरन्वती में शक्ति नाम वाला हुआ था । शक्ति से पराशर हुए तथा उन पराशर मुनि से कृष्णद्वैपायन मुनि ने जन्म ग्रहण किया था । १२५। द्वैपायन मुनि से शुभ समुत्पन्न हुए थे और उन शुभ मुनि के पाच पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था । उन पाचों के नाम—भूरिश्रवा-प्रभु शम्भु कृष्ण और पाचवा गौर था । १२६। एक कन्या थी जिसका नाम कीर्त्तिमती था ये सब वंश कीर्त्तिन कर दिये गये हैं । कश्यप मुनि से अदिति ने तेज से अत्यधिक तेजस्वी भास्कर को प्राप्त किया था । १२७। स ज्ञा-राज्ञी-प्रभाऔर छाया ये भानु देव की भार्या ये कही गयीं । सज्ञा ने सूर्य देव से मनु को प्रसूत किया था जिसके वंश में नृप हुए थे । १२८।

यम च यमुना चैव राज्ञी रेवन्तमेव च ।

प्रभा प्रभातमादित्याच्छाया सार्वर्णिमेव च ॥ २६

शनि च तपती चैव विष्टि चैव यथाऋयम् ।

इक्ष्वाकुर्नभश्चैव घृष्ट. शर्यातिरेव च ॥ ३०

नरिष्यन्तश्च नाभागो ह्यरिष्ट. करुपस्तथा ।

वृषध्वजो महातेजा नव वैवस्वता समा ॥ ३१

इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च कन्या एतास्त्रय (१) स्मृताः ।

इक्ष्वाकौश्चभवत्पुत्रो विकुक्षिरिति विश्रुतः ॥३२॥

तस्य पुत्रशत त्वासोत्ककुत्स्थो ज्येष्ठ ईरित ।

तस्मात्सुयोधनो जज्ञे पृथुस्तस्य सुतोऽभवत् ॥३३॥

विश्वकस्तस्य पुत्रोऽभूद्दमकस्तस्य वै सुतः ।

तरमाच्छर्यातिरभवद्युवनाश्चश्च तत्सुतः ॥३४॥

श्रावन्तिस्तस्य पुत्रोऽभूच्छ्रावन्ती येन निर्मिता ।

तस्मात्क्वलय. ख्यातो धूम्रमारिस्ततोऽभवत् ॥३५॥

राज्ञीमार्या ने यम को और यमुना को जन्म दिया था और रेवन्त को भी उत्पन्न किया था । प्रभाभार्या ने सूर्य देव से प्रभात को तथा छायाभार्या ने सावणि को समुत्पन्न किया था । २६। दानि को तपती का और विष्टि को यथाक्रम से उत्पन्न किया था । इश्वकु-नाभाग घृष्ट-शर्याति-नरिष्यन्त-ह्वरिष्ट-करप वृषध्वज महानेजा ये भी सम षोडश्वन हैं । ३०। ३१। इला ज्येष्ठा वरिष्ठा ये तीन कन्यायें बतायी गयी हैं । राजा इश्वकु का विकुश्चि नाम वाला विधुत पुत्र हुआ था । ३२। उसके एक ही पुत्र थे । उनमें ककुत्स्थ सबसे बड़ा कहा गया है । उस ककुत्स्थ से न्युषेन उत्पन्न हुआ था और उस न्युषेन का पुत्र पृथु हुआ था । ३३। उसका पुत्र विश्वक और विश्वक का पुत्र दमक उत्पन्न हुआ था । उससे शर्याति हुआ और इसका पुत्र भुवनाश्व हुआ था । भुवनाश्व का पुत्र श्रावस्ति तथा इसके द्वारा ही श्रावस्ती पुरी की रचना की गयी थी । उनमें कुचलय की उत्पत्ति हुई थी जोइसी नाम से ख्यात था इनके पश्चात् धुन्धुमारि समुत्पन्न हुआ था । ३४। ३५।

धुन्धुमारैस्त्रय पुत्रा दृढाश्वथा महीजस ।
 दृढाश्वस्य च दायदो हरिश्चन्द्रस्ततोऽभवत् ॥३६॥
 रोहितन्तस्य पुत्रोऽभूद्रोहितस्यापि तत्सुत ।
 धुन्धुस्तम्मादभूत्पुत्रो धुन्धो पुत्रो बभूवतु ॥३७॥
 सुदेवो विजयश्चैव कुरुको विजयात्स्मृत ।
 कुरुकोऽय कुरुवाज्जज्ञे तस्माद्वाहुरभूत्सुत ॥३८॥
 सगरस्तस्य पुत्रीऽभूत्पौत्रस्तस्याशुमान्मृत्त ।
 तस्य पुत्रो दित्रीपस्तु तस्माज्जज्ञे भगीरथ ॥३९॥
 प्रीतोऽभूत्तापसा शभुर्ददौ वरमनुत्तमम् ।
 गन्ता वभार शिरसा रक्षार्थं जगता हर ॥४०॥
 दग्नायुताना वर्षाणि द्विमह्य शतद्वयम् ।
 महादेवाद्हर लब्ध्वा राज्यं कृत्वा भगीरथ ॥४१॥

विरक्तो राज्यभोगेभ्यो विश्व मत्वेन्द्रजानवत् ।

जावाल समनुप्राप्य यत्तज्ज्ञान शिवात्मकम् ॥४२॥

धुन्युमारि क तीन पुत्र हुए थे जो दृढाश्व का महान् ओज वाले थे । दृढाश्व का दाय प्रहण करन वाला फिर हरिश्चन्द्र उत्पन्न हुआ था । ३६ उस हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित हुआ था । रोहिताश्व का पुत्र धुन्यु था । उस धुन्यु के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । उनका नाम सुदव और विजय था । विजय स कुरुक उत्पन्न हुआ था । इमका पुत्र वृव हुआ था और उसका पुत्र बाहु उत्पन्न हुआ था । ३७।३८। बाहु का पुत्र सागर पैदा हुआ था और उसका पौत्र अशुमान् हुआ था । इस अशुमान् का पुत्र राजा दिलीप था । इस दिलीप ने भागीरथ ने जन्म ग्रहण किया था । भगवान् शम्भु भागीरथ की तपस्या से प्रसन्न हो गये थे और उसको उत्तम वरदान प्रदान किया था । भगवान् हर ने जगता की रक्षा करने के लिये अपन सिर पर गङ्गा को धारण किया था । ३९।४०। एक लाख दो सहस्र दो सौ वर्ष तक महादेवजी वरदान प्राप्तकर भगीरथ न राज्य किया था । ४१। राज्य के भोगों से विरक्त होकर इस विद्व को महेंद्र केजाल के ही समान जावाल समनुप्राप्त करके जो शिवात्मक ज्ञान था उगी को प्राप्त किया था । ४२।

मुनेरनुग्रहाल्लभ्वा परा सिद्धि गतो नृप ।

श्रुतस्तस्याभवत्पुत्रो नाभागस्तत्सुतोऽभस्वत् ॥४३॥

सिन्धुद्वीपस्ततो जज्ञे अधुनायुस्ततोऽभवत् ।

ऋतुपर्णस्तु तत्पुत्र सुधामा तत्सुतोऽभवत् ॥४४॥

यस्मै दत्ता भगवता गाणपत्यमनुत्तमम् ।

कल्माषपादस्तत्पुत्र क्षेत्रजस्तत्सुतोऽस्मक ॥४५॥

ऋषेर्वासिष्ठाद्विप्रैन्द्रान्नकुलस्तत्सुतोऽभवत् ।

नकुलस्याभवत्पुत्रो नाम्ना यतरथो नृप ॥४६॥

अभूदिलविलस्तस्माद्बृद्धशर्मा ततोऽभवत् ।

तस्माद्विश्वसहो नाम सद्वाङ्गस्तत्सुतोऽभवत् ॥४७॥

दीर्घबाहुस्ततो जज्ञे रघुस्तस्याभवत्सुत ।

रघोरजस्तु विख्यातो राजा दशरथस्तत ॥४८॥

तस्य पुत्राश्च चत्वारो धर्मज्ञा लोक विश्रूता ।

रामोऽथ भरतश्चैव तृतीयो लक्ष्मण स्मृत ॥४९॥

मुनिवर के अनुग्रह से इस ज्ञान की प्राप्ति करके नृप ने परासिद्धि प्राप्त करली थी। इसका पुत्र श्रुत हुआ था और इसका पुत्र नाभाग उत्पन्न हुआ था ॥४३॥ उससे फिर सिन्धु द्वीप समुत्पन्न हुआ था। इससे अयुतायु ने जन्म प्राप्त किया था। अयुतायु का पुत्र ऋतुपर्ण हुआ था ॥४४॥ जिसके लिये भगवान् ने उत्तम गणपत्य पद प्रदान किया था। इसका पुत्र क मापक व हुआ था। उसका पुत्र क्षेत्रज अस्मक हुआ था ॥४५॥ हे विप्रेन्द्रो! ऋषि वसिष्ठ से नकुल उनका पुत्र हुआ था। नकुल का दशरथ नाम से विश्रुत नृप पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥४६॥ उससे इलविल उत्पन्न हुआ था तथा इसका भी पुत्र वृद्धशर्मा उत्पन्न हुआ था। वृद्धशर्मा का पुत्र विश्वसह और इसका पुत्र खट्वाङ्ग हुआ था ॥४७॥ इससे दीर्घबाहुने जन्म प्राप्त किया था और दीर्घबाहु का पुत्र रघु हुआ था। रघु का पुत्र तो परम विख्यात है जिसका राजा दशरथ पुत्र रूप में प्रसूत हुए थे ॥४८॥ उन महाराज दशरथ के चार ही पुत्र हुए थे जो परम धर्मज्ञ और लोको में प्रसिद्ध थे। राम भरत और तीसरा लक्ष्मण थे ॥४९॥

चतुर्थश्चैव शत्रुघ्नो रामो नारायणः स्वयम् ।

धर्मज्ञ सत्यसकलो महादेवपरायण ॥५०॥

सीता तस्याभवद्भार्या पार्वत्यशसमुद्भवा ।

जनकेन पूरा गीरी तपमा तोषिता यत ॥५१॥

जनकाय ददौ शमुः प्रीतो धनुरनुत्तमम् ।

तद्धनुर्भङ्क्षयामाम जनकस्य गृहे स्थितम् ॥५२॥

दृष्ट्वा पराक्रम तस्य रामस्य गुणगालिन ।

जनकं प्रददौ तस्मै सीता ब्रह्मविदा वर ॥५३॥

पित्रोऽप्युत्तोऽभिप्रेकार्ये रामो राजस्य वै यदा ।

वारयामास वैक्येयी तदा राज्ञः प्रिया वधू ॥५४॥

राजस्त्वया वरो दत्त पूवमेव यत् प्रभो ।

राजान् मत्सुनं तस्माद्भूरतं कर्तुंमर्हसि ॥५५

इति तस्या वच श्रुत्वा राज्ये तमभिषिच्य स ।

प्रेषयामास त राम वनं प्रति सलक्ष्मणम् ॥५६

चौथे पुत्र सन्नुष्ट थे । श्रीराम तो स्वयं नारायण थे । जो धर्मज्ञ—

सत्य सत्त्व वाले—महादेव जी की भक्ति में परायण थे ॥५०॥ सीता

उनकी भार्या थी जो माशान् पार्वतीजी के अंग में ही समुत्पन्न हुई थी

क्योंकि महाराज जनक ने तपस्या के द्वारा गौरीदेवी को सन्नुष्ट किया

था । भगवान् शम्भु ने जनक नृप के लिये परम प्रसन्न होकर उत्तम

घनुप दिया था । जनक के घर में स्थित उसी घनुप को श्रीराम ने तोड़

दिया था । गुणशाली श्रीराम के पराक्रम को देखकर, महाराज

जनक ने जोकि ब्रह्म वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ थे उन श्रीराम के लिए

सीता को दे दिया था ॥५१॥५२॥५३॥ जिस समय में राज्य के अभि-

षेक के लिए श्रीराम का निश्चय किया था उस समय में राजा की प्यारी

बधू केकयी ने वारण कर दिया था । उसने राजा से कहा था—हे प्रभो!

हे राजन् ! आपने पहिले ही क्याकि मुझे वरदान दिया है । अतएव मेरे

पुत्र को ही आप राजा बनाने के लिये मामर्घ हैं । उसके इस बचन को

सुनकर राज्य में उसका अभिषेक उसने कर दिया था । फिर राजा ने

श्रीराम को वन में लक्ष्मण के सहित भेज दिया था ॥५१॥५२॥५३॥

५४॥५५ ॥५६॥

वन गत्वा निवसतो भार्या दृष्ट्वाऽथ राक्षस ।

रावणो नाम पीलस्त्यो नीत्वा लङ्का पुनर्ययी ॥५७

अदृष्ट्वा ता तत सीता दुःखिनी रामलक्ष्मणी ।

मन्थ वानरराजेन गत्वा दाशरथी द्विजा ॥५८

सुग्रीवम्य सया वीरो हनुमान्नाम वानर ।

गत्वाऽथ रावणपुरीमपश्यज्जनकात्मजाम् ॥५९

अथ पूर्णक्षणा सीतामिन्दीवरनिमाननाम् ।

विश्वासार्थं ददौ तस्यै रामस्यैवाङ्गुलीयकम् ॥६०

दृष्ट्वाऽङ्गुलीयक सीता प्रहृष्टा च तदाऽभवत् ।
समाश्वास्य तत सीता प्रययौ राघवान्दिकम् ॥६१

रामस्तमागतं दृष्ट्वा प्रहर्षोऽकुण्ठलोचन ।
श्रुत्वा तद्वचनाद्वृत्त युद्धाय कृतनिश्चय ॥६२
सेतु कृत्वाऽथ रक्षोभिर्युद्ध कृत्वा महामना ।
निहत्य रावण रामो भ्रातृभि सह सुप्रत ॥६३

वन में जाकर निवास करने वाले श्री राम की भार्या को देखकर राक्षस रावण ने चोकि पीलस्य था लज्जा में ले जाकर गमन किया था ॥५७॥ उस सीता को वहाँ पर न देखकर राम और लक्ष्मण दोनों बहुत ही दुःखित हुए थे । हे द्विको ! उन दशम्य के पुत्रों ने राजा सुग्रीव के साथ मुख्य अर्थात् मित्रता की थी ॥५८॥ उस वानर राज सुग्रीव का एक सखा परम वीर हनुमान् नाम का वानर था । वह हनुमान् रावण की पुरी लज्जा में गया था और वहाँ पर उसने जन कात्मजा को देखा था ॥५९॥ वह जनक की आत्मजा अथुओं से परिपूर्ण नेत्रों वाली थी और इन्द्रों वर के समान उसका मुख था । हनुमान ने जानकी जी को विश्वास दिलाने के लिये कि मैं श्रीराम का ही एक सेवक हूँ और उन्हींने मुझको भेजा है उन जानकी के लिये श्रीराम के द्वारा ही हुई अगूठी दी थी ॥६१॥ उस समय में उस अगुनीयक को देखकर जानकी परम प्रसन्न हुई थी । वह हनुमान सीताजी को भली भाँति समाश्वासन देकर पुन श्री राघवेन्द्रजी के समीप में वापिस आगये थे ॥६१॥ श्रीराम ने हनुमान को जानकी जी की सूचना लेकर वापिस आया हुआ जब देगा था तो प्रसन्नता में उनके नेत्र गिन्न गये थे । हनुमान के मुग ने सम्पूर्ण लज्जा का वृत्तान्त श्रवण करके उन्हींने युद्ध के लिये निश्चय कर लिया था कि रावण के माय भव युद्ध ही करना होगा ॥६२॥ फिर महार् मन वाले श्रीराम ने राक्षसों के माय युद्ध करके तथा समुद्र में सेतु बाँधकर तथा रावण को मारकर श्रीराम ने जो मुग्रन थे उस जानकी को भाँद्यों के माय वापिस

ने आकर अपने पास समवस्थित कर दिया था जोकि अबनक लङ्का में अशोक वाटिका में स्थित रहता करती थी ॥६३॥

आनयामास ता सीतामशोकवनमध्यगाम् ।
 प्रतिप्राप्य महादेव सेतुमध्येऽथ राघव ॥६४
 लक्ष्मवान्परमा भक्ति शिवे शिवपराक्रमः ।
 रामेश्वर इति ख्यातो महादेव पिनाकधृक् ॥६५
 तस्य दशनमात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोहति ।
 अभिषिक्तस्ततो राज्ये रामो राजीवलोचन ॥६६
 पालयन्पृथिवी सर्वा धर्मेण मुनिपुंगवा ।
 अयजद्देवदेशमश्वमेवेन शकरम् ॥६७
 तस्य प्रसादात्स्वपद प्राप्तवानथ राघव ।
 एव सक्षेपत प्रोक्त रामस्य चरित मया ॥६८
 इदं विस्तरतो विप्रा प्रोक्त वाल्मीकिना पुन ।
 कुशश्चैको लवश्चान्य पुत्रौ रामस्य मुदतौ ॥६९

श्री राघव ने सीता जी को अशोक वाटिका से लाकर वहाँ पर सेतु के मध्य में श्री महादेव की प्रतिष्ठा की थी ॥६४॥ श्री शिव के पराक्रम में शुक श्रीराम ने भगवान् शिव में परमाधिक भक्ति को प्राप्त किया था । वे श्री महादेव मिनाक धनुष के धारण करने वाले श्रीरामेश्वर महादेव के ही नाम से प्रसिद्ध हो गये थे ॥६५॥ उन श्रीरामेश्वर महादेव जी के केवल दर्शन ही कर लेने भरमें ब्रह्म हत्या से छुटकारा पा जाया करता है । इसके पश्चात् श्रीराम का राज्यासन पर अभियेक किया गया था और फिर राजीव के समान नथो वाले श्रीराम ने धर्म के साथ हे मुनि पुङ्गवो ! सम्पूर्ण पृथ्वी का पालन किया था तथा भगवान् शङ्कर का अश्वमेध यज्ञ के द्वारा यजन किया था ॥६६॥६७॥ उन्हीं के प्रसाद से श्रीरामेश्वर प्रभु ने पद को प्राप्त किया था । इस ऋषि में मीने यह श्रीराम का चरित्र बहुत ही श्रेष्ठ में उचित बन दिया है । फिर वाल्मीकि मुनि ने इसी श्रीराम के चरित्र को बहुत

विस्तार के साथ कहा था । श्रीराम के दो परम सुत्रत पुत्र हुए थे । एक का नाम कुश था और दूसरे का नाम लव था । ये ही दोनों ही लव कुश के नामों से प्रसिद्ध थे ॥६८॥६९॥

सत्यसन्धौ महावीर्यौ महादेवपरायणौ ।
 अतिथिश्च कुशाञ्जने निपद्यस्तत्सुतोऽभवत् ॥
 नलस्तस्याभवत्पुत्रो नभस्तस्याभवत्सुत ॥७०॥
 ततश्चन्द्रावलीकश्च नारापीडस्तनोऽभवत् ।
 ततश्चन्द्रगिरिर्नाम भानुजित्तत्सुतोऽभवत् ॥७१॥
 एते सर्वे नृणां प्रोक्ता इक्ष्वाकुकुलसभवाः ।
 धर्मात्मानो महामत्त्वा कीर्तिमन्तो दृढव्रता ॥७२॥
 इमं य पठते नित्यमिक्ष्वाकोर्वशमृत्तमम् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्त सूर्यलोके महीयते ॥७३॥

ये दोनों भाई लव और कुश परम सत्य प्रतिज्ञा वाले थे—महान् वीर्य—पराक्रम से युक्त थे—और श्री महादेव जी भक्ति भाव में परायण थे । कुश ने अतिथि नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था और लव अतिथि का पुत्र निपद्य नाम वाला समुत्पन्न हुआ था । इसका पुत्र नल हुआ था तथा उस नल के नभ नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था । फिर इसके चन्द्राव लोक हुआ था । चन्द्रावलोक के पुत्र का नाम तारापीड हुआ था । फिर उससे चन्द्रगिरि ने जन्म प्राप्त किया था और इसके पुत्र का नाम भानुजिन था । ये सभी नृप जो मेरे द्वारा बतलाये गये हैं वे गव इक्ष्वाकु राजा के कुल में ही जन्म लेने वाले हुए थे । ये सभी परमधर्मिन् और महान् सत्व वाले थे तथा कीर्ति से युक्त एवं दृढ़ व्रत वाले हुए थे ॥७०॥७१॥७२॥ इस महाराज इक्ष्वाकु के उत्तम वंश को जो भी कोई पुरुष नियत ही पढ़ा करता वह सभी प्रकार के महान् पातकों से निर्मुक्त हो जाता करता है और अन्त में सूर्यलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥७३॥

॥ शिव महिमादि कथन ॥

चतुष्पदि च वेदेषु पुराणेषु च सर्वश ।
 श्रीमहेशात्परो देवो न समानोऽस्ति कश्चन ॥१॥
 ब्रह्मा विष्णुर्वलाराति सर्वे यस्य वशे स्थिताः ।
 उत्पत्तिः सर्वदेवानां स एव ध्येय उच्यते ॥२॥
 नास्ति शभो परो धर्मो नाम्दयर्थं शकरात्पर ।
 शिव अन्यत्सुख नास्ति मोक्षो नैव हरात्पर ॥३॥
 यदा चर्मवदाकाश वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
 तदा शिवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥४॥
 स्रष्टृत्व ब्रह्मणो येन ध्येयत्व येन शार्ङ्गिण ।
 विष्णुत्व येन शक्रस्य तस्मादन्यः परो न हि ॥५॥
 केचिल्लोका महेशान त्यक्त्वा केशवर्किकरा ।
 तत्र किं कारणं सूत वद सशयनाशक ॥६॥
 अन्तकाले स्मरन्त्येव प्रायेण गरुडध्वजम् ।
 विद्यमाने शिवे विष्णो प्रभौ श्रीपार्वतीपतौ ॥७॥

श्री मूलजी ने कहा—चारों वेदों में और पुराणों में सर्वत्र श्रीमहेश
 में पर अन्य कोई भी देव नहीं है और न उनके समान ही कोई देवता
 है ॥१॥ ब्रह्मा विष्णु और वलाराति सभी जिनके वश में स्थित रहा
 करते हैं और समस्त देवों की वशी उत्पत्ति है और वही सबके ध्येय बहने
 जाया करते हैं ॥२॥ शम्भु भगवान् से पर कोई धर्म नहीं है न शङ्कर
 से पर कोई अर्थ ही है । भगवान् शिव से अन्य कोई भी सुख नहीं है
 और न हर से पर कोई मोक्ष ही होता है ॥३॥ त्रिस समय में धर्म के
 सदश आकाश को मानव वेष्टित कर लिया करते हैं उस समय में शिव
 को न जानकर दुःख का अन्त होगा ॥४॥ त्रिगने ब्रह्मा का सृष्टृत्व—
 शार्ङ्गिण ध्येयत्व और विष्णुत्व का पद प्राप्त हुआ है तथा शक्र को
 विष्णुत्व मिला है उस शम्भु से पर अन्य कोई भी नहीं है ॥५॥ श्रृंगियों

ने कहा—कुछ लोग महेश भगवान् को त्याग करके, केशव भगवान् के ही चिह्न होते हैं हे सून जी ! आप तो सशय के विनाश करने वाले हैं । यह वतलाश्ये कि वडाँ पर क्या कारण होता है ॥६॥ अन्नकाल में प्राय करके लोग भगवान् गरुड ध्वज का ही स्मरण किया करते हैं जबकि श्री पर्वती के पति भगवान् शम्भु प्रभु विष्णु के आगे विद्यमान रहने पर ऐसा क्यों होता है ? ॥७॥

यदा यदा प्रसन्नोऽभूतिद्धृक्विभावेन धूर्जटिः ।
 विष्णुनाऽऽराधितो भक्त्या तदाऽसौ दत्तवान्वरान् । ८
 त्वत् पर प्रभु नैव प्रायेण ज्ञानस्यति स्फुटम् ।
 विरला केचिदेतद्द्वं निष्ठा वेत्स्यन्ति तत्त्वत ॥९
 हेनुना तेन विप्रेन्द्रा शिव जानन्ति केचन ।
 प्रायेण विष्णुनामानि गृणन्ति वरदानत ॥१०
 विष्णो स्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ।
 शम्भुप्रपाद एवैव नास्ति कार्या विचारणा ॥११
 य शम्भु तत्त्वतो वेत्ति स तु नारायण स्वयम् ।
 यस्तु नारायण वेत्ति स शक्रो विबुधेश्वर ॥१२
 य इन्द्र वेत्ति देवेश लोकपालो जलाधिप ।
 एव सर्वात्लोकपालाञ्जानाति स इहामर ॥१३
 देवाञ्जानाति यष्ट्यान्स ऋषिर्वेदवित्स्वयम् ।
 ऋषीन्यो वेत्ति सम्यक्त्वात्स एव ब्राह्मणोत्तम ॥१४

श्री सूतजी ने कहा—जब जब भगवान् धूर्जटि भक्ति भाव से प्रसन्न हो जाने हैं और विष्णु ने भक्ति भावा में उनकी आराधना की थी उस समय में ही होने विष्णु को वरदान दिया था ॥८॥ आपसे पर प्रभु प्राय करके स्फुट रूप से नहीं जाने जायगे । कोई विरले ही तात्त्विक रूप से निष्ठा का ज्ञान प्राप्त करेंगे ॥९॥ हे विप्रेन्द्रो ! इसी हेनु ने कुछ ही लोग भगवान् शिव का ज्ञान प्राप्त किया करते हैं । प्राय करके विष्णु के नामों को ही वरदान से लोग ग्रहण करते हैं ॥१०॥ भगवान् विष्णु

के नामा का स्मरण मात्र से ही ममस्व पापों का क्षय हो जाया करता है—इह भी मगवान् शम्भु वा ही प्रमाद है—इसमें कुत्र भी विचार नहीं करना चाहिए ॥११॥ जो शिव को तास्विक रूप से जानता है वह तो स्वयं नारायण ही है । जो नारायण को जानता है वह देवों का स्वामी शक ही है ॥१२॥ जो देवश इन्द्र को जानता है वह लोक माल जलाधिय हैं । इस प्रकार से मत्र श्रीकाला को जानता है वह महीं अमर है ॥१३॥ जो गजन करने के योग्य देवों का ज्ञान रखता है वह वदा के ज्ञाता स्वयं ऋषि हैं । जो भनी भाँति से ऋषिमा को जानता है वह ही उत्तम कोटि का ब्राह्मण है ॥१४॥

सर्वदेवमय विप्र यो जानाति स वेदविन् ।

रहस्य वेत्ति वेदस्य स एव हरवल्लभ ॥१५॥

जन्मादिस्मरण शम्भु विष्णु ब्रह्मादिपूर्वजम् ।

न जानन्ति महामूर्खा विष्णुमायाविमोहिता ॥१६॥

आमीत्प्रतदं नो नाम राजा परमधार्मिन ।

ममद्वीपपति पृथ्वीप्रभुरेक प्रतापवान् ॥१७॥

गूरु पुण्यमनिर्भोगी दाता वेदार्थपालक ।

रक्षिता सर्वसेतूना ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रिय ॥१८॥

तस्य राज्ये यदा देवा गृह्णन्ति हविस्तमम् ।

न पापञ्छी न वा वीर्यस्तस्य राज्येऽभवज्जन ॥१९॥

वदानि स पुरी त्यक्त्वा क्रीडायं निगंतो वहि ।

तदा ददर्श क्षाण राजा यिम्मयमागत ॥२०॥

पृष्ट वस्य कुतो यान किं कार्यं च तवेष्पितम् ।

कृत्र घाम्यमि तत्तमवें विजानीयो भवान्कट ॥२१॥

और विष्णु की माया से विमोहित ही हो जाया करते है ॥१६॥ एक प्रतर्दन मध्य वाला परम धार्मिक था वह सातो द्वीपो का स्वामी प्रताप वाला तथा पृथ्वी का एक ही प्रभु था ॥१७॥ वह शूरवीर पुण्यमति वाला भोमी वाला—वेदों के अर्थों का प्रतिपालन करने वाला सभी सेतुओं की रक्षा करने वाला—परम ब्रह्मण्य और ब्राह्मणों से प्यार करने वाला था ॥१८॥ उसके राज्य में देवगण सदा ही उत्तम हवि को ग्रहण किया करते थे । न तो वह पापण्ड वाला था और न बौद्ध था । उसके राज्य में ऐसा कोई अन्य मनुष्य भी नहीं था ॥१९॥ किसी समय में वह अपनी नगरी नगरी को छोड़कर क्रीडा करने के लिये बाहिर निर्गत हो गया था । उस समय में उसने क्षयण अर्थात् योद्ध सन्यासी को देखा था । उसे देखकर उसको बहुत अधिक विस्मय हुआ था ॥२०॥ उसके द्वारा उस क्षयणक से पूछा गया था कि वह कौन है और कहां को जा रहा था, एवं उसका वहाँ क्या कार्य था तथा उसका ईप्सित क्या था ? वह अब वहाँ को जायगा और उसकी जाति क्या है—राजा ने उससे यह भी कहा था कि आप यह सभी बातें बतलाइये ॥२१॥

राजन्वणिगह शान्तो यति. शीलघ्नत स्थित. ।

मदीयाञ्चलसलग्नाः सन्त्यत्र वणिज. परे ॥२२

को धर्मं किं नु तत्र त्व ज्ञायते केन वक्ति कः ।

अय पन्था. कथ प्राप्त. कस्मान्न प्रकटो भवान् ॥२३

अहिंसा परमो धर्मस्तत्तत्त्वं यत्तनोर्वम. ।

बुधपते बोद्धर्जनाभ्या वक्ता तस्य जिनो मतः ॥२४

वेदवेदाङ्गवेत्तारो याज्ञिका वैष्णवा द्विजाः ।

माहेश्वरा महापूज्या न व्यक्तोऽह भयान्नुप ॥२५

सतो राजा परा चिन्ता प्राप्तो दु खितमानसः ।

धिप्राज्य मम दुयुं द्वेर्वेदवाहोऽस्ति मत्पुरे ।.२६

एत हन्मि यदा पाप तदेतन्मानिनी प्रजा ।

कथयिष्यति शान्तात्मा हतो राजा कुयुद्धिना ॥२७

एतस्मिन्निहते किंस्याद्भुवन्ति बहवस्तथा ।

दयाशब्द पुरस्कृत्य ह्यधर्मो विचरिष्यति ॥२८

क्षपणक न कहा—हे राजन् ! मैं वणिक हूँ, परम शान्त मति हूँ और शीन वन में स्थित रहने वाला हूँ तथा मेरे अज्जल में रहने वाले दूसरे वणिह भी हैं ॥२२॥ राजा ने कहा—तुम्हारा धर्म क्या है और उस धर्म में क्या बतें हैं ? क्या आप जाने जाते हैं किमके द्वारा कौन बोलता है ? यह मार्ग कैसे प्राप्त हुआ था और किस कारण से प्रकट नहीं हुय वे ॥२३॥ क्षपणक न कहा—अहिमा ही मेरा परम धर्म है । तनुका दमन जो है वही परम तत्त्व है । बौद्ध और जैना के द्वारा ही जाना जाता है । उसका वक्ता जिन भगवान ही माने गये हैं ॥२४॥ हे नृप ! यहाँ पर वेदो और वेदाङ्गो के वेता—याज्ञिक और वैष्णव द्विज हैं महेश्वर का पूजक—महपूज्य हैं । भय से ही मैं व्यक्त नहीं हुआ हूँ ॥२५॥ सूतजी ने कहा—इसके पश्चात् राजा को बहुत अधिक चिन्ता हुई थी और उसका मन अत्यन्त दुःखित हो गया था । मेरे जैसे राजा के राज्य को धिक्कार है कि दुर्बुद्धि मेरे पुर में एक यह वेद वाह्य पुरप विद्यमान है ॥२६॥ इसको मैं जब मारना हूँ तो यह भी पाप होना है और तब यह मानिनी प्रजा कहेगी कि बुबुद्धि राजा ने एक परम शान्त क्षपणक को मार दिया है ॥२७॥ इसके मार डालने पर क्या होगा तथा बहुत हो जाते हैं । दया शब्द को आगे करके अधर्म विचरण करेगा ॥२८॥

वैशवाह्या प्रजा राजा शासितु नैव शक्यते ।

तदा तत्पापभागी स्यादित्याह भगवान्मनु ॥२९

त्यक्त्वा राज्य तपस्तेपे ततो राजा प्रतर्दनः ।

सावित्री मनसा ध्यात्वा नित्यमेकाग्रमानसः ॥३०

तत कतिपयाहोभिर्ब्रह्मा प्रायक्षता गत ।

महना तपसा तुष्ट इदं वचनमब्रवीत् ॥३१

पुत्र प्राप्तोऽस्मि गतोऽयं वर वरग सुव्रत ।

कथं त्वं गिरामे चित्ते राज्यं त्यक्तं वनस्थया ॥३२

वेदा प्रमाण वक् येव जानात्येव च यत्प्रजा ।

शङ्कामात्र भवेर्घ्नं वेदप्रामाण्यगोचरम् ॥३३

इति याचे वर देव किमन्येव वरेण मे ।

याचे निष्कण्टक राज्य सप्तद्वीपावनीरति ॥३४

वेदों से बाह्य जब सब प्रजा हो जायेगी तो राजा के द्वारा शासन नहीं की जा सकती है । उस समय में उसके पाप का भागी होता है—
 ऐसा भगवान् मनु ने कहा है ॥२६॥ सूतजी ने कहा—इसके पश्चात् राजा प्रतदन ने राज्य को त्याग करके तपस्या करने लगा था । उसने सावित्री देवी का मन से ध्यान करके वह नित्य ही एकाग्र मन वाला रहता था । ३०। इसके अनन्तर कुछ दिनों के बाद ब्रह्माजी प्रत्यक्ष ॥ को प्राप्त हो गये थे । ब्रह्माजी महान तप से परम सन्तुष्ट हो गये थे और यह वचन उमसे बोले—ब्रह्माजी ने कहा—हे पुत्र ! हे सुव्रत ! मैं परम सन्तुष्ट हो गया हूँ तुम वरदान माग लो । तुम राज्य में कयो खेद को प्राप्त कर रहे हो ? चित्त में खिन्नता का क्या कारण है ? आपने राज्य का परित्याग क्यों कर दिया है ? ॥३१-३२॥ राजा ने कहा—वेद प्रमाण को बतलाता है और उसकी प्रजा सब जानती ही है । वेद ही प्रमाण का गोचर है और उसमें शङ्कामात्र भी नहीं होती है ॥३३॥ हे देव ! मैं यही वरदान चाहता हूँ । मुझे अन्य वरदान से कुछ भी प्रयोजन नहीं है । मैं तो सातों द्वीपों की भूमिका स्वामी अपना निष्कण्टक शूय चाहता हूँ यही आप से मैं याचना करता हूँ ॥३४॥

एवमस्त्विति सप्रोच्य ब्रह्मान्तर्धानमाययो ।

प्रतदनोऽपि राजपि सन्तुष्ट पृथिवीपति ॥ ५

तत प्रभृति तद्राज्ये सर्वो घर्मां व्यवस्थित ।

वेदवेदाङ्गवेत्तारो ब्राह्मणा यसितव्रता ॥३६

अग्निहोत्रादि यज्ञाश्च यतयो ब्रह्मचारिण ।

शैवा नानाविधा पुत्रा वैष्णवा शुभलक्षणा ॥३७

जस्य राज्ये महापुण्ये न पापण्डो न हैतुकी ।

वर्णाश्रमाचारवता क्रिया सर्वास्तदाभवन् ॥३८

उत्तमा विष्णुभक्तानां शिवपूजा गृहे गृहे ।
 सर्वे ते मानानपन्ति न कविद्वेष्टि मानवः ॥३६॥
 तर्कवेदान्तमीमामावधारणानि गृहे गृहे ।
 वेदानिर्घोषवद्राज्य यज्ञस्तन्मा. स्थले स्थले ॥४०॥
 अनेकभोगसंपुक्ता हृष्टाः पुष्टाः स्त्रियः मती. ।
 रक्षन्ति पतय. पुण्या यथा वृद्धपुरस्कृता. ॥४१॥

सूत्रजी न ब्रह्मा—“ऐसा ही होगा”—यह कह कर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये थे । प्रतर्दन राजा भी पृथिवी पति परम सन्तुष्ट मन्तुष्ट हो गया था ॥३५॥ तब से ही आरम्भ करके उसके राज्य में सब धर्म व्यवस्थित हो गया था । सब ब्राह्मण वेद वेदाङ्गों के जाना और मन्त्रित करने वाले थे । यनि और ब्रह्मचारी अग्निहोत्रों को करते थे तथा यज्ञ होते थे । शंख भी अनेक प्रकार के एक पुष्पमय थे और बंष्णव शुभ लक्षणों वाले हैं ॥३६-३७॥ उसके महान पुष्प राज्य में कोई भी पातण्डी और हेतु की नहीं था । उस समय में यनों और आश्रमों वालों की सभी क्रियाएं होती थी ॥३८॥ विष्णु के भक्तों के उत्सव होते थे तथा घर-घर में शिव की पूजा हुआ करती थी । सभी लोग देवों को मानने थे और मनुष्य किसी से भी द्वेष नहीं किया करता था ॥३९॥ घर-घर में तर्क-वेदान्त-मीमामा के व्याख्यान हुआ करने थे । उमका राज्य वेदों के निर्घोष वाला था और ग्यल-रयल में यज्ञों के स्तम्भ बने हुए थे ॥४०॥ अनेक भोगों से संपुक्त हृष्ट और पुष्ट स्त्रियां सब सची थीं । जिस प्रकार से वृद्ध पुरस्कृत होते हैं वैसे ही पुष्प यनि लोग उनकी रक्षा किया करती हैं ॥४१॥

एव बहुतिथे काले गते ये दत्तपदानवाः ।
 पापिष्ठा होनवर्मागो म्नेचद्वाग्नेऽपि दिव गताः ॥४२॥
 येषां तु ममति शुद्ध वेदमार्गं हि मग्ने ।
 ते सर्वे भरवान्मुखा प्राप्ता एवामरावतीम् ॥४३॥
 मयं न तु नगोवन्दं सर्वं हरिपूजनम् ।

वित्त्वदलैस्तु सर्वत्र पूज्यते गिरिजापतिः ॥४४
 कथं तेषां तु पितरो नरके निवसन्ति हि ।
 तस्मिन्राज्ये समागत्य किं कुर्युर्मर्त्तिकरः ॥४५
 शृणुष्वभृपयः सर्वे यदामीत्परमाद्भुतम् ।
 स्वर्गगामिषु सर्वेषु व्यापाररहिते यमे ॥४६
 पूजिताः सर्वलोकेषु सर्वे देवा बभूवुरे ।
 तदाऽपौ धर्मराड्गत्वा शक्रलोकं महामनाः ।
 उवाच सर्वदेवानां पुरतः प्राञ्जलिः स्थितः ॥४७

सूतजी ने कहा— इस प्रकार से बहुत सा काल व्यतीत हो जाने पर जो भी दैत्य दानव थे वे महा पापिष्ठ-हीन कर्मों वाले और म्लेच्छ थे वे भी स्वर्गलोक को चले गये थे ॥४२॥ जिनकी सन्तति शुद्ध थी वह वेदमणि को भानती थी । वे सब उनके पूर्वज जो नरको में यातनाएँ भोग रहे थे वे नरको की सन्तति के पुण्य प्रभाव से परित्याग करके ऐरावती में प्राप्त हो गये थे ॥४३॥ उस राज्य में सभी जगह तुलसी के वृक्ष लगे हुए थे तथा सर्वत्र श्रीहरि का पूजन होता था । सर्वत्र वित्त्व पत्रों के द्वारा भगवान् गिरिजा के पति का पूजन किया जाता था ॥४४॥ फिर उनके पितर चाहे वे कैसे भी पापी क्यों न हों, कैसे नरको में निवास कर सकते हैं क्योंकि उनकी सन्तति पूजा परायण थी । उसके राज्य में आकर विचारे यम के दूत क्या करेंगे क्योंकि वहाँ ऐसा कोई था ही नहीं जिसे वे ले जाकर दण्ड दें ॥४५॥ सूतजी ने कहा—ऋषि-गण सब श्रवण करें जो वहाँ पर परम अद्भुत हुआ था । सभी के स्वर्ग में गमन करने वाले हो जाने पर यमराज तो सर्वथा व्यापार से रहित ही हो गये थे ॥४६॥ सब लोको में पूजित होकर सभी देव हो गये थे । उस समय में धर्मराज तहामना शक्रलोक में गया था और हाथ जोड़कर सभी देवों के सामने स्थित होकर कहने लगा था ॥४७॥

चतुरशीतिलक्षणा जीवानां या स्थितिः सदा ॥४८॥
 तां नष्टामधुना वेत्ति यदि देवः प्रमाणवान् ।

यस्या कीटादियोनी यः स्थितो जीवोऽतिपापवान् ॥४६
 नरके सयमिन्या वा तत्पुत्रेण म उद्धृत ।
 श्राद्धदेवार्चनादीनि करोति श्रुतिनिश्चयः ॥५०
 अस्माक हीनजीवाना को विशेषो यदा श्रुतिः ।
 प्रमाणयति तत्त्वेन वय देवा यदाज्ञया ॥५१
 पुरोहित तव प्रजा शोभना प्रतिभानि मे ।
 पूर्व चार्वाकबौद्धादिमार्गा मर्दाशितास्त्वया ॥५२
 तेन मार्गेण विभ्रान्ता वेदमार्गवहिष्कृता ।
 दैत्याश्च दानवाश्चैव तथा कुरु द्विजोत्तम ॥५३
 न चार्वाको न वै बौद्धो न जैत्रो यवनोऽपि वा ।
 कापालिक कौलिको वा तस्मिन् राज्ये विशेत्कञ्चित् ॥५४
 वेदा प्रमाणमित्येव मन्यमाना प्रजा शुभा ।
 यथ सा चाल्यते तात न शक्य हि शुभाऽधुना ॥
 विधिदत्तवरस्याहमुच्छेत्तु शक्तिमान्कथम् ॥५५

यम ने कहा—चौरापी लाख जीवो की जो स्थिति सदा थी मैं उसको इस समय में विनष्ट हुई ही समझता हूँ यदि देव प्रमाण वाले हैं । जिम कीटादि योनियो में अत्यन्त पाप वाला जो जीव स्थित रहा करता है ॥४६॥४६॥ नरक में अथवा सयमिनी में वह जब होता है तो वह उससे पुत्र के द्वारा ही उद्धृत कर दिया जाता है । वह श्राद्ध और देवार्चन आदि किया करता है । इसका ही ऐसा प्रभाव होता है—ऐसा श्रुति का विशेष निश्चय है ॥५०॥ इन्द्र देव ने कहा—जब श्रुति ही ऐसा प्रतिपादन करती है तो हम जैसे हीन जीवो में क्या विशेषता है । हम देवगण तो उसकी आज्ञा से ही तात्त्विक रूप में प्रमाण किया करते हैं ॥५१॥ हे पुरोहित ! तुम्हारी प्रजा परम शोभना मुझे प्रतीत होती है कि आपने पूर्व में ही चार्वाकि और बौद्ध आदि मार्ग में महारिषि कर दिये थे ॥५२॥ उग मार्ग में विभ्रान्त हुए मोग वेशो के मार्ग में बहिष्कृत हो गये थे । हे द्विजोत्तम ! दैत्य और दानव सभी बाहि

करो ॥५३॥ गुरुजी ने कहा—उसके राज्य में चरवाक बौद्ध जैन यवन—
का पालिक-कौलिक कोई भी कही पर भी कभी भी प्रवेश नहीं करता
है । वहाँ की परम शुभ प्रजा वेद ही प्रमाण हैं—ऐसा मानने वाली
है । हे तात ! वे लोग कैसे विचलित किये जा सकते हैं । ऐसा किया
नहीं जा सकता है । वह इस समय में सारी प्रजा परम शुभ है ॥५४॥
विधाता के द्वारा दिये हुए वरदान को मैं उच्छेदन करने में किस तरह
से शक्तिशाली हो सकता हूँ ॥५५॥

दैत्याना दानवानां च दुर्दर्शाना भवो यदा ॥५६॥
तदा शुक्रः स्वयं तेषां कृपया सोद्यमो भवेत् ।
तस्मात्स्व विप्रशार्दूल वस्मादस्मानुपक्षसे ॥५७॥
असाध्य तव किं मान्य वयं त्वच्छरण गताः ।
अस्माकं दुर्जनाः सर्वे वेदकर्मरता कृताः ॥५८॥
तेषां व्यामोहनाय त्वं कुरु यत्नं कृपानिधे ।
देवानां रक्षणा चैव दैत्यानां पापकर्मणाम् ॥५९॥
एव ब्रुवन्तु देवेषु बृहस्पतिरुदारधी ।
उपायं चिन्तयामास सृष्टेः सरक्षणाय च ॥६०॥
शृण्वन्तु त्रिदशाः सर्वे ममोपायं वदाम्यहम् ।
देवः कश्चिद्यदि भवेत्कपटी वैष्णवः स्वयम् ॥६१॥
शाह्वचक्राङ्घ्रिनतनुस्नुलसीकाप्रभूषितः ।
ऋध्वपुण्ड्रं च विभ्राणो हरिनामाक्षरजपन् ॥६२॥
देवतामात्रनिन्दी च चकृत्वा मतिमीश्वरे ।
शिवद्वेषा महापापप्रेरकः शिवनिन्दकः ॥६३॥

इन्द्र आदि ने कहा—जब दैत्यो को दानवो को और बुरी दशा
वालो को भव होता है ॥५६॥ दैत्याचार्य शुक्र स्वयं ही कृपा करके उनके
कल्याणार्थ उद्यमो होंगे । हमसे हे विप्रशार्दूल ! आप हमको किस
कारण में उपेक्षित कर रहे हैं ॥५७॥ हे मान्यवर ! आपके लिये क्या कार्य
असाध्य है । हम सब लोग आपके शरण में प्राप्त हुए हैं । हममें जो

भी दुर्जन हैं व सब वेदमार्ग में रति रखने वाले किये गये हैं । १५८। हे
 श्रमानिधे । उनके व्यमोदन करने के लिय आप यत्न करिये जो भी दैत्य
 हैं—राक्षस हैं देव हैं और पाप कर्म करने वाले हैं उाका व्यमोदन करने
 का प्रयत्न करिय । १५९। मूतजी ने कहा—इस प्रवार से देवा के बोलने
 पर उदार बुद्धि वाले वृहस्पति जी ने मृष्टि के सरक्षण व लिये कोई
 उपचार सोचा था । १६०। गुरजी ने कहा—हे त्रिहसो । मेर उपाय को
 आप सब लोग श्रमण कीजिय । मैं आपका बतलाता हूँ । कोई देव यदि
 कपटी होता है और स्वयं वंष्णवभी कपटी होता है । चाहे वह शङ्ख-चक्र
 से अशुद्ध तनुवाया हो और तुलसी काष्ठ से भी भूषित हो—ऊर्ध्वपुण्ड्र
 को धारण करने वाला हो श्रीहरि के नाम को जाप रहा हो—देवता
 मात्र की निन्दा करने वाला हो और ईश्वर में मति न करके शिव का
 द्वेषी हो तो वह महा पाप का प्रेरक शिव निन्दक हुआ करता है । १६१।
 से । १६३ ।

दम्भेन यदि तद्राज्ये शिवनिन्दा कृता भवेत् ।
 तदा तत्पूर्वजा सर्वे नरक यान्ति दारुणम् ॥६४
 ततो देवेषु सर्वेषु न कश्चिदवदत्तथा ।
 कथयन्ति स्म चान्योन्य नेतस्वर्मास्ति मुन्दरम् ॥६५
 पश्चाच्छाल शिव श्रूयात्प्राणाधारण्येन विष्णुना ।
 यस्य प्रमादाद्बुण्ड प्राप्नवानीहृदा पदम् ॥६६
 तत विनरमह्य प्रावाचेद शचीपति ।
 याहि विनर मायावी भूत्वा त्व वंष्णवो भुवम् ॥६७
 तत्र गत्वा जगन्मयीन्ग्रूहि कोऽस्ति शिवो महान् ।
 एव एव महाविष्णुर्नाम्नो ध्येय कथयत ॥६८
 पूर्वं प्रच्छगम्पेन स्थित्वा मार्गं प्रदर्शय ।
 दानं दानैर्जना एव भविष्यन्ति च हैनुका ॥६९
 वेद प्रमाणाभि यैः वदितव्यं तस्मा मुनि ।
 पर स्वैरो महाविष्णु शिवस्तस्य च विद्वर ॥७०

यदि उसके राज्य में दम्भ से शिव की निन्दा की हुई होनी है । तब उसके समस्त पूर्वज दारुण नरक में जाया करते हैं । ६४। इसके अनन्तर सब देशों में कोई भी ऐसा नहीं बोलता था । वे सब अन्योन्य से कहते थे कि यह कर्म सुन्दर नहीं है । ६५। साधारण्य विष्णु के समान कौन सा चाण्डाल है जो भगवान् शिव को बतलाता है । जिसके प्रसाद से वैकुण्ठ में ऐसा पद प्राप्त किया है । ६६। सृजनी ने कहा—इसके अनन्तर किन्नर को बुलाकर सचीपति ने कहा— हे किन्नर ! तुम मायावी होकर विष्णु भगवान् की भूमि को चले जाओ । ६६। वहाँ पहुँच कर सब मनुष्यों से बोओ - महान् शिव कौन है ? एक ही महा विष्णु हैं । अन्य कोई भी कभी ध्येय नहीं है । ६८। पूर्व में प्रच्छन्न रूप से स्थित होकर मार्ग को दिखलाओ । धीरे-धीरे जन इस प्रकार से हेतुक हो जायेंगे । ६९। आपको यदा यहाँ बोलना चाहिये कि वेद ही प्रमाण है परन्तु एक महा विष्णु ही है । शिव तो उनका किकर ही है । ७०।

प्रेरितोऽसी बलात्तन भीतोऽगच्छच्छरणैः शनैः ।

दाम्भिक रूपमास्थाय यथा साधु वदेज्जन ॥७१

सर्ववैष्णवचिह्नानि धृत्वा भ्राम्यति तत्पुरे ।

शिष्यान्करोति तन्पूर्व वदेन्मान्यो न शङ्कर. ॥७२

क्वचिद्वदति न ध्येयो न मुख्य इति च क्वचित् ।

क्वचिदुत्कृष्टजीवोऽय क्वचिच्छीविष्णुकिंकरः ॥७३

इति नानाविधा बुद्धिनंराणा भेदिता यदा ।

तदा शिष्यं परिवृत्तो राजगेह विशत्यपि ॥७४

चालितो राजलोकौऽपि विरुद्ध नैव दृश्यते ।

विष्णुभक्तो महाऽशान्तो वेदवेदाङ्गपारवान् ॥७५

उपायनान्यनेकानि ह्याश्च स्यन्दनान्वसु ।

लोका सर्वे ददत्येव गुप्त पाप न दृश्यते ॥७६

सूत जी ने कहा—उसके द्वारा प्रेरित हुआ बल पूर्वक वह भेजा । डरते हुए धीरे-धीरे वहाँ गया था उगने दाम्भिक स्वरूप धारण

कवे गया था । जिससे मनुष्य उसको साधु बहें । ७१। समस्त वैष्णव
 के चिह्नो को धारण करने उसने पुर में भ्रमण करता था । पहिने उन
 सज्जो निष्य करता है फिर कहता है कि शङ्कर मान्य नहीं है । ७२।
 यही तो वह कहता है कि शिव ध्यान करने के योग्य नहीं है । और वह
 यही भी मुख्य नहीं है । कही पर वह कहता था शिव एक उत्कृष्ट श्रेणी
 का जीव है और कही पर रहा करता था वह श्री विष्णु का फिर
 है । ७३। जब इन प्रकार से अनेक प्रकार की मनुष्यों की बुद्धि को
 मोहिन करती थी तब वह निष्या से परिवृत्त होकर राज गृह में भी
 प्रवेश करता था । ७४। राज लोक भी उसने चानित कर दिया है और
 विरुद्ध नहीं दिखलाई देता था । विष्णु का भक्त महानुशान्त और वेद-
 वेदाङ्ग के पार वाला था । ७५। अनेक उपायन अश्व—रथ—उमु सभी
 लोक दिया ही करते हैं और गुण पाप नहीं दिखलाई देता है । ७६।

एकस्मिन्ममये विप्रा एकादश्यामुपोषिता ।

जना प्रातश्चक्र्याणि नमस्कृतुं गता शुभा ॥७७

तत्रोपविष्ट शिष्टै स्वैरुत स्वीयेन तेजसा ।

न कचिन्मन्यते विप्र यो भस्माद्धितभालवान् ॥७८

एतस्मिन्ननरे राजा प्राप्नवाश्रोप्रतर्दन ।

व्रतो बहुविधैर्विप्रै कुशहस्तो शुचिन्नतं ॥७९

त्रिगुण्डधारिण केचिद्ध्वंपुण्ड्रधरास्तथा ।

पठन् शिवसूक्तानि विष्णुसूक्तानि चापरे ॥८०

एतैर्बहुविधैर्विप्रै वृत्तो राजोपविश्य स ।

उवाच वचन युक्त कोमलाक्षरसयुतम् ॥८१

स्वामिन्नागनवा-साक्षाद्भगवा-हरिपापंद ।

वेद पठसि विष्णोश्च भक्तस्तद्वेषवार्यपि ॥८२

सूतजी ने कहा—हे विप्रो ! एक समय में एकादशी में उपोषित
 मनुष्य प्रातः काल को शुभ लोग चक्रमणि को नमस्कार करने के लिये गये
 थे । ७७। वहाँ पर बैठा हुआ वह अपने शिष्यों से परिवृत्त अपने तेज से

किसी भी निपुको नहीं मानता है जो कि भस्म से अङ्कित ललाट वागा था । ७८। इसी बीच में श्री प्रतर्दन राजा वहा पर प्रान्त हो गया था । वह राजा हाथों में कुत्ता लिये हुए सुविग्रह वाले बहुत से विप्रों में घिरा हुआ था । ७९। उनमें कुछ त्रिपुण्ड्रधारी ने और कुछ ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करने वाले थे । वे सब शिव सूक्तों को याद कर रहे थे तथा दूसरे विष्णु सूक्तों को पढ रहे थे । ८०। इन बहुत सी तरह के विप्रों से परिवृत वह राजा वहाँ पर उपनिष्ट हो गया था । फिर राजा ने कोमल अक्षरों से समन्वित युक्त वचन कहा था । ८१। हे स्वामिन् ! यह माक्षात् भगवान् का हरिपापंद समागत हुआ है वेद का पाठ करता है विष्णु का भक्त है और उनके ही वेद को धारण करने वाला भी है । ८२।

वेद एव पर श्रेयो वेदार्थादिधिक न हि ।

प्रमाण वेद एवैको विष्णुवाकश्रुतिरेव च ॥८३॥

राजन्वेदार्थविज्ञाने वहवो मोहिता जना ।

शिवपूजारता सन्तो नानादेवतपूजका ॥८४॥

एको विष्णुर्न द्वितीयो ध्येय किं त्वितरे मुरे ।

क्रूर च क्रूरकर्माण शकर मन्यते कथम् ॥८५॥

त्वदीया ब्राह्मणा एते ऊर्ध्वपुण्ड्राङ्किता शुभा ।

तान्दृष्ट्वा प्रीतिरत्यर्थं जायते नृपसत्तम ॥८६॥

एते त्रिपुण्ड्रभाला ये कररुद्राक्षमानिन ।

पठन्त शिवसूक्तानि दृष्ट्वा दञ्ज पतेद्विव ॥८७॥

दर्भत्योपग्रह कोऽय किं वा भस्माङ्गधारणम् ।

रुद्राक्षा का च को रुद्र दानि सूक्तानि तस्य च ॥८८॥

विष्णुरेक परो ध्येयो नान्यो देव वदाचन ।

तदीयायुधचिह्नानि पूज्यो वै वंष्णव सदा ॥८९॥

वैष्णवाभास ने कहा—वेद ही परमधेय हैं और अन्य कुछ भी अर्थ से अगिक नहीं है । एक वेद ही प्रमाण है । यह विष्णु का वचन है तथा श्रुति है । ८३। राजन् ! वेदों के अर्थ के विज्ञान में बहुत से

अन मोहित हो रहे हैं । कुछ गिन की पूजा में रत है और नाना देवों के पूजा है । १८४। एग ही विष्णु भावाद् ध्येय है दूसरा कोई भी प्यान करने योग्य नहीं है । फिर इतर मुरों से क्या प्रयोजन है । महान क्रूर और छूर ही कर्मों के करने वाला सद्धर को क्यों मानने हैं ॥८५॥ ये सब ऊर्च से अकित आपके ही विष्णु हैं जो शुभ हैं हे नृप श्रेष्ठ । उनको देवगण मुझे अत्यन्त ही प्रीति होती है । जो ये त्रिपुण्ड्र भाल वाले हैं और हाथ में स्ट्राज की माला धारी हैं जो कि गिन सूक्त का पाठ कर रहे हैं उनको देवगण दिन लोफ में बच्च गिरता है । १८६। ८७। धर्म का उपग्रह यह क्या है अथवा अङ्ग में भस्म का धारण करना भी क्या है । स्ट्राज्ञा कौन है और रुद्र कौन है और उमक सूक्त क्या है । ८८। एव विष्णु ही परम देह है । अन्य कभी भी कोई देव है ही नहीं । उमक य आयुषा के चिह्न है । अतएव गौण्य जल सदा ही पूजने के योग्य हैं ॥८९॥

अनादिना प्रमाणेन वेदेन प्रोच्यते गिन ।
 विष्णोरप्यधिगो विप्र मपूज्यो न कथ भवेत् ॥९०॥
 शिवादिषु पुराणेषु प्रोच्यते शङ्करो महान् ।
 सर्वासु स्मृतिषु ब्रह्मञ्जिवाचारेषु सर्वत ॥९१॥
 नानागमेषु पुण्येषु प्रोच्यते ह्यज ईश्वर ।
 कठोर वाक्यमेतत्तो भाति चेतमि भेऽशनि ॥९२॥
 नैकाग्रमनसस्ते तु येऽव्यन्तीह घूर्जटिम् ।
 श्मशानवासी दिग्वासा ब्रह्ममस्तकधृग्भव ॥९३॥
 सर्पहार कथ सेव्यो विपधारी जटाधर ।
 तस्माद्विष्णु सदा सेव्य मुन्दर कमलापति ॥९४॥
 नानारूपाणि रुद्रस्य के जानन्ति नराधमा ।
 त्व वैष्णव इवाऽऽभासि वेदार्थ नैव वेत्सि रे ॥९५॥
 चिन्तयित्वा ततो राजा विदुषो ब्राह्मणोत्तमान् ।
 आहूय निर्णय चास्य करिष्यामीति तत्त्वत ॥९६॥

राजा ने कहा—अनादि प्रमाण वाले वेद के द्वारा भगवान् शिव
 कहे जाया करने हैं। हे विष्णु भगवान् शिव तो विष्णु मे भी अधिक
 पूजा के योग्य होते हैं फिर ऐसा क्यों नही होना चाहिए। १६०। शिवे
 आदिक पुण्यों मे भगवान् गङ्गु महात् कहे जाते हैं। तब स्मृतियों मे
 हे ब्रह्मन् ! सभी शिवाचारो मे और नाना आगतो मे और प्रणयग्रन्थो मे
 अज ईश्वर बताये गये हैं। आपका यह वाक्य अत्यन्त ही कटोर प्रतीत
 होना है और मेरे चित्त मे एक वज्र के समान ही आघात पहुचा रहा
 है। १६१। १६२। वैष्णवशास ने कहा—वे एकाण्वाग्रमन वाले नही है जो
 धूर्जाटिका अर्चन किया करते हैं भव श्मशान मे निवास करने वाले—
 दिगम्बर (नग्न) और ब्रह्म मरकत को धारण करने वाले है वे सर्पो
 का हार पहिनने वाले हैं विषधारी और जटा रखने वाले हैं ऐसे शिव
 का सेवन क्यों करना चाहिए। कमला के स्वामी विष्णु परम सुन्दर
 हैं। १६३। १६४। राजा ने कहा—भगवान् रुद्र के अनेक स्वरूप हैं यौन
 अधम नर उनको जानत हैं। तुम वैष्णव के समान ही भासित हो रहे
 हो विष्णु अरे ! तुम बंदो के अर्थ का नही जानते हो। १६५। मुनजी ने
 कहा—इसके अनन्तर राजा ने चिन्तन करके उजम विद्वात् धातुण को
 बुला कर कहा कि आज तारिख ह्य मे इम बात का निर्णय में
 करेगा। १६६।

॥ कलि प्रवेशादि कथन ॥

गृह मत्वा म्पिगे भूत्वा यावदाह्वयते द्विजान् ।
 तावदेव वनि पापी ब्राह्मणेपु विवेक ह ॥१॥
 यस्मिन् राजानमाश्रित्य श्रूते तादृशमेव हि ।
 अग्न्योन्यामर्षयोगेण सण्डयन्ति परम्परम् ॥२॥
 मारीभावाश्रिता केचिरनेचिद्यार्यवादिन ।
 यो मया वन्ति तस्मादगित्य रेचिद्योचिरे ॥३॥

इति कोलाहले वृत्तो याजचेतसि निर्णये ।
जाते लोके नास्तिकता वसव प्रतिपेदिरे ॥४॥
राजा वेत्ति महामूर्खं न तु मायाविन द्विजम् ।
लोके तु भ्रान्तिमापन्ने राजा चिन्तापरोऽभवत् ॥५॥
ईश्वर हन्ति दुष्टात्मा वध्योऽय मम शास्त्रत ।
पर तु लोको ब्रह्मघ्न मिथ्या मा तु वदिष्यति ॥६॥

सृजजी ने कहा—गृह म जाकर स्थिर होकर जब तक द्विजा का आह्वान करता है तभी तक पापी कलि थे ब्राह्मणा म प्रवेश कर लिया था ।१। कोई राजा क पास आकर वैसा ही बालता था और अन्योय अमर्ष के योग म परस्पर म एक दूसरे की बात का खन्डन कर रहे थे । २। कुछ लोग मूकीभाव का ही आशय लेकर स्थित थे और कुछ कुछ यथाय वाद क करने वान थे । जो जैसा कहता था वह उस प्रकार बो या । और कुछ इस प्रकार से कह रह थे ।३। इस तरह से महान् कोलाहन के हो जाने पर राजा के चित्त म निणय के होने पर लोक म बहून से नास्तिकता के भाव को प्राप्त हो गय थे ।४। राजा मायावी द्विज को महामूर्ख नहीं जानता है । लोक के इस प्रकार से भ्रान्ति म प्राप्त हो जाने पर राजा अत्यन्त ही चिन्ता परायण हो गया था ।५। यह दुष्टात्मा ईश्वर का हवन करता है । शास्त्र के अनुसार इसका मुझको बध कर देना चाहिए किन्तु लोक मुझको ब्राह्मण के हनन करन वाना मिथ्या ही कहगा ।६।

एतस्मिन्समय प्राप्ते लोकपूर्वपितामहा ।
स्वर्गाम्ब्रुवा ह्यनेकानि नरकाणि प्रपेदिरे ॥७॥
र पा पुत्राश्च पौत्राश्च प्रतिपौत्राम्नयाऽपरे ।
मातामहादिवर्गाश्च सखिसबन्धिवान्धवा ॥८॥
शिवावगणनोद्भूतपातका यमलोकगा
सुदृत भस्मता यात मद्यादङ्गोदक यथा ॥९॥

एतस्मिन्नेव काले तु कमलाहृदयगम ।
सुप्त आक्रन्दमकरोच्छ्रोणितौघपरिप्लुत ॥१०॥

लक्ष्मीर्हृद्घ्राज्य तद्रूप विह्वल भयविह्वला ।
प्राप्ताऽऽश्चर्य महाधोर रुरोद भृश खिता ॥११॥

वेदान्तवेद्य पुरुषेश्वर देवदेव
त्रैलोक्यनाथ किमिद त्वयि दृश्यतेऽद्य ।

आकारमात्ररहित पुरुष पुराण
स्त्वय्येव विश्वमिह रज्जुभुजगमानम् ॥१२॥

शैला पतन्ति जलधिमंस्तामुपैति
सूर्यादयो हतरुच पृथिवो पराणु ।

भूतानि चाच्युत विभो विलय प्रयान्ति
त्वद्रोममात्रमपि नैव चलेत्क्षणार्धम् ॥१३॥

श्री सूतजी ने कहा—इस समय के प्राप्त होने पर लोक पूर्ण पिता-मह स्वर्ग से अष्ट हुए अनेकों नरकों में प्राप्त हो गये थे । ७। जिनके पुत्र-पीन-प्रति पीन तथा दूमरे मातामह वर्ग वाले सखा सम्बन्धी और बान्धव भगवान् शिव को अवगणना से उद्धूत पातक वाले हो गये थे वे सब यमलोक में गये थे । उनका सभी सुदृढ भस्मी भूत हो गया था जैसे मद्य से गङ्गो का जल भी अपवित्र हो जाया करता है । ८। इसी काल में यमता का हृदय गम सुप्त होता हुआ शोणित के ओघ से परिप्लुत हुआ आक्रन्द करता था । लक्ष्मी ने विह्वल उस रूप को देखा तो वह भय में विह्वला हो गयी थी । उनको महान् आश्चर्य प्राप्त हो गया था और वह अत्यन्त दुःखित होकर होकर गन्दन करने लगी थी । ९। १०। लक्ष्मी देवी ने कहा—हे वेदान्त के द्वारा जानने के योग्य । हे । के ईश्वर । आप देवों के भी देव है । हे त्रैलोक्य के नाथ । आज यह क्या दिव्यनाई दे रहा है । आपतो आकार मात्र में रहित पुराण पुरुष हैं । आप में ही यह विश्व रज्जुभुजग मान स्थित है ।

शैल जलाधि म गिगते हैं और जनाधि अरूनों को प्राप्त होता है । सूर्य्य आदि सब क्षीण कान्ति वाले हो गये हैं—पृथिवी पराणु हो गई । हे अच्युत ! हे विभो ! भूत सब विलय को प्राप्त हो रहे हैं , आपका रोम मात्र भी आधे क्षण तक नहीं चरता है । १२।१३।

उपत त्वया तदपि तद्विम तथैव क्विंतु
मत्स्वामिनोऽवगणना न हि शक्यते मे ।

क्रवाऽपि पूज्यतममूर्तिम गिरीश

नो मन्यते तदिह वज्रमम ममैव ॥१४

सर्वान्मा सर्वत्रित्वर्ता ववना धर्ताऽयय प्रभु ।

त्व साक्षी सर्व लोकाना त्वत्त परतरोऽस्ति क ॥१५

अस्ति सर्वं वरारोहे मयि तत्तथ्यमेव हि ।

श्रीमद्देशवरात्पृथ मदीय न हि किञ्चन ॥१६

एकं मृजति भूतानि मत्समानि कियन्त्यपि ।

तत्तत्त्वा वेद्म्यह देवि मदीया वेचनापरे ॥१७

वेदवेदाङ्गवत्तणा सद्ब्रह्मण्यग्रजन्मनाम् ।

हननान्मुच्यत जीवो न तु श्रीशिवहेतनात् ॥१८

गुर्वङ्गनागमनकृत्मदा मद्यनिषेवक ।

ग्राह्यणस्वर्णहारी च कदाचिन्मुच्यत जन ॥१९

स्त्रीघ्नो गोघ्नो नृपघ्नश्च तथा विश्वामघातक ।

वृध्नो नास्तिकी लुब्ध कदाचिन्मुच्यते जन ॥२०

न तु श्रीरुद्रमामान्यदर्शी मुच्येत बन्धनात् ।

विरञ्चिविष्णुशक्रेभ्य सर्वोत्कृष्ट न जायते ॥२१

विष्णुना यदि वा तुल्य मुच्यन्ते नैव जन्तव ।

स्वामी मदीय श्रीरुठस्तम्य दासोऽस्मि सर्वदा ॥२२

श्री नारायण ने कहा—हे लक्ष्मी ! तुमने जो कुछ कहा है वह ठीक

बैसा ही है किन्तु मेरे स्वामी की अवगणना मुझ से सही नहीं जाती है ।

इन भगवान् गिरीश को पूज्यतम मूर्ति बाल करके भी जो इनका मान

नहीं किया करता है वह मुझे वज्र के ही समान आघात करने वाला होता है ॥१४॥ लक्ष्मी देवी ने कहा—आप तो सर्वात्मा है सबके ज्ञाता हैं—सबके कर्ता है—वक्ता—घर्त्ता—अव्यय और प्रभु हैं। आप सभी लोका के साक्षी हैं। आप से भी पर तर कौन है ? ॥१५॥ श्री नारायण ने कहा—हे वरारोहे ! सबही है मेरे विषय मे जो कुछ तुमने कहा वह सब ही तथ्य ही है। मैं ने भी महेश से ही वरदान प्राप्त किया है और मेरा अपना वास्तव मे कुछ भी नहीं है ॥१६॥ वे एक ही ऐसे शक्तिशाली महा पुरुष है जो एक अकेले ही मेरे समान कितने ही भूतो का सृजन किया करते हैं हे देवि ! उस तत्व को जानता हू और जो मेरे कुछ दूसरे हैं वे जानते है ॥१७॥ वेद वेदाङ्गो के ज्ञाता सहस्रो विप्रो के दमन से जो महा पाप होना है उससे भी जीव मुक्त हो जाया करता है किन्तु श्री शिव की अवहेतनाकर ने से जो पाप होता है उससे छुटकारा कभी नहीं होता है ॥१८॥ गुरु शय्या पर गमन करने वाला और सदा मंदिरा के सेवन करने वाला और ब्राह्मण के स्वर्ण का हरण करने वाला जन भी कदाचित मुक्ति पा सकता है स्त्री का ह-ता-गो का दमन करने वाला नृप को मारने वाला तथा विश्वाम का घात करने वाला—कृत् को न मानने वाला—ईश्वर की सत्ता को नहीं मानने वाला और तुच्छजन शायद कभी मुक्त हो सकता है किन्तु भगवान् रुद्र को सामान्य समझने वाला मनुष्य पाप के बन्धन से कभी मुक्त नहीं होता है। जो यह कहे है कि शिव श्रद्धा विष्णु इन्द्र से सर्वोत्कृष्ट नहीं है ! यदि यह भी कहे कि वे विष्णु के तुल्य ही है उस पाप से भी जन्तु मुक्त नहीं होते हैं। मेरे स्वामी श्रीगण्ड हैं और मैं सबदा उनका दास ही हू ॥१९॥२०॥२१॥२२॥

गच्छामस्तत्र चकुण्ठ यत्र स्वाम्यस्ति ते विभो ।

वैलासपर्वने रभ्ये प्रणमाम सदाशिवम् ॥२३

तनस्त्रै गृह्णारुढो गत्वा वैनासपर्वतम् ।

नानापिथ स्तोत्रपदैः सगुणैश्चक्रनु क्षणात् ॥२४

तनो ब्रह्मादया देवा सिद्धास्तत्राऽऽगता गिरी ।

रुद्र वीतूङ्गनप्रेम्पु सर्वैस्तै परिवारित ॥२५

भवानीसहितस्तत्र गतो यत्र प्रतर्दन ।

मर्धेऽवविमानाना मध्ये तिष्ठति शक्रः ॥२६॥

कथयन्तु कथ ह्येते मतिता. सर्वनिर्जरा ।

किं कार्यं किमपूर्वा वा राजा चिन्तातुर कथम् ॥२७॥

श्री लक्ष्मी देवी ने कहा—हे विभो ! हे वैकुण्ठ ! चलो वहाँ पर ही गमन करो जहाँ पर आपके स्वामी विराजमान रहते हैं । परम श्रेष्ठ कैलास पर्वत पर हम लोग सदा शिव प्रभु को चलकर प्रणाम करें ॥२३॥ श्री सूनजी ने कहा—इसके उपरान्त वे दोनों गरुड पर समावृद्ध होकर कैलास पर्वत पर गये थे और वहाँ पर अनेक प्रकार के छोटो के द्वारा स्वयं न करके क्षण भरमे ही उनको सन्तुष्ट कर दिया था ॥२४॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा आदि देव और सिद्ध गण भी उस गिरि पर वहाँ समागत हो गये थे । कौतूहल को देखने की इच्छा वाले भगवान् रुद्र देव उन सबके द्वारा परिवारित कर लिये गये थे ॥२५॥ भवानी के सहित भगवान्, शम्भु वहाँ पर गये जहाँ राजा प्रतर्दन विद्यमान था । सब देवों के विमानों के मध्य में भगवान् रुद्र विराजमान थे ॥२६॥ श्रीमद्भाग ने कहा—आप लोग सब यचनाइये कि किस कारण से ये सब निर्जर (देव) सम्मिलित होकर समागत हुए हैं ? ऐसा क्या कार्य है और क्या कोई अपूर्व बात है ? राजा चिन्ता में आनुर क्यों हैं ? ॥२७॥

स्वामिप्रतर्दनो राजा विविलब्धवरोऽभवत् ।

वेदमार्गप्रवृत्ता च स्वयं तस्य प्रवर्तक ॥२८॥

मृष्टिरक्षार्थमस्माभि कपटं कृत्वाऽश्वरः ।

सर्वेधानुश्रव भवतो हेनन कारित सुरैः ॥२९॥

तत्सामस्व महादेव किनरोऽप्य प्रवर्तितः ।

कल्पितो द्रोणवाऽस्माभिस्त्व निन्दापरायणः ॥३०॥

एतस्मिन्नेव काले तु राजा वृत्तान्तमेगिवान् ।

सीधं गच्छं ममादाय हनवाऽनिर श्रुत्वा ॥३१॥

तत्पक्षपातिनो ये च तेषा शीर्षापि कथरात् ।
 पृथक्कृतानि पशवाद्या हता अश्वा अनेकश ॥३२
 न त वारयते कश्चिद्राजान पुण्यचेतसम् ।
 महादेवेन क्षमित क्रोधस्तस्य महात्मन ॥३३
 ततः कोलाहले शान्ते नदी कौतुकपूर्वकम् ।
 युयोज ह्यशीर्षे तच्छरीराणि पृथक्पृथक् ॥३४
 शीर्षाणि ह्यगात्रीश्च सम्यक्सयोज्य बुद्धिमान् ।
 उवाच वचन तथ्य देवससदि शुद्धगी ॥३५
 येन वक्त्रेण गिरिशो हेलितरतन्मुख ह्य ।
 मुद्राधारणगर्धेण हेलितस्तत्तनुर्दय ॥३६

देवो ने कहा—हे स्वामिन ! राजा प्रतर्दन विधाता से वरदान प्राप्त करने वाला था । वह वेद के मार्ग का प्रवर्तक था ॥२८॥ सृष्टि की रक्षा के लिए हम सबने हे ईश्वर ! कपट किया था । सुरो ने सर्व धाता आपकी अवहेलना कराई थी ॥२९॥ हे महादेव ! उसको अब आप क्षमा कर दीजिए । यह विघ्न ही उसका प्रवर्तक है । हमने इसको वैष्णव रूप वाला कल्पित कर दिया था यह आपकी निन्दा में तत्पर हो गया था ॥३०॥ सूत जी ने कहा—इसी काल में राजा ने वृत्तान्त प्राप्त कर लिया था और तीव्र लज्ज हाथ में लेकर क्रोध से उस विघ्नर को भी मार डाला था ॥३१॥ उसके पक्षपात करने वाले जो भी उनके शीर्षों को कथरा से पृथक् कर दिये गये थे । पशु आदि अनेक अश्व मारे गये थे ॥३२॥ उस मुग्ध चित्त वाले राजा को कोई भी निवारित नहीं करता है उस महान् आत्मा वाले का शोष महादेव जी ने ही क्षमित किया था ॥३३॥ इससे अनन्तर कोलाहल के दान्त हो जाने पर नन्दी ने कौतुक पूर्वक हमसे शीर्षों में पृथक् २ अङ्गों को याजित कर दिया था ॥३४॥ बुद्धिमान ने शीर्षों को अश्व के गानो में भगी भानि सयोजित करके शुद्ध वाणी वाले देवो की मगद में तत्पर समय दिया था । त्रिग मुग्ध

गिरिश ये और हेलित उनका मुख देय था । मुद्रा धारण के गर्व से उसके शरीर वाला हेलित हुआ था ॥३५॥२६॥

जात तदधुना तथ्य राजर्षो राज्यकर्तारि ।

भविष्य कथयिष्यामि तच्छृगुध्वं समाहिता ॥३७

घारे कलियुगे प्राप्ते म्लेच्छर्षिप्ते भुवन्वले ।

सर्वाचारपरिभ्रष्टा भविष्यान्त नराधमा ॥३८

तदाऽऽग्नीदेशमध्ये तु दाक्षिणात्यो भविष्यति ।

ब्राह्मणो दुभग कश्चिद्विधवाब्राह्मणीरत ॥३९

तस्य पापिष्ठविप्रस्य व्यभिचारात्मुनोऽनघ ।

भविष्यति गुणान्वेगी देवादद्यायनात्सुरः ॥४०

पद्मपादुरुमाचार्यं वर वेदान्तवादिनम् ।

अद्वैतागमबोद्धारं प्रणम्य प्रार्थयिष्यति ॥४१

विप्रोऽहं मधुशर्माऽस्मि स्वामिन्मा पाठय प्रभो ।

वेदान्तशास्त्रसर्वं च मह्यं पाठय भो गुरो ॥४२

श्री श्याजी ने कहा था—जो राज्य कर्ता राजर्षि के विषय में जोनध्य था वह अब तक बना दिया गया है । आगे जो भविष्य है उसका वर्णन करेगा । आप लोग परम सावधान होकर उसका ध्यान करिए ॥३७॥ घोर कलियुग के प्राप्त होने पर इन भूमण्डल के म्लेच्छों के द्वारा व्याप्त हो जाने पर अधम नर सभी प्रकार के अच्छे आचरणों में परिभ्रष्ट हो जायेंगे ॥३८॥ उन समय में आग्नेय देव के मध्य में दाक्षिणात्य होगा । कोई दुर्भग ब्राह्मण विधवा ब्राह्मणी में रति रखने वाला होगा । उस महान् पापिष्ठ विप्र का व्यभिचार से अनघ मुन होगा जो गुणों का अन्वयन करने वाला और देव वग अन्वयन करने में समुत्तम होगा ॥३९॥४०॥ वह परम श्रेष्ठ-वेदान्त का वादी पद्मपादु आचार्य को जो अद्वैतागम को उद्धारण से प्रणाम करके प्रार्थना करेगा ॥४१॥ हे स्वामिन् ! हे प्रभो ! मैं मधुशर्मा नाम का विप्र हूँ । हे गुरार ! तमूल वेदान्त शास्त्र मुझसे आज पढ़ाये ॥४२॥

आचार्यं कर्षणामर्तिविनियेन परिप्लुप्तम् ।
 करिष्यति च शिष्याणामग्रण्य प्रेमवत्सल ॥४३
 ततो दिने दिने भक्ति करिष्यति यथा यथा ।
 गुरुर्भवति सनुष्ट सर्वा विद्या प्रयच्छति ॥४४
 एकदा गुरुणा दृष्ट स्नानसध्यादिका क्रिया ।
 अकृत्वा भोतनप्रेम्भुर्भविष्यति निराह्लिक ॥४५
 पृष्टोऽसौ गुरुणा तथ्य गोलको हि वदिष्यति ।
 घमं साधारणो नाथ कृतोऽय केन कुप्यसि ॥४६
 ततो वक्ष्यत्यथाऽऽचाय कस्ते तात प्रसूश्च का ।
 ततो मे ब्राह्मण स्वामि-ब्राह्मणी च प्रसूमम ॥४७
 वद मातामह कस्ते येन प्राप्ता प्रमूरतव ।
 को विधि कुत्र वा दत्ता तथ्य शीघ्र वदान्यथा ॥४८
 भस्मसात्त्वा करिष्यामि हीन ब्राह्मणवचसा ।
 इत्येव कथिते सर्व कथयिष्यति तत्त्वत ॥४९

प्रेम वत्सल आचार्य कर्षणा की मूर्ति थी विनय से परिप्लुत उसको शिष्यो मे सबका अग्रणी उसको कर देंगे ॥४३॥ इसके पश्चात् दिन-दिन मे जैसे २ वह भक्तिभात्र करेगा गुरुदेव परम सन्तुष्ट होकर अपनी विधा उसको दे देते हैं ॥४४॥ एक बार गुरुवर ने उसको देखा था कि वह स्नान-सन्ध्योपासना आदि कुछ भी क्रिया न करके हो निराह्लिक वह भोजन का प्रेम्भु हो जायगा ॥४५॥ गुरु जी ने उससे यथार्थ बात पूछी थी तो वह गोलक कहेगा । हे नाथ ! घम तो साधारण है वह कर लिया गया है फिर किस कारण से कुपित हो रहे हैं ॥४६॥ इसके पश्चात् आचार्य उससे कहेंगे—तेरी माता कौन है और तेरा पिता कौन है । इसके अनन्तर उसने कहा था—हे स्वामिन ! मेरे तात ब्राह्मण थे और मेरी माता भी ब्राह्मणी थी । फिर गुरुजी ने पूछा था—तेरा माता-मह कौन था जिससे तेरी माता प्राप्न हुई थी ? क्या विधि से विवाह हुआ था । वहा पर उसको दिया गया था—वह सब तथ्य टीक २

वतलाओ अन्यथा अर्थात् सही-सही न वतलाने पर मैं तुझको भस्म कर दूँगा क्योंकि तू ब्राह्मण के वर्चस्व से हीन है । इस प्रकार से कहने पर वह सब कुछ तात्त्विक रूप से कह देगा ॥४९॥

शाप दाम्पत्ययाऽऽचार्यं सिद्धान्तो मा स्फुरत्त्रलम् ।
 सिद्धान्ते जडता तेऽस्तु परमद्वैतदर्शने ॥५०॥
 कथं त्वदीया सेव्या मे निष्फला स्याद्द्वय प्रभो ।
 इत्यादिप्रहृनिर्वेद यदा खेप करिष्यति ॥५१॥
 पश्चाद्दिष्यति स्वामी पूर्वपक्षोऽस्तु ते दृढ ।
 सिद्धान्ते सर्वपैवाऽऽद्ध्य मम वाक्यं न चान्यथा ॥५२॥
 मधुना तेन शास्त्राणां पूर्वपक्षो विलोभित ।
 भविष्यति च वेदान्तमन्यथा कर्तुं मुद्यत ॥५३॥
 यथा यथा कलेर्वा प्रचारः सभाव्यति ।
 तथा तथाऽपमुन्माद्य शिवद्वेषु भविष्यति ॥५४॥
 पूर्वं तु द्वाविडाद्देहात्कर्णाटकतिलङ्गणे ।
 शनैर्वादावरीतीरे प्रसृतोऽप्य भविष्यति ॥५५॥
 पूर्णं बलियुगे प्राप्तं आर्षविते चलिष्यति ।
 मायावादमसच्छस्त्रं वदिष्यन्ति नराधमा ॥५६॥

इसके अनन्तर वह आचार्य शाप द देने यह नास्त्र जो तूने पढ़ लिया है उसका सिद्धान्त तुमको पूरा रूप से स्फुरित न ही होगा । परम द्वैत दर्शन में सिद्धान्त में तुम्हें जडता होवेगी ॥५०॥ जब यह सिद्धि त्रित समय में प्राथना करेगा कि हे प्रभो ! आपकी इतने दिन तक की हृद्द मेरी सेवा निष्फल क्यों हो जायगी— यह तो आप मुझे बयाना कीजिए । इत्यादि प्रकार का बहुत-सा निर्वेद करेगा तो पीछे स्वामी पीछे कहेंगे कि तेरा पूर्व पक्ष तो गुरुद रहेगा परन्तु सिद्धान्त में अक्षय ही रहेगी क्योंकि मेरे पुत्र से निकला हुआ वाक्य अक्षय नहीं होगा । अर्थात् तो तार देने दे दिया है यह असत्य नहीं होगा ॥५१॥५२॥ उन मधु न दाम्प्यो का पूर्व पक्ष दगा था और वेदान्त को अक्षय करने के विषे

वह उद्यत हो जायगा ॥५३॥ हे देवो ! जैसे जैसे कलिका प्रचार होगा वैसे वैसे ही यह शिव के द्वेष्टा का उन्मर्ष होगा ॥५४॥ सब से पूर्व में यह द्रविड देश में होगा और वहा से फिर यह कर्णटक और कलिङ्ग देशों में होगा तथा शनैः शनैः गोदावरी ने तट पर यह प्रसृत हो जायगा ॥५५॥ कलियुग के पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाने पर यह आर्षवित्त में चलेगा । अधम नर मायावाद असत् शास्त्र को ही बोला करेंगे ॥५६॥

तेषां दर्शनमात्रेण सचैल स्नानमाचरेत् ।

भद्रात्व च यथा विष्टे राहो स्वभानुना यथा ॥५७

हरित्व च यथाऽनेके तर्थात्ते तत्त्ववादिन ।

योगनिन्दापरा नित्यमग्निहोत्रस्य निन्दका ॥५८

वेदान्तसममित्याहु पुराणानि च ये नरा ।

केवल वेपमात्रेण नरा नरकगामिण ॥५९

सभापणे कृते येषां पतेच्च ब्रह्मवचस ।

वर बौद्धस्तथा जैन कापालिभ्रमतोऽपि वा ॥६०

व्यक्त वदति वेदानामप्रामाण्यं तु तैः किमु ।

वेदप्रामाण्यवत्कृत्वाऽभिमानो न च वैदिन ॥६१

ईश्वर वचनाद्वक्ति पर चानीश्वर एव ।

एव जाते तन सर्वे यथागतमितो गना ।

प्रतर्दनोऽपि राजर्षि कृत्वा राज्यमकण्टकम् ॥६२

देहान्ते मुक्तिमाप्नु परामर्द्वैतलक्षणाम् ।

तत पर भविष्यन्ति तस्य शिष्या आकश ॥६३

उनके अर्षान् ऐसे अधम मनुष्यों के दान मात्र से ही वस्त्रों के सहित स्नान करना चाहिए अर्षान् दर्शन करने के समय में जो भी वस्त्र पहिने हुए हो उन सबके ही सहित स्नान करे । विष्टि की जैसी भद्रात्व होनी है और राहू को स्वभानुना होती है वैसे ही हरित्व है इन प्रकार से अज्ञान लक्ष्य काशी लक्षण कटाकरेंगे । वेदप्रतीक वाक्यकी निन्दन करने पराएण होंगे तथा नित्य ही अग्निहोत्र की निन्दा करते जायेंगे

॥५७॥ ५८॥ जो नर पुराणो को वेदान्तशास्त्र के ही समान कहते हैं वे केवल वेप मात्र से ही नर हैं और नरको में गमन करने वाले होते हैं ॥५९॥ जिनके साथ सम्भवाण करने से ही मनुष्य ब्रह्म व चंत से पतित हो जाया करता है । इनसे अच्छा तो बौद्ध—जैन अथवा कापालिक ही माना गया है । तात्पर्य यह है कि यह ता बौद्धादि से ही गया बीना है ॥६०॥ जो खुल तौर पर वेदो का अप्रामाण्य कहता है उनमे क्या है । यह अभिमान ही रखने वाला है और वास्तव में वैदिक नहीं है यह वेदा को प्रामाण्य की तरह कहा करता है । यह ईश्वर को बचन से ही कहता है और खल स्वयं अनीश्वर अर्थात् ईश्वर का नहीं मानने वाला हाता है ॥६१॥ श्री सूतजी ने कहा— इस प्रकार स हान पर सब जहाँ से आय थे चने गये थे । राजपि प्रतदन भी अपने राज्य को निष्पण्टक बनाकर उसका भोग करता था । जब उसका देह का अन्त हो गया तो वह उसी समय म पर अद्वैत लक्षणो वाली मुक्ति को प्राप्त हो गया था । इसमें पश्चात् उसके अनेक शिष्य हागे ॥६२॥६३॥

गन्यासिवेपमात्रेण कुर्याणा जीविता निजाम् ।
 राजसेवा प्रनुर्वाणा प्रच्छन्ना कौलिका अपि ॥६४
 अगम्यागभने सत्ता अभद्यस्य च भक्षणो ।
 अपेयनिरता केचित्तानाभोगममाकुला ॥६५
 यानाहृडा मदा राजसेवाया तत्परा अपि ।
 अद्वैतनिन्दानिरता प्रच्छन्नग्रन्थगौरवा ॥६६
 अन्यदशानसिद्धान्त नैव जानन्ति तत्त्वत ।
 तस्य दोषस्य बुद्ध्या चै पठिष्यन्ति कस्यो युगे ॥६७
 अन्यदैवतमानानि यदि हेयानि तत्परम् ।
 वेद पठन्ति पापिष्ठाः नय तक चदन्ति हि ॥६८
 भीमासाशास्त्रगद्ग्रन्यानालीनर च पुन पुन ।
 पूर्वपक्ष च गर्भे पा ग्रहीष्यन्ति नम गरा ॥६९

स्वकीय न वदिष्यन्ति यतो नास्ति प्रमाकरम् ।

हसान्परमहसाश्च निन्दिष्यन्ति च जारजाः ॥७

केवल सन्यासियों के वेप मात्र से यह रहा करते है और अपनी जीविका किया करते है । ये राज सेवा करने वाले प्रच्छन्न कौतिक भी होते हैं ॥८॥ ये सब जो गमन करने के योग्य स्त्री नहीं है उसमे भी आसक्त रहते हैं और अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण करने मे निरत रहा करते हैं । जो पेय पदार्थ नहीं है उसका पान किया करते हैं और कुछ तो अनेक प्रकार के भोगों मे सलग्न रहा करते हैं ॥९॥ ये सदा यानो मे समाच्छुद्ध रहकर भ्रमण किया करते है तथा राज--सेवा मे भी तत्पर रहते हैं । ये अद्वैतवाद की सदा निन्दा करने मे ही निरत रहे हैं और छिपे हुए ग्रन्थो को गौरव वाले होते हैं ॥१०॥ ये लोग अन्य दर्शनों के तात्विक रूप से नहीं जानते हैं । उनमे केवल दोष देखने की ही बुद्धि से कलियुग मे पढा करेंगे ॥११॥ अन्य देवों के नाम यदि देय ही हैं तो क्यों पापिष्ठ लोग वेद को पढते हैं और क्यों तर्क को कदा करते हैं ? ॥१२॥ मीमांसा शास्त्र के सह ग्रन्थो को देखकर वारम्बार सबके पूर्व पक्षों को ही ग्रहण भत्सरता के साथ करेंगे ॥१३॥ और अपना सिद्धान्त कुछ भी नहीं बतायेंगे क्योंकि प्रमा के करने वाला ज्ञात ही उन्हें नहीं होता है । ये जार से समुत्पन्न हुए लोग हसों की निन्दा करेंगे ॥१४॥

जातमात्र नर कचिन्मुण्डयित्वा मठाधिपम् ।

कापायवस्त्रमात्रेण करिष्यन्ति नराधमाः ॥१५

माठापत्य च सेवा च धनसंग्रह एव च ।

दासीगमनमीर्ष्या च पञ्चधा तत्त्ववादिनः ॥१६

सारास्त्वस्त्वमित्येव पर ते तत्त्ववादिनः ।

मायाविलसित विद्वामिति मायंकवादिनः ॥१७

शुद्ध सत्य न ज्ञानं चिन्त्य सत्यं सत्यं च ।

शब्दमात्रेण ते जाताः कलो हा तत्त्ववादिनः ॥१८

भविष्यति यदा विप्रा पापाना प्रभव कलो ।
 तथा तथा भविष्यन्ति ह्युदीच्या दम्भवैष्णवा ॥७५
 शिवसामान्यवक्तार शिवसामान्यदर्शिनम् ।
 दृष्ट्वा स्नायात्सचैलः सञ्जिवसामान्यसाङ्गन्म् ॥७६
 मधुदर्शितमार्गेण पापिष्ठा वैष्णवाः कलो ।
 भावष्यन्ति ततो म्लेच्छाः शूद्रा यूयवहिष्कृता ॥७७
 तस्माच्छृणुष्व विप्रेन्द्रा माहात्म्य पार्वतीपते ।
 भविन तस्य सदा कर्तुं मुद्यता भवत ध्रुवम् ॥७८

जातमात्र किसी मनुष्य को मुण्डित कराकर अधम मनुष्य कापाय
 वस्त्र मात्र पहिनाकर उसको मठ का स्वामी कर दिया करेंगे ॥७५।
 मठ का अधिपति बनना—मेवा करना घन का सग्रह करना
 दासियों का गमन करना और ईर्ष्या की भावना रगना—ये ही वे पाँच
 प्रकार के तत्त्वों के वादी होने हैं ॥७२। यह ससार ही परम तत्त्व है—
 ऐमा ही ये तत्त्ववादी कहा करते हैं अर्थात् समझते हैं । यह माया का
 ही रिताम है ऐमा माया के ही वादी कहा करते हैं ॥७३। ये मय लोग
 घुड़ तत्त्व को तो बिल्कुल भी जानते नहीं हैं और इग विषय को ही
 तत्त्व कहा करते हैं । ये लोग शब्द मात्र से ही उत्पन्न हुए हैं । कविपुत्र
 में हा । बड़े मेद की बात है कि ये लोग तत्त्ववादी बने हुए हैं ॥७४।
 हे विप्रो ! जिस समय म कविपुत्र में पापों की उत्पत्ति होगी तो येमे-
 धिते ही उत्तर म दम्भ के द्वारा अपना आदम्बर बनाये हुए वैष्णव हो
 जायेंगे ॥७५। भगवान् शिव को एक सामान्य देव बोलने वाले पुण्य को
 भगवान् शम्भु को माघारण देव देखने वाले मनुष्य को तथा गदाशिव
 को सामान्य कहने वाले के शक्ती को देखकर भी शत्रुओं के महि त
 स्तान करना चाहिए ॥७६। मधु क द्वारा प्रदर्शित मार्ग में कविपुत्र म
 वैष्णव महान् पापिष्ठ हो जायेंगे । इगके बाद म्लेच्छ-शूद्र और मय मे
 बन्धित होंगे ॥७७। इगलिए हे विप्रेन्द्रो ! पार्वती क पति का महात्म्य

महेश्वर ही दाम हैं और उन्हीं की अनुकम्पा ने मुक्त हैं । १। यथाथं रूप स श्रुति स्मृति और पुराणा का यही सिद्धान्त है । इन्द्र और उषेन्द्र आदि सब भगवान् महेतव क ही सिद्धर हैं । ६। वेदान्त क द्वारा जानने योग्य पार्वती रमण ईशान को जो जानता है वही वैकुण्ठ समस्त देह धारियों के दुःख का हनन करने वाला है । ७।

वैकुण्ठ मन्यते सम्यगेशज्ञ म पुण्डर ।

य इन्द्र मन्यते सर्वस्वामिन स ऋषिर्मत ॥८॥

स्वर्ग लोक समाप्नोति मुन्याज्ञाप्रतिपालक ।

अद्वैत शिवमीशानमज्ञात्वा नैव मुच्यते ॥९॥

घोरे कलियुगे प्राप्ते श्रीशक्तरपराङ् मुखा ।

भविष्यन्ति नरास्तथ्यमिति द्वैपायनोऽब्रवीत् ॥१०॥

रद्रक्रोधाग्निनिर्दग्धे मन्मथे तस्य भार्यया ।

रत्या विलपिते तस्य सखायोऽप्यतिदु खिता ॥११॥

वमन्तादय आगत्य तामूवु कि विधीयते ।

भर्वात्तोनेशितु शभोर्वरावा वीरवा(वा)रण ॥१२॥

मन्येत घातक सर्वैर्लोकेऽपूज्यो भवेदयम् ।

तथा विघ्न प्रवर्त्तय्यो येन केनापि हेतुना ॥१३॥

जम्पाषाणीतिर्वत्तव्या न चलेद्यदि विचन ।

नेन मे दु सशान्ति स्यात्किञ्चिन्माय न नान्यथा ॥१४॥

यत् पुरन्दर ईशान को मन्त्रक वैकुण्ठ मानता है । जो मन्त्रके स्वामी इन्द्र को मानता है वह ऋषिमात्र मन्त्र है । ८। मुनिकी आज्ञा का प्रतिपालक स्वर्गनाथ को नतीभाति प्राप्त कर लेता है । अद्वैत ईशान भगवान् शिव का ज्ञान न प्राप्त करने कभी भी मुक्त नहीं होता है । ९। अत्यन्त घोर कलियुग के प्रारंभ ज्ञान पर नरा भगवान् शङ्कर क पराङ्-मुखा हा जायेंग—दुःख तप्य जयान् यथाय कथन का द्वैपायन मुनि ने बताया है । १०। अद्वैत की शाय सभी जगति म कामदेव की निर्दग्ध हो जाने पर उगकी भार्या रति के द्वारा अत्यन्त विताप करके पर उगके मता पाप भी ज्येन्त दुःखिता पर मर थ १११। यमज आदि म प्रारंभ

उस रति से कहा था क्या करना चाहिए । समस्त लोकों के स्वामी शम्भू से घेर का वारण करने में हम सब लोग विचारे क्या है अर्थात् तुच्छ हैं और कुछ भी नहीं कर सकते हैं । १२। रति ने कहा—सोक में यह सबके द्वारा अपूज्य हो जावे और घातक माने जावे—जिस किसी भी हेतु में उम प्रकार का ही विध्न करना चाहिए । १३। यदि कुछ भी नहीं चलता है तो इनकी अपकीर्ति तो अवश्य ही कहनी चाहिए । इसमें ही मेरे हृदय के दुःख की शान्ति किंचिन्मात्र हो जायेगी अन्यथा नहीं होगी । १४।

चतुर्दशसु विद्यासु गीयते चन्द्रशेखर ।
 वेदान्ता य च गायन्ति मृनय शसितव्रता ॥१५॥
 ब्रह्माद्या देवता सर्वा इन्द्रोपेन्द्रादयस्तथा ।
 न्यूनता तस्य यो ब्रूते कर्मचाण्डाल उच्यते ॥१६॥
 तेन तुल्यो यदा विष्णुर्ब्रह्मा वा यदि गद्यते ।
 पश्चिर्वर्षसहस्राणि विष्ठाया आयते कुमि ॥१७॥
 तुल्यता यदि नो शक्या न्यूनतायास्तु का कथा ।
 मित्रस्याऽऽनृष्यमिच्छाम सकट प्रतिभाति न ॥१८॥
 विचार्येव तदा सर्वे महामोहपुर सरा ।
 तपस्तेपुमंहारीद्र सर्वलोकभयकरम् ॥१९॥
 कदाचिद्भगवान्ब्रह्मा प्रादुरासीद्दयानिधि ।
 मोहो दम्भस्तथा क्रोधो लोभस्ते सेवका कले ॥२०॥
 पञ्चमो हेतुवादश्च मधुना सर्व आश्रिता ।
 तानुवाच ततो ब्रह्मा वृणीष्व मनसेप्सितम् ॥
 यथा वाणी च भवता तथाऽह दातुमुद्यत ॥२१

वमन्त आदि ने कहा—चौदहों विद्याओं में भगवान् चन्द्र शेखर गाये जाते हैं । जिनको वेदान्त गान किया करते हैं और शसित व्रत वाले मुनिगण गाते हैं । ब्रह्मा आदि समस्त देवता तथा इन्द्र उपेन्द्र आदि सब में जो भी शङ्कर भगवान् की न्यूनता बोलता है वह बर्ष

चाण्डाल ही कहा जाया करता है । १५।१६। उनके तुल्य ब्रह्म जन को कभी विष्णु कहे जाते हैं वह साठ हजार वर्ष पर्यन्त विष्ठा में क्रीडा होकर निवास किया करता है । १७। जब उनकी तुल्यता ही नहीं बतलायी जा सकती है तो फिर उनकी न्यूनता बताने की बात कुछ भी हो ही नहीं सकती है । हम मित्र का आनृष्य चाहते हैं । हमको बड़ा मद्धुट प्रतीत हो रहा है । १८। सूतजी ने यहाँ—उम समय में सबने इस तरह से विचार करके महागोह में आगे बढ़े हुए सब महा रोद्र और सब लोका को महान् भय करने वाला महान् रोद्र तप किया था । १९। किसी समय में दया के निधि भगवान् ब्रह्माजी प्रादुर्भूत हुए थे । कलि ने मोह-दम्भ-क्रोध-लोभ यही सब सेवक थे । २०। पचिवा हेतु वाद था । ये सब मधु के द्वारा ही समाश्रित थे । उन सबसे ब्रह्माजी ने कहा था आप सब मन का अभीष्ट वरदान माँग लो । जैसी वाणी आपकी होगी वीसा ही मैं देने को उद्यत हूँ । २१।

अम्माक परम मित्र वदर्पो नाशित प्रभो ॥२२॥

महादेवेन तेनामी आनृष्य कर्तुं मुद्यता ।

भविष्यामो वय तात रद्रपूजाभिनिन्दवा ॥२३॥

यथा न लभते पूजामम्मत्तश्चन्द्रशेखर ।

अधुना न भवेदेव भविष्यत्यय तद्विरम् ॥२४॥

भविष्याम इति प्रोक्त भवतो नान्यथा कचित् ।

ये भवद्दशगा लोकास्तेम्य पूजा न धूर्जटे ॥२५॥

प्रायितोज्य वरो दत्तो ययेष्ट कर्तुं मह्य ॥२६॥

इत्युक्त्वत्वा तानयो ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ।

सर्वे ते मन्त्रायाचक्रु रनिना मह दु म्पिता ॥२७॥

मोह आदि ने कहा—हे प्रभो ! हम माता का परम मित्र कर्ता का महादेवजी ने बिनाग कर दिया है । उनसे हम सब आनृष्य करने के निचे उद्यत हैं । हे तात ! हम रद्र देवकी पूजा का विरोध निम्ना करने के निचे प्रणुत होना चाहेगे । हे तात ! निन्दक होने का ही वरदान

दीजिए । २२। २३। हम ऐसा ही चाहते हैं कि चन्द्रशेखर हमसे पूजा प्राप्त नहीं करें । ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार की बात इस समय में तो नहीं होगी-हाँ, यह लम्बे समय के पश्चात् हो जायगी । आप लोगों ने यही कहा था कि “हो जायेंगे” अन्यथा कभी भी नहीं है । जो आप जैसे मनुष्य है उनसे ही घूर्जंगि प्रभु की पूजा न होगी । २४। २५। यह तुम्हारा माँगा हुआ वरदान दे दिया है । अब आप यथेष्ट करण के योग्य है । २६। मृतजी ने कहा—इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने यह इतना ही उनसे कहा था और वे वही पर अन्नर्घ्यनि हो गये थे । उन मरने काल के साथ मन्त्रणा अत्यन्त दुःखित होते हुए भी थी । २७।

भविद्भूरधुना नोक्त भविष्याम इतीरितम् ।
 ततो मत्समये प्राप्ते गर्वमेव भविष्यति ॥२८॥
 अस्मत्त इति यत्प्रोक्त तेन चास्मद्वशे स्थिता ।
 निन्दाकरा भविष्यन्ति नारमान्यो मन्यते न स ॥२९॥
 लोभमोहादिसयुक्ता प्राप्ते च मयि दास्यते ।
 हेतुवाद पुरस्कृत्य शिवभक्ति पराङ्मुखा ॥३०॥
 तत कलियुगे प्राप्ते सर्वधर्मविवर्जिते ।
 म्लेच्छैर्ब्राह्मणधेनूना विधिससनकरे खरे ॥३१॥
 अस्वाध्यायवपट्कारे जैनबौद्धादिमकुले ।
 ब्राह्मणे म्लच्छमार्गस्थे शूद्रे ब्राह्मणचातिनि ॥३२॥
 तदा वसन्त कर्णाटतिलङ्गादिकद्रूपक ।
 मधुनामा च विधवाक्षेत्रे विप्राद्भूविष्यति ॥३३॥
 गोलक म तु पापिष्ठ पद्मपादुकमीश्वरम् ।
 वेदान्तव्याख्यानरत शिष्यत्वेनार्चयिष्यति ॥३४॥
 शास्त्र पण ततोऽधीत्य स्थित आह्निकवर्जित ।
 किमग्रिहोत्र को यागो हेतुमेव करिष्यति ॥३५॥
 गुरुराकर्ष्य तद्वाक्य ब्राह्मणो न भवेदयम् ।
 इति निश्चित्य त दुष्ट वदयति श्रुततद्वना ॥३६॥

मधुनामा तत प्राप्य शाप त दुष्टदुद्धिमान् ।
 वादरायणसूत्राणा व्याख्यान स करिष्यति ॥४०॥
 मध्वाचार्यस्तो भावाहाक्षिणात्यो महाङ्कलौ ।
 तच्छिष्या प्रतिशिष्याश्च नाऽऽर्यावर्ते न चोत्कले ॥४१॥
 न गौडे न च गङ्गायास्तीरे गोदावरीतटे ।
 नाबुंदारण्यमध्ये च तत्प्रचारो भविष्यति ॥४२॥
 यथा यथा कनेर्धोरे प्रचारो हि भविष्यति ।
 तथा तथा महाराष्ट्रे हेतुका विरला क्वचिन् ॥४३॥

श्री गुरु ने कहा—तुझे दुष्ट ने कपट से शास्त्र मुझसे पढा है अतः
 तुझे सिद्धान्त की मर्यादा स्फुरित न होगी तुझे सिद्धान्त में तो अन्धता
 रहेगी तथा पूर्व पक्ष में चतुर्गता होगी । ऐसा ही होगा मगर तेरे शिष्य
 पापी ही होंगे । मोह से वे सिद्धान्त से हीन होंगे और लोभ के कारण
 वे नृप के सेवक बनेंगे । क्रोध से क्रूर बोलने वाले—दम्भ से वेप में
 सुन्दर दिशाई देने वाले होंगे । ३७।३८। हेतुवाद से वे सब शास्त्रों को
 को नहीं जानते हैं । ये लोग शीघ्र या देर में घोर नरकों में ही गमन
 करेंगे । ३९। श्री सूतजी ने कहा—दुष्ट बुद्धि वाला मधुनाम घारी वहाँ
 स उम शाप की प्राप्त करके वह वादरायण सूत्रों की व्याख्यान करेगा ।
 ४०। इसके पश्चान् भाव में मध्वाचार्य महान् दाक्षिणात्य कलिमुग में
 हुए थे और उनके शिष्य प्रतिष्य आर्यावर्त और उत्कल में नहीं हैं । ४१।
 गौड देश गङ्गा के तीरे पर-गोदावरी के तट पर-अबुंदारण्य के मध्य
 में उक्त प्रचार नहीं होगा । ४२। जैसे कलिमुग का घोर प्रचार होगा
 वैसे २ ही महाराष्ट्र में कही पर विरने ही हेतुका होंगे । ४३।

ततोऽतिदुष्टममये महाम्नेच्छैस्त्रिंस्त्रिंशत् ।
 प्रच्यन्न कुत्रचित्तारी प्रचार हि त्रिषास्यति ॥४४॥
 पञ्चवर्षान्तु गन्यामी पठित्वा दूष्टदुद्धिमान् ।
 निष्योपनिष्यमंगुत्तो हेतुवाद करिष्यति ॥४५॥

तत्त्व ममार इत्येव न बाध्य सत्य एव हि ।
 वदम्यतस्तत्त्ववादी मिथ्यावादी स उच्यते ॥४६॥
 मिथ्याभूत प्रपञ्चोऽय मया निर्मित इष्यते ।
 मायावादिन इत्येते वस्तुतस्तत्त्ववादिन ॥४७॥
 मच्छास्त्र जमिनीय तु कर्मकाण्डप्रवर्तकम् ।
 गौतमीय तु मच्छास्त्रमीश्वरप्रतिपादकम् ॥४८॥
 पु म्प्रवृत्त्येविवेकस्य बोधन वापिन मतम् ।
 तथा वैशेषिक शास्त्रमीश्वरप्रतिपादकम् ॥४९॥

इसके उपरान्त अत्यन्त दुष्ट समय में जो महाग्नेष्टो ने निरस्तृत
 या वही पर प्रच्छन्न पापी प्रपार का करण ॥४४॥ पांच वर्ष का गन्यामी
 पङ्कज दुष्ट बुद्धि वाला निष्ठा और उपनिष्या ने मनुज हाकर हनुवाद
 का करण ॥४५॥ समार यही तत्व है—वह बाध्य नहीं है प्रगुत तत्व ही
 है—अनन्तवादी एसा कहता है और मिथ्यावादी यह कहा जाता
 करता है ॥४६॥ यह प्रयत्न मिथ्याभूत है मर द्वारा ही निर्मित किया
 गया है—ऐसा दृष्ट होता है । व मायावादी है और वाग्य में तत्त्व-
 वादी है ॥४७॥ मर शास्त्र निर्मित किया ही है जो कर्मकाण्ड में प्रगुत
 करणो वाला है । गौतम द्वारा रचित भी मर शास्त्र है जो ईश्वर का
 प्रतिपादक है ॥४८॥ पुत्र और प्रवृत्तिया बोध का मन वाला
 कपिल द्वारा रचित माण्डूक्य शास्त्र माना गया है उसी भाति वैशेषिक
 शास्त्र भी है जो ईश्वर का प्रतिपादक शास्त्र होता है ॥४९॥

मन्यन्ते श्रीमहेशान सर्वाण्यव परात्परम् ॥५३॥
 पापिष्ठा नैव मन्यन्ते वेदमार्गबहिष्कृता ।
 आचार्यं मधुनामान वदन्तो विधवामुतम् ॥५४॥
 प्रच्छन्नोऽमौ महादुष्टश्चार्वाको मधुमञ्जक ।
 भविष्यति कलौ विप्रा शिवनिन्दाप्रवर्तक ॥५५॥
 मोहात्सिद्धान्तवाह्यत्वा क्रोधाच्छम्भनिषेधनम् ।
 लोभेन नृपते मेवादम्भादन्यप्रतारणम् । ५६॥
 गणिकामैथुन कामाद्धेतुवादेन वादिता ।
 भविष्यति कलौ विप्रा पोडेय तत्त्ववादिता ॥५७॥

पातञ्जल योग शास्त्र है जिसकी रचना पतञ्जलि मंडनि ने की है । यह शास्त्र शैवशास्त्र अभीष्ट हाता है । वेदान्त शास्त्र तो मूर्खन्य शास्त्र होता है अर्थात् सबसे शिरोमणि शास्त्र है जो अद्वैत का प्रीथ कराता है ॥५०॥ सब अर्थात् चारा वेद (ऋग-यजु नाम-अथर्व) इन वेदा के छे अङ्क शास्त्र व्याकरण-द्वन्द-ज्योतिष-तिपा आदि हैं । पुराण और इति छे शास्त्र हैं । स्मृतिशा-उपस्मृतिशा-उपपुराण ये सब शुभ हैं । सर्व विद्याओं का अन्यान्य अधिकार से प्रामाण्य होता है । सबम ही पुत्र्यों म तात्पर्य बनाते हैं ॥५१॥५२॥ वही पर बुद्ध विराय होने पर भी तात्त्विक रूप में शासनो म परम्पर कोई विरोध नहीं है । य सभी शास्त्र महेश देव को पर स मी पर मानत हैं । जो पापिष्ठ है और वेद शास्त्र के मार्ग में बहिष्कृत हैं ने ही मानते हैं । मधुनाम धारी का जो एक विधवा का सुत है आचार्य बनवाने वाले ही घोर पापिष्ठ है ॥५३॥ ॥५४॥ यह मधु सजा वाता महात् दुष्ट प्रच्छन्न चार्वाक मनानुभाषी है । हे विप्रो ! यह कलियुग में गिब की निन्दा करने म प्रवृत्त होना वाता होगा ॥५५॥ मोह से ही शासनो से वाद्युत है और क्रोध से शास्त्र-निषेध है । लोभ से नृपति की सेवा है तथा दम्भ से द्वाय का प्रतारण करना होगा है ॥५६॥ ऋग वाचना म गणिका के माय मैथुन करता है हेतु-वाद से वादिता होगा ॥५७॥

पञ्चवप यतिं कृत्वा क्रमेणाऽऽदाय वालकम् ।
 माठापत्य विधास्यन्ति द्रव्यलोभेन नास्तिका ॥५८॥
 पारम्पय मठस्यैव रक्षिष्यन्त्यभिरागिण ।
 भोगामत्ताश्च पापिष्ठा दासीगमनकारिण ॥५९॥
 नाम्ना स यासिनस्तीर्थे यानारूढा ससेवका ।
 नरवाहनमारूढा शिखामूत्रवहिष्कृता ॥६०॥
 तत्पक्षपातिनो मूढा गृहस्था शिवनिदका ।
 मिथ्या वैष्णवमानेन ग्रस्ता निग्यगामिण ॥६१॥
 वेपमात्रा वेपमात्रेण तु तुमात्रेण वाडवा ।
 वादिन क्रोधमात्रेण विद्वासा हेतुवादत ॥६२॥
 पठिष्यन्ति च शास्त्राणि केचिद्दूषणसिद्धय ।
 स्वकीय गोपयिष्यन्ति परकीयण पण्डिता ॥६३॥

पञ्चवप क वानक का कान मे लाकर य । वनाकर मन वा जति
 पति द्रव्य के लाभ स नास्ति । ता किया करण । अभिरा । न ग मठ
 पर अपनी परम्परा की रथा करण । य पापिष्ठ भाग म अ सत आर
 दासी क गमन करन वाले हाग ५८।५९। तीय नाम स ही माप्रामी हैं
 और धान पर समारूढ रहत हैं तथा सरका को भी साथ म रक्का
 करते हैं । नर वाहन पर आरूढ न ह नग गिगा मून स बहिष्कृत
 होने हैं ।६०। उनके पणपात करने वान मूढ गहस्पनी हाग जा भग
 वान् शिव की ति ग करने वाते हैं । य नोग मिथ्या ही वैष्णव होन क
 मान वान हैं जा वैष्णव के गभ से ग्रस्त हैं और नरक के गामी हैं ।
 ।६१। वेपमात्र स ही य वैष्णव हैं न तुमात्र स वाडवा हैं । क्रोध मात्र मे
 ही वानी हैं और हेतुवाद के करने म विद्वाद् हागे ।६२। य शास्त्रा के
 कुछ दोष निकालने के ही दष्टि स पढ़ेंगे । अपन दावा को तो य
 निताने हैं और दूसरा के दोषा का उच्चार न करन क निय पूण पण्डित
 है ।६३।

महामोहादय गवै रतिमाश्राग्याम्य भामिनीम् ।
 प्राचुरा दृक्षण्या वाया तद्गु सविनिवारवा ॥६४॥

रते मा कुरु सतापमह मोह कले सखा ।
 क्रोध पत्यु परो बन्धुलोभमोही च देवरी ॥६५॥
 प्राप्ते कलियुगे पूर्णे मोहलोभादयो वयम् ।
 वसन्त मधुनामानमवतीण च दक्षिण ॥६६॥
 समाश्रित्य ततो हेतुवाद कुटिलबुद्धय ।
 करिष्यामो यथा शक्य शिवपूजानिवारणम् ॥६७॥
 इति ते रतिमाश्वार्य यथागनमिनो गता ।
 इति सर्वा समाख्यात शिवनिन्दककारणम् ॥६८॥

श्री सूतजी ने कहा—महामोह आदि सबने रति को आश्वासन दिया था जो कन्दर्प की भामिनी थी और उनके दुःख का निवारक होते हुए बहुत ही नम्र वाणी से बोले—मोहादिक ने कहा—हे रते ! तुम सन्ताप मत करो । यह माह कलियुग का सखा है । क्रोध तेरे पति का परम बधु है तथा लोभ और मोह ये दोनों तुम्हारे देवर हैं । ॥६४॥६५॥ कलियुग के पूण रूप में प्राप्त होने पर मोह लोभ आदि के हम सब दक्षिण में मधुनाम में अवतीर्ण वसन्त का समापण ग्रहण करके कुटिल बुद्धि वाले हेतुवाद को करेंगे जैसे भी शिवकी पूजा का निवारण हो सके किया जायगा ॥६६॥६७॥ सूतजी ने कहा— इस तरह से वे रतिव को आश्वासन देकर जैसे आये थे वैसे ही सब चले गये यह सब मैंने भगवान् शिवकी निन्दा होने का कारण तुम्हारे सामने वर्णित कर दिया है ॥६८॥



॥ विष्णु चक्र प्राप्ति कथन ॥

सुदर्शनाख्य पञ्चक लब्धवास्तत्कथं हरि ।
 महादेवाद्भगवत सूत तद्वक्तुमर्हसि ॥१॥
 देवाप्सुराणामभवत्सद् ग्रामोऽद्भु तदर्शन ।
 देवा विनिजिता दैत्यैर्विष्णु शरणमागता ॥२॥

स्तुत्वा तं विविधैः स्तोत्रैः प्रणम्य पुरतः स्थिताः ।
 भयभीताश्च ते सर्वे क्षताङ्गाः क्लेशिता भृशम् ॥३॥
 तान्हृष्टा प्राह भागवान्देवदेवो जनार्दनः ।
 किमर्थमागता देवा वक्तुमर्ह्य सांप्रतम् ॥४॥
 वचः श्रुत्वा हरेर्देवाः प्रणम्योचुः सुरोत्तमाः ।
 निजिता दानवैः सर्वे शरण त्वामिहाऽऽगताः ॥५॥
 गतिस्त्वमेव देवानां प्राता त्व पुरुषोत्तम ।
 हन्तुमर्हसि ताञ्छीघ्रमवघ्नान्वारिजेक्षण ॥६॥
 जालधरवधार्थाय यच्चक शूलपाणिनः ।
 महादेववराल्लब्ध जाहि तेन महाबलान् ॥७॥

ऋषियों ने कहा—सुदर्शन नाम वाला जो परम प्रसिद्ध चक्र है उसको भगवान् श्री हरि ने कैसे प्राप्त किया था । मुना है यह महादेव जी से ही मिला था सो कैसे प्राप्त हुआ है यह हे सूतजी ! आप कहने के लिये योग्य होते हैं । १। सूतजी ने कहा—एक बार देवों का और असुरों का अद्भुत दर्शन वाला महा सम्राट् हुआ था । देव लोग सब दैत्यों के द्वारा पराजित होकर श्री विष्णु के शरण में समागत हुए थे । २। विविध भाँति के स्तोत्रों के द्वारा उनकी स्तुति करके और प्रणाम करके वे सब भगवान् के आगे स्थित हो गये थे । वे सभी भय से भीत थे—वृश अङ्गो वाले थे और अत्यन्त ही दुःखित थे । ३। देवदेव जनार्दन ने उनको देताकर कहा था—हे देवो ! आप मेरे पाम विम निये आये हो । अब आप वह मुझमें बहो । ४। श्रीहरि के वचन का श्रवणकर सुरोत्तम देवो जनार्दन उनको प्रणाम किया और कहने लगे थे । दानवों के द्वारा हम सब निजित हो गये हैं अनर्क यहाँ पर हम सब आपकी शरणागति में समागत हुए हैं । ५। हम देवों की तो आप ही गति हैं अर्थात् उद्धार करने वाले हैं हे पुरुषोत्तम ! आप ही हमारे प्राण करने वाले हैं । हे कमन्तोत्र ! आप उन अवघ्यों को नीघ्र ही हनन करने के लिये समर्थ होते हैं । ६। जातपर के वच ने त्रिप सूतपाणि महादेवकी

से जो सुदर्शन चक्र आपने प्राप्त किया था उसी से उन महान् मल वालों का हनन करिए । ७।

तेषा तद्वचन श्रुत्वा भगवान् वारिजेपणः ।

अहं देवास्तथा नूनं करिष्यामीति सुव्रताः ॥८

हिमवत्पर्वतं गत्वा पूजयामास शंकरम् ।

लिङ्गं तत्र प्रतिष्ठाप्य स्नाप्य गन्धोदकैः शुभैः ॥९

त्वरिताख्येन रुद्रेण संपूज्य च महेश्वरम् ।

ततो नाम्नां संहस्त्रेण तुष्टाव परमेश्वरम् ॥१०

प्रतिनाम च पद्मानि तैरिष्टा वृषभध्वजम् ।

भवाद्यैर्नामभिर्भक्त्या स्तोतुं समुपचक्रमे ॥११

भवः शिवो हरो रुद्रः पुष्कलो मुग्धलोचनः ।

अग्रगण्यः सदाचारः सर्वं शभुर्महेश्वरः ॥१२

ईश्वरः स्थाणुरीशानः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

वरीयान्वतदो वन्द्यः शंकरः परमेश्वरः ॥१३

गङ्गाधरः शूलधरः परार्थैरुप्रयोजकः ।

सर्वज्ञः सर्वदेवादिगिरिघन्वा जटाधरः ॥१४

भगवान् कमल नेत्र ने उन देवों के उस वचन का श्रवण करके उनसे कहा—हे सुव्रतो ! हे देवो ! मैं निश्चय ही वैसा ही करूंगा ॥८॥ फिर श्रीहरि ने हिमाचल पर जाकर भगवान् शंकर का अभ्यर्चन किया था । वहाँ पर सिध लिङ्ग की प्रतिष्ठा करके और परम शुभ भागीरथी गङ्गा के जल से स्नान कराकर शुभ गन्धादकों से त्वरितारय रुद्र के द्वारा महेश्वर की भलीभाँति पूजा की थी । इसके अनन्तर सहाय नाम के द्वारा उन परमेश्वर की स्तुति की थी । प्रत्येक नाम पर पक्षों को अर्पित किया था और वृषभध्वज का उन कमलों में यजन किया था । भक्ति के साथ भवादि नामों से आवन करने का उपक्रम आरम्भ कर दिया था ॥९॥१०॥११॥ भगवान् विष्णु ने कहा—(यह महामनाम है)—भव, शिव, हर, रुद्र, पुष्कल, मुग्धलोचन, अग्रगण्य, सदाचार,

सर्वं, संम्भु, महेश्वर, ईश्वर, स्याणु, ईशान, सहस्राक्ष, सहस्रपात्, वरी-
यान्, वरद, वन्द्य, शंकर, परमेश्वर, गङ्गाधर, धूम्रवर, परार्थक प्रयो-
जक, सर्वाज्ञ, सर्वदेवाधि, गिरिघन्वा, जटाधर ॥१२॥१३॥१४॥ -

चन्द्रापीडश्चन्द्रमौलिवेधा विश्वामरेश्वरः ।

वेदान्तसारसदोहः कपाली नीललोहितः ॥१५

ध्यानाहारोऽपरिच्छेद्यो गौरीभर्ता गणेश्वरः ।

अष्टमूर्तिविश्वमूर्तिस्त्रिवर्गः स्वर्गसाधनः ॥१६

ज्ञानगम्यां दृढप्रज्ञो देवदेवस्त्रिलोचनः ।

वामदेवो महादेवः पटुः परिवृद्धो दृढः ॥१७

विश्वरूपो विरूपाक्षो वागीशः श्रुतिमन्त्रगः ।

सर्वप्रणवसवादा वृषाङ्को वृषवाहनः ॥१८

ईश पिनाकी गट्वाङ्गी चित्रवेपश्चिरतनः ।

मनोमयो महायोगी स्थिरो ब्रह्माण्डधूर्जंटी ॥१९

कालकालः कृत्तिवासा. सुभगः प्रणवात्मकः ।

नागचूड सुबधुप्यो दुर्वासाः पुरशासनः ॥२०

दृगायुधः स्कन्दगुरु परमेष्ठी परायणः ।

अनादिमध्यनिधनो गिरीशो गिरिजाधवः ॥२१

चन्द्रापीड, चन्द्रमौलि, वेधा, विश्वामरेश्वर, वेदान्तसार सन्दोह, कपाली, नीललोहित, ध्यानाहार, अपरिच्छेद्य, गौरीभर्ता, गणेश्वर, अष्टमूर्ति, विश्वमूर्ति, त्रिवर्ग, स्वर्ग साधन, साज्ञगम्य, दृढप्रज्ञ, देवदेव, त्रिलोचन, वामदेव, महादेव, पटु, परिवृद्ध, दृढ, विश्वरूप, विरूपाक्ष, वागीश, श्रुतिमन्त्रग, सर्वप्रणव, सवादा, वृषाङ्क, वृषवाहन, ईश पिनाकी, गट्वाङ्गी, चित्रवेप, चिरतन, मनोमय, महायोगी, स्थिर, ब्रह्माण्ड धूर्जंटी, कालकाल, कृत्तिवासा, सुभग, प्रणवात्मक, नागचूड, सुबधुप्य, दुर्वासा पुरशासन, दृगायुध, स्कन्द गुरु, परमेष्ठी, परायण, अनादिमध्य-निधन, गिरीश, गिरिजाधव ॥१५-२१॥

कुंक्षेत्रकम्पु श्रीकण्ठो लोकान्तोत्तमो मृदुः ।

सामाग्यो देवको दण्डी नीलकण्ठ परश्वशीः ॥२२

विशालाक्षो महाव्याघ सुरेश सूर्यतापन ।
 धर्मधामा क्षमाक्षेत्र भगवान्भगनेत्रहा ॥२३
 उग्र पशुपतिस्ताक्षर्य प्रियभक्त प्रियवद ।
 दाता दयाकरो दक्ष कपर्दी कामशासन ॥२४
 श्मशाननिलयस्तिप्य श्मशानस्थो महेश्वर ।
 लोककर्ता भूतपतिर्महाकर्ता महोपधि ॥२५
 उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्य पुरातन ।
 नीति सुनीति शुद्धात्मा सोम सोमरत सुधी ॥२६
 सोमपोऽमृतप सौम्यो महानीतिर्महास्मृति ।
 अजातशत्रुरालोक्य सभाव्यो हव्यवाहन ॥२७
 लोककारो वेदकार सूत्रकार सनातन ।
 महर्षि कपिलाचार्यो विश्वदीप्तिविलोचन ॥२८

कुबेरवधु श्रीकण्ठ, लोकवद्य, उत्तम, मृदु, सामान्य, देवक, दण्डी,
 नीलकण्ठ, परश्वधी, विशालाक्ष, महाव्याघ, सुरेश सूर्यतापन, धर्मधामा,
 क्षमाक्षेत्र, भगवान् भगनेत्रहा उग्र, पशुपति, ताक्षर्य, प्रियभक्त, प्रियवद,
 दाता, दयाकर, दक्ष, कपर्दी कामशासन, श्मशाननिलय, तिद्रन, श्मशान-
 स्थ महेश्वर, लोककर्ता, भूतपति, महाकर्ता, महोपधि, उत्तर गोपति,
 गोप्ता, ज्ञानगम्य, पुरातन, नीति, सुनीति, शुद्धात्मा सोम, सोमरति,
 सुधी, सोम्य अमृतम सौम्य महानीति, महास्मृति, अजात शत्रु
 आलोक्य, भभाव्य, हव्यवाहन, लोककार, वेदकार, सूत्रकार, सनातन,
 महर्षि कपिलाचार्य, विश्वदीप्ति, विलोचन ॥२२-२८॥

पिनाकपाणिर्भूदेव स्वस्तिकृत्स्वस्तिक सुधा ।
 घात्रीधामा धामकर सर्वग सर्वगोचर ॥२९
 ब्रह्मसृग्विश्वसृक्सर्ग कर्णिकार प्रिय कवि ।
 शाखो विशाखो गोशाख शिवो भिषगनुत्तम ॥३०
 गङ्गाप्लवोदको भव्य पुष्कल स्थपति स्थित ।
 विजितात्मा विधेयात्मा भूतवाहनसारथि ॥३१

सगणो गणकायश्च सुकीर्तिर्द्विन्नसशय ।
 कामदेवः कामकालो भस्मोद्धूलितविग्रह ॥३२
 भस्मप्रियो भस्मशायी कामी कान्त कृतागम ।
 समावृत्तो निवृत्तात्मा धर्मपुञ्ज सदाशिव ॥३३
 अकल्मषश्चतुर्बाहु सर्वावासो दुरासद ।
 दुर्लभो दुर्गमो दुर्गः सर्वायुधविशारद ॥३४
 अध्यात्मयोगनिलय सुतन्तुरतन्तुवर्धन ।
 शुभाङ्गो योगसारङ्गो जगदीशो जनार्दन ॥३५

पिनाकपाणि, भूदेव, स्वस्तिकृत, स्वस्तिक, सुधा, धात्रीधामा, धाम-
 कर, सर्वंग, सर्वगोचर, ब्रह्ममृक्, विद्वमृक्, सगं, वणिकार, प्रिय, कवि,
 शाखा, विशाख, गोशाख, शिव, भिष्टक्, अतुत्तम, गङ्गाप्लवादक, भव्य,
 पुष्कल, स्थपति, स्थित, विजिनात्मा, विधेयात्मा, भूतवाहनसारथि,
 सगण, गणकाय, सुकीर्ति, द्विन्नसशय, कामदेव, कामकाल, भस्मोद्धूलित
 विग्रह, भस्मप्रिय, भस्मशायी, कामी, कान्त, कृतागम, समावृत्त,
 निवृत्तात्मा, धर्मपुञ्ज, सदाशिव, अकल्मष, चतुर्बाहु, सर्वावास, दुरासद
 दुर्लभ, दुर्गम, दुर्ग, सर्वायुध विशारद, अध्यात्मयोग निलय, सुतन्तु, तन्तु-
 वर्धन, शुभाङ्ग योगसारङ्ग, जगदीश, जनार्दन ॥३६-३५॥

भस्मशुद्धिकरो मेरुस्तेजस्वी शुद्धाविग्रह ।
 हिरण्यरेतात्तरणिमंरीचिर्माहिमालय ॥३६॥
 महाहृदो महागर्तं सिद्धवृन्दारवन्दित ।
 व्याघ्रचर्मधरो व्याली महाभूतो महानिधि ॥३७॥
 अमृतात्माऽमृतवपु पञ्चप्रज्ञ प्रभञ्जन ।
 पञ्चविंशतितत्त्वस्थ पराजात परापर ॥३८
 सुलभ सुव्रत शूरो वाग्मायैकनिधिनिधि ।
 वर्णाश्रमगुरुवर्णो शत्रुजिच्छत्रुतापन ॥३९
 आश्रम क्षपण क्षामो ज्ञानवानचलश्चल ।
 प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेय सुपर्णो वायुवाहन ॥४०

धनुर्धरो धनुर्वेदो गुणराशिगुणावर ।

अनन्तदृष्टिरानन्दो दण्डो दमयिता दम ॥४१

अविवाद्यो महाकायो विश्वकर्मा विशारद ।

वीतरागो विनीतात्मा तपस्वी भूतवाहन ॥४२

भस्म शुद्धिकर—मेरु—तेजस्वी—शुद्ध विग्रह—हिरण्य रेता—
तरणि—मरोचि—महिमालय—महाहृद—महागर्त—सिद्ध वृन्दार बन्दित—
व्याघ्र धर्म घर—व्याली महाभूत—महानिधि—अमृतात्माशअमृतवयु—
पक्षयज्ञ—प्रभञ्जन—पक्ष विशति तत्वस्थ—पारिजात—परापर—
सुलभ—सुध्नत—शूर—वारमायक विधि—निधि—वर्णाश्रय गुरु—
वर्णा—शत्रु जित—शत्रु स्तायन—आश्रम—क्षपण—क्षाम—ज्ञानवान्—
अचल—चल—प्रमाण भूत—दुर्ज्ञेय—सुपर्ण—वायुवाहन—धनुर्वेद—
धनुर्धर—गुणराशि—गुणराशि—गुणाकर—अनन्त दृष्टि—आनन्द—दण्ड—
दमयिता—दम—अविवाद्य—महाकाय—विश्वकर्मा—विशारद—वीत-
राग—विनीतात्मा—तपस्वी—भूतवाहन ॥३६—४२॥

उन्मत्तवेप प्रचक्रो जितकामो जितप्रिय ।

कल्याणप्रवृत्ति कल्प सर्वलोकप्रजापति ॥४३

तपस्वी तारको धीमान्प्रधानप्रभुरव्यय ।

लोकपालोऽन्तर्हृतात्मा कल्पादि कमलेक्षण ॥४४

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो नियमो नियमाश्रय ।

राहु सूर्ये शनि केतुर्विरामो विद्रुमच्छवि ॥४५

भक्तिगम्य पर ब्रह्म मृगवाशापणोज्ज्व ।

अद्रिद्रोणिकृत्स्थान पवनात्मा जगत्पति ॥४६

सर्ववर्मावलस्त्वष्टा मङ्गल्यो मङ्गलप्रद ।

महातपा दीर्घतपा स्थविष्णु स्थविरो ध्रुव ॥४७

अह सवत्तारो व्याल प्रमाण परम तप ॥१०२

सर्वत्सरकरो मन्त्र श्रत्यय सर्वदर्शन ॥४८

वज सर्वेश्वर सिद्धो महारेता महाबल ।

योगी योगी महादेव. सिद्ध सर्वादिरच्युत ॥४६

उत्तम वेप—श्चन्द्र—जितकाम—जितप्रिय—वल्पाण प्रवृत्ति—
फल्य—स्वलोक प्रजापति—तपस्वी—तारक—धीमान—प्रधान प्रभु—
अध्यय—लोकमान—अन्तदितात्मा—वल्पादि—कमलेक्षण—वेदशास्त्रीर्यं
तत्त्वज्ञ—नियम—नियमाश्रय—राहु—सूर्य—शनि—केतु—विरण्य—
विद्रुम—द्वि—भक्तिगम्य—परब्रह्म—भृगु वाणार्पण—अनघ—अद्रि
दोणि कृत स्यान्—पवनात्मा—जगत्पति—सर्वं बर्माघल—स्वप्ता—
मङ्गल्य—मङ्गल प्रद—महानया—स्थविष्णु—स्यविट—ध्रुव—अह—
सम्बत्सर—व्यात्न—प्रमाण—परम—तय—सन्वत्पुरकार—मनज—प्रत्यय
—सर्वं दर्शन—अज—सर्वेश्वर—सिद्ध—महारेता—महाबल—योगी—
योग—महादेव—सिद्ध—सर्वादि—अच्युत ॥४३—४६॥

वसुवंसुमना सत्य सर्वपापहरो हर ।

अमृत शाश्वत शान्तो वाणहस्तः प्रतापवान् ॥५०

कमण्डलुधरो धन्वी वेदाङ्गो वेदविन्मुनि ।

भ्राजिष्णुर्भोजन भोक्ता लाकनेता दुराधर ॥५१

अस्तीन्द्रियो महामाय सर्वात्रासश्चतुष्पथ ।

कालयोगी महानादो महोत्साहो महाबल ॥५२

महाबुद्धिमहावीर्यो भूतचारी पुरदर ।

निघाचर प्रेतचारी महाशक्तिमहाद्युति ॥५३

अनिर्देश्यवपु धीमासर्वाकपंकरो मत ।

बहुश्रुतो बहुमायो नियतात्माऽभयोद्भव ॥५४

ओजस्तेजोद्युतिधरो नतंक सर्वनायक ।

नित्यघन्टाप्रियो नित्यप्रकाशात्मा प्रतापन ॥५५

ऋद्ध स्पष्टाक्षरो मन्त्रः मङ्ग्राम शारदल्पव ।

युगादिकृद्य गावर्तो गम्भीरो वृषवाहन ॥५६

वसु—वसुमना—सत्य—सर्वं पापहर—हर—अमृत—शाश्वत—
शान्त—वाण हस्त—प्रतापवान्—कमण्डु—धर—धन्वी—वेदाङ्ग—

वेदविता—मूनि—भ्राजिपणु— भोजन— भोजना—लोकनेता—दुराघर
 —अतीन्द्रय—महामाय—सर्वावास—चतुष्यथ—वानयोगी महानाद
 —महोत्साह—महाबल—महाबुद्धि—महावीर्यं—भूतचारी—पुरन्दर—
 निशाचर—प्रेतचारी—महाशक्ति—महाधुति—अनिर्देश्यवयु—श्रीभान्
 —सर्वाकर्षकर—बहुभ्रुत—बहुमाय—मत—नियतात्मा—अमयोद्भव
 —भोज तेज धुतिघर—नतंक्—ऋद्ध—स्पष्टाक्षर—मञ्ज—राग्राम—
 शारहृत्लव उगादि—कृत—युगावत्तं—गम्भीर—वृहै वाहन ॥५०—५६॥

इष्टो विशिष्ट शिष्टेष्ट शरभ सरभो घनु ।
 अपा निधिरधिष्ठान विजयो जयकालवित् ॥५७
 प्रतिष्ठित प्रमाणज्ञो हिरण्यकवचो हरि ।
 विमोचन सुरगणो विघ्नेशो विबुधाश्रय ॥५८
 बालरूपो बलोमाथी विकर्ता गहनो गुह ।
 करण कारण कर्ता सर्वबन्धप्रमोचन ॥५९
 व्यवसायो व्यवस्थान स्थानदो जगदादिज ।
 दुन्दुभो ललितो विश्वो भवात्माऽऽत्मनि सस्थित ॥६०
 राजराजप्रियो रामो राजचूडामणि प्रभु ।
 वीरेश्वरो वीरभद्रो वीरासनविधिविराट् ॥६१
 वीरचूडामणिहृता तीक्ष्णानन्दो नदीघर ।
 आत्माधारस्त्रिशूलाङ्कु शिपिविष्ट शिवाश्रय ॥६२
 बालखिल्यो महाचारस्तिग्माशुर्वारिधि खग ।
 अभिराम सुशरण्य सुब्रह्मण्य सुधापति ॥६३

इष्ट—विशिष्ट—शिष्टेष्ट—शरभ—सरभ—घनु—अपां निधि—
 अधिष्ठान—विजय—जय कालवित् प्रतिष्ठित—प्रमाणज्ञ—हिरण्य
 कवच—हरि—विमोचन—सुरगण—विघ्नेश—विबुधाश्रय—बालरूप—
 बलोमाथी—विकर्ता—गहन—गुह—करण—कारण—कर्ता—सर्व
 बन्ध प्रमोचन—व्यवसाय—व्यवस्थान—स्थानद—जगदादिज—दुन्दुभ
 —ललित—विश्व—भवात्मा—आत्मा मे सस्थित—राजराज प्रिय—

राम—राज चूडामणि—प्रभु—वीरेश्वर—वीरभद्र—वीरासन विधि—
विराट्—वीर चूडामणि—हर्ता—तीव्रानन्द—नदीधर—आत्माधार—
त्रिशूलाङ्क—शिपिविष्ट—शिवाश्रय—वालखिल्य—महाप्रार—निर्माशु
—वाविधि—खग—अभिराम—मुशरण्य—सु ब्रह्मण्य—सुधापति ॥५७
—६३॥

मधुमान्कौशिको गोमान्विराम सर्वसाधन ।
ललाटाक्षो विश्वदेह सार ससारचक्रभृत् ॥६४
अमोघदण्डो मध्यस्थो हिरण्यो ब्रह्मवर्चसी ।
परब्रह्मपदो हस शवरो व्याघ्रकोऽनल ॥६५
रुचिवंरुचिवन्द्यो वाचस्पतिरहर्षति ।
रविविरोचन स्कन्द शास्त्रा वैवस्वतोऽर्जुन ॥६६
मुक्तिरुन्नतकीर्तिश्च शान्तराम पुरजय ।
कैलासपति कामारि सविता रविलोचन ॥६७
विद्वत्तमो वीतभयो विश्वकर्माऽनिवारित ।
नित्यो नियतकल्पाण पुण्यश्रवणकीर्तन ॥६८
दूरश्रवा विश्वसहो ध्येयो दु स्वप्ननाशन ।
उत्तारको दुष्कृतिहा दुर्धर्पो दु सहोऽभय ॥६९
अनादिभुंभुं वो लक्ष्मी किरिटी त्रिदशाधिप ।
विश्वगोप्ता विश्वहर्ता सुवीरो रुचिराङ्गदी ॥७०

मधुमान, कौशिक, गोमान्, विराम, सर्व साधन, ललाटाक्ष, विश्व-
देह, सार, ससारचक्रभृत्, अमोघदण्ड, मध्यस्थ, हिरण्य, ब्रह्मवर्चसी,
परब्रह्मपद, हस, शवर, व्याघ्रक, अनल, रुचि, वन्द्य, वाचस्पति, अहर्षति,
रवि, विरोचन, स्कन्द, शास्त्रा, वैवस्वत अर्जुन, मुक्ति उन्नतकीर्ति,
शान्तराम, पुरजय, कैलासपति, कामादि, सविता, रविलोचन, विद्वत्तम,
वीतभय, विश्वकर्मा, अनिवारित, नित्य, नियतकल्पाण, पुण्यश्रवण
कीर्तन, दूरश्रवा, विश्वसह, ध्येय, दु स्वप्न, नाशन, उत्तारक, दुष्कृतिना,

दुधर्षं, दु सह, अभय, अनादि, भू, भुवः, लक्ष्मी, किरीटी, त्रिदशाधिप,
विश्वगोप्ता, विश्वहर्ता, सुवीर, रचिराङ्गदो ॥६४ ७०॥

जननो जनजन्मादि प्रीतिमान्प्रीतिमानय ।

वसिष्ठ कश्यपो भानुर्भोमो भीमपराक्रम ॥७१

प्रणव सत्पथाचारो महाकायो महाधनु ।

जन्माधिपो महादेवः सकलागमपारग ॥७२

तत्त्व तत्त्वविदेकात्मा विभूतिभूतिभूषण ।

ऋषिर्ब्राह्मणविद्विष्णुर्जन्ममृत्युजरातिग ॥७३

यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञान्तोऽमोघविक्रम ।

महेन्द्रो दुर्भर सेनी यज्ञाङ्गो यज्ञवाहन ॥७४

पञ्चब्रह्मसमुत्पत्तिविश्वतो विमलोदय ।

आत्मयोनिरनाद्यन्त पटत्रिंशो लोकभृत्कवि ॥७५

गायत्रीवल्लभ प्राशुर्विश्वावास सदाशिव ।

शिशुर्गिरिरत्त सम्राट् सुपेण सुरशत्रुद्रा ॥७६

अमेयोऽरिष्टमथनो मुकुन्दो विगतज्वर ।

स्वयज्योतिरनुज्योतिरचल परमेश्वर ॥७७

जनन, जनजन्मादि-प्रीतिमान्, नीतिमान्, वसिष्ठ कश्यप, भानु,
भोम, भीम पराक्रम प्रणव, सत्पथाचार, महाकाय, महाधनु, जन्माधिप,
महादेव, सकलागमपारग, तत्त्व, तत्त्ववित्, एकात्मा, विभूति, भूतिभूषण,
ऋषि, ब्राह्मणवित्, विष्णु जन्म मृत्यु जरातिग, यज्ञ, यज्ञपति, यज्वा,
यज्ञान्त, अमोघ विक्रम, महेन्द्र, दुर्भर, सेनी, यज्ञाङ्ग यज्ञवाहन पञ्च
ब्रह्म समुत्पत्ति, विश्वत, विमलोदय, आत्मयोनि, अनाद्यन्त, पटत्रिंश,
लोकभृत्, कवि । गायत्री के वल्लभ, प्राशु विश्वादास, सदाशिव, शिशु,
गिरिरत्त, सम्राट्, सुपेण, सुर शत्रुओं के हनन करने वाले अमेय,
अरिष्टमथन, मुकुन्द, विगतज्वर, स्वय ज्योति, अनुज्योति अचल,
परमेश्वर ॥७१ ७७॥

पिङ्गत कपिलश्मश्रु शास्त्रनेत्रस्त्रयीतनु ।

ज्ञानस्कन्धो महाज्ञानो वीरोत्पत्तिरप्लवी ॥७८

भगो विवस्त्रानादित्यो योगाचारो दिवस्पतिः ।

उदारकीर्तिरुद्योगी सद्योगी सदसन्मयः ॥७६

नक्षत्रमालो नाकेशः स्वाधिष्ठानपडाश्रयः ।

पवित्रपादः पापारिर्मणिपूरो नभोगतिः ॥७७

हृत्पुण्डरीकमासीनः शुक्रा(क्रे) शानो वृषाकापः ।

तुष्टो गृहपतिः कृष्णः समर्थोजनयंशासनः ॥७८

अधर्मशत्रुरक्षय्यः पुरुहूतः पुरुष्टुतः ।

वृहद्भुजो ब्रह्मगर्भो धर्मधेनुर्धनागमः ॥७९

जगद्धितैपी सुगतः कुमारः कुशलागमः ।

हिरण्यगर्भो ज्यातिष्मानुपेन्द्रास्तमिरापहः ॥८०

अरोगस्तपनाध्यक्षो विश्वामित्रो द्विजेश्वरः ।

ब्रह्मज्योतिः सुबुद्धात्मा वृहज्ज्योतिरनुत्तमः ॥८१

पिङ्गल, कपिलश्मश्रु, शास्त्रनेत्र, श्रयंतनु, ज्ञानस्कन्ध, महाज्ञानी, वीरोत्पति, उपप्लवी, भग, विवस्त्रात्, आदित्य, योगाचार, दिवस्पति, उदार कीर्ति, उद्योगी, सद्योगी, सदसन्मय, नक्षत्रमालो, नाकेश, स्वाधिष्ठानपडाश्रय, पवित्रपाद, पापों के अरि मणिपूर, नभोगति, हृत्पुण्डरीक में सनासीन, शुक्रेशान, वृषाकपि, तुष्ट, गृहपति, कृष्ण, समर्थ, अनर्थ शासन, अधर्म शत्रु, अक्षय्य, पुरुहूत, पुरुष्टुत, वृहद्भुज, ब्रह्मगर्भ, धर्मधेनु, धनागम, जगद्धितैपी, सुगत, कुमार, कुशलागम, हिरण्यगर्भ, ज्यातिष्मान्, उपेन्द्र, तिमिरापह, अरोग, तपनाध्यक्ष, विश्वामित्र, द्विजेश्वर, ब्रह्मज्योति, सुबुद्धात्मा, वृहज्ज्योति, अनुत्तम ॥७६-८१॥

मातामहो मातरिश्वा मनस्वी नागहारधृक् ।

पुलस्त्य पुलहोऽगस्त्यो जातूकर्ष्य पराशरः ॥८२

निरावरणविज्ञानो विरश्चो विष्टरथवाः ।

आत्मभूरनिरुद्धोऽभिज्ञानमूर्तिर्मेहायशाः ॥८३

लोकचूडामणिर्वीरश्चन्द्रः सत्यपराक्रमः ।

व्यालकल्पो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलानिधिः ॥८४

अलकरिष्णुरचलो रोचिष्णुविक्रमोत्तम ।
 आशु सप्तपतिर्वेगी प्लवन शिखिसारथि ॥८८
 अर्संतुष्टोऽतिथि शुक्र प्रमाथी पापशासन ।
 वसुश्रवा कव्यवाह प्रतप्तो विश्वभाजन ॥८९
 जयो जरारिशमनो लोहिताश्वस्तनूनपात् ।
 पृषदश्वो नभोयोनि सुप्रतीकस्तमिस्रहा ॥९०
 निदाघस्तपनो मेघ पक्ष परपुरजय ।
 सुखी नील सुनिष्पन्न सुरभि शिशिरात्मक ॥९१

मातामह, मामरिश्वा, मनस्वी, नागहार घृक, पुलस्त्य, पुनह,
 अगस्त्य, जातूकर्ण्य, पराशर, निरावरण विज्ञान, विरञ्च, विष्टरश्रवा,
 आत्मभू, अनियद्ध, अत्रि, ज्ञानमूर्ति, महायज्ञा, लोक चूडामणि, वीर,
 चन्द्र, सत्य परा पराक्रम, व्यालकल्प, महाकल्प, कल्पवृक्ष, कलानिधि,
 अलकरिष्णु अचल, रोचिष्णु, विक्रमोत्तम, आशु सप्तपति, वेगी, प्लवन,
 शिखिसारथि, अर्संतुष्ट, अतिथि, शुक्र, प्रमाथी, पाप शासन, वसुश्रवा,
 कव्यवाह, प्रतप्त, विश्वभोजन, जय, जरारि के शमन करन वाले,
 लोहिताश्व, तनूनपात्, पृषदश्व, नभोयोनि, सुप्रतीक, तमिस्रहा, निदाघ,
 तपन, मेघ, पक्ष, परपुरञ्जय, सुखी, नील, सुनिष्पन्न, सुरभि, शिशिरा
 त्मक ॥८५-९१॥

वसन्तो माधवो ग्रीष्मो नभस्यो बीजवाहन ।
 मनो बुद्धिरहंकार क्षेत्रज्ञ क्षेत्रपालक ॥९२
 जमदाग्निर्जलनिधिविपाको विश्वकारक ।
 अधरोऽनुत्तरो ज्यो ज्येष्ठो नि श्रयसालय ॥९३
 शैलो नाम तरुर्दाहो दानवारिररिदम ।
 चामुण्डी जनकश्चारुनि शल्यो लोकशल्यहृत् ॥९४
 चतुर्वेदश्चनुर्भावश्चतुरश्रत्वरप्रिय ।
 आम्नायोऽय समाम्नायस्तीर्थदेव शिवालय ॥९५

वज्ररूपो महादेवः सर्वरूपश्चराचरः ।

न्यायनिर्वाहको न्यायो न्यायगम्यो निरञ्जनः ॥६६

सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वशास्त्रप्रभञ्जनः ।

मुण्डो विरूपो विकृतो दण्डो दान्तो गुणोत्तरः । ६७

पिङ्गलाक्षोऽय ह्यंश्वो नीलग्रीवो निरामयः ।

सहस्रबाहुः सर्वेशः शरण्यः सर्वलोकधृक् ॥६८

वसन्त, माघव, ग्रीष्म, नभस्य, बीजवाहन, मन, बुद्धि, अहकार, क्षेत्रज्ञ, क्षेत्र के पालक, जमदग्नि, जलनिधि, विपाक, विश्वकारक, अघर, अनुत्ता, ज्ञेय, ज्येष्ठ, निःश्रेयसालय, शैल, नाम, तरु, दाह, दानवो अरि, अरिन्दम, चामुण्डी, जनक, चारु, निःशल्य, लोवशल्यहृत्, चतुर्वेद, चतुर्भवि, चतुर, चत्वर प्रिय, आमनाय, समामनाय, तीर्थदेव, शिवालय, वज्ररूप, महादेव, सर्वरूप, चराचर, न्याय निर्वाहक, न्याय, न्यायगम्य, निरञ्जन, सहस्रमूर्धा, देवेन्द्र, सर्वशास्त्र प्रभञ्जन, मुण्ड, विरूप, विकृत, दण्डी, दान्त, गुणोत्तर, पिङ्गलाक्ष, ह्यंश्व, नीलग्रीव, निरामय, सहस्र-बाहु, सर्वेश, शरण्य, सर्वलोक धृक् ॥६३-६८॥

पद्मासनः पर ज्योतिः परावरः पर फलम् ।

पद्मगर्भो महागर्भो विश्वगर्भो विलक्षणः ॥६९

यज्ञभुग्वरदो देवो वरेशश्च महास्वनः ।

देवासुरगुरुर्देवः शंकरो लोकसंभवः ॥१००

सर्ववेदमयोऽचिन्त्यो देवतासत्यसंभवः ।

देवाधिदेवो देवपिदेवासुरवरप्रदः ॥१०१

देवासुरेश्वरो दिव्यो देवासुरमहेश्वरः ।

देवासुराणां वरदो देवासुरनमस्कृतः ॥१०२

देवासुरमहामात्रो देवासुरमहाश्रयः ।

सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवानामात्मसंभवः ॥१०३

ईडघोऽनीशः सुरव्याप्तो देवसिंहो दिवाकरः ।

विषघाग्रवरः श्रेष्ठः सर्वदेवोत्तमोत्तमः ॥१०४

शिवध्यानरतः श्रीमाञ्जिदासी श्रीपर्वतप्रियः ।

वज्रहस्तः प्रतिष्टम्भी विश्वज्ञानी निशाकरः ॥१०१

पद्मासन, परज्योति, परावर, परं फल, पद्मगर्भं, विश्वगर्भं, विलक्षण, यज्ञसुक, वरद, देव, वरेश, महास्वन, देवागुर गुरु, देव, शङ्कर, लोक सम्भव, सर्वं वेदमय, अचिन्त्य, देवता सत्य सम्भव, देवाविदेव, देवपि, देवागुर वर प्रद देवागुरेश्वर, दिव्य, देवागुर महेश्वर, देरो और असुरो को वरदान दाता, देव तथा अगुरो के द्वारा नगरश्च देवागुर महामात्र, देवागुर महेश्वर, सर्व देवमय, अचिन्त्य, देवो का आत्म सम्भव, ईडय, अनीश, सुर व्याप्त, देवसिंह, दिशाकर, विबुधारा प्रवर, श्रेष्ठ, सब देवो से उत्तम से भी उत्तम, शिव ध्यान में रत, श्रीमातृ, शिखी, श्री पर्वत को प्यार करने वाले, वज्रहस्त, प्रतिष्टम्भी, विश्व ज्ञानी निशाकर ॥६६-१०५ ॥

ब्रह्मचारी लोकाचारी धर्मचारी धनाधिप ।

नन्दी नन्दीश्वरो नमो नमन्रतघर शुचिः ॥१०६

लिङ्गाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षो युगावहः ।

स्ववशः स्वर्गतः स्वर्गः सर्गः स्वरमयं स्वनं ॥१०७

बीजाध्यक्षो बीजकर्ता, धर्मकृद्धर्मवर्धन ।

दम्भोऽदम्भो महादम्भः सर्वभूतमहेश्वरः ॥१०८

श्मशाननिलयस्तिप्य सेतुरप्रतिमाकृतिः ।

लोकोत्तरः स्फुटालोकस्थम्बको भक्तवत्सलः ॥१०९

अन्धकारिर्मलद्वेषी विष्णुकधरपातन ।

वीतदोषोऽक्षयगुणोऽन्तकारिः पूषदन्तभित् ॥११०

धूर्जटिः खण्डपरशुः सकलो निष्कलोऽनघः ।

आकारः सकलाधारः पाण्डुरागो मृगो नटः ॥१११

पूर्णः पूरयिता पुष्यः सुकुमार-सुलोचनः ।

समागेयः प्रियः क्रूरः पुष्पकीर्तिरनामगः ॥११२

ब्रह्मचारी, लोकाचारी, धर्मचारी, धनाधिप, नन्दी नन्दीश्वर, नमन्रत, वीतदोष, अक्षयगुण, अन्तकारि, पूषदन्तभित्, धूर्जटि, खण्डपरशु, सकलो निष्कलोऽनघ, आकार, सकलाधार, पाण्डुरागो मृगो नट, पूर्ण, पूरयिता पुष्य, सुकुमार-सुलोचन, समागेय, प्रिय, क्रूर, पुष्पकीर्तिरनामग

नग्नन्नधर, गुचि, लिङ्गाध्यक्ष, सुराध्यक्ष, धर्माध्यक्ष, युगावह, स्ववश, स्वाति, स्वर्ग, स्वरमय, स्वन, बीजाध्यक्ष, बीजकर्ता, धर्मकृत्, धर्मवर्द्धन, दम्भ, अदम्भ, महादम्भ, सर्वभूत महेश्वर, श्मशान निलय, तिष्य, सेतु, अप्रितमा कृति, लोकोत्तर, स्फुटालोक, त्र्यम्बक, भक्तवत्सल, अन्धरु दैत्य के शरि, मख्द्वेषी, विष्णु, कण्ठरपातन, वीतशेष, अक्षयगुण, अन्तकारि, पूषदन्नवित्, धूर्जटि, खण्डपरशु, सकल, किष्कल, अनध, आकार, सक्लावार, पाण्डुराग, मृग, नट, पूर्ण पूरयिता, पुष्य, मुकुमार, सुलोचन, साम वे द्वारा गाने योग्य, प्रिय, क्रूर, पुष्य कीर्ति, अनामय ॥१०६-११२॥

मनोजवस्तीर्थकरो जटिलो जीवितेश्वरः ।

जीवितान्तकरोऽनन्तो वसुरेता वसुप्रद ॥११३

सद्गतिः सत्कृतिः शान्त कालकण्ठ कलाधरः ।

मानी मन्तुमहाकालः सद्भूतिः सत्परायणः ॥११४

चन्द्रसजीवनः शास्ता लाकरूढो महाधिपः ।

लोकवन्धुर्लोकनाथः कृन्ज कृन्भूषणः ॥११५

अनपायोऽक्षरः शान्त सर्वशस्त्रभृता वरः ।

तेजोमयो द्युतिधरो लोकायामोऽग्रणीरगुः ॥११६

सुविस्मितः प्रसन्नात्मा दुर्जयो दुरनिक्रमः ।

ज्योतिर्मयो निराकारो जगन्नाथो जलेश्वरः ॥११७

तुम्बी वीणा महाशोको विशोकः शोकनाशनः ।

त्रिलोकेशस्त्रिनोकात्मा मिद्धि शुद्धिरधोक्षज ॥११८

अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो व्यक्ताव्यक्ती विशापतिः ।

वरशीलो वरगुणो गतो गव्ययनो भयः ॥११९

मनोजव, तीर्थकर, जटिल, जीवितेश्वर, जीवितान्तकर, अनन्त, वसुरेता, वसुप्रद, सद्गति, सत्कृति, शान्त, कालकण्ठ, कलाधर, मानी, मन्तु, महाकाल, सद्भूति, सत्परायण, चन्द्रसजीवन, शास्ता, लाकरूढ, महाधिप, लोकवन्धु, लोकनाथ, कृन्ज, कृन्भूषण, अनपाय, अक्षर, शान्त, सर्वशस्त्रभृता, वर, तेजोमय, द्युतिधर, लोकनाथ, अग्रणी, सुविस्मित, प्रसन्नात्मा, दुर्जय, दुरनिक्रम, ज्योतिर्मय, निराकार, जगन्नाथ, जलेश्वर, तुम्बी, वीणा, महाशोक, विशोक, शोकनाशन, त्रिलोकेश, स्त्रिनोकात्मा, मिद्धि, शुद्धिरधोक्षज, अव्यक्तलक्षण, व्यक्त, व्यक्ताव्यक्ती, विशापति, वरशील, वरगुण, गतो, गव्ययन, भय

महाधिप, लोकवन्द्य, लोकनाथ, कृतज्ञ, कृत्रभूषण, अनपाय, अक्षर शान्त,
सवशास्त्र धारियो मे परमश्रेष्ठ, तेजोमय, श्रुतिधर अथवा धृतिधर,
लोकमय, अग्रणी, अग्रणी, अणु, सुविस्मित, प्रसन्नात्मा, दुर्जय, दुरति क्रम,
ज्योतिर्मय, निराकार जगन्नाथ, जनेश्वर, तुम्बी, वीणा, महाशोक,
विशोक, लोकनाशन, त्रिलोकेन, त्रिलोकारमा, सिद्धि, शुद्धि, अधोक्षज,
अव्यक्तलक्षण, व्यक्त, व्यक्ताव्यक्त, विज्ञापनि, वरशील, वरगुण, मत,
गत्यपन, मय ॥११३-११६॥

ब्रह्मा विष्णु प्रजापालो हसो हसगतिमंत ।
वेधा विधाता स्रष्टा च कर्ता हर्ता चतुर्मुख ॥१२०॥
कैलासशिखरावासी सर्वावासी मदागति ।
हिरण्यगर्भो गगन पुरुष पूर्वज पिता ॥ १२१
भूतालयो भूतपतिभूतिदो भुवनेश्वर ।
सयमो योगविद्धो ब्रह्मण्यो ब्राह्मणप्रिय ॥ १२२
देवप्रियो देवनायो देवज्ञो देवचिन्तक ।
विषमाक्षो विशालाक्षो वृषदो वृषवर्धन ॥ १२३
निर्ममो निरहकारो निर्मोहो निरुपप्लव ।
दर्पहा दर्पणो हस सर्वतुं परिवर्तक ॥ १२४
सप्तजिह्व सहस्राचि स्निग्ध प्रकृतिदक्षिण ।
भूतभव्यभवन्नाथ प्रभवो भ्रान्तिनाशन ॥ १२५
अर्थोऽनर्थो महाकोश परकार्यं कपण्डित ।
निष्कण्टक कृतानन्दो मिर्व्याजो व्याजदर्शन ॥ १२६

ब्रह्मा-विष्णु-प्रजापाल-हस-हसगति मतवधा-विधाना-स्रष्टा
कर्ता हर्ता-चतुर्मुख-कैलासशिखरपूर्वज-पिता-भूतालय-भूतपति-भूतिद-
भुवनेश्वर-सयम-योगवित्-भ्रद्ध-ब्रमुण्य-ब्राह्मणप्रिय-देवप्रिय-
देवनाय-देवज्ञ-देवचिन्तक-विषमाक्ष-विशालक्ष-वृषद-वृषवर्धन-
निर्मम-निरहकार-निर्मोह-निरुपप्लव-दर्पहा-दर्पण-हस-
सर्वतुं परिवर्तक-सप्तजिह्व-सहस्राचि-स्निग्ध-प्रकृतिदक्षिण-

भूतभव्य भवन्नाथ—प्रभव—ध्वान्निनाशन—अर्थ—अनर्थ—महाकोश
परकार्यकिपण्डित—निष्कण्टक—कृतानन—निर्व्याज—व्याजदर्शन ।
॥१२०॥१२६ ॥

सत्त्ववान्सात्त्विकः सत्य. कीर्तिस्तम्भः कृत्तागम. ।
अकम्पितो गुणग्राही नैकात्मा लोककर्मकृत् ॥ १२७
श्रीवल्लभः शिवारम्भः शान्तभद्र समञ्जस. ।
भूशयो भूतिकृद्भूतिविभूतिर्भूतिवाहन. ॥ १२८
अकातो भूतकायस्थ. कालज्ञानो महापटुः ।
सत्यव्रतो महात्याग इच्छाशान्तिपरायणः ॥ १२९
परार्थवृत्तिवरदो विविक्तः श्रुतिसागर. ।
अनिर्विण्णो गुणग्राही निष्कलङ्क. कलङ्कहा ॥ १३०
स्वभावभद्रो मध्यस्थ शत्रुघ्न शत्रुनाशन. ।
शिखण्डी कवची शूली जटी मुण्डी च कुण्डली ॥ १३१
मेखली कञ्चुकी मञ्जरी माली ससारसारथि ।
अमृत्यु सर्वजित्सिंहस्तेजोराशिर्महामणि ॥ १३२
असह्येयोऽप्रमेयात्मा वीर्यवान्कार्यकोविद ।
वेद्यो वैद्यो वियन्दोऽसत्तावरमुनीश्वर. ॥ १३३

सत्त्ववान्—सात्त्विक—सत्य—कीर्तिरतम्भ—कृत्तागम — अकम्पित—
गुणाग्राही—नैकात्मा — लोककर्मकृत्—श्रीवल्लभ—शिवारम्भ—शान्तभद्र—
समञ्जस—भूशय—भूति—विभूति—भूति वाहन—अकाय—भूतकायस्थ—
कालज्ञान—महापटु—सत्यव्रत—महात्याग—इच्छाशान्ति परायण—
परार्थवृत्ति वरद—विविक्त—श्रुतिसागर—अनिर्विण्ण—गुणग्राही—
निष्कलङ्क—कलङ्कहा—स्वभावभद्र—मध्यस्थ—शत्रुघ्न—शत्रुनाशन—
शिखण्डी—कवची शूली—जटी—मुण्डी—कुण्डली—मेखली—कञ्चुकी
मञ्जरी—माली—ससार के सारार्थ—अमृत्यु—सर्वजित्—सिंह—तेजके-
राशि—महामणि—असह्येय—अप्रमेयात्मा—वीर्यवान्—कोविद—
वेद्य—वैद्य—वियन्दोऽसत्तावर मुनीश्वर । १२७-१३३ ।

अनुत्तमो दुराघर्षो मधुर प्रियदर्शन ।
 सुरेश शरण शर्म सर्वं शब्दवता गति ॥ १३४
 काल पक्ष करङ्गारि कङ्कणीकृतवासुकि ।
 महेष्वासो महीभर्ता निष्कलङ्को विशृङ्खल ॥ १३५ -
 द्युमणिस्तरणिर्धन्य सिद्धिद सिद्धिसाधन ।
 विवृत्त सवृत शिल्पी व्यूढोरस्को महाभुज ॥ १३६
 एकज्योतिर्निरातङ्को नरनारायणप्रिय ।
 निर्लोपो निष्प्रपञ्चात्मा निर्व्यागो व्यग्रनाशन ॥ १३७
 स्तव्य स्तवप्रिय स्तोता व्योममूर्तिरनाकुल ।
 निरवद्यपदोपायो विद्याराशिरकृत्रिम ॥ १३८
 प्रशान्तबुद्धिरधुद्र धुद्रहा नित्यसुन्दर ।
 ध्येयोऽग्रधुर्यो धात्रीश साकल्य शर्वरीपति ॥ १३९
 परमार्थगुरुर्व्यापी शुचिराश्रितवत्सल ।
 रसो रसज्ञ सारज्ञ सर्वसत्त्वावलम्बन ॥ १४०

अनुत्तमो—दुराघर्षं—मधुर—प्रियदर्शन—सुरेश—शरण—शर्म—
 सर्व—शब्दवानो की गति—काल—पक्ष—करङ्गारि—विङ्कणी कृत वासुकि—
 महेष्वास—महीभर्ता—निष्कलङ्क—विशृङ्खल—द्युमणि—तरणि—धन्य
 सिद्धिद—सिद्धिसाधन—विवृत्त—सवृत—शिल्पी—व्यूढोरस्क—महाभुज—
 एकज्योतिर्—निरातङ्क—नरनारायण प्रिय—निर्लोप—निष्प्रपञ्चात्मा—
 निर्व्याग—व्यग्रनाशन—स्तव्य—स्तव प्रिय—स्तोता—व्योममूर्ति—अना-
 कुल—निरवद्यपदोपाय—विद्याराशि—अकृत्रिम—प्रशान्तबुद्धि—अधुद्र—
 धुद्रहा—नित्यसुन्दर—ध्येय—अग्रधुर्यं—धात्रीश—साकल्य—शर्वरीपति—
 परमार्थं गुरु—व्यापी—शुचि—आश्रितवत्सल—रस—रसज्ञ—सारज्ञ—
 सर्वसत्त्वा वलम्बन ॥१३४।१४०॥

एव नाम्ना सहस्रेण तुष्टाव गिरिजापतिम् ।

संपूज्य परया भवत्या पुण्डरीकौद्विजोत्तमा ॥ १४१

जिज्ञासार्थं हरेर्भक्त्या कमलेषु शिव स्वयम् ।
 तत्रैक गोपयामास कमल मुनिपु गवा ॥१४२
 हते पुष्पे तदा विष्णुश्चिन्तयन्किमिद त्विति ।
 ज्ञात्वाऽऽत्मनोऽक्षिमुद्धृत्य पूजयामास शकरम् ॥ १४३
 अथ ज्ञात्वा महादेवो हरेर्भक्तिं सुनिश्चलाम् ।
 प्रादुर्भूतो महादेवो मण्डलात्तिग्मदीधिते ॥ १४४
 सूर्यकोटिप्रतीकाशस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखर ।
 शूलटङ्कगदाचक्रकुन्तपाशधरो विभु ॥ १४५
 वरकाभयपाणिश्च सर्वाभरणभूषित ।
 त दृष्ट्वा देवदेवेश भगवान्कमलेक्षण ॥ १४६
 पुनर्ननाम चरणौ दण्डवच्छूलपाणिन ।
 दृष्ट्वा शभु तदा देवा दुद्रुवुर्भयविह्वला ॥ १४७

इस प्रकार क उपर्युक्त भगवान् शिव के सहस्रनामों का पाठ करने से गिरिजापति की स्तुति की थी और पराभक्ति से भली भाँति पूजन करके हे द्विजोत्तमो ! पुण्डरीको से अभ्यर्चन किया था । श्रीहरि की भक्ति की जानने की इच्छा से कमलों में भगवान् शिव स्वयं ने उनमें एक कमल को गुप्त कर लिया था । हे मुनि श्रेष्ठो ! पुष्प के हत हो जाने पर उस समय में विष्णु भगवान् ने चिन्ता की थी कि यह क्या हुआ । अपनी आँख को निकाल कर जोकि कमल के ही समान सुन्दर थी जानकर भगवान् शङ्कर की पूजा पूण कर दी थी । १४१-१४३ । इसके अनन्तर श्री महादेवजी ने श्री हरि की सुनिश्चल भक्ति को जानकर महादेवजी प्रादुर्भूत हो गये थे और लिम्ब दीधिति (सूर्य) के मण्डल से ही उनका प्रादुर्भाव हुआ था । बरोड़ों सूर्यों के समान स्वरूप वाले थे तीन नेत्रों का धारण करने वाले तथा मस्तक में चन्द्र धारण किये हुए थे । शूल-रङ्ग-गदा-चक्र-कुन्त और पाश को धारण करने वाले विभु थे । १४४-१४५ । भगवान् शिव वरद और अभय दोनों हाथों में ग्रहण किये हुए थे तथा सब आभूषणों से विभूषित थे । भगवान्

कमलेक्षण ने उन देवों के भी देवेश्वर का दर्शन प्राप्त किया था और फिर उन्होंने शूल पाणि प्रभु के चरणों में दण्डवत् प्राणिपाल किया था । उस समय में भगवान् शम्भु का दर्शन करके देवगण भय से विह्वल होकर भाग दिये थे । १४६-१४७ ।

चचाल ब्रह्मभुवन चकम्पे च वसुधरा ।
 अघञ्चोऽत्र ततः प्रीते ददाह शतयोजनम् ॥१४८
 शभोर्भगवतस्तेजस्तद्दृष्ट्वा प्रहसञ्जिवः ।
 अब्रवीच्छार्ङ्गिण विप्राः कृताञ्जलिपुट स्थितम् ॥१४९
 देवकार्यमिदं जातमिदानी मधुसूदन ।
 दिव्य ददामि ते चक्रमद्भुत तत्सुदर्शनम् ॥१५०
 हितार्थं सर्वदेवानां निर्मित यन्मया पुरा ।
 गृहीत्वा तद्गुणैर्देव्याञ्जहि विष्णो ममाऽऽज्ञया ॥१५१
 एवमुक्त्वा ददौ चक्रं सूर्याद्युतसमप्रभम् ।
 लोकेषु पुण्डरीकाक्ष इति ख्यातिं गतो हरिः ॥१५२
 पुनस्तमब्रवीच्छभुर्नारायणमनायम् ।
 वतानन्यान्सुरश्रेष्ठ वरयस्व यथेप्सितान् ॥१५३
 एव शभोर्निगदितं श्रुत्वा देवो जनार्दन ।
 अब्रवीत्खण्डपरशु प्राञ्जलिं प्रणयान्वितः ॥१५४

उस समय में यह ब्रह्म भुवन चलायमान हो गया था और वसु-
 धरा कम्पाय मान हो गयी थी । इसके अनन्तर शम्भु के प्रीत होने पर
 नीचे और ऊपर के दोनों भाग शत्रु योजन तक हाह से युक्त हो गये थे
 ॥१४८॥ हे विप्रो ! भगवान् शम्भु का तेज देखकर शिव हमते हुए
 हाथ जोड़ कर स्थिर हुए शार्ङ्गी प्रभु से बोले ! हे मधुसूदन ! इस समय
 में जो देवों का कार्य विद्यमान है वह मैंने जान लिया है । मैं तुमको
 परम अद्भुत दिव्य सुदर्शन चक्र प्रदान कर रहा हूँ ॥१४९॥१५०॥ मैंने
 पहिले देवों के ही हिन के कार्यों के लिये इसका निर्माण किया था ।
 उसके गुणों से अब हे विष्णो ! मेरी आज्ञा आपको प्राप्त है आप दैत्यों

का दमन करिये ॥१५१॥ इस प्रकार से कहकर सहस्रों सूर्यों के समान प्रभा में समान्वित उम चक्र को प्रदान कर दिया था । लोगों में मुण्डरी काश—इस स्याति को तभी से श्री हरि प्राप्त हुए थे ॥१५२॥ फिर शम्भु अनामय नारायण से बोले—हे सुरों में श्रेष्ठ ! अन्य भी अभी प्सिन जो भी वरदान तुम्हें चाहिए उनको मुझसे प्राप्त करलो ॥१५३॥ देव जनार्दन ने इस तरह के भगवान शम्भु के कथन का श्रवण करके वे होवों को जोड़कर प्रणय से सयुत होकर खण्डपरशु प्रभु से बोले ॥१५५॥

भगवन्देवदेश परमात्मशिवान्वय ।

निश्चला त्वयि मे भक्तिर्भवत्विति वरो मम ॥१५५

भक्तिर्मयि दृढा विष्णो भविष्यति तवानघ ।

अजेयस्त्रिपु लोकेषु मत्प्रसादाद्भूविष्यसि ॥१५६

एव दत्त्वा वर शभुर्विष्णवे प्रभविष्णवे ।

अन्तर्हितो द्विजश्रेष्ठा इति देवोऽग्रवीद्विः ॥१५७

नाम्ना सहस्र यद्विष्य विष्णुना समुदीरितम् ।

य पठेच्छृणुयाद्वाऽपि सर्वपापं प्रमुच्यते ॥१५८

अश्वमेधसहस्रस्य फल प्राप्नोति निदिचतम् ।

पठनं सर्वभावेन विद्या वा महती भवेत् ॥१५९

जायते महदैश्वर्यं शिवस्य दयितो भवेत् ।

दुस्तरे जलसघाते यज्जल स्यसता व्रजेत् ॥१६०

हारायन्ते महापर्षो सिंह क्रीडामृगायते ।

तस्मान्नाम्ना सहस्रेण स्तांतव्यो भगवांश्शिवः ॥१६१

प्रयच्छत्यखिलान्कामान्देहान्ते च परा गतिम् ॥१६२

श्री विष्णु भगवान् ने कहा—हे भगवन् ! देव देवस्य ! हे परमात्मन् हे अव्यय ! मुझे यही वरदान चाहिए कि मेरी निश्चल भक्ति आपके धरणां में होवे ॥१५५॥ ईश्वर ने कहा—हे विष्णो ! आप तो अधों से रहित हैं मेरी दृढ भक्ति आपमें होगी और मेरे ही प्रसाद से आप तीनों

लोको मे अजेय हो जायेंगे ॥१५६॥ श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार प्रभु विष्णु भगवान् विष्णु के लिए शम्भु भगवान् ने वरदान प्रदान करके हे द्विजो ! अन्तर्धान हो गये थे—यह रवि देव ने बतलाया था ॥१५७॥ भगवान् विष्णु ने जो शम्भु के सहस्र नामों का सत्रुदीरण किया था वह परम दिव्य था इस शिव सहस्र नाम को जो भी कोई पढ़ता है या इसकी श्रवण किया करता है वह समस्त पापों से विमुक्त हो जाता करता है ॥१५८॥ वह सहस्र नाम का वक्ता एक सस्र अश्वमेध यज्ञ के यजन का पुण्य फल निश्चित रूप से ही प्राप्त कर लिया करता है । सर्व भाव से इसके पठन करने वाले को महती विद्या प्राप्त हो जाती है ॥१५९॥ सहस्र नाम के पढ़ने वाले के पास महान् ऐश्वर्य हो जाता करता है तथा वह फिर भगवान् शिव का प्रिय बन जाता है । इसकी महिमा से जहाँ परम दुस्तर जल का सघात हो वह भी स्थलता को प्राप्त हो जाता करता है ॥१६०॥ महान् विषले सर्प भी हारो के समान आचरण करने वाले हो जाते हैं और सिंह जैसा भी भयानक हिसब क्रीडा मृग के समान ही आचरण किया करता है । इसी लिये सहस्र नाम के द्वारा ही भगवान् शिव का स्तवन करना चाहिए । इससे परम प्रसन्न होकर भगवान् शिव सम्पूर्ण कामनाओं को प्रदान कर दिया करते हैं तथा देह के अन्त होने पर परागति दे दिया करते हैं ॥१६१॥ ॥१६२॥

॥ शिव पूजा विधि ॥

श्रुत शभोर्यथा चक्रं प्राप्तवान्पुरुषोत्तमः ।

इदानीं श्रांतुमिच्छामः शिवपूजाविधिं शुभम् ॥१॥

शिवपूजाविधिं वक्ष्ये सक्षेपेण द्विजोत्तमाः ।

वक्तुं वर्षशतेनापि न शक्यं विस्तरेण तु ॥२॥

पुरा मेरुगिरे. शृङ्गे सिद्धगन्धर्वसेविते ।

उक्त सनत्कुमाराय नन्दिना कुलनन्दिना ॥३॥

तत्राऽप्यौ विधिना स्नात्वा ममाचम्य यथाविधि ।
 पूजास्थानमनुप्राप्य उपविश्याथ बुद्धिमान् ॥८
 प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेद्देव सदाशिवम् ।
 शरीरशोचणं कृत्वा दहनं प्लावनं ततः ॥९
 शैवी तनुं समास्थाय न्यासकर्म समाचरेत् ।
 यौग्यं सूत्रात्मको मन्त्रः सर्ववेदात्मकं परं ॥१०
 तस्य वर्णाश्च विधिवन्त्यसेत्प्रणवपूर्वकान् ।
 ब्रह्माणि ततो विन्यस्य ततश्चन्दनवारिणा ॥११
 पूजास्थानं सुसंप्रोक्ष्य द्रव्याणि च मूनीश्वर ।
 क्षालनं प्रोक्षणं चैव प्रणवेन विधीयते ॥१२
 स्थानयेत्प्रोक्षणीपात्रं पाद्यपात्रं तथैव च ।
 तथा ह्याचमनीयं च ह्यवगुप्यथ यथाविधि ॥१३
 आच्छाद्य दर्भैर्मन्तिमास्तेनैवाभ्युक्ष्य वारिणा ।
 जल तेषु विनिक्षिप्य द्रव्याणि च ततः क्षिपेत् ॥१४

श्री नन्दिकेश्वर ने कहा—हे ब्रह्माजी के पुत्र ! आज मैं भगवान् शिव की पूजा की विधि की बतलाता हूँ आप उसका श्रवण करिए । मैं इसीलिए यह आपको बतलाता हूँ कि हे मुने ! आप सर्वात्मक श्री महा देव जी के परम भक्त हैं ॥७॥ उसके लिये सर्व प्रथम विधि के सहित स्नान करे और फिर यथा विधि आचमन करके पूजा के स्थान पर प्राप्त होवे और बुद्धिमान् अर्चन को आसन पर समुप विष्ट हो जाना चाहिए ॥८॥ तीन बार प्राणायाम करके सदाशिव प्रभु का ध्यान करना चाहिए । शरीर का शोषण करके फिर इसका दहन और प्लावन करे ॥९॥ शैवी तनु में समास्थित होकर न्यास कर्म का समाचरण करना चाहिए । जो यह सूत्रात्मक मन्त्र है वह पर और सर्व वेदात्मक है ॥१०॥ उस मन्त्र के वर्णों का विधि के सहित प्रणव के साथ न्यास करना चाहिए । इसके पश्चात् ब्रह्मों का विन्यास करके फिर सुगन्धित चन्दन के द्वारा मिथिन जल से पूजा के स्थान का भची भाति प्रोक्षण

करना चाहिए । हे मुनीश्वर ! जो पूजा के व्यहो उनका क्षालन और ओक्षण प्रणव के द्वारा ही करना चाहिए । फिर प्रोक्षणी पात्र और पाद्याग्न की स्थापना करनी चाहिए । उसी भाँति आचमनीयको यथा विधि अवगुण्डित करे । मतिमान को हमों में आच्छादन करना चाहिए और उसी जल से अभ्युक्षण करे । और उनमें जल विक्षिप्त करके फिर द्रव्यो को क्षिप्त करे ॥११॥१२॥१३॥१४॥

उशीर चन्दन चैव पाद्यो तु परिकल्पयेत् ।

चूर्णयित्वा सकङ्कोल कपूर जातिकाफलम् ॥ १५।

क्षिपेदाचमनीये तु प्रणवेन यथाक्रमम् ।

सर्वत्र चन्दन दद्यादर्घ्यपात्रेषुना शृणु ॥ १६

श्रीहीन्यवाश्च पुष्पाणि कुशाग्राणि तथैव च ।

सिद्धार्थानक्षताश्चैव साज्य च भसित तथा ॥ १७

कुशपुष्पयद्ब्रीहिवहुमूलतमालकान् ।

प्रक्षिपेत्प्रोक्षणीपात्रे प्रणवेन सुधीस्तत ॥ १८

सूत्रेण भवगायत्र्या गायत्र्या च द्विजोत्तम ।

प्रोक्षणीपात्रमादाय सप्रोक्ष्य द्वारपालकौ ॥ १९

पाश्वंतो मा चतुर्बाहु सूर्याद्युत्सर्गप्रभम् ।

वानरास्य त्रिनयन पुष्पमालासुशोभितम् ॥ २०

सर्वाभरणशोभाढ्य नन्दीश मप्रपूजयेत् ।

दक्षिण्ये तु महाकाल घोररूप भयावहम् ॥ २१

उशीर और चन्दन को पात्र में परिकल्पित करना चाहिए । कङ्को-
त्व के सहित कपूर और जाती फल का चूर्ण करना चाहिए । १५।
और यथा क्रम आचमनीय में द्रव्य से क्षिप्त करे । अर्घ्यपात्र में सर्वत्र
चन्दन देने और अब आगे जो कुछ करना है उसका अवधान करे । १६।
फिर सुधी पुरुष को ब्रीहियव पुष्प कुशा के अग्रभाग सिद्धार्थ-अक्षत-
घृत के सहित भसित-कुश-पुष्प यव ब्रीहि बहुमूल तामलक प्रणव के
द्वारा इन सबको प्रोक्षणीपात्र में प्रक्षिप्त करे । द्विजोत्तम को मूत्र के

द्वारा-शिव गायत्री के द्वारा और गायत्री मन्त्र के द्वारा प्रोक्षणीपात्रको ग्रहणाकर द्वार माला को सम्प्रोक्षण करना चाहिए । १७।१८।१९। पार्श्व भाग में नन्दीश्वर कहते हैं मुझ को सहस्रो सूर्यों के समान प्रभा वाले-चार बाहुओं से युक्त-वानर के समान मुख से युक्त तीन नेत्रों वाले पुष्पो की माला से मुशोभित सभी आभरणों की शोभा से आढ्य नन्दीश वा भली भाँति अर्चन करना चाहिए । दक्षिण भाग में महाकाल-भयावह घोररूप हाडों से कराल मुख वाले-कालाग्नि के चय के तुल्य का पूजन करना चाहिए । २०।२१।

दष्टाकरालवदन कालाग्निचयसनिभम् ।

पश्चादन्तर्गृह शभो प्रविश्य सुसमाहित ॥ २२

पञ्चपुष्पाञ्जलि दद्यात्तद्भिः पञ्चभिर्मुने ।

गन्धं पुष्पैर्महादेव भक्त्या सपूजयेद्बुध ॥ २३

स्कन्द विनायक चैव लिङ्गशुद्धिमथाऽऽरभेत् ।

सूक्तं मन्त्रैश्च विधिवन्नमोन्तैः प्रणवादिकैः ॥ २४

आसनं कपयेत्पश्चादैश्वर्यदलपङ्कजे ।

अणिमा पूर्वपत्र स्यात्सर्वज्ञत्वमथेश्वरम् ॥ २५

कर्णिकाया न्यसेद्विप्रवह्वं मण्डलततः ।

सौरसौम्य च विन्यस्य घर्मादीन्वै विदिक्षु च ॥ २६

अधर्मादीस्ततो दिक्षु सोमस्यान्ते गुणत्रयम् ।

तत्त्वत्रयमथो विद्वान्स्ततः शभुः प्रपूजयेत् ॥ २७

एनापयेद्विधिना देवगन्धयुक्तेन वारिणा ।

पञ्चामृतततो मन्त्रैः साधितविधिपूर्वकम् ॥ २८

इसके पश्चात् सुसमाहित होकर भगवान्शम्भु के अन्तर्गृह में प्रवेश करके पञ्ज-पुष्पाञ्जलि देदे । हे मुने! पञ्ज ब्रह्मों के द्वारा देना चाहिए । बुध पुरुष की भक्ति के साथ गन्ध और पुष्पा से महादेवजी का पूजन करना चाहिए । २२।२३। स्कन्द और विनायक देव का भी पूजन करे । इसके अनन्तर लिङ्ग शुद्धि का आरम्भ करना चाहिए । सूक्ता से और

मन्त्रों के द्वारा विधिवत् पूजन करे। जिनमें "मन"-यह तो अन्त में लगाने और अग्नि में प्रणाव लगा देना चाहिए। २४। पीछे ऐश्वर्य हल-पङ्कज में आसन की कल्पना करनी चाहिए। अग्निमा पूर्व पत्र होगा और इसके पश्चात् सर्वज्ञात् ईश्वर होंगे। २५। हे विप्र ! इसके अनंतर कणिका में वह्नि के मण्डल का न्यास करना चाहिए। सौर और सौम्य का विन्यास करे तथा विदिशाओं में धर्म आदि का न्यास करना चाहिए। २६। इसके पश्चात् दिशाओं में अधर्म आदि का न्यास करे और सोम के अन्न में तीनों गुणों को विन्यस्त करना चाहिए। इसके पश्चात् विद्वान् तीनों तत्वों का विन्यास करना चाहिए। फिर भगवान् शम्भु का पूजन करना चाहिए। २७। विधि से देव का स्मरण करावे और स्नान का जल गन्ध से युक्त ही होना चाहिए। फिर पञ्चामृत का वा साधत मन्त्रों से ही करना चाहिए। और विधि विधान के साथ ही उसे करना चाहिए। २८।

स्नापयेत्प्रणवेनैव तत्राऽऽदौ पयसा मुने ।
 आज्येन मधुना दध्ना तथा चक्षुरसेन च ॥ २६
 जलस्य शुद्धिं विधिवन्मन्त्रैः कुर्यादनेकशः ।
 सद्वाद्य सितवस्त्रेज स्नापयेदिन्दुशेखरम् ॥ ३०
 कुशापामार्गकपूरजातीचम्पकपुष्पकं ।
 करवीरं सितैश्चैव मल्लिकाकमलोत्पलं ॥ ३१
 आपूर्य्यं पुष्पैः सुशुभैश्चन्द्रनार्द्यैश्च तज्जलम् ।
 सद्योजातादिकास्तत्र विन्यसेहृद्वाण मुत ॥ ३२
 सुवर्णकलशेनाथ तथा वै राजतेन च ।
 शङ्खेन मृन्मयेनाथ शोभितेन शुभेन च ॥ ३३
 सक्वर्चन सपुष्पेण स्नापयेन्मन्त्रपूर्वकम् ।
 पवमानेन रुद्रेण तथा वामीयकेन च ॥ ३४
 त्वरित्वास्थेन रुद्रेण नीलरुद्रेण वा पुनः ।
 अथर्वशिरसा वाऽपि रुद्रेण च तथैव च ॥ ३५

हे मुने ! प्रणव के ही द्वारा स्नान कराना चाहिए । उसमें आदि में जल से स्नान करावे । फिर आज्य से मधु से-दधि से तथा ईख के रस से स्नान करावे । २६। फिर विधि पूर्वक अनेक बार जल की शुद्धि भक्तों के द्वारा करावे । श्वेत वस्त्र से भली भाँति छादम करके ही इन्दु शेखर भगवान् का स्नान कराना चाहिए । ३०। हे ब्रह्माजी के पुत्र ! कुशा-अपा मार्ग-कपूर-जाती-चम्पा कर बीर और तित पुष्पों से तथा माल्लिका और कमलो त्पलो से पूरित करके सुन्दर पुष्पों से और चन्दनादि से उस जल को मुक्त करे । उसमें सद्योजातादिक का विन्यास करना चाहिए । ३१। ३२। सुवर्ण के बलग से-चादी के से-शङ्ख से-मृत्तिका से निर्मित पात्र से किसी से भी जो शोभित हो और शुभ हो कूर्व कोस हित और पुष्पों से युक्त से मन्त्रों के साथ स्नान कराना चाहिए । पवमान रुद्र से-तथा वामीयक से त्वरित नाम वाले रुद्र में अथवा नील रुद्र में अथवा अधर्व शिर में तथा रुद्र से स्नान करावे ॥ ३१। ३५॥

रथनरेण पुष्येन श्रीसूक्तेनाथवा मुने ।

पौरुषेण च सूक्तेन ज्येष्ठसाम्ना च विष्णुना ॥ ३६

पञ्चभिर्ब्रह्मभिर्वाश्य सूत्रेण प्रणवेन वा ।

स्नापयेद्देवदेवेश सर्वयज्ञफलाप्तये ॥ ३७

वस्त्र यज्ञोपनीते च तथा ह्याचमनीयकम् ।

मुकुट च शुभ भद्र तथा वै भूषणानि च ॥ ३८

मुखवास च नैवेद्य सर्वं वै प्रणवेन च ।

तत स्कटिकसकाश देव निष्कलमक्षरम् ॥ ३९

कारण सर्वलोकाना सर्वलोकमय परम् ।

ग्रह्यणा विष्णुरद्राद्यै रपि देवैरगोचरम् ॥ ४०

वेदविद्भिर्द्दि, वेदान्तरगोचरमिति श्रुतम् ।

आदिमध्यान्तरहित भेषज भयरोमिणाम् ॥ ४१

शिवलिङ्गमिति म्यात शिवलिङ्गे व्यवस्थितम् ।

प्रणयेन्त्र मन्त्रेण पूजयोल्लिङ्गमूर्धनि ॥ ४२

पुण्य रथन्नर से हे मुने । अथवा श्री सूक्त से और पुरुष सूक्त से और ज्येष्ठमाम से विष्णु से पाँच ब्रह्मों में—सूत्र से अथवा केवल प्रणव से देवेश्वर का स्मरण कराना चाहिए । जिससे सब यज्ञों के पुण्य फल की प्राप्ति होवे ॥३६॥३७॥ वस्त्र-यज्ञोपवीत-आचमनीय भद्र-शुभ मुकुट-तथा भूषण मुखावास ताम्बूलादि-नैवेद्य ये सभी प्रणव से समर्पित करे । इसके पश्चात् स्फटिक के सदृश निष्कल अक्षर देवश को जो सब लोकों के कारण सर्व लोकमय परम हैं तथा ब्रह्मा-विष्णु और रुद्र आदि के द्वारा देवों के भी अगोचर हैं । जो वेदों के ज्ञाताओं के द्वारा वेदान्तों से ही वे गोचर हैं—यह श्रुत है । जो आदि मध्य और अन्त से रहित हैं और जो भव के रोगियों के भेषज हैं वह शिव लिङ्ग इम नाम से विख्यात है और शिव लिङ्ग में व्यवस्थित हैं । लिङ्ग के मस्तक में प्रणव मन्त्र से ही पूजन करना चाहिए ॥३८-४२॥

स्तोत्रं स्तुत्वा महादेव प्रणिपत्य प्रदक्षिणम् ।
 पुनरर्घ्यं च वै दत्त्वा पुष्पाणि च विकीर्य वै ॥४३॥
 पादयोर्देवदेवस्य प्रणिपत्य विमर्जयेत् ।
 एव सक्षिप्य कथित ब्रह्मसूतो शिवार्चनम् ॥४४॥
 सर्ववेदेषु यद्गुह्यं यथा शभोर्मया श्रुतम् ॥४५॥
 सनत्कुमारो भगवाञ्श्रुतवान्यच्छिवार्चनम् ।
 नन्दीश्वराद्भगवतस्तन्मया कथित द्विजा ॥४६॥
 यं पठेत्प्रयतो भक्त्या शिवार्चनविधिक्रमम् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥४७॥

स्तोत्रों के द्वारा स्तवन करके और महादेव जी की प्रदक्षिणा एवं प्रणिपात करके फिर अर्घ्य देवे और पुष्पों का विविरण करे ॥४३॥ देवों के देव के चरणों में प्रणिपात करके विसर्जित करे । हे ब्रह्मसूतो ! इस प्रकार से संक्षेप करके भगवान् शिव का अर्चन कह दिया है । यह सभी वेदों में भी परम गोपनीय है । जैसा मैंने भगवान् शम्भु से सुना है ॥४३-४५॥ श्री गूरी ने कहा—हे द्विजो ! भगवान् सनत्कुमार ने

जो शिवार्चन भगवान् नन्दीश्वर के मुख से सुना था वह मैंने वह दिया है ॥४६॥ जो प्रयत्न होकर भक्ति से इस शिव के अर्चन की विधि के क्रम को पढता है वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥४७॥

॥ दुर्वा-गणपति व्रत कथन ॥

अन्यद्ब्रत पापहर धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
 उमामहेश्वर नाम व्रत त्रैलोक्यत्रिश्रुतम् ॥१
 पौर्णमास्याममावास्या चतुदश्याष्टमी(?) तथा ।
 कार्यमेतासु तिथिषु नक्तमेतद्द्विगोत्तमा ॥२
 ब्रह्मचारी हविष्याशी सत्यवादी सुसयमी ।
 वर्षान्ते प्रतिमा कार्या हेम्ना वा रजतेन च ॥३
 पञ्चामृतैस्तु सस्नाप्य पूजयेद्विधिवद्द्विजा ।
 वस्त्रे पुष्परत्नकृत्य भक्षयेन्नाविधे शुभे ॥४
 ध्वजैर्वितानैश्चमरेयथा शोभा प्रकल्पयेत् ।
 आचार्यं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥५
 भक्त्या च दक्षिणा दद्याच्छिवभक्तांश्च भोजयेत् ।
 शिवमेकं तु सभोज्यं शनभोज्यफलं लभेत् ॥६
 सत्यं सत्यं पुनः सत्यं देवस्त्रं वचनं यथा ।
 प्रतिमा पूजिता पश्चात्ताम्रपात्रे मुनिमले ॥७
 निधाय सितवस्त्रेण सद्यश्च शिरसा नभेत् ।
 शङ्खतूर्यादिनिर्घोषैः शिवस्याऽऽयतनं महत् ।
 पुनर्वेद्यां मुमस्याप्यं व्रतं शभोनिवेदयेत् ॥८

सूतजी ने कहा—अन्य वन पापों के हरण करने वाला होता है और धर्म-नाम प्रयत्न और मोक्ष या प्रदान करने वाला होता है । उमा-हेश्वर नाम का व्रत त्रैलोक्य में प्रसिद्ध है । १॥ हे जोत्तमो ! पौर्णमासी अमावस्या चतुर्दशी अष्टमी इन तिथियों में रात्रि में यह व्रत

करना चाहिये ॥२॥ व्रत करने वाला ब्रह्मचारी हविष्य के खाने वाला-सत्य बोलने वाला-सुसयमी होना चाहिए । वर्षान्त में सुवर्ण से अथवा चाँदी से प्रतिमा बनानी चाहिए ॥३॥ हे द्विजो ! पञ्चामृत से स्नान कराकर उसका विधिवत् पूजन करना चाहिए वस्त्रों और पुष्पों से अलंकृत करके-शुभ भक्ष्य और नाना प्रकार के शुभ भोग्यों से ध्वजा-विताभों से और चमरों से शोभा की कल्पना करे । भक्ति भाव से आचार्य की पूजा वस्त्र-अलंकार-भूषणों से करनी चाहिए ॥४॥५॥ भक्ति से दक्षिणा देवे और जो शिव के भक्त पुरुष हों उनको भोजन कराना चाहिए । एक शिव के भक्त के भोजन कराने से सौ विघ्नो के जिमाने के समान फल मिला करता है ॥६॥ यह सत्य है और पुनः सत्य है तथा इसी तरह से सत्य है जैसे देवता के वचन परम सत्य हुआ करते हैं । पूजित प्रतिमा को पीछे सुनिर्मल ताम्र के पात्र में रखकर सफेद वस्त्र से ढाँककर शिर से उनका नमन करे । शख तूर्य आदि टाछों से भगवान् शिव का महत् आयतन बनवावे । पुनः उनको वेदी में सस्था-पित करके भगवान् शम्भो के लिये व्रत को निवेदित करना चाहिए ॥७-८॥

शिव प्रदक्षिणीकृत्य पश्चाद्देव क्षमापयेत् ॥९

श्रद्धया य करोतीदं व्रतं त्रिदशपूजितम् ।

सूर्यायुतप्रतीकाश विमान सार्वकामिकम् ॥१०

आरुह्य स्त्रीसहस्रैश्च गणैर्नानाविधैर्वृतः ।

याति माहेश्वरं स्थानं यत्नं गत्वा न शोचति ॥११

तत्र माहेश्वरान्भोगान्भुक्त्वा कल्पशतत्रयम् ।

तदन्ते वैष्णवान्भोगान्भुङ्क्ते विष्णोः समीपतः ॥१२

पश्चाद्भोगसमायुक्तो ब्रह्मलोके महीते ।

ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्ट प्राजापत्यान्समथ्नुते ॥१३

तस्माल्लोकाच्च्युतः पश्चात्सर्वलोकान्मस्कृतः ।

सोमनोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्पथेप्सितान् ॥१४

भावात् तिस्रही ही परेकान् हरके पीछे उतने इन प्रकार से क्षमापन की याचना करनी चाहिए ॥६॥ जो मनुष्य इस त्रिदशो (दशो) के द्वारा इस वन को क्रिया करता है वह अयुत (दश हजार) सूर्यो के समान सब कामनाओ को पूरा करने वाले विमान पर समारोहण करके सहस्रो स्त्रियो के सहित और अनेक प्रकार के गणो से परिवृत होकर मीघा माहेश्वर के स्थान को चला जाया करता है जहाँ पर जाकर फिर चित्ता नहीं क्रिया करता है ॥१०॥११॥ वर्षा पर तीन सौ कल्लो पर्यन्त माहेश्वर भोग का उपभोग करके उसके अन्त में वैष्णव भोगो को भगवान् विष्णु के समीप में स्थित रहना हुआ क्रिया करना है ॥१२॥ पीछे भोगो से समायुक्त होता हुआ ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है । ब्रह्मलोक से परिभ्रष्ट होकर प्राणात्म्य भावो का आनन्द ग्रहण करता है ॥१३॥ उस लोक से भी च्युत होकर पीछे सब भोगो के द्वारा विदित हुआ चन्द्रलोक को प्राप्त कर यथापिन्न भोगो का भोग करता है ॥१४॥

सोमाद्देवेन्द्रगन्धवयक्ष तोकमनुत्तमम् ।

भुक्त्वा तन्न महाभागास्तदन्ते मेरुपूर्वादि ॥१५

तदन्ते लोकपालाना लावानासाद्य मादने ।

तत कर्माविशेषेण पृथिव्यामेकराडभवेत् ॥१६

उमामहेश्वर नाम व्रत सर्वसुभगदम् ।

शक्रेण पुरा गीत पावत्या पण्डुस्य च ॥१७

अगस्त्य पण्डुखाल्लब्धा प्राप्तमान्मे गुरुभवन ।

द्विपायनान्मुनिवरात्प्राप्तवान्मृतमम् ॥१८

अन्यच्छूलव्रत नाम शण्ध्व मुनिपुत्रवा ।

अमावास्या निराहारो भवेदद्द सुभयमी ॥१९

शूल पिष्टमय कृत्वा वर्षान्ते विनिवेदयेत् ।

शिवाय राजत पद्य सुरणं स्तवर्णिहम् ॥२०

भवत्या तु विनयतेन्मुचिन सयमन्यत्र पूर्ववन् ।

ग्रह्यहत्यादिभि पापैर्मुक्ती यानि परा गतिम् ॥२१

इस रीति से सोम-गन्धर्व-देवेन्द्र और सर्वोत्तम यक्ष लोक में भोग भोगकर इसके अन्त में सुमेरु गिरि के मस्तक पर रहता है। उसके अन्त में लोक शुभ कर्मों के प्रवक्षिष्ट रहने से वह इस पृथिवी में एक रुद्र (सम्राट्) होता है ॥१५॥१६॥ यह उमा महेश्वर नाम वाला व्रत सर्व सुखों का प्रदान करने वाला है। पहिले भगवाद् शंकर ने पार्वतीजी से फिर उन्हो ने पण्मुख को बनलाया था। अगस्त्य मुनि ने पण्मुख जी के मुख से इसको प्राप्त किया था। उनसे मेरे गुरुजी ने इसे प्राप्त किया था। उन महा मुनिवर द्वैपायन जी से मैंने इस उत्तम व्रत को प्राप्त किया था ॥१७॥१८॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! मुझ से आप लोग एक शूल व्रत का श्रवण करिए। अमावस्या के दिन निराहार रह कर एक वर्ष तक सुसयमी रहना चाहिए ॥१९॥ शूल को विष्टमय करके वर्षान्ति में निवेदित करे। शिव के लिये राजत (चादी का) पद्म जिममें सुवर्ण की कणिका हो निवेदित करे और मस्तक पर भक्ति से विन्यास करना चाहिए। शेष सब कुछ कृत्य पूर्व व्रत के ही समान होते हैं। इस व्रत के करने वाला ब्रह्म हत्या आदि महापापों से मुक्त हो जाता है और अन्त में वह परागति को प्राप्त किया करता है ॥२०॥२१॥

लोकान्पूर्वोदितान्प्राप्य तदन्ते पृथिवीपतिः ।
पूर्णमास्याममावास्थामब्दमेक दृढव्रत ॥२२
वर्षान्ति सवंगन्धाढधा प्रतिमा विनिवेदयेत् ।
पूर्ववत्फलमाप्नोति व्रतेनानेन वै द्विजाः ॥२३
अष्टम्या च चतुर्दश्यामुपवासी जितेन्द्रियः ।
सर्वभोगसर्मायुक्त शिवलोके महीयते ॥२४
क्षमा सत्य दया दान शीचमिन्द्रियनिग्रहः ।
शिवपूजाऽग्निहवन मतोपास्तेयता तथा ॥२५
सर्वव्रतेष्वय धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः ॥२६
अन्यद्ब्रतं पापहरं क्षुण्ण्व मुनिषु गवाः ।
पण्मुखस्य पुरा प्रोक्त देवदेवेन शम्भवा ॥२७

कंलासशिपारासीन देवदेव जगद्गुरुम् ।

प्रणम्य विधिवद्भक्त्या पप्रच्छ गिरिजासुतः । २८

पूर्व में वर्णित लोको को प्राप्त करके उसके अन्त में पृथिवी का पति होता है । पूर्णमासी-अमावस्या में एक वर्ष तक दृढव्रत वाला पुरुष वर्ष के अन्त में समस्त गन्धों से समन्वित एक प्रतिमा की रचना करावे और उसे विनिवेदित कराना चाहिये । हे द्विजो ! इस व्रत से पूर्व के ही समान पुण्य फल प्राप्त किया करता है ॥२२॥२३॥ अष्टमी और चतुर्दशी में उपवास करने वाला जितेन्द्रिय पुरुष सब भोगों से समाप्त होकर शिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥२४॥ सभी व्रतों में यह धर्म सामान्य है जो दश प्रकार का रहा गया है ॥२५॥ क्षमा-सत्य-दया-दान-शौच-इन्द्रिय-निग्रह-शिवपूजा-अग्नि में हवन-सन्तोष-अस्तेयता ये ही वे दश प्रकार के धर्म के लक्षण माने गये हैं ॥२६॥ हे मुनि पुङ्गवो ! अन्य जो व्रत हैं वे सब पापों के हरण करने वाले ही हुआ करते हैं । इसे आप सुन लीजिए । देवों के देव शम्भु ने पहिले पण्मुख को यह बतलाया था ॥२७॥ गिरिजा के सुत ने कंलास पर्वत की शिखर पर समासीन-जगत् के गुरु देवदेव से प्रणाम करके विधिपूर्वक भक्ति की भावना से यह पूछा था ॥२८॥

केन व्रतेन भगवन्सौभाग्यमतुल भवेत् ।

पुत्रपौत्रधनैश्वर्यं मनुज सुखमेधते ॥२९

तन्मे वद महादेव व्रतानामुत्तम व्रतम् ।

येन चीर्णेन देवेश नरो राज्यं च विन्दति ॥३०

राज्ञीव जायते नारी अपि दासकुलोद्भवा ।

राजपुत्रो जयेच्छत्रून्गरुड पद्मगानिव ॥३१

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसं प्राप्य सर्वाधिको भवेत् ।

वर्णाश्रमविहीनोऽपि सोऽपि सिद्धिं च विन्दति ॥३२

शृणु वत्स श्रवणशक्तिं व्रतानामुत्तम व्रतम् ।

अस्ति दूर्वागणपतेर्व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥३३

भगवत्या पुरा चीर्णं पार्वत्या पद्मया सह ।
 सरस्वत्या महेन्द्रेण विष्णुना घनदेन च ॥३४
 अन्यैश्च देवैर्मुनिभिर्गन्धर्वैः किनरैस्तथा ।
 चीर्णमेतद्व्रत सर्वैः पुराकल्पे पडानन ॥३५

श्रीस्कन्दजी ने कहा—हे भगवन् ! कौनसा ऐसा व्रत है जिसके करने से अतुल सोभाग्य होता है । पुत्र-पौत्र-घन और ऐश्वर्य का मुख मनुष्य प्राप्त किया करता है ॥३६॥ हे महादेव ! वही मुझे आप सब व्रतों में उत्तम जो व्रत हो उसको बतलाने की कृपा कीजिये । हे देव-ेश्वर ! जिस व्रत के चीर्ण कर लेने पर मनुष्य राज्य की प्राप्ति का लाभ लिया करता है ॥३७॥ चाहे दास कुल में ही क्यों न जन्म ग्रहण किया हो नारा एक रानी के ही समान हो जाया करती है । राजपुत्र अपने शत्रुओं को मरुड जैसे सर्पों को जीत लेता है वैसे ही जीत लेता है ॥३८॥ ब्राह्मण ब्रह्मवर्चम को प्राप्त करके सबसे अधिक तेजस्वी हो जाया करता है । कोई वर्णों और आश्रमों से हीन भी हो तो भी सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है ॥३९॥ ईश्वर ने कहा—हे धर्म ! मुनो, मैं व्रतों में उत्तम व्रत बतलाना हूँ । दूर्वागणपति या व्रत त्रिलोरी में प्रसिद्ध व्रत होता है ॥४०॥ पहिले इम व्रत को भगवती ने पार्वती और पद्मा के साथ चीर्ण किया था । इस व्रत को सरस्वती देवी ने भी किया था तथा महेन्द्र-विष्णु और घनद (कृवेर) ने भी किया था । इनके अतिरिक्त अन्य देवों ने—मुनियों ने—गन्धर्वों ने तथा विभ्ररो ने इस व्रत को किया था । हे पडानन ! पहिले काल में ही सबने इम व्रत को चीर्ण किया था ॥४१॥४२॥

चतुर्थी या भवेच्छुक्रा नभोमासस्य पुष्यदा ।
 तस्या व्रतमिदं कुर्यात्कार्तिकया वा पडानन ॥४६
 गजाननं चतुर्थाहमेकदन्तं विगाटितम् ।
 विधाय हेम्ना विघ्नेशं हेमपीठागनस्थितम् ॥४७

तथा हेममयी दूर्वा तदाघारे व्यवस्थिताम् ।
 सस्थाप्य विघ्नहर्तारि कलशे ताम्रभाजने ॥३८
 वेष्टित रक्तवस्त्रेण सर्वतोभद्रमण्डले ।
 पूजयेद्भक्तकुसुमैः पत्रिकाभिश्च पञ्चभिः ॥३९
 बिल्वपत्रमपामार्ग शमी दूर्वा हरिप्रिया (?) ।
 अन्यैः सुगन्धिकुसुमै पत्रिकाभिः सुगन्धिभिः ॥४०
 फलैश्च भोदकैः पश्चादुपहार प्रकल्पयेत् ।
 यथावदुपचारैस्तु × पूछयामि जगत्पते ॥४१

जो नमो मान की शुक्ल पक्ष की चतुर्थी होती है वह परम पुण्य ही होती है उसमे इस व्रत को करना चाहिए अथवा कार्तिक की चतुर्थी में करना चाहिए । पढानन । गजानन—चार भुजाओ से युक्त एक दाँत वाले त्रिपाटित प्रतिमा बनाकर सुवर्ण से निर्मित करे और विघ्नेश प्रभु को हेम के पीठासन पर स्थित करना चाहिए ॥३६॥३७॥ तथा हेममयी दूर्वा को उनके आधार पर व्यवस्थित करे । फिर विघ्न कर्तार को ताम्र के पात्र कलश में सस्थापित करे और रक्त वर्ण के वस्त्र से वेष्टित करके सर्व तो भद्र मण्डल में रक्त वर्ण के कुसुमों से और पाँच पत्रिकाओं से पूजन करना चाहिए ॥३८॥३९॥ बिल्व पत्र—अपामार्ग—शमी—दूर्वा—हरि प्रिया तथा अन्य सुगन्धित पुष्पों से और सुगन्ध वाली पत्रिकाओं से—फलों—भोदकों से पीछे उपहार की प्रकल्पना करनी चाहिए । हे जगत्पते ! मैं यथावत् प्राप्त उपचारों से आपका पूजन कर रहा हूँ—यह प्रार्थना करनी चाहिए ॥४०॥४१॥

झ्युक्त्वा श्रद्धया नून पूजयेन्दरिजासुतम् ।
 एह्ये हि देव हेरम्ब विघ्नराज गजानन ॥
 उपविश्याऽऽसन देव सर्वकामप्रदो भव ॥४२
 उमासुत नमस्तुभ्य विश्वव्यापिन्समातन ।
 विघ्नोघ छिन्धि सकलमर्घ्यं पात्य ददामि ते ॥४३

गणेश्वराय देवाय उमापुत्राय वेधने ।
 पूजामय प्रयच्छामि गृहाण भगवन्नम ॥४४
 विनायकाय शूराय वरदाय गजानन ।
 उमासुताय देवाय कुमारगुरवे नमः ॥४५
 सम्प्रोदराय वीराय सर्वविघ्नोघहारिणे ॥४६
 उमाङ्गमलसभूत दानवाना वधाय वै ।
 अनुग्रहाय लोकानां स देव पातु विश्वमुक् ॥४७
 परज्योतिः प्रकाशाय सर्वसिद्धिप्रदाय च ।
 तुभ्य दीप प्रदास्यामि महादेवात्मने नमः ॥४८
 गणानां त्वा गणपति हवामहे
 कवि कवीनामुपमश्रवस्नमम् ।
 ज्येष्ठराज ब्रह्मणा ब्रह्मणस्पत
 आ न. शृण्वन्नूतिभि सीद सादनम् ॥४९

इतना निवेदन करने थक्या से निश्चय ही गिरिजा के सुन का पूजन करना चाहिए । हे देव ! हे रम्ब ! हे विघ्न राज ! हे गजानन ! आइए आइए । हे देव ! आसन पर उपविष्ट होकर समस्त कामनाओं के प्रदान करने वाले हो जाइए । यह आवाहन का भवत है । हे उमा सुन ! हे विश्व व्यापिन् हे मनागन् ! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार है । अन्य मेरे गन विघ्नों के साथ का छेदन कर दीजिए । मैं आपकी अर्घ्य और पाद्य अर्पित कर रहा हूँ । यह अर्घ्य और पाद्य का मत है ॥४२॥४३॥४४॥ गणेश्वर देव-वेधा-उमा के पुत्र के लिए पूजा अर्पित कर रहा हूँ । हे भगवान ! आप इसको ग्रहण कीजिए । आपर लिए मेरा नमस्कार है । यह गन्ध का मात्र है ॥४४॥ विनायक-शूर-वरद-उमा सुत-देव-और कुमार गुरु के लिए हे गजानन ! मेरा नमस्कार है । सम्प्रोदर-वीर और सब विघ्नों के समुदाय के हरने वाले प्रभु के लिये मेरा प्रणाम है । यह पुष्प अर्पण करने का मन्त्र है ॥४५॥४६॥ उमा के अङ्ग के पन में समुत्तर दानवों के वध के लिये प्रौर सौदों के ऊपर अनुग्रह करने के

लिए है आप सभूत हुए हैं । हे विश्वमुक्त देव । वही आप मेरी रक्षा कीजिए ॥४७॥ यह घृष देने का मन्त्र है । परम ज्योति के प्रकाश के लिये और सब प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने के लिए समुत्तम आपको मैं यह दीप अर्पित करता हूँ जोकि आप श्री महादेव जी के आत्मा हैं ऐसे आपको मेरा नमस्कार है । यह दीप वा भनज है ॥४८॥ गणों के गणपति आपको हम आवाहन करते हैं । आप कवियों में भी श्रेष्ठ कवि हैं आप यहा पधारए । हे ब्रह्मणस्वते । ब्रह्मों के आप ज्येष्ठ राज है । हमारी प्रायनाओं का श्रवण करते हुए आप हमारे इस स्थल पर विराजमान होइए यह उपहार काममन्त्र है ॥४९॥

गणेश्वर गणाध्यक्ष गौरीपुत्र गजानन ।

व्रत सपूर्णता यातु त्वत्प्रसादादिभानन ॥५०

एव सपूज्य विध्वनेश यथा विभवविस्तरै ।

सोपास्कर गणाध्यक्षमाचार्याय निवेदयेत् ॥५१

गृहाण भगवन्ब्रह्मणगराज सदक्षिणम् ।

व्रत त्वद्वचनादद्य सपूर्णं यातु सुव्रत ॥५२

एव य पञ्च वर्षाणि कृत्वोद्यापनमाचरेत् ।

ईप्सिताल्लाभते कामान्देहान्ते शाकर पदम् ॥५३

अथवा शुल्कपक्षस्य चतुर्थ्यां सयनेन्द्रिय ।

कुर्ताद्विर्पत्रय त्वेव सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥५४

उद्यापन बिना यस्तु करोति व्रतमुत्तमम् ।

तेन शुल्कतिलै कार्ये प्रात स्नान पडानन ॥५५

हेम्ना वा रजतेनापि कृत्वा गणपति बुध ।

पञ्चगव्यैश्च मुस्नाप्य दूर्वाभि सप्रपूजयेत् ॥५६

मन्त्रैश्च दशभिर्भक्त्या दूर्वायुक्तै शिखिध्वज ।

इत्येव कथित वत्स सर्वसिद्धिप्रद शुभम् ॥

व्रत दूर्वागणपते किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥५७

हे गणेश्वर ! हे गणालय ! हे भौरी के पुत्र ! हे गजानन ! यह मेरा पूर्णता को आपके अनुग्रह से प्राप्त होवे । यह प्रार्थना कामना है । ॥१०॥ इस प्रकार से विघ्नेश का पूजन करके जो जंभा भी आपके पास बसव हो उसी के अनुसार भजन करना चाहिए और फिर सब सामान के सहित गणाध्यक्ष प्रभु की प्रतिमा को अपने आचार्य के लिये निवेदिन करना चाहिए ॥११॥ हे भगवान् । हे ब्रह्मान् ! इन गणराज प्रभु को आप दक्षिणा के सहित ग्रहण कीजिए । हे सुव्रत ! आज यह मेरा व्रत आप के वचनाशीर्वाद से सम्पूर्णाता को प्राप्त हो जावे । यह व्रत देने का मनज है । इसे ध्यान कर ही आचार्य को दान देना चाहिए ॥१२॥ इस प्रकार से जो कोई पाच वर्षों तक करके उद्यापन का आरम्भ करता है वह पुरुष इस व्रत के समाचरण से अपने अभीष्ट मनोरथों को प्राप्त कर लेता है और अन्त में भगवान् शङ्कर के पद की प्राप्ति हुआ करता है ॥१३॥ अथवा शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में रात इन्द्रियों वाला होकर इस प्रकार से तीन वर्ष तक करे तो सर्व सिद्धि को पा जाया करता है ॥१४॥ जो कोई मनुष्य बिना ही उद्यापन के इस उत्तम व्रत को किया करता है उद्यो हे पटानन ! यह शुक्ल तिथी ही में करना चाहिए और प्रातः काल में स्नान करे । बुध पुरुष को सुवर्ण या चाँदी में गणपति की प्रतिमा की रचना करनी चाहिए । पञ्चगव्यां से भली भाँति सुष्मपन कराकर फिर दूर्वाओं से उनका पूजन करना चाहिए ॥१५॥१६॥ हे निमित्तव्रज ! भस्म से भक्तों के और दूर्वाओं के द्वारा पूजन करे । हे नरम ! यह इस प्रकार से सब सिद्धियों का देने वाला परम गुण व्रत देने वाला दिया है । यह दूर्वा गणपति का व्रत है । अथ और क्या मुझे तुम श्रवण करना चाहते हो ? ॥१७॥

॥ शिवालय करणादि फल कथन ॥

मृदादिरत्नपर्यन्तैर्द्रव्यैः कृत्वा शिवालयम् ।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तन्नो वक्नुमिहार्हसि ॥१

शृणुष्वमृषयः सर्वे प्रभावं परमेष्ठिनः ।
शिवालयस्य करणादनन्तभलमुच्यते ॥२

अपि लोष्टमयं वाऽपि यः करोति शिवालयम् ।
सर्वप्रयत्नेन विप्रेन्द्रा धर्मकामार्थमुक्तये ॥३

कैलासाख्यं च यः कुर्यात्प्रासाद परमेष्ठिनः ।
मेर्वाख्यं मन्दराख्यं वा तुहिनाद्रिमथापि वा ।

निषधाद्रिं च नीलाद्रिं महेन्द्राख्यं द्विजोत्तमाः
स तत्सर्वतसकाशैर्विमानैः सार्वकामिकं ॥५

गत्वा शिवपद दिव्यं शिववन्मोदते चिरम् ।
महाप्रलयपर्यन्तं भुक्त्वा भोगान्यथेष्यितान् ॥६

तदन्ते विपयास्त्यक्त्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्
पतित खण्डलं वाऽपि जीर्णं वा स्फुटितं तथा ॥७

ऋषियो ने कहा—मृत्तिका से आदि लेकर रत्नो पर्यन्त एक शिवालय की रचना कराकर जो पुण्य फल मनुष्य प्राप्त किया करता है उसको आप हमको बतलाने के लिये समर्थ है ॥१॥ श्री सूत जी ने कहा—हे समस्त ऋषि गणो ! अब आप परमेष्ठी प्रभु का प्रभाव सुनिये ! शिवालय की रचना करने से अनन्त फल बतलाया जाता है ॥२॥ जो भी कोई चाहे लोष्टमय ही एक शिवालय की रचना करता है हे विप्रेन्द्रो ! वह सर्व प्रयत्नो से धर्म काम और अर्थ तथा मुक्ति के लिये ही हुआ करता है ॥३॥ कैलास नाम वाला जो परमेष्ठी का प्रासाद कोई बनाता अथवा मेरु नाम से युक्त—मन्दर नाम वाला या तुदिन गिरि नाम वाला—निषधाद्रि—महेन्द्र-नीलाद्रि नाम से युक्त शिवालय हे द्विजोत्तमो ! कोई बनवाता है जो कि अत्युत्तम हो वह मनुष्य पर्वत के सदृश सर्व

कामिक विमानो के द्वारा ही परम दिव्य शिव पद को जाकर भगवान शिव की ही तरह चिन्म काल तक परम प्रसन्न रहा करता है । वह महा प्रलय तक वहा पर यथोचित भोगो का भोग किया करता है । इसके अन्त मे सब विष्टियों को त्याग करके भगवान शिव हे सांभुग्य को प्राप्त कर लिया करता है । चाहे वह पतित खण्डित—जीर्ण अथवा स्फुटित कैसा ही क्यों न होवे ॥४॥ १॥६॥७॥

कारयेत्पूर्ववद्यस्तु सुधाद्यं सुमरोहरं ।

प्राकार मण्डप बाऽपि प्रासाद गोपर तथा ॥८॥

वर्तुं रम्यविक पुष्य लभते नात्र सशय ।

वृत्त्यर्थं वा प्रकुर्वीति नर कर्म शिवाले ॥९॥

य प्रयाति न सदेह स्वर्गलोके सबान्धव ।

यश्चाऽऽत्मभोगसिद्धचर्यमपि रुद्रालये सकृत् ॥१०॥

कर्म कुर्याद्यदि सुख लब्ध्वा सोऽपि प्रमोदते ।

यदाऽऽक्तो भवेन्मर्त्यं प्रासाद वर्तुं मीश्वरे ॥११॥

ममार्जनादिभिर्वाऽपि सर्वाङ्कामानवाप्नुयात् ।

समार्जनं तु य कुर्यान्मार्जन्या मृदुमूक्षया ॥१२॥

चान्द्रायणमहस्रभ्य फल मासेन लभ्यते ।

शिवस्य पुरतो वह्निं सम्याप्याम्यर्च्यं शक्यम् ॥१३॥

जुहुयादात्मनो देहं य स याति शिव पदम् ।

शिवभेदे निराहारो भृत्वा प्राणान्परित्यजेत् ॥१४॥

जो पूर्ववत् उस शिवालय का उद्धार करके प्यार करा देता है और सुधा आदि पुत्रया देता है और परम गुन्दर पदार्थों से विरचिन करा देता है . उमका प्राकार-मण्डप-प्रासाद और गोपुर बनवा देता है । उस बनाने वाले को अपिक पुष्य प्राप्त हुआ करता है—इसम पुष्य भी सांभु गही है । अथवा वृत्ति व लिय मनुष्य शिवालय में कर्म करे । जो लसा करता है वह वाग्यवा व महिन स्वर्गलोक मे गमन किया करता है—इसम सन्देह गही है । जो भाग्य भोग की विधि व लिये

भी रुद्रालय मे यदि एन बार कर्म करे तो वह सुख प्राप्त करके वह भी परम प्रसन्न होता है । जब मनुष्य असक्त हो कि ईश्वर के प्रसाद का निर्माण न कर सके तो शिवालय मे सभाजन आदिकी सेवा करने मे भी समस्त कामाओ की प्राप्ति कर लिया करता है । जो मनुष्य मृदु सूक्ष्मा मार्जनी से समाजंन किया करता है वह एक मास मे एक सहस्र चान्द्रायण व्रतों का फल प्राप्त कर लिया करता है । भगवान् शिव के आगे वृद्धि की सम्यापना करके शङ्कर का अभ्यर्चन करे और अपने देह की आहुतियां देता है वह भी शिवजी के पद को प्राप्त किया करता है । भगवान् शिव के क्षेत्र मे निराहार होकर जो प्राणो का परित्याग किया करता है वह परमेशी के प्रसाद से शिव के शायुज्य को प्राप्त कर लेता है । ॥८-१४॥

शिवसायुज्यमाप्नोति प्रसादात्परमेष्ठिन ।

अथाऽऽत्मरणौ छित्त्वा शिवक्षेत्रे वसेन्नर ॥१५॥

देहान्ते शिवसायुज्य लभते नात्र सशय ।

फल यदश्वमेघस्य तदेव क्षेत्रदर्शनात् ॥१६॥

शताधिक प्रवेशाच्च द्विगुण लिङ्गदर्शनात् ।

तस्माच्छतगुणा पूजा जलस्नान ततोऽधिकम् ॥१७॥

जलस्नानाच्च विप्रेन्द्रा क्षीरस्नान शताधिकम् ।

दध्ना सहस्रमाख्यात् मधुना तच्छताधिकम् ॥१८॥

अनन्त सर्पिषा स्नान वाससा तच्छताधिकम् ।

तस्मात्कोटिगुण पुण्य पञ्चत्व शकरालये ॥१९॥

तस्माच्छतगुण पुण्य नियमैर्यस्त्यजेत्तनुम् ।

प्रदक्षिणात्रय कुर्याद्य प्रासाद समन्तत ॥२०॥

सव्यापसव्यव्याजेन मृदु गत्वा शुचिर्नर ।

पदे पदेऽश्वमेघस्य यज्ञस्य फलमाप्नुयात् ॥२१॥

इसके अनन्तर जो अपने चरणा का छेदन करके शिव के क्षेत्र मे निवास किया करता है वह देह के अन्त हो जाने पर भगवान् शिव के

सायुज्यपद को प्राप्त किया करता है—इसमें नैत्र मात्र भी सशय नहीं है । शिव के क्षेत्र के दर्शन का भी ऐसा फल होता है कि जो अश्वमेध यज्ञ करने वाले को हुआ करता है वही उसे होता है । १५।१६। शिवालय में प्रवेश करने से सौ गुना अधिक और शिवलिङ्ग के दर्शन से उससे भी द्वागुना फल प्राप्त होता है । उसमें भी शतगुना पूजा का फल होता है और जल से भगवान् शिव का स्नान कराने से उससे भी अधिक फल हुआ करता है । १७। हे त्रिपेत्रो ! जल के द्वारा स्नान कराने से दूध से स्नान कराने में सौ गुना अधिक हुआ करता है । दही से स्नान कराने पर सहस्र गुना फल कहा गया है और मधु से शत शतगुना अधिक फल होता है । घृत से स्नान कराने पर अनन्त गुना फल होता है । वात से कराने पर शताधिक फल हुआ करता है । उससे कोटि गुना पुण्य शङ्करालय में पञ्चत्व का होना है । १८।१९। उससे भी करोड गुना पुण्य नियमों के साथ रहकर जो शरीर का त्याग किया करता है उभय होना है । प्रासाद के चारों ओर जो तीन प्रदक्षणा किया करता है । राव्य-अपमव्य व्याज से शुचि मनुष्य भूदुग्मन करने पर एक पद में अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त किया करता है । २०।२१।

दुर्लभा खलु या मुक्तिरनायासेन देहिनाम् ।

जायते कर्मणा येन शृणुष्व तद्द्विजोत्तमा ॥२२॥

गौचर्ममात्रं मलिप्य मण्डलं गोमयेन च ।

चतुरस्रं विधानेन चाद्भिरभ्युदय मन्त्रविन् ॥२३॥

अनवृत्त्यं वितानार्थं दक्षप्रवर्जपि मनोहरं ।

जुद्वुदैरयं चन्द्रं च मघणैरश्वत्यपत्रकं ॥२४॥

गितं विरगितं पत्रं रक्तं नीलोत्पलं रत्नया ।

विमानेन विचित्रेण मुक्तादाम्ना द्विजोत्तमा ॥२५॥

मिनमृत्साप्रकं दनेयं मुद्राक्षणे पूर्णकुम्भकं ।

पत्रपन्नवमानाभिर्यजयन्तीमिरगुर्वं ॥२६॥

पञ्चाशद्दीपमालाभिर्धूपैश्च विविधैस्तथा ।
 पञ्चाशद्दलसयुक्तं लिखित्वा पद्ममुत्तमम् ॥२७॥
 तद्वद्वर्णैस्तथा चूर्णैश्चेत्तचूर्णैरथापि वा ।
 एकहस्तप्रमाणेन कृत्वा पद्मं विधानत ॥२८॥

देह धारियो की मुक्ति परम दुर्लभ हुआ करती है वह भी अनायास से ही हो जाया करती है । उस कर्म के विषय मे हे द्विजैत्तमो ! अब आप श्रवण कीजिए ।२२। गोमय से गोचर्म के परिणाम वाला मण्डत का भली भाँति खेप न करे । चतुरस्र के विधान से मन्त्र वेत्ता को जल से अभ्युष्ण करना चाहिए ।२३। वितान आदि से अथवा मगोहर छत्रो के द्वारा उनको विभूषित करना चाहिए । चुबुद्धो से—अर्धचन्द्रो से—स्वर्णो से और अश्वत्य के पत्रो से—सित-विकसित पत्रो से—रक्त कमलो से—नीलोत्पलो से—विचित्र विमान से—मुक्ताओ की लडियो से हे द्विजोत्तमो ! सितमृत्तिका के पात्रो से-सुलक्षणपूर्ण कुम्भो से-फल और पल्लवो की मालाओ से- वैजयन्तियो के द्वारा- अशुको से-पचास दीपो की माला से-विविध प्रकार की धूपो से-एक पचास दलो से सयुत उत्तम पद्म का लेखन करके उस वर्णो के वर्णो से अथापि श्वेत चूर्णो से एक हाथ के प्रमाण वाला विधान पूर्वक पद्म की रचना करे । ॥२४-२८।

कर्णिकाया न्यसेद्देव देव्या देवेश्वर भवम् ।
 पर्णानि विन्यसेद्वर्णं रुद्रं प्रागाद्यनुक्रमात् ॥२९॥
 प्रणवादिदमोन्तानि सर्ववर्णानि सुव्रता ।
 सपूज्यैव सुरश्रेष्ठ गन्धपुष्पादिभि क्रमात् ॥३०॥
 ब्राह्मणान्भोजयत्तत्र पञ्चाशद्विधिपूर्वकम् ।
 अक्षमालोपवीत च कुण्डले च कमण्डलुम् ॥३१॥
 आसन च तथा दण्डमुष्णीष वस्त्रमेव च ।
 दत्त्वा तेषां द्विजेन्द्राणां देवदेवाय शभवे ॥३२॥

महाचसुं विवेद्यं कृष्ण गोमिथुनं तथा ।

अन्ते च देवदेवाय दत्त्वा तद्वर्णमवडलम् ॥३३॥

यागोपयोगिद्रव्याणि शिवाय विनिवेदयेत् ।

ओंकाराद्यं जपेद्धीमान्प्रतिवर्णमनुक्रमात् ॥३४॥

एवमालिख्य यो भक्त्या वर्णमण्डलमुत्तमम् ।

यत्फलं लभते मृत्यस्तद्वदामि समासतः ॥३५॥

उस पद्य की कर्णिका में देवी के साथ देवेश्वर भव का न्यास करना चाहिए । रूद्र वर्णों से प्राग् आदि के अनुक्रम से वर्णों का विन्यास करे ॥२६॥ हे सुव्रतो ! प्रणव आदि में और अन्त में "नमः" शब्द लगाकर सर्व वर्णों का प्रयोग करे । इस प्रकार सुरश्रेष्ठ का भलीभाँति पूजन करके गन्ध आदि का क्रम से अभ्यर्चन करना चाहिए ॥३०॥ वहाँ पर ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिए । कम से कम पचास विप्रों का भोजन करावे और विधि के साथ ही कराना चाहिए । उन विप्रों को अक्षमाता उदवीत-दोकुण्डल कमण्डलु-आसन-दण्ड-उष्णीष-चस्त्र उन द्विजों को देवदेव भगवान् शम्भू का उद्देश्य करके ही अर्पित करे ॥३१॥३२॥ महाचरु का निवेदन करके कृष्ण वर्ण की दो गौओं का दान करे और अन्त में देवदेव के लिये उस वर्ण का मण्डल-भाव के उपयोगी द्रव्यों को भगवान् शिव के लिये विशेष रूप से निवेदित करना चाहिए । धीमान् को प्रत्येक वर्ण के आदि में ओंकार लगाकर अनुक्रम से जाप करना चाहिए ॥३३॥३४॥ जो आदमी इस प्रकार से भक्ति के साथ उत्तम वर्ण मण्डल को लिखकर अभ्यर्चन करे जो फल मनुष्य प्राप्त किया करता है उसको सन्नेप से बतलाता हूँ ॥३५॥

साङ्गान्वेदान्यथान्यायमधीत्य विधिपूर्वकान् ।

इष्ट्वा यज्ञैर्यथान्याय ज्योतिष्टोमादिभिः क्रमात् ॥३६॥

ततो विश्वजिता चेष्ट्वा पुत्रानुत्पाद्य माहसान् ।

वानप्रस्थाश्रमं गत्वा सरदारः साग्निरेव ज ॥३७॥

चान्द्रायणादिकान्कृत्वा सर्वान्सन्यस्य वै द्विजा ।

ब्रह्मविद्यामधीत्यैव ज्ञानमापाद्य यत्नतः ॥३८॥

ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य योगवित्फलमाप्नुयात् ।
 तत्फलं लभते सर्वं वर्णमण्डलदर्शनात् ॥३६॥
 येन वेनापि वाऽऽलित्य प्रलिप्याऽऽयतनाश्रमम् ।
 उत्तरे दक्षिणे वाऽपि पृष्ठनो वा द्विजोत्तमा ॥४०॥
 चतुष्कोरोऽपि वा शूर्णोरलकृत्य समन्तत ।
 विकीर्यं गन्धकुसुमैर्धूपैर्दीपैश्चतुर्विधै ॥४१॥
 प्रार्थयेद्देवमीशानं शिवलोकं स गच्छति ॥४२॥

साङ्गवेदो को यथान्याय विधिपूर्वक पढकर और न्यायानुसार यज्ञ के द्वारा भजन करके जो कि ज्योतिष्टोमादि है क्रम से उन्हे करे ।३६॥ इसके अनन्तर विश्व जिनके द्वारा यजन करके मुझ जैसे पुत्रों का उत्पादन करे फिर वानप्रस्थ आश्रम में गमन करना चाहिए । वान-प्रस्थ में हारा के साथ और साग्नि ही गमन करे ।३७॥ हे द्विजो ! फिर चान्द्रायण आदि व्रतों को करे और सबका अन्त में भलीभाँति न्यास कर देना चाहिए अर्थात् सन्यास चौथा आश्रम ग्रहण करे । ब्रह्म विद्या का अध्ययन करके यत्नपूर्वक ज्ञान का आपादन करना चाहिए ।३८॥ ज्ञान के द्वारा ज्ञय (जानने के योग्य) को देखकर योग का वेत्ता फल को प्राप्त किया करता है । वह सम्पूर्ण फल वर्ण मण्डल के दर्शन से प्राप्त करता है ।३९॥ जिस किसी के द्वारा आलेखन करके और आप तन के आश्रम को लीपकर हे द्विजोत्तमो ! उत्तर अथवा दक्षिण में अथवा पृष्ठभाग में अथवा चतुष्कोण में शूर्णों से सभी ओर अलकृत करके-गन्ध और कुसुम का विकरण करके चारों प्रकार के धूप दीपों से ईशान देव की प्रार्थना करनी चाहिए । वह आदमी शिवलोक को चला जाया करता है ।४०।४१।४२।

तत्र भुक्त्वा महान्भोगान्कल्पकोटिशतं नरः ।

स्वदेहइन्धैश्च शुभैः पूरयन्निश्वमन्दिरम् ॥४३॥

क्रमागदान्धर्वमासाद्य गन्धवैश्च सूपूजितः ।

क्रमादागस्य लोकेऽस्मिन् राजा भवति वीर्यवान् ॥४४॥

आपः पूता भवन्त्येता वस्त्रपूताः समुद्भवाः ।
 अफेना मुनिशार्दूला नादेयाश्च विशेषताः ॥४५
 तस्माद्धै सर्वकार्याणि वैदिकानि द्विजोत्तमाः ।
 अद्भिः कार्याणि सततं पूताभिः सर्वमिद्वये ॥४६
 अहिंसा तु परो धर्मः सर्वेषां प्राणिनां यतः ।
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतेन कारयेत् ॥४७
 यद्दानमभयं पुन्यं सर्वदानोत्तमम् ।
 तस्मात्सा परिहृतंब्या हिंसा सर्वत्र सर्वदा ॥४८
 मनसा कर्मणा वाचा सर्वभूतहिते रताः ।
 यदा दर्शितपन्थानः शिवलोकं व्रजन्ति ते ॥४९

वहाँ पर शिवजी के लोक में महा भोगो का भोग करके मनुष्य एक
 सौ करोड़ बल्बों तक सुप्त से रहा करता है । अपने देह की परम शुभ
 जन्मों से शिव मन्दिर को पूरता हुआ वहाँ निवास करता है । क्रम से
 गन्धर्व लोक में पहुँचकर गन्धर्वों के द्वारा बन्दित होता है । फिर क्रम से
 वह इस लोक में धीर्यवान् राजा होता है । जल पवित्र होते हैं और ये
 वस्त्र से भी पूत होकर समुद्भव वाले होते हैं । हे मुनि शार्दूलो ! फेन
 सहित जल भी शुद्ध होते हैं तथा नदी के जल भी विशेष रूप से पूत
 माने गये हैं । इसीलिये हे द्विजोत्तमो ! वैदिक सभी कार्य निरन्तर पूत
 जलो के द्वारा ही करने चाहिए क्योंकि सर्व सिद्धि इसीसे होती है
 ॥४३॥४४॥४५॥४६॥ क्योंकि समस्त प्राणियों की अहिंसा परम धर्म
 होता है । इसलिए सभी प्रयत्नों से जलको वस्त्र से पूछ करके कार्य में
 लाना चाहिए । अम्ल का दान जो होता है वह परम प्रायमय है और
 यह सभी दानों में अत्युत्तम है । अतएव सर्वत्र और सर्वदा हिंसा का
 परित्याग कर देना चाहिए । मन-वाणी-कर्म समस्त मुणियों में रति
 रखने वाले हैं जब ये दर्शित पन्था वाले होने हैं तो ये शिवलोक को
 गमन किया करते हैं ॥४७-४९॥

त्रैलोक्यमखिलं हत्वा यत्पापं जायते नृणाम् ।
 शिवालये विहृत्यैकमपि तत्पापमाप्नुयात् ॥५०
 शिवार्थं सर्वदा कार्या पुण्ड्रहिंसा द्विजोत्तमैः ।
 यज्ञार्थं पशुहिंसा च राजा दुष्टस्य शासनम् ॥५१
 न हन्तव्याः स्त्रियः सर्वा अत्रेश्च कुलसभवाः ।
 ब्रह्महत्यासम पापमात्रेऽपि वधतो भवेत् ॥५२
 स्त्रियः सर्वा न हन्तव्या सर्वैश्चैव द्विजातिभिः ।
 सर्वधर्मेषु त्रिप्रेन्द्राः पापकर्मरता अपि ॥५३
 तस्मादहिंसादियुतः शान्तः शिवजनप्रियः ।
 भक्तिं शिवे समास्थाय तस्मिञ्जन्मनि मुच्यते ॥५४
 विश्वेश्वरे विरूपाक्षे विश्वव्यापिनि विश्वगे ।
 सर्वमन्यत्पण्डित्यज्य भक्तिं कार्या मनीषिभिः ॥५५
 पुत्रवित्तादिषु यथा सक्न चित्तं सदा नृणाम् ।
 तथा सकृद्विरूपाक्षे दूरं किं शाकर पदम् ॥५६

त्रैलोक्य के सम्पूर्ण के हनन करने से मनुष्यों को जो पाप समुत्पन्न होना है उतना ही पाप केवल एक शिवालय का विघ्न न करने से हुआ करता है । द्विजोत्तमों को शिवार्थं पुण्य हिंसा सदा करनी चाहिये । यज्ञ के लिये पशु हिंसा सदा करनी चाहित । यज्ञ के लिए पशुहिंसा और राजा के द्वारा दुष्ट का शासन करे ॥५०॥५१॥ समस्त स्त्रियों का दमन नहीं करना चाहिए । और अत्रि के कुल में सभूत हुए हो उनकी हिंसा न करे । आश्रयों के वध से वह हत्या के समान पाप हुआ करता है ॥५२॥ सभी द्विजातियों के द्वारा सभी स्त्रियों का दमन नहीं करना चाहिए । सब धर्मों में पाप कर्म में रत भी चाहे भले ही होवे ॥५३॥ इस कारण से अहिंसा से युक्त—शान्त शिव जयों के प्रिय पुरुष भले भगवाद् शिव में भक्ति को समास्थित करके उसी जन्म में मुक्त हो जाना चाहिए और भक्त पुरुष उगी जन्म में मुक्त हो जाया करता है ॥५४॥ विश्व के ईश्वर—विरूपाक्ष—विश्व व्यापी—विश्वग में अन्य

सभी साधनों का त्याग करके मनीषियों को भक्ति करनी चाहिए ॥१५॥
जिस प्रकार से सदा ही मनुष्यों का चित्त पुत्र और चित्त आदि में समा-
सन्न रहा करता है उसी प्रकार से एक बार भगवान् विष्णाक्ष में चित्त
को समासन्न कर देवे तो भगवान् शंकर का पद कुछ भी दूर नहीं है
॥१६॥

भजन्ते ये यथा शम्भु फल तेना तथाविधम् ।
प्रयच्छति महादेवो भक्तिर्नैवास्ति निष्फला ॥१७
उच्छिष्ट पूजयेदीश मोहान्धो यद्द्विजाधम ।
पिशाचलोके विपुलान्भोगान्मुड्क्ते स मानव ॥१८
सक्रुद्धो राक्षसस्थानमभक्षी याक्षमाप्नुयात् ।
गानशीलो हि गान्धर्वं नृत्यशीलस्थैव च ॥१९
रुपातिशीलस्तशैवन्द्रमब्धश्चान्द्रमाप्नुयात् ।
गायत्र्या पूजयेदीशमब्दमेक निरन्तरम् ॥२०
प्राजापत्यमथाऽऽसाद्य सृष्टिकर्ता स्वयं भवेत् ।
ब्राह्म च प्रणवेनैव तेनैवाऽऽप्नोति वंष्णवम् ॥२१
श्रद्धया सकृन्नेवापि समन्थर्च्यं महेश्वरम् ।
हृद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रं सार्धं प्रमोदते ॥२२
य इमं पठतेऽऽप्याय श्रद्धया शिवसन्निधौ ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते । २३

जो भी जिस प्रकार से भगवान् शम्भु का भजन किया करते हैं
उनको उसी प्रकार का फल भगवान् शम्भु प्रदान किया करते हैं ।
भगवान् शिव में की हुई भक्ति कभी भी निष्फल नहीं हुआ करती है
॥१७॥ जो अधम द्विज अच्छिष्ट होकर मोह से अन्धा पुष्ट्य शिव का
पूजन किया करता है वह मानव पिशाचों के लोक में विमुक्त भोगों का
भोग किया करता है ॥१८॥ जो सप्रुद्ध होकर अर्चन करता है वह
राक्षसों के स्थान को पाता है और अभक्षी यक्षों के स्थान को प्राप्त किया
करता है । गानशील पुष्ट्य एवं नृत्यशील पुष्ट्यगन्धर्वों के स्थान को पाया

करता है ॥५६॥ रयातिशील पुरुष इन्द्र का स्थान प्राप्त किया करता है और जलका भक्षण करके जो शिव का पूजन किया करता है वह चन्द्रमा का स्थान पाया करता है । गायत्री से निरन्तर एक ही शब्द वर्ष तक ईश की पूजन करना चाहिए ॥६०॥ वह पुरुष प्राजायत्यस्या न प्राप्त कर स्वयं ही सृष्टि का कर्त्ता हो जाया करता है । केवल प्रणव के द्वारा जो भजन करता है वह ब्रह्मा का स्थान प्राप्त किया करता है और उसी से वैष्णव पद भी प्राप्त किया करता है ॥६१॥ श्रद्धा से एक बार भी महेश्वर प्रभु का भली भाँति अभ्यर्चन करके उनके ही लोक की प्राप्ति करके मनुष्य रुद्रों के साथ ही भे प्रमुदित हुआ करता है ॥१६२॥ जो पुरुष इस अध्याय को श्रद्धा से भगवान् शिव की सन्निधि में पढा करता है वह सभी पापों से निमुक्त होकर ब्रह्म लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥६३॥

॥ सर्वात्म रुद्र-पाशुपत व्रत कथन ॥

भूयोऽपि श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं परमेष्ठिनः ।
 कथं सर्वात्मको रुद्रः कथं पाशुपतं व्रतम् ॥१॥
 ब्रूहि सूत महाभाग सर्वमेतदसशयम् ।
 कथं नो जायते प्रीतिः श्रोतुं शिवकथामृतम् ॥२॥
 पुरा ब्रह्मादयो देवा द्रष्टुकामा महेश्वरम् ।
 मन्दरं प्रययुः सर्वे शभोः प्रियतर गिरिम् ॥३॥
 स्तुत्वा प्राञ्जलयो देवा हरस्य पुरतः स्थिताः ।
 तान्दृष्ट्वाऽथ महादेवो लीलया परमेश्वरः ॥४॥
 तेषामपहृतं ज्ञानं ब्रह्मादीनां दिवोकमाम् ।
 देवा एतृच्छंस्त देवमात्मानं पुरतः स्थितम् ॥५॥

आसंस्ते सकृदज्ञानात्तमाहुः को भवानिति ।

अश्वीङ्गवानीशो ह्यहमेव पुरातनः ॥६

आस प्रथममेवाह वर्तामि(?)च सुरोत्तमाः ।

भविष्यामि च लोकेऽस्मिन्मतो नान्योऽस्ति कश्चन ॥७

ऋषियो ने कहा—हम लोग फिर भी परमेष्ठों के माहात्म्य को सुनना चाहते हैं किम सर्वात्मक भगवान् रुद्र कैसे हैं और पादुपत व्रत किस प्रकार का होता है ? ॥१॥ हे महाभाग सूत जी ! यह सब समय में रहित ही आप बतलाइये और यह भी बतलाइये कि शिव के बन्धा-भूत को सुनतेही प्रीति कैसे उत्पन्न हुआ करती है? थी सूतजी ने कहा—प्राचीन काल में ब्रह्मा आदि समस्त देवगण भगवान् महेश्वर के दर्शन प्राप्त करने की इच्छा वाले हुए थे और वे सब भगवान् शम्भु का जो अत्यन्त प्रिय मन्दर गिरि पर गये थे ॥२॥३॥ सब देवगण भगवान् हर के सामने स्थित होकर हाथ जोड़े हुए स्तुति कर रहे थे परमेश्वर महादेव जी लीला से ही उनको देखा था । भगवान् शम्भु ने उन ब्रह्मा आदि देवों का ज्ञान अपहृत कर दिया था । देवों ने अपने सामने है ही समक्षस्थित उन देवेश्वर से पूछा था क्योंकि वे सब अज्ञान से ही स्थित हो रहे थे । देवों ने कहा—आप कौन हैं ? भगवान् ईश ने कहा था कि मैं ही परम पुरातन ईश हूँ । हे सुरोत्तमो ! तब से प्रथम में ही था और अब भी मैं वर्त्मान रहता हूँ । तथा मैं ही लोक में रहूँगा मेरे अतिरिक्त अन्य कोई भी देव नहीं है ॥४॥५॥६॥७॥

व्यतिरिक्तं च मत्तोऽस्ति नान्यत्किञ्चित्सुरोत्तमाः ।

नित्यानित्योऽहमेवास्मि ब्रह्माऽह ब्रह्मणस्मतिः ॥८

दिशश्च विदिशश्चैव प्रकृतिश्च पुमानहम् ।

त्रिष्टब्जगत्यनुष्टुप् च पत्तिश्छन्दस्त्रयामियः ॥९

सत्योऽह सर्वतः शान्तस्त्रेताग्निर्गौरह गुरुः ।

गीर्यह च परश्चाह द्यौरह जगता प्रभुः ॥१०

थो ह्योऽह सर्वतत्त्वानां वरिष्ठोऽहमपा पति ।

आपोऽह भगवानीशस्तेजोऽह वेदिरप्यहम् ॥११

ऋग्वेदोऽह यजुर्वेदः सामवेदीऽहमात्मभूः ।
 अथर्वणोऽय मन्त्रोऽहं तथा चाङ्गिरसां वरः ॥१२
 इतिहास पुराणानि कल्पोऽहं ह्यहम् ।
 अक्षरं च क्षरं चाहं क्षान्तिः शान्तिरहं खग ॥१३
 गुह्योऽहं सर्व वेदेषु आरण्योऽहमजोऽप्यहम् ।
 पुष्कर च पवित्र च मध्यं चाहं ततः परम् ॥१४

हे सुरोत्तमो ! मुझसे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है । नित्य और अनित्य मैं ही हूँ । मैं ब्रह्मा हूँ और ब्रह्मा का भी पति हूँ ॥८॥ विशाखे-विदिशाखे—प्रकृति और पुरुष मैं हूँ । त्रिष्टुप्—जगती—घनुष्टुप् और पङ्क्ति यह त्रयीमय छन्द मे हूँ और मैं सबसे सत्य—शान्त—त्रैताग्नि—गौ तथा गुरु मैं ही हूँ । मैं ही गौरी हूँ तथा हर भी मैं ही हूँ—मैं द्यौ तथा जगत् का प्रभु हूँ ॥९॥१०॥ मैं सभी सत्वो मे परम श्रेष्ठ एव वरिष्ठ हूँ और जलो का स्वामी भी मे हूँ—मे जल हूँ भगवान् ईश—तेज और वेदि हूँ ॥११॥ मैं ही ऋग्वेद—यजुर्वेद—सामवेद और आत्मम् हूँ । तथा अथर्वण मन्त्र और अङ्गिरा के पर भी मैं ही हूँ ॥१२॥ सब इतिहास पुराण—कल्प और कल्पना भी मैं ही हूँ । अक्षर और क्षर—क्षान्ति—क्षान्ति और खग मैं हूँ ॥१३॥ मैं सब वेदो मे भी परम गोपनीय हूँ । मैं ही आरण्य तथा अजभी हूँ । पुष्कर और पवित्र—मेध्य तथा इससे भी परभी मैं ही हूँ ॥१४॥

वहिश्चाह तथा चान्तः पुरस्तादहमव्ययः ।
 ज्योतिश्चाह तमश्चाहं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥१५
 बुद्धिश्चाहमहंकारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
 एव सर्वं च मामेव यो वेद स सुरोत्तमः ॥१६
 स एव सर्ववित्सर्वः सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।
 गां गोभिर्ब्राह्मणान्सर्वान्ब्राह्मण्येन हवीषि च ॥१७
 हविषा यस्तया सत्यं सत्येन च गुरोत्तमाः ।
 धर्मं धर्मेण च तथा तर्पयामि स्वतेजसा ॥१८

इत्यादि भगवानुक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।
 नापश्यस्ते ततो देव रुद्रं परमकारणम् ॥१६
 त देवाः परमात्मान रुद्रं ध्यायन्ति शकरम् ।
 सनारागणका देवाः सेन्द्राश्च मुनयस्तथा ॥
 ततोर्ध्ववाहवो (?) देवा ह्यस्तुनञ्जकर तदा ॥२०

बाहिर धीर अन्दर भी मैं हूँ । आगे तथा अन्धिय मैं हूँ । मैं ही
 ज्योति स्वरूप और घोर तम भी हूँ । ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर भी मैं
 ही हूँ ॥१५॥ बुद्धि बहद्धार-तन्मात्राएँ और इन्द्रियाँ भी मैं हूँ । अर्थात्
 ये सभी भी मेरा ही एक भिन्न स्वरूप में रहने वाले हैं और मुझसे
 पृथक् कुछ भी नहीं है । इस प्रकार से सबको जो मुझको ही समझना
 है वही सुरोत्तम होना है ॥१६॥ वही सबका ज्ञाता-सर्व-मर्ता-सर्वदर्शन
 होता है । गाणों के साथ सौ-ब्राह्मण्य से सब ब्राह्मणों को-हविषों को
 हवि के साथ तथा सत्य के साथ सत्य को जो हे सुरोत्तमो ! देखता है
 तथा वर्म को धर्म के साथ समझता है मैं उतको अपने तेज से तृप्त
 किया करता हूँ ॥१७॥१८॥ इस प्रकार से यह सब कहकर भगवान्
 तब यही पर अन्तर्धान होगये थे । फिर जने जने देव को नहीं देखा
 था जो रुद्र परम कारण थे ॥१९॥ देवगण उन्हीं परमात्मा रुद्रदेव शकर
 का ध्यान किया करते हैं । नारायण प्रभु के सहित और इन्द्रदेव के
 महिम्न समस्त देवगण-मुनिगण ऊर्ध्वबाहु होकर उस समय मे भावान्
 शकर का स्तवन करने में लगन होगये थे । २०॥

य एष भगवान् रुद्रो ब्रह्मा विश्वमहेश्वरः ॥२१
 स्कन्दश्चाग्निस्तथा चन्द्रो भुवनानि चतुर्दश ।
 भूतानि च तथा सूर्यः सोमाद्यष्टौ प्रहास्तथा ॥२२
 प्राण कालो यमो मृत्युरमृत परमेश्वरः ।
 भूत भव्य भविष्य चूर्वर्तमान महेश्वरः ॥२३
 विश्व कृत्स्न जगत्सर्व सत्य तस्मै नमो नमः ।
 ओमादी च तथा मध्ये भूर्भुव स्वस्त्येव च ॥२४

अन्ते त्व विश्वरूपोऽसि शीर्षं च जगत सदा ।
 ब्रह्मं कस्त्व द्वित्रिधोर्ध्वमघस्तत्त्व सुरेश्वर ॥२५
 शान्तिश्च त्व तथा पुष्टिस्तुष्टिश्चाप्यहुता हुतम् ।
 विश्वं चैव तथाऽविश्व दत्त चादत्तमीश्वर ॥२६
 ऋत वाऽप्यथवा देव परमप्यपर ध्रुवम् ।
 परायण सता चैव असतामपि शक्र ॥२७
 अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
 किं नूनमस्मान्कृणवदराति किमु घूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥२८

देवों ने कहा—जो यह भगवान् रुद्र-ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर के स्वरूप में हैं तथा स्कन्द-अग्नि-चन्द्र और चौदह भुवनों के रूप में वर्तमान हैं । जो समस्त प्राणी सूर्य-सोमादि आठ तथा ग्रह हैं—जो प्राण-पान-यम मृत्यु-अमृत परमेश्वर हैं—जो भूत-भव्य और भविष्य हैं ये वर्तमान महेश्वर सम्पूर्ण विश्व मय जगत् तथा सब सत्य स्वरूप में हैं उही शक्र के लिये हमारा बारम्बार नमस्कार है । आदि में ऋत तथा मध्य में भूभुव स्व है तथा अंत में आप विश्वरूप हैं एव सदा जगत् के शीर्ष हैं । आप एक ही ब्रह्म है किन्तु दो प्रकार के हैं—ऊर्ध्व में और अधोभाग में सुरेश्वर तत्त्व हैं ॥२१-२५॥ आप ही शान्ति हैं—आप ही पुष्टि हैं—आप तुष्टि हैं—अहुत और हुत भी आप ही हैं । ईश्वर आप विश्व-अविश्व-दत्त और अदत्त हैं ॥२७॥ आप ही ऋत हे देव ! आप पर और अपर ध्रुव हैं । हे शक्र ! आप परायण अमृतो म भी सत्त्व है ॥२७॥ हम सोम वा पान किया और अमृत होगये—हम ज्योतिषो प्राप्त हुए और देवों का ज्ञान प्राप्त किया था । दृढान् आराति गया हमारे लिये है हे अमृत ! मर्त्यकी घृति क्या है ॥२८॥

तत्तज्जगद्वेदितव्यमक्षरं सूदममव्ययम् ।
 प्राजापत्य पवित्र वा सौम्यमप्राप्तमप्रियम् ॥२९
 आग्नेयेनापि चाऽग्नेय वायव्येन समीरणम् ।
 सौम्येन सौम्य प्रसते तेजसा रवेन लीलया ॥३०

तस्मै नमोऽपसहर्षे महाप्रासाय शूलिने ।
हृदिस्था देवता. सर्वा हृदि प्राणा प्रतिष्ठिता ॥३१
हृदि त्वमसि योनिस्त्व तिलो मात्रा परस्तु स. ।
शिरश्चोत्तरतस्तस्य पादो दक्षिणतस्तथा ॥३२
स यो जीवोत्तर साक्षात्स आकार मनातन ।
आकारो य स वै देव प्रणवा व्याप्य तिष्ठति ॥३३
अनन्तार मूढमश्च शुक्ल वैद्युतमेव च ।
परब्रह्म स ईशान एको रुद्र स एव च ॥३४
भवान्महेश्वर साक्षान्महादेवो न सशय ।
ऊर्ध्वमुन्नामयत्येव स ओकार प्रकीर्ति ॥३५

यह जगत् मे बदितव्य है—अक्षर-मूढम और अव्यय प्राजापत्य
अथवा पवित्र सौम्य अग्राह्य और अप्रिय है ॥२६॥ अग्नेय मे भी आग्नेय
ह और वायव्य से समीरण है—सौम्य से सौम्य है और लीला के द्वारा
अपने ही तेज से प्रसते हैं । उन अप सहार करने वाले के लिये नमस्कार
है तथा महाप्रास भगवान् शूली के लिये प्रणाम है । समस्त देवगण हृदय
मे ही जिनके स्थित हैं और हृदय मे प्राण प्रतिष्ठित हैं ॥३०॥३१॥ हृदय
मे आप हैं—आप सबकी योनि हैं—तीन मात्राएँ हैं और वह आप पर
हैं । जिसका शिर उत्तर की ओर है तथा पाद दक्षिण की ओर हैं ॥३२॥
वह जो जीवोत्तर त क्षात् सनातन आकार है । जो ओङ्कार है वह देव
आप ही हैं जो कि प्रणव व्याप्त होकर स्थित रहा करता है ॥३३॥
अनन्ततर और मूढम-शुक्ल-वैद्युत और परब्रह्म वह ईशान एक ही रुद्र
हैं ॥३४॥ आप साक्षात् महेश्वर हैं । आपही महादेव हैं—इसमे लशमात्र
भी तन्मय नहीं है । इस प्रकार से जो ऊर्ध्व भाग मे उन्नमित करता
है वही ओङ्कार प्रकीर्तित हुआ है ॥३५॥

प्राणात्प्रयति यत्तस्मात्प्रणव परिभा पत. ।

सर्वं व्याप्नोति यत्तस्मात्सर्वव्यापी सनातन ॥३६॥

ब्रह्मा हरिश्च भगवानाद्यन्तं नोपलब्धवान् ।
 यथाऽन्ये च ततोऽनन्तो रुद्रः परमकारणम् ॥३७
 यत्तारयति ससारात्तार इत्यभिधीयते ।
 सूक्ष्मो भूत्वा शरीराणि सर्वदा ह्यधितिष्ठति ॥३८
 तस्मात्सूक्ष्मः सदा ख्यातो भगवान्नीललोहितः ।
 नीलश्च लोहितश्चैव प्रधानपुरुषान्वयात् ॥३९
 स्कन्दतेऽस्य यतः शुक्रं ततः शुक्रमयीति च ।
 विद्योतयति यत्तस्माद्ब्रूयुतं परिगीयते ॥४०
 वृहत्त्वाद्बृंहणाह्लह्य वृंहते च परापरम् ।
 तस्माद्बृंहति यत्तस्मात्परं ब्रह्मेति कीर्तितम् ॥४१
 अद्वितीयोऽथ भगवास्तुरीयः शिव ईशते ?) ।
 ईशानमस्य जगतः स्वहृंशं वभ्रुमीश्वरम् ॥४२

जो प्राणो को नयन किया करता है इसी कारण से उसको प्रणव परिभाषित किया गया है । क्योंकि वह सबमे व्याप्त होकर रहा करता है अतएव वह सर्वव्यापी और सनातन कहा जाता है ॥३६॥ ब्रह्मा और भगवान् हरि ने जिनके आदि को और अन्त को नहीं प्राप्त किया है और जिस प्रकार से अन्य देवो ने भी नहीं प्राप्त किया है अतएव रुद्र अनन्त हैं और सबका परम कारण हैं ॥३७॥ जो इस घोर ससार से तार देता है अतएव उसको 'तार'—इस नाम से भी कहा जाया करता है । वह सूक्ष्म स्वरूप होकर सर्वदा शरीरो मे अपना अधिष्ठान किया करते हैं ॥३८॥ इसी कारण से वे सदा ही सूक्ष्म ख्यात हुए हैं ऐसे वे भगवान् नील लोहित प्रभु हैं । प्रधान-पुरुष के अन्वय से ही वे नील और लोहित हैं ॥३९॥ क्योंकि यह इसके शुक्र को स्कन्दित किया करते हैं इसी से वे शुक्रमयी हैं । क्योंकि वह विद्योतित किया करते हैं इसी कारण से उनको ब्रूयुत गायता जाता है ॥४०॥ वृहत्त्व और वृहण होने से जोकि परापर को वृंहित किया करते हैं ब्रह्म कहा जाता है । उससे जो वृंहत किया करता है इसी कारण से वह—“परब्रह्म”—इस

नाम से कीर्तित किये गये हैं ॥४१॥ अद्वितीय भगवान् तुरीय शिव इस नाम से ईश होते हैं । इस जगत् के ईशान स्वर्हंश वध्रु ईश्वर हैं ॥४२॥

ईशानमिन्द्र तस्पुग सर्वेषामपि सर्वदा ।

ईशान सर्वविद्याना यत्तदीशानमुच्यते ॥४३

यदीक्षते च भगवाद्भिरीक्षयति चान्यथा ।

आत्मज्ञान महादेवो योगो गमयति स्वयम् ॥४४

भगवाश्चोच्यते तेन देवदेवो महेश्वर ।

सर्वल्लोकान्क्रमेणैत्र वो गृह्णाति महेश्वर ॥

विमृजत्येप देवेशो वासयत्यपि लीलया ॥४५

एष हि देव प्रदिशो नु सर्वा पूर्वो हि जात स उ गर्भे अन्त ।

स एव जात स जनिष्यमाण प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुख ॥४६॥

उपासितव्य यत्नेन तदेतत्सद्भिरप्रियम् ।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥४७

तदग्रहणमेवेह यद्वाग्बदति यत्नत ।

अपर च पर चेति पारायणमिति स्वयम् ॥४८

वदन्ति वाच सर्वज्ञ शंकर नीललोहितम् ।

एष सर्वो नमस्तस्मै पुरुष पिङ्गल शिख ॥४९

सबसे ऊपर सर्वदा स्थित रहने वाले इन्द्र भी ईशान हैं । यह सभी विद्याओं के ईशान हैं इसीलिये इनको 'ईशान'—इस नाम से कहा जाता है ॥४३॥ जो भगवान् देखते हैं और अन्यथा नहीं निरीक्षण करते हैं योगी महादेव स्वयं आत्मज्ञान को कराया करते हैं ॥४४॥ इसीलिये भगवान् देवों के भी देव महेश्वर बने जाया करते हैं । जो महेश्वर सर्व लोको को कर्म से ही ग्रहण किया करते हैं और देवेश विमृजन किया करते हैं तथा सबको निवर्तित लीला ही से कराया करते हैं ॥४५॥ यही देव सब प्रदिशामे हैं । वह पूर्व में ही जात हुए हैं । वह गर्भ में अन्दर हैं । वही जात हुए हैं और वही जनिष्य माया भी हैं ।

वे मनुष्यों के समक्ष सर्वतीमुख होकर स्थित रहा करते हैं ॥४६॥ अत-
एव यत्न से अग्रिम प्रभु की सत्पुरुषों को उपासना करनी चाहिए ।
वह उस स्वरूप वाले हैं जहाँ से मन के साथ वाणी निवृत्त हो जाया
करती है अर्थात् मन वाणी की जहाँ तक पहुँच नहीं होती है ॥४७॥
यहाँ पर उसी का ग्रहण है, जिमको वाणी यत्न से बनाया करती है ।
वह अपर और पर हैं और स्वयं परायण हैं ॥४८॥ वाणी भगवान् शंकर
को सर्वज्ञ और नील लोहित कहा करती हैं । इस पिङ्गल पुरुष शिव
को हमारा सबका नमस्कार है ॥४९॥

स एक स महारुद्रो विश्व भूत भविष्यति ।

भुवन बहुधा जात जायमानमितस्तत ॥५०

हिरण्यवाहुभगवान्हिरण्यामि चेश्वर ।

अम्बिकापतिरीशानो हेमरेता वृषध्वज ॥५१

उमापतिविरूपाक्षो विश्वभुग्विश्ववाहन ।

ब्रह्माण विदधे योऽसौ पुत्रमग्ने सनातनम् ॥५२

प्रहिणोति स्म तस्मै च ज्ञानमात्मप्रकाशकम् ।

तमेक पुरुष रुद्र पुरहूत पुरुषुतम् ॥५३

बालाग्रमात्र हृदयस्य मध्ये विश्वदेव वह्निरूप वरेण्यम् ।

तमात्मस्थ येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषा शान्ति शाश्वती नेतरेषाम् ५४।

महतोऽपि महीयान्स अणोरप्यणु रव्यय ।

गुहाया निहितश्चाऽऽमा जन्तोरस्य महेश्वर ॥५५

विश्व भूत च विश्वस्य कमल स्याद्भृदि स्वयम् ।

गङ्गारं गननान्नस्य विश्वान्तश्चोर्ध्वत स्थितम् ॥५६

वह एक ही महारुद्र हैं जो विश्वभूत होंगे । यह भुवन बहुत प्रकार
का समुत्पन्न हो गया है और इधर-उधर जायमान है ॥५०॥ हिरण्यवाहु
भगवान् । हिरण्य भी ईश्वर हैं । अम्बिकापति ईशान हेमरेता वृषध्वज-
उमापति विरूपाक्ष विश्वभुक् विश्ववाहन है । जिन इनने अग्नि के सना-
तन पुत्र ब्रह्माजी को बनाया था ॥५१॥५२॥ और उन ब्रह्माजी को

आत्म प्रकाशक ज्ञान प्रेरित किया था अर्थात् अपने आपके स्वरूप के पहिचान लेने का ज्ञान प्रदान किया था । उन एक पुरुष हृद-पुरुहूत-पुरुष्मृत-हृदय के मध्य में बालाग्रमात्र विश्वदेव-वह्निरूप-वरेण्य उनको जो आत्मा में स्थित देखते हैं वे परमघोर पुरुष हैं और उनको शाश्वती पारित रहती हैं अन्य लोगों को नहीं होती है ॥५३॥५४॥ वह महात् से भी महायान् अर्थात् अधिक बड़े है और अणु में भी अधिक अणु हैं-अव्यय हैं । इस जन्तु की गुड़ा में अर्थात् अन्तर्हृदय में महेश्वर भगवान् निहित रहा करते हैं ॥५५॥ विश्वभूत है और हृदय में स्वयं कमल है । गह्वर गगनान्न में स्थित है और विश्वान्तक पर की ओर स्थित है ॥५६॥

तत्रापि शुभ्रं गगनमोकार परमेस्वरम् ।

बालाग्रमात्र मध्यस्थमृत परमवारणम् ॥५७॥

सत्य ब्रह्म महादेव पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।

ऊर्ध्वरितसमीशान विस्पाक्षमज ध्रुवम् ॥५८॥

अधितिष्ठति यो योनि योनिश्चैव स ईश्वर' ।

देहे पञ्चविधात्मान तमीशानं पुरातनम् ॥५९॥

प्राणोऽप्यन्तर्मनसो लिङ्गमाहुर्गस्मिन्क्रोधो या च तृष्णा क्षमा च

तृष्णा छित्त्वा हेतुजातस्य मूल भजस्व देव हरमेव केवलम् ॥६०॥

परात्परतर चाऽऽहु परात्परतर ध्रुवम् ।

ब्रह्मणो जनक विष्णोर्बह्वैर्वायो सदाशिवम् ॥६१॥

ध्यात्वाऽग्निं च समग्निं विशेषाच्च पृथक्पृथक् ।

पञ्च भूतानि सयम्य मात्रागुणविधिक्रमात् ॥६२॥

मात्रा पञ्च चतस्त्रद्वय त्रिमात्रा द्विन्तत परम् ।

एकमात्रममात्रं हि द्वादशान्तेष्ववस्थितम् ॥६२॥

वहा पर भी शुभ गगन है और ओंकार परमेस्वर हैं । बाल के अर्थात् आत्म के परिमाण वाले- मध्य में स्थित जन्तु और परम कारण हैं ॥५७॥ सत्य-ब्रह्म-महादेव-पुरुष-कृष्ण पिङ्गल-ऊर्ध्व रीता-ईश्वरान-

विरूपाक्ष्य-अज-ध्रुव पर वे अभिष्ठित है जो योनि है और वह ईश्वर ही योनि है । वेह मे पाँच प्रकार के आत्मा को उस ईशान्य पुरातन को अभिष्ठित है प्राण में भी अन्त मन का निज्ज कहते है । जिसमे क्रोध और जो तृष्णाय तथा क्षमा है । हेतुजात की मूल भूता तृष्णा वा छेदन करके केवल देव हर का ही भजन करो । १५८।१५९।६०। पर से मी पर । उनको कहते है और विधित रूप से वे परात्पर तर है । वे ब्रह्माजी के भी जनक हैं और विष्णु-वायु और बलि के जन्म देने वाले भगवान् सदाशिव हैं । उनका ध्यान करके अग्नि के साथ अग्नि को वाणी को पृथक् २ प्रवेश करना चाहिए । मात्रा की गुण विधि के क्रम से पाँच भूतों का समयन करके पाँच मात्रा-चार-तीन मात्रा और इसके पश्चात् दो-एकमात्र और अमात्र द्वाद शान्ती मे ही स्थित हैं । ६१।६२।६३।

स्थित्यां स्थाप्यामृतो (?) भूत्वा व्रतं पाशुपात चरेत् ।

एतद् व्रतं चरिष्यामः समासतः ॥६४॥

अग्निभाघाय विधिवद्ग्यजु.सामसभगौ ।

उपोषितः शुचिः स्नातः शुपलाम्बरधरः स्वयम् ॥६५॥

शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यागुल्फेपनः ।

जुहुयाद्विरजा विद्वान्विरजाः स भविष्यति ॥६६॥

वायव. पञ्च शुद्धधर्म वाड.नव्वचरणादय. ।

श्रोत्रे जिह्वा तथा घ्राण मनो बुद्धिस्तथैव च ॥६७॥

शिरः पाणिस्तथा पाश्र्वं पृष्ठोदरमनन्तरम् ।

जङ्घे शश्र्वदुपम्य च पायुं मेढूं तथैव च ॥६८॥

त्वक्च मास च च रुधिर मेदोऽस्थीनी तथैव च ।

सर्वं स्पर्शं च रूपं च रसो गन्धरतथैव च ॥६९॥

भूतानि चैव शुध्यन्तां मद्देहे षमादयस्त्वया ।

अन्त.प्राणमनोजानं शुध्यतां मे शिवेच्छया ॥७०॥

स्थिति मे स्थाप्यामृत होकर पाशुपत व्रत का समा चरण करना चाहिए । यह पाशुपत व्रत है इगका सद्यो से समाचरण करूना । ६४।

ऋक्-यजु और साम वेदों के मन्त्रों से विधि पूर्वक अग्निका समाधान करके उपोषित रहे-शुचि होकर स्नान किया हुआ स्वयं शुक्ल वस्त्र धारण करने वाला होवे । ६५। शुक्ल यज्ञोपवीत धारी तथा शुक्ल ही माता धारी ए। शुक्ल श्रेयन वाला होवे । विरजा विद्वाद् हवन करे और विरजा ही हो जायगा । ६६। पाच वायु शुद्धि के लिये वाक्-मन और-चरण आदि-श्रोत्र-जिह्वा-घ्राण-मन तथा बुद्धि-शिर-हाय-पार्श्व और अनन्तर मे पृष्ठ तथा उदर-दोनों जह्वाये-उपस्थ-पायु-भेदू त्वक्-मांस-रुधिर-भेद तथा अस्थियां शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध ये सब भूत मेरे देह मे शुद्ध होवें । तथा दमादि-अन्त प्राण और मनोज्ञान मेरे सब भगवान् शिवकी इच्छा से शुद्धि को प्राप्त होवे । ६६। ७०।

हुत्वा येन समिद्भस्त्र वरुणाय यथाक्रमम् ।

उपसहृत्य रुद्राग्नि गृहीत्वा भस्म यत्नत ॥७१॥

अग्निरित्यादिना धीमान्विमृज्याङ्गानि सस्पृशेत् ।

एतत्पाशुपत दिव्य व्रत पाशाविमोक्षणम् ॥७२॥

ग्राह्यणाना सता प्रोक्त क्षत्रियाणां तथैव च ।

वैश्यानामपि योग्याना यतीना च विशेषत ॥७३।

वानप्रस्थाश्रमस्थाना गृहस्थाना सतामपि ।

विमुक्तिविधिनाग्नेन दृष्टा वै ब्रह्मचारिणाम् ॥७४॥

अग्निरित्यादिना सम्यग्वृहीत्वा ह्यग्निहोत्रवम् ।

सोऽपि पाशुपतो विप्रो विमृज्याङ्गानि सस्पृशेत् ॥७५॥

भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान्महापातवर्मभवी ।

पार्पविमुच्यते मत्स्य लिप्यते च न संशयः ॥७६॥

वीर्यमग्नेर्यनो भस्म वीर्यवान्भस्मममं मत ।

भस्मग्रानरतो विप्रो भस्मशामी जितेन्द्रियः ॥७७॥

त्रिमये गमिपाओं मे वरण के लिए यथाक्रम हवन करने रुद्राग्नि को उपसहृत्य करने भस्म को यत्न से प्रष्टा करें । ७१। "अग्नि"— इत्यादि मन्त्र के द्वारा धीमान् पुराण को अङ्गों विमोक्षण करने उनका

संस्कार करना चाहिए—उही पाशुपत दिव्य व्रत है जो पाशो से विमोक्षदित्या ने वाला है ।७२। यह व्रत सत्पुरुष ब्राह्मणों को बताया गया है और उसी भाँति क्षत्रियों को भी कहा गया है । जो इसके योग्य वैश्य हो वे भी इसको कर सकते हैं । विशेष रूप से यह दिव्ययान व्रत यतियों के लिये ही है ।७३। जो वानप्रस्थ आश्रम में स्थित हैं उनको सत् गृहस्थों को भी यह समुचित है । इसी विधि से ब्रह्मचारियों की विमुक्ति होते हुए देख गयी है ।७४। “अग्नि” इत्यादि मन्त्र के द्वारा अग्नि होत्र को भलीभाँति ग्रहण करके उसको भी भस्म रूप में पाशुपत व्रत वाला विप्र ग्रहण कर उससे विमार्जन करके अङ्गों का सस्पर्श करावें ।७५। विद्वान् द्विज भस्म से छन्न हुआ महापातकों के करने से होने वाले पापों से विमुक्त हो जाया करता है और सत्य में लिप्त हो जाता है—इसमें सशय नही है ।७६। क्यों कि भस्म अस्मिक, वीर्य है अतएव भस्म से सम्मत वीर्यवान् होना है । भस्म में स्नान करने में रत विप्र भस्मशायी और जितेन्द्रिय होवे ।७७।

सर्वं पापविनिर्मुक्तं शिवसायुज्यमाप्नुयात् ।

इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा स्तुत्वा देवं समप्रभुः ॥७८॥

भस्मच्छन्नः स्वयं कृत्स्नं विररामाम्बुजासनः ।

अथ तेषां प्रमादार्थं पशूनां पतिरीश्वरः ॥७९॥

स गत्वा चोमया सार्धं सान्निध्यमकरोत्प्रभुः ।

अथ सान्निहितं रुद्रं तुष्टुवुः सुरपुंगवाः ॥८०॥

रुद्राध्यायेन देवेश देवदेवमुमापतिम् ।

देवोऽपि देवानालोक्य घृणया च वृषध्वजः ॥८१॥

तुष्टोऽस्मीत्याह देवेशा वरं दत्त्वा वरारिहा

क्षणान्तपितः शंभुर्ब्रह्मादीनां प्रपश्यताम् ॥८२॥

इमं यः पठतेऽध्यायं शुचिर्मूत्वा समाहितः ।

सर्वतीर्थफलं चैव सर्वयज्ञफलं तथा ॥८३॥

सर्वदिव्यव्रतफलं सर्वान्तोत्रफलं तथा ।

प्राप्नोति सकलं त्रिधाः श्रद्धया निवर्तनीयौ ॥८४॥

गाणपरय मया प्रोक्ति देहान्ते मुने पुद्गवा ॥८५॥

ऐसा भस्मसेवी पुरुष सब पापों से निर्मुक्त होकर भगवान् शिव के सामुज्य को प्राप्त किया करता है । इतना कहकर ब्रह्मा भगवान् ने भगवान् समप्रभु का स्तवन करके स्वयं पूर्ण रूप से भस्म से छान होकर अम्बु जास्त (ब्रह्माजी) विराम को प्राप्त हो गये थे । इसके अनन्तर उनके प्रसाद के लिये पशुआ के पति ईश्वर वे उमा देवी के साथ गमन करके अर्थात् जानकर प्रभु सान्निध्य किया था । इसके उपरान्त सूर श्रेष्ठा ने सन्निहित हुए सुद्रदेव की स्तुति की थी ऋषि यह स्तवन देवा के देव देवेश उमापति की उदाध्याय के द्वारा ही किया था । देव ने भी देवों को देखकर वृषध्वज प्रभु न बहुत ही वरुणा से उनके ऊपर दृष्टिपान किया था । ७८।७९।८०।८१। वहारि के हतन करने वाले देवेश ने कहा था कि मैं परम तुष्ट हो गया हूँ और वरदान भी प्रदान किया था । फिर उन सभी ब्रह्मा आदि को देखते-देखते भगवान् शम्भु एक क्षण मात्र में वहाँ पर अर्न्तहित हो गये थे । ८२। श्री सूतजी ने कहा—जो पुरुष परम ममाहित और शुचि होकर इस अध्याय को पढ़ता है वह सब तीर्थों के तथा समस्त यज्ञों के यजन करने का फल एक पुण्य एक सम्पूर्ण देव व्रतों का फल और सभी स्तोत्रों का फल प्राप्त कर लिया करता है । ९ विद्वान् ! भगवान् शिव की तर्निधि म ही श्रद्धामय से करने पर प्राप्त किया करता है । फिर है मुनि श्रेष्ठो ! वह देह के अन्त हो जाने पर गणपत्य पद को पा जाता है । ८२।८३।८४।८५।

॥ शिव माहात्म्य कथन ॥

वदामि शिवमाहात्म्यं शुशुष्य मुनिपुंगवा ।
 बहुभिर्यद्बुधा शाम्भुं कीर्तितं मुनिपुङ्गवै ॥१॥
 मदमद्गुणमित्याह मदमहापि मन्थियाम् ।
 स शिवं मुनयः केचिच्च प्रपश्यन्ति गौरयः ॥२॥

भूतभावविकारण द्वितीयेन सदुच्यते ।
 अव्यक्तो न विहीन स्यादव्यक्तमसदित्यपि ॥३॥
 उभे ते शिवरूपेण शिवादन्वन्न विद्यते ।
 तयो पतित्वाच्च शिव सदसत्पतिरुच्यते ॥४॥
 क्षराक्षरात्मक प्राहु क्षराक्षरपर तथा ।
 शिव महेश्वर केचिन्मुनयस्तत्त्वचिन्तका ॥५॥
 उक्तमक्षरमव्यक्त व्यक्ताक्षरमुदाहृतम् ।
 रूपे ते शङ्करस्यैव तन्नाम्ना परमुच्यते ॥६॥
 तयो पर शिव शान्त क्षराक्षरपरो बुधं ।
 उच्यते परमार्थेन महादेवो महेश्वर ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—हे मुनिपुङ्गवो ! अब मैं भगवान् शिव के
 महात्म्य को बतलाता हूँ आप लोग श्रवण करिए । इस माहात्म्य को
 मुनिश्रेष्ठो ने और शास्त्रो ने बहुत प्रकार से बहुतो ने कीर्तित किया
 है ।१। केचित तद्बुद्ध्या मुनिगण जिस शिवको सूरिगण देखते हैं सद सद
 रूप वाला बताया है और सत् तथा असत् भी सस्थित हैं—ऐसा कहा
 है ।२। द्वितीय भूतभाव विकार से सद-यद् कहनाते हैं । अव्यक्त से विहीन
 हैं और अव्यक्त असत् है—यह भी बताया है ।३। वे दोनों ही शिव क
 रूप से युक्त हैं क्योंकि शिव से अन्य कोई भी वर्तमान नहीं है । इसी से
 पति होने के कारण भगवान् शिव सहसत्पति बड़े जाया करते हैं ।४।
 इनको क्षराक्षर स्वरूप बाने कहते हैं तथा क्षराक्षर पर भी कहते हैं ।
 कल तत्त्वा के चिन्तन करने वान मुनिगण शिवको महेश्वर कहते हैं ।५।
 र और अव्यक्त कहा है और वाक्ताक्षर कहा है । ये दोनों रूप हैं
 तान् शङ्कर के ही और उनके नाम से ये परम बड़े जाते हैं ।६। इन
 । स पर शिव शान्त है । बुधा के द्वारा क्षराक्षर पर बड़े जाते हैं ।
 तान् ग महादेव महेश्वर हैं ।७।

गमाष्टिद्व्याष्ट यूप ममष्टिव्यष्टिारणम् ।

वदति केचिदाचार्या शिव परमरारणम् ॥८॥

समष्टिमाहुरव्यक्तं व्यष्टिं व्यक्तिं मुनीश्वरः ।
 रूपे ते गदिते शभोर्नास्त्यन्यद्वस्तु किञ्चन ॥१॥
 तयोः कारणभावेन शिवो हि परमेश्वरः ।
 उच्यते योगशास्त्रज्ञैः समष्टिव्यष्टिकारणम् ॥१०॥
 क्षेत्र क्षेत्रज्ञरूपीति शिव कश्चिदुदाहृतः ।
 परमात्मा परं ज्योतिर्भगवान्परमेश्वरः ॥११॥
 चतुर्विंशतितत्त्वानि क्षेत्रशब्देन सूरयः ।
 प्राहुः क्षेत्रज्ञशब्देन भोक्तारं परमेश्वरम् ॥१२॥
 न किञ्चिच्च शिवादन्यदिति प्राहुर्मनीषिणः ।
 केचिदेव प्रशसन्ति महादेवं मुनीश्वरम् ॥१३॥
 वेदार्थतत्त्वविदुषः सम्यक्श्रुत्यनुसारतः ।
 प्रागेन प्राणितिं ह्यसावपानेन ह्यपानितिं ॥१४॥

समाष्टि और व्याष्टि जो रूप है वह समष्टि-व्यष्टि का कारण ही होता है । कुछ आचार्यगण भगवान् शिव को परम कारण कहते हैं । १॥ हे मुनीश्वरो ! समाष्टि को अव्यक्त कहते हैं और व्याष्टि को व्यक्त कहा जाता है । वे दोनों रूप भगवान् शम्भु के ही कहे गये हैं क्योंकि अन्य कोई भी वस्तु ही नहीं । १॥ उन दोनों के कारण होने के भाव से भगवान् शिव परमेश्वर हैं । योगशास्त्र के ज्ञाताओं ने शिव को समाष्टि व्याष्टि का कारण बताया है । १०॥ कुछ निदानों के द्वारा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ रूप वाले भगवान् शिव को बनाया गया है । भगवान् परमेश्वर परमात्मा और शर ज्योति हैं । ११॥ गुरिगण चौबीस तत्त्वों की ही क्षेत्र शब्द के द्वारा कहा करते हैं और क्षेत्र शब्द से मोक्षदा परमेश्वर को कहा है । १२॥ मनीषीगण यही कहते हैं कि शिव से अन्य कुछ भी नहीं है । कुछ लोग महादेवजी को मुनीश्वर कह कर प्रशंसा किया करते हैं । वेद वेदार्थ के तत्त्वों के विद्वान् पुरुष भनी-भाति श्रुति के अनुगार प्राणी से प्राण से और जवान से अपान् कहते हैं । १३। १४॥

व्यानेन व्यानिति तथा चोदानेन ह्युदानीति ।
 समानीति समानेन मन्वीति मनसा द्विजाः ॥१५॥
 बुद्ध्या विचारयत्येष पर एव महेश्वरः ।
 समस्तरुण्युक्तो वर्ततेऽसौ यदा तदा ॥१६॥
 जाग्रदित्युच्यते सद्भिरन्तर्यामी सनातनः ।
 यदाऽन्त करण्युक्त स्वेच्छया विचरत्यसौ ॥१७॥
 सुप्त इत्युच्यते ह्यात्मा स्वय तापविवर्जितः ।
 न बाह्यकरण्युक्तो न चान्तकरणस्तथा ॥१८॥
 सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः पुण्यपापविवर्णितः ।
 स स्वरूपे सदा ह्यास्ते सुपुप्त इति गीयते ॥१९॥
 स्वप्नान्त चैव बुद्धान्त विचरत्येष शकरः ।
 नदीतले यथा मत्स्यो गत्वाऽऽगत्य निवर्तते ॥२०॥
 श्येनो वाऽथ सुपर्णो वा श्रान्तः पर्वतवन्दरे ।
 शेते सहृद्य पक्षौ च प्रत्यगात्मा ह्यय तथा ॥२१॥

धाम से धान और उदान से उदान एव समान से समान है
 द्विजो ! मन से मन्वी-ऐसा कहते हैं । यह बुद्धि से विचार करता है कि
 महेश्वर पर ही हैं । जब सदा यह समस्त करणों से युक्त वर्तमान
 रहा करते हैं । १५।१६। सत्पुरुषों के द्वारा अन्तर्यामी सनातन जाग्रत—
 यह कहे जाया करते हैं । जब यह अन्त करणों से युक्त होकर स्वेच्छा
 से विचार किया करते हैं । १७। स्वयं ताप से विवर्जित होकर यह
 आत्मा सुप्त-ऐसा कहा जाया करता है । न तो यह बाह्य करणों से
 युक्त है तथा न अन्त करणों से युक्त है । १८। यह सभी उपाधियों से
 विनिर्मुक्त है और पुण्य पाप से रहित है । वह सदा स्वरूप में रहते हैं
 और सुपुप्त-इस नाम से गान किये जाया करते हैं । १९। यह भगवान्
 शङ्कर स्वप्नान्त और बुद्धान्त विचरण करते हैं । नदी के तल में जैसे
 मत्स्य जानर और आकर निवृत्तित हो जाया करता है । २०। श्येन
 भयवा सुपर्ण पर्वतकी वन्दरा में श्रान्त होता है और अपने दोनों पक्षों

को सहित करके शयन किया करता है । उसी प्रकार से प्रत्यगात्मा यह भी है । १२१।

जाग्रत्स्वप्नगता भावास्तेषु शान्तो मुहुर्मुहुः ।

संप्रसाद ततः प्राप्य परानन्दमयो भवेत् ॥२२

अविद्ययैव सर्वोऽयं व्यवहारः परात्मनः ।

गुणधर्मो यदि स्यातां सुषुप्तौ रहितः कथम् ॥२३

सत्या निमित्तभूतायामविद्याया द्विजोत्तमाः ।

बुद्धौ भ्रमन्त्यामात्माऽपि भ्रमतीति जना विदुः ॥२४

नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा बुद्धिसनिधिमत्तया ।

यथा यथा भवेद्बुद्धिरात्मा तद्वदिहेष्यते ॥२५

विद्याविद्यास्वरूपीति शंकरः कश्चिदुच्यते ।

घाता विघाता लोकानामादिदेवो महेश्वरः ॥२६

भ्रान्तिविद्यापरश्चेति शिवरूपमनुत्तमम् ।

अवाप मनसा सोऽयं केचिदागमवेदिनः ॥२७

अर्थेषु बहुरूपेषु विज्ञान भ्रान्तिरुच्यते ।

आत्माकारेण सवित्तिवुं द्विविद्येति कीर्त्यते ॥२८

जाग्रत् स्वप्नगत भाव है उनमे यह मुहुर्मुहु शान्त हैं फिर सम्प्रसाद को प्राप्त करके परानन्दमय हो जाया करते हैं । १२२। परात्मा के विषय मे यह सभी व्यवहार अविद्या से ही हुआ करता है । उनमे यदि गुण और धर्म होते तो वे सुषुप्ति की अवस्था रहित कैसे हो सकते हैं । १२३। हे द्विजोत्तमो ! निमित्त भूता अविद्या के होने पर बुद्धि मे धम दिलाया करते हैं । मनुष्य ऐसा जानने हैं कि यह आत्मा भी भ्रमित होता है । १२४। १२४। नित्य और सर्वगत आत्मा बुद्धि की सन्निधि मत्वा से जैसे २ बुद्धि होती है उसी के समान आत्मा इष्ट हुआ करता है । १२५। कुछ कें द्वारा भगवान् शङ्कर विद्या-अविद्या के रूप वाले हैं—ऐसा कहा जाता है । यदि देव महेश्वर भगवान् लोगों के घाता और विघाता हैं । १२६। भ्रान्ति विद्या पर शिव का अम नाम रूप है । १२७।

आगम के ज्ञाता लोग यह कहते हैं कि वह इन्होंने मन से प्राप्त किया है ।२७। बहुत रूपा वाले अर्थों में विज्ञान जो है वह भ्राति-इस नाम से कहा जाता है और आत्मावार से जो भलीभाँति का ज्ञान होता है वही विद्या इस नाम से कीर्तित की जाया करती है ।२८।

विकल्परहित तत्त्व परमित्यमिधीयते ।

व्यक्ताव्यक्तज्ञरूपोति शिव कैश्चिन्निगद्यते ॥२९

घाता च सर्वानोकना विघाता परमेश्वर ।

तयोविशतितत्त्वानि व्यक्तितशब्देन सूरय ॥३०

वदन्ति व्यवतशब्देन प्रकृति च परा तथा ।

कथयन्ति ज्ञशब्देन पुरुष गुणभोगिनम् ॥३१

तत्र यच्छुकर रूप नाव्यक्त न च शकरात् ।

यो हेतुस्त्रिगुणस्यापि सर्वस्य प्रवृत्ते पर ॥३२

चतुर्विधश्च त्रिविध स एव भगवाञ्छिव ।

स एव सर्वभूतात्मा सर्वभूतभवोद्भव ॥३३

आस्ते सर्वरतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ।

योगिनामपि यो योगी कारणाना च कारणम् ॥३४

रुद्राणामपि यो रुद्रो देवतान च देवता ।

ब्रह्माद्या अपि य देव न विदन्ति महेश्वरम् ॥३५

विकल्पों से रहित जो तत्त्व पर होता वही पर कहा जाता है ।

कुछ विद्वानों के द्वारा शिव व्यक्त-अव्यक्त रूप वाले है—ऐसा कहा जाया करता है ।२९। परमेश्वर सब लोकों के घाता और विघाता हैं । उन दोनों के बीसत्त्व व्यक्ति शब्द के द्वारा रहे जाते हैं—ऐसा सूरिगण कहते हैं ।३०। तथा व्यक्ति शब्द के द्वारा परा प्रकृति को कहते हैं और 'स'—इस शब्द के द्वारा गुणों का भोग करने वाले पुरुष को कहा करते हैं ।३१। उभमें जो शङ्कर भगवान् का रूप है वह शङ्कर अव्यक्त नहीं होता है । जो हेतु इस त्रिगुण (सत्त्व-रजन्म) का होता है वह भी सर्व प्रकृति के पर है ।३२। वह भगवान् शिव चार प्रकार के तथा तीन

प्रकार के होते हैं और वह शिवही के रूप हैं । वह ही समस्त-भूतो के आत्मा हैं और सब प्राणियों के भव की उत्पत्ति हैं । ३३। देव जैसे मभी मे विराजमान-रहने वाले हैं विष्णु के सर्वत्र वर्त्तमान दिखलाई नहीं दिया करते हैं जो योगियों के भी योगी हैं और कारणों के भी कारण हैं । ३४। सब एकादश रुद्रों के भी जो रुद्र हैं अर्थात् सर्वोपरि विराजमान देव हैं और सब देवों के भी जो देव हैं ब्रह्मा आदि महान् देवता भी जिस देव महेश्वर का यथार्थ रूप मे ज्ञान कर पाते हैं वह महेश्वर देव ऐसे ही हैं । ३५।

यं ज्ञात्वा न पुनर्जन्म मरण वाऽपि विद्यते ॥३६॥
 यदाऽऽपदो देहभृता भवन्ति प्राणात्ययप्राप्तिकृतस्तदानीम् ।
 विहाय देवं जगदेकबन्धुं शिव न चान्यं परिहारहेतुः ॥३७॥
 आस्ते शिशुर्वरान्सर्वान्सर्वेणां देहिना सदा (१) ।
 देहभृत्कथ्यते तस्मान्निर्गुणोऽपि महेश्वरः ॥३८॥
 भूयानत्र गतः कालस्तत्रैकं जन्म गच्छतु ।
 जिज्ञास्यतामियं तावन्मृक्तिरेकेन जन्मना ॥३९॥
 भक्त्या भगवतः शभोरिति देवोऽब्रवीद्रविः ।
 सकृत्सस्मरणाच्छभोर्नश्यन्ति क्लेशसंचया ॥४०॥
 मुक्तिं प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्य विघ्नोऽनुमीयते ।
 तस्मात्तडिल्लतालोल मानुष्य प्राप्य दुर्लभम् ॥४१॥
 शिवं सपूजन् नित्यं भक्त्या ह्यात्मोपलब्धये ।
 मोहनिद्राप्रसुप्ते ऽस्मिन्पशुपाशशताकुले ॥४२॥

जिन महेश्वर देव का ज्ञान यथार्थ रूप मे प्राप्त कर लेने पर हम ससार मे पुनर्जन्म और मरण नहीं होता है । देह धारियों को जब आपदाएँ होती हैं उस समय मे प्राणों का विनाश कर देने धार्मी ही हुआ करती हैं । उन काल में जगत् के एक बन्धु शिव देव का छोड़कर अन्य कोई भी परिहार करने का हेतु नहीं हुआ करता है । ३६। ३७। सदा समस्त देह धारियों के सबवरो मे शिशु होना है । जहाँ काण्ड दे-

निर्गुण भी महेश्वर प्रभु देहवारी हैं—ऐसे कहे जाया करते हैं ।३८। पुनः यहा पर जन्म को एक काल प्राप्त होता है । उसमे यह जानना चाहिए कि यह मुक्ति एक ही जन्म से हो जावे ।३९। देव रवि ने यही बताया है कि एक ही जन्म मे मुक्ति तभी हो सकती है जब भगवाद् शम्भु की भक्ति होवे । क्योकि भगवाद् शम्भु के केवल एक ही बार स्मरण करने से सम्पूर्ण बलेशो के समुदाय नष्ट हो जाया करते है ।४०। और वह स्मरण करने वाला मुक्ति को प्राप्त हो जाया करता है । स्वर्ग की प्राप्ति तो उस मुक्ति के पाने मे विघ्न रूप ही अनुमान किया जाया करता है । इसलिए बिजली की चमक के समान यह मनुष्य का जीवन है जो परम दुर्लभ है । इस मनुष्य जीवन को प्राप्त करके नित्य ही भक्ति की भावना से आत्मा को उपलब्धि के लिये भगवाद् शिव का अच्छी तरह से पूजन करना चाहिए । यह ससार ऐसा है कि इसमे जीवन प्राय मोह को निद्रा मे प्रसुप्त रहता है और यह पशु के सैकड़ो पाशो से घिरा हुआ होता है ।४१-४२।

पुरुषा कृतकृत्यास्ते ये शिव शरण गता ।

पुत्रदारगृहक्षेत्रघनधान्यघिमेदिनीम् ॥४३॥

लब्ध्वेमा मा कृथा दपं रे रमा क्षणभगुराम् ।

त्यक्तवा क्रोध च काम च लोभ मोह मद तथा ॥४४॥

जना यजध्वमीशान समीहितफलप्रदम् ।

यावन्नाभ्येति मरण यावन्नाध्येति वै जरा ॥४५॥

यावन्नेन्द्रियवंकल्य तावदेवार्चयेश्वरम् ।

ये यजन्ति न देवेश विपयासवमोहिता ॥४६॥

शोचन्ते हि मृता पङ्कलग्ना वनगजा इव ।

काल सनिहितापाय सपद पदमापदाम् ॥४७॥

समागमा सापगमा सर्वमुत्पादित गुरु ।

यजन्ति ये विदित्वैव लिङ्कमूर्तिमहेश्वरम् ॥४८॥

लभन्ते विपुनान्कामानिह चामुत्र चाक्षयान् ।

आराधयन्वा विपेन्द्रा सर्वाणि विश्वतोमुखम् ॥४६॥

वे ही पुरप कृतकृत्य हैं अर्थात् उन्होंने मनुष्य जीवन को प्राप्त करने का वास्तविक लाभ प्राप्त कर लिया है जो भगवान् शिव के शरणागति में प्राप्त हो गये हैं । ४३। महामूढ मनुष्य । पुत्र-हारा-गृह—क्षेत्र—घन-धान्य—ऋद्धि और भूमि आदि को प्राप्त करके और इस एक ही क्षण में विनष्ट हो जाने के सम्भाव वाली लक्ष्मी को प्राप्त करके स्वयं ही घमण्ड मत करो । काम-क्रोध-लोभ-मोह तथा मद को त्याग करके हे जगो ! भगवान् ईशान का ही भजन करो जो सभी हित फल के प्रदाता हैं । इस मानुष जीवन में जिस समय तक मृत्यु नहीं आती है और जब तक श्रद्धा नहीं उपस्थित होती है । जब तक इन्द्रियो म विवन्ता नहीं हाती है तभी तक भगवान् शिव का अर्चन करना चाहिए । जो लोग विपररूपी मदिरा के कारण मोहित होकर देवेश्वर का भजन नहीं किया करते हैं वे जब मृत होते हैं तो कीच में पड़े हुए हाथी के ही समान शोक किया करते हैं । महाबाल सनिहित अपायो वाला है और ये सम्बदाएँ परम आपदाआ का ही समागम हैं और अपगमो से युक्त हैं । सर्व गुह उपस्थित हैं । जो लोग इस तरह का ज्ञान प्राप्त करके लिङ्ग भूति महेश्वर प्रभु का भजन किया करते हैं वे यदा सासार में बहुत म मनोरथा का लाभ प्राप्त किया करते हैं और परगो में भी अक्षय भोग को प्राप्त करते हैं । हे विपेन्द्रो ! इसलिए सर्वज्ञ विश्वनोमुख महेश्वर की आराधना करो । ४३-४६।

क्षिप्र यास्यय तेनैव सायुज्य नात्र मशय ।

भवत्या भव यजेद्यस्तु महापातनवानपि ॥५०॥

सोऽपि याति पर स्थान त्रिसप्तपुराणान्वित ।

अश्वमेघसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥५१॥

महेशाचनपुण्यस्य यत्रा नार्हन्ति षोडशीम् ।

श्रीडन्ति शिशवो यत्र लिङ्गं कृत्वा प्रजन्ति ये ॥५२॥

सैकत मृन्मय वाऽपि ते भवन्त्येव भूभुज ।
 आध्यात्मिक चाऽऽधिदैव दुःख त्रैवाऽऽधिभौतिकम् ॥१३॥
 देवादीनां विदित्वैव मोक्षार्थी शिवमर्चयेत् ।
 अपारतरपर्यन्ताद्घोरात्ससारसागरात् ।
 महामोहजलात्कामक्रोधग्राहात्सुखोर्मिण ॥१४॥
 प्राज्ञो वेदान्तविद्योगी निर्ममो निरहकृति ।
 एको योगी प्रशान्तात्मा स सतरति नेतर ॥१५॥
 दान्त सुसयतो ध्याने निराशो विगतस्पृह ।
 सर्वसङ्गविहीनश्च निर्द्वन्द्वो निरुपल्लव ॥१६॥

बहुत शीघ्र ही उसी ही के द्वारा सामुज्य को प्राप्त होता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है । जो भक्ति से भव का भजन किया करता है वह महापातको को भी बिनष्ट कर दिया करता है । १५०। वह पुण्य भी अपनी इच्छा प्रश्नों के सहित परम स्थान को प्राप्त होता है । एक सहस्र अश्वनेघ यज्ञ और सैकड़ों राजसूय यज्ञ भी महेश भगवान् के अभ्यर्चन के पुण्य की सोलहवीं कला को भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं । जहाँ पर छोटे २ शिशु क्रीड़ा किया करते हैं वहाँ पर लिङ्ग की रचना करके जो गमन किया करते हैं । १५१। १५२। बालू का अथवा मूर्तिका जो लिङ्ग बनाते हैं वे भी अगले जन्म में राजा हुआ करते हैं । देवादिको को भी आध्यात्मिक—आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख हुआ करता है—ऐसा समझकर मोक्ष को प्राप्त करने की इच्छा वाले पुण्य को भगवान् शिव का ही अभ्यर्चन करना चाहिए । यह ससार अपार तरपर्यन्त वाला है और महान् घोर सागर के ही समान है । इसमें महान् जो मोह है वही जल भरा हुआ है और वाम तथा श्रेय जो हैं वे ही बड़े-छे ग्राह है और सुख जो विषया में मिलता है वे ही तरंगे हैं । इस ऐसे महान् भीषण ससार सागर को प्राण—वेदान्त का शांता योगी—ममता से रहित—अहङ्कार से शून्य—प्रशान्त आत्मा वाला योगी तैरकर इससे पार जाया करता है अन्य कोई भी

इसको पार नहीं कर सकता है। दान्त ध्यान में मुसयत—निरास और सभी प्रकार की इच्छाओं से रहित—सबके सङ्ग से विहीन—निर्द्वन्द्व उपद्रवों से रहित ही इस संसार से पार जाया करता है।
१५३-५६।

सर्वकर्मफलत्यागी जडान्धवधिराकृति ।
मित्रारिपु समो मैव समस्तेष्वेव जन्तुषु ॥५७॥
एव सुदुर्लभो मोक्षो न स्याद्योगीव तादृश ।
सर्वे पृथिव्या पाताले मुक्ता प्रकृतिजैर्गुणै ॥५८॥
एव सुदुर्लभ ज्ञात्वा मोक्ष हि बहुसाधनम् ।
पूजयध्व महादेव कर्मयोगेण चान्यथा ॥५९॥
कर्म पूजा जपो होम शभोर्नामानुकीर्तनम् ।
कर्मयोगा समाख्याता एतैः पूज्यो महेश्वर ॥६०॥
य य काममभिध्यायेत्तदर्पितमना शिवम् ।
सपूज्य त तमाप्नोति साविश्याह यथा पुरा ॥६१॥
तन्नामजापी तत्कर्मरतिस्तद्गतमानस ।
निष्काम पुरुषो विप्रा स रुद्रपदमश्नुते ॥६२॥
य सर्वदाऽर्चयेदीश स रुद्र इव भूतले ।
पापहा सर्वमर्त्याना दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥६३॥

जो मनुष्य सभी कर्मों के फल का त्याग करने वाला है और जैसे कोई महान् जड़ एव बहिराहो उसके ही समान आवृत्ति रखने वाला हो वही इससे पार होता है। जो मित्र और शत्रु दोनों में समान भाव रखता हो अर्थात् सबका ही मित्र जैसा रहे तथा सब प्राणियों के हित करने वाला हो उसी को मोक्ष प्राप्त होता है। यह मोक्ष इस प्रकार से परम दुर्लभ है। वैसा ही योगी जैसा हो जैसा ऊपर बतला चुके हैं उसी को मोक्ष होता है अन्यथा नहीं होता है। सभी लोग पृथ्वी में-पाताल में प्रकृतिजन्य गुणों के द्वारा ही मुक्त होते हैं। इस प्रकार से परम दुर्लभ जगत्पर मोक्ष को बहुत से गायकों वाला

समझना चाहिए । कर्मयोग से श्री महादेव प्रभु का पूजन करी और अन्य प्रकार से करो ॥१७१५-१७१६॥ कर्म पूजाजप-होम-शभु के शुभ नामो का कीर्तन-येस भी कर्मयोग बहे गये है । इन्ही के द्वारा महेस्वर प्रभु का पूजन करना चाहिए ।६०। जिस जिस काम का उत्तर प्यान करे वह सब शिव के लिये अहित मन वाला होवे । पहिले सावित्री देवी ने कहा है कि भगवान् शिव की पूजा करके उसी उसी को प्राप्त कर लिया करता है ।६१। हे विप्रो ! शिव के नामो का जाप करने वाला—शिव के कर्मो मे रति रखने वाला—शिव के चरणो मे ही मन सलग्न रखने वाला—निष्काम पुष्ट ही रुद्र के पद को प्राप्त किया करता है ।६२। जो सर्वदा ईश का पूजन किया करता है वह भूतल मे रुद्र की तरह से रहता है । वह मनुष्य दर्शन और स्पर्शन से ही सब मनुष्यो के पापो का हरण कर देने वाला होता है । ६३ ।

॥ अरुन्धती-सावित्री सम्वाद् ॥

पतिव्रता महाभागा सावित्री वरवर्णिनी ।
 यदाह तद्ब्रदात्माक सूत वाक्यविशारद ॥१॥
 स्वर्गे ता शोभना दृष्ट्वा गुणै सर्वैरलकृताम् ।
 अरुन्धत्युत्तमा स्त्रीणा पर्यपृच्छच्छुचिस्मिता ॥२॥
 शतश सन्ति सावित्रि देवा स्वगनिवासिन ।
 देवपत्न्यस्तथैवैता सिद्धा सिद्धाङ्गनास्तथा ॥३॥
 न तेषामोदृशो गन्धो न कान्तिर्न सरूपता ।
 नान्येषा विद्यते शोभा यथा ते पतिना सह ॥४॥
 न चैवाऽऽजल्पजातानि भ्राजन्ते सुरयोपिताम् ।
 यथा तव तथा पत्युर्भ्राजन्ते वरवर्णिनि ॥५॥
 नास्ति कान्तिर्विमानाना शक्रादीना दिवोकसाम् ।
 विमानस्यापि ते कान्तिस्तरुणाकार्युतद्युति ॥६॥

तप प्रभावो दानं वा कर्म वा क्तविरतरम् ।

गुवयोरतन्ममाऽऽचक्ष्व यथावद्वरवर्णिनि ॥७॥

ऋषियों ने कहा—हे वाक्य विशारद सूतजी ! महाभाग बाली पतिव्रता पर वर्णिनी सावित्री ने जो भी कहा था वह आप हमको बतलाइये । १। सूतजी ने कहा—सब गुणों से अलङ्कृता उसको स्वर्ग में देग्यवर जो कि परम शोभा से समन्वित थी मुचिस्मित वाली और सब स्त्रियों में उत्तम अरुन्धती ने उनसे पूछा था । २। हे सावित्री ! स्वर्ग में निवास करने वाले देवगण सौकण्डो ही हैं तथा ये देवों की पत्निया भी हैं—सिद्ध और वहाँ पर सिद्धोङ्गनाए भी हैं किन्तु उनमें ऐसी गन्ध नहीं है और न उनकी ऐसी सुन्दर कान्ति ही है और सरूपता ही है । अन्यो की ऐसी शोभा भी नहीं है जैसी कि तुम्हारी अपने पतिदेव के साथ में रहने पर हुआ करती है । ३। हे वरवर्णिनि ! आकल्प जात भी सुरों की स्त्रियों के उस प्रकार के मुग्धमान नहीं हैं जैसे तुम्हारे और आपके पतिदेव के भूषणादि भ्राजभावन हुआ करते हैं । ४। शक्र आदि देवों के विमानों की भी वैसी नहीं है जैसी तरुण सूर्यों की दस हजार सख्या में एकत्रित होने पर जो छुति होवे आपके विमान की कान्ति है । ५। हे वर वर्णिनि ! आप दोनों का क्या यह तप का प्रभाव है या दान-कर्म और ऋतुओं की अधिकता का प्रभाव ऐसा है । यह आप हमको बतलाइए । ७।

शृणु प्वैतन्महाभागे यत्कृत पूर्वजन्मनि ।

भर्त्रा सह मया भद्रे शभोरायतने शुभे ॥८

कृत समार्जन भक्त्या गोमयेनोपलेपनम् ।

स्वर्गप्राप्तिरिय तस्य कर्मण फलमुत्तमम् ॥९

तीर्थोदकं सुगन्धैश्च (?) स्नापितो यदुमापति ।

तेन कान्तिरतीवैषा देहेऽभूत्रिदशेश्वरि ॥१०

मन प्रसाद सौम्यत्व शारीरी या च निवृत्ति ।

यत्प्रियत्व च सर्वस्य तद्घृणस्नानज फनम् ॥११

आह्लादः परमस्वास्थ्यमारोग्य चारुवेगता ।
 प्राप्तिश्चाशेषकामाणा दधिधीरफल शुभे ॥१२
 सोमन्व्य यत्पर देहे धूपदानम्य तत्फलम् ।
 गीतैर्नृत्यैस्तथा जाप्यैर्नियमैश्च पृथग्विधैः ॥१३
 तोषितो भगवानीशस्तस्येय पुष्टिरुत्तमा ।
 स्वर्गेषुना सत्यवता मया च शुभदर्शने ॥१४

सावित्री देवी ने कहा—हे महाभागे ! आप अब इसका मुझसे श्रवण कर लीजिए कि जो कुछ मैंने पूर्व जन्म में कर्म किया है । हे भद्रे ! अपने स्वामी के साथ मैंने भगवाद् शम्भु के परम शुभ आयतन में भक्ति भावना से समर्पण किया था और गोमय (गोबर) से उपलेपन भी किया था । यह स्वर्ग में प्राप्ति उसी शुभ कर्म का उत्तम पुण्य फल है ॥८॥९॥ सुगन्धित तीर्थों के जलों से जो उमापति ने स्नान किया था हे त्रिदशेश्वरि ! उसी से यह ऐसी उत्तम कान्ति मेरे देह में होगई है ॥१०॥ मन में प्रसाद का होना—सोम्यता और जो शारीरिक निर्वृति तथा सबका प्रियत्व जो होना है उस घृण से किये गये स्नान का ही फल है ॥११॥ आह्लाद-परमोत्तम स्वास्थ्य का होना-आरोग्य और चारुवेगता तथा कामों की प्राप्ति हे शुभे ! ये सब दधि और धीर का ही उत्तम फल है । हे शुभे ! मेरे देह में जो परमोत्कृष्ट सुगन्ध है वह धूप दान का ही पुण्य-फल है । गीत-जाप्य-नियम जो कि पृथक् प्रकार के हैं उनके द्वारा मैंने भगवाद् ईश को तोषित किया था उसी की यह उत्तमा पुष्टि है । हे शुभदर्शने ! मैंने और सत्यवाद् ने स्वर्ग की इच्छा की थी ॥१२॥१३॥१४॥

कृतमेतदतो न स्यादावयोर्भोगसदस्य ।

ये निश्चिता नराः सम्यक्पूजयन्ति महेश्वरम् ॥१५

तेषा ददानि विद्वेशो देवो मुक्तिं सुदुर्लभाम् ॥१६

संबमुक्ताऽप्य सावित्र्या मुनीन्द्रा हृष्टमानसा ।

ब्रह्मरमुपा दिवेशानो प्रणिपत्येभश्रवीत् ॥१७

सा पूज्या सा नमस्कार्या सा साध्वी सा पतिव्रता ।

या पूजयति सावित्रि सदा हैमवतीपतिम् ॥१८

यमाराध्य दिति. पुत्रांल्लेभे शक्रपुरोगमान् ।

दितिश्च दैत्यान्विघान्विनता गरुडारुणौ ॥१९

शचुर्वंशीमुखाश्चान्याः सपूज्योमापति पुरा ।

प्रापुश्चाभिमतान्कामारतमीश को न पूजयेत् ॥२०

अभिनन्द्याथ ता चैव वसिष्ठार्धशरोरिणी ।

जगाम स्वाश्रम साध्वी सर्वदेवगणाचिता ॥२१

हमने मही किया है इसीलिये हम दोनों के भोग का सख्य नहीं होता है । जो विशय किये हुए नर महेश्वर भगवान् का भलीभाँति पूजन किया करते हैं विश्वेश उनको सुदुर्लभ भुक्ति का प्रदान किया करते हैं ॥१५॥१६॥ श्रीसूनजी ने कहा—सावित्री के द्वारा इस प्रकार से कही गयी थी । इसके अनन्तर मुनीन्द्र गण परम हृष्ट मन वाले होते हुए नियत होगये थे । ब्रह्मस्तुपा ने शिवाईशान दोनों का प्रणिपात करके यह कहा था ॥१७॥ अरुण्यती ने कहा—वह पूज्या है-नमस्कार करने के योग्य है-वह साध्वी और पतिव्रता है । हे सावित्रि ! जो सर्वदा हैमवती के पति की पूजा किया करती है ॥१८॥ जिनका समाराधन करके अदिति के शक्र जिनका अग्रणी है ऐसे पुत्रों की प्राप्ति की थी और दिति ने अनेकों दैत्यों को प्रसूत किया था तथा विनता ने गरुड और अरुड-इन दो पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥१९॥ सत्री और उर्वशी प्रथम जिनमें हैं ऐसी अन्य महिलाओं ने पहिले भगवान् उमापति का भलीभाँति पूजन करके अपने अभिमत कामनाओं की प्राप्ति की थी उस ईश को कौन नहीं पूजेगा ॥२०॥ मुनिवर वसिष्ठ जी की अर्धाङ्गिनी देवी अरुण्यती उस सावित्री देवी का इस प्रकार से अभिनन्दन करके वह साध्वी सब देवगणों के द्वारा समर्पित होती हुई अपने आश्रम को चली गयी थी ॥२१॥

एव समर्च्य गौरीशं श्रद्धात्ताश्च योषितः ।
 लभन्तेऽभिमतान्भोगान्सावित्र्याह यथा द्विजाः ॥२१॥
 ये नराः सकृदप्यत्र पूजयन्ति त्रिलोचनम् ।
 ते धन्यास्ते महात्मानस्ते कृतार्थाश्च पण्डिताः ॥२३॥
 धर्मार्थकाममोक्षा लिङ्गार्चा हेतुरुच्यते ।
 सर्वेषां प्राणिनां विप्रा इन्द्रियाणां यथा मनः ॥२४॥
 हृत्पद्मकर्णिकावास तेजोमूर्तिममङ्गिनम् ।
 निमंमा निरहंकारा व्यायन्ति ज्ञानिनः सदा ॥२५॥
 शैलजं वाणलिङ्गं वा पूजयेद्विश्वत्सदा ।
 मृदारुघटितं वाऽपि रत्नजं वा गृहाश्रमो ॥२६॥
 साम्राज्यं मनुजैः कैश्चिस्त्स्वाराज्यं च तथा परैः ।
 तथा वैराज्यमन्यैश्च लिङ्गमिष्ट्वा तदैश्वरम् ॥२७॥
 शोचन्ते ते परं हीना अभाग्याश्च दिने दिने ।
 प्रमादेनापि यैर्नोक्तं शिव इत्यक्षरद्वयम् ॥२८॥

इस रीति में श्रद्धा करने वाली नारियाँ भगवान् गौरी के पति का
 अभ्यर्चन करने अभिमत भोगों की प्राप्ति किया करती हैं जैसा कि
 हे द्विजो ! सावित्री ने कहा है ॥२२॥ जो मनुष्य एक बार भी
 यहाँ पर त्रिलोचन प्रभु का पूजन किया करते हैं वे पुष्ट परम
 धन्य हैं—महान् आत्मा वाले हैं—कृतार्थ हैं और महान् पण्डित हैं
 ॥२३॥ धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति
 का हेतु शिवाल्लिङ्ग पूजा ही बतलायी जाती है । सब प्राणियों में विप्र
 उत्तम होते हैं जिग प्रकार में समस्त इन्द्रियों में मन शिरोमणि है ।
 हृदय स्त्री कमल की कणिका में आवास वाले असङ्गी-तेजोमूर्ति शिव
 का निर्भय होकर और अहङ्कार से रहित होते हुए ज्ञानी पुष्ट मदा ही
 ध्यान किया करते हैं ॥२४॥२५॥ शैल से निर्मित या वाणालिङ्ग का
 जो विधि-विधान के साथ सदा पूजन करता है अथवा मूर्तिका तथा
 पाठ में निर्मित या रत्नों में रचित लिङ्ग का गृहस्थ पूजन किया करता
 है तो कुछ मनुष्यों के द्वारा साम्राज्य तथा दूमरों के द्वारा स्वराज्य और

अन्यों के द्वारा वैराग्य उस समय मे ईश्वर के लिङ्ग का भजन करके किया था । जो हीन हैं प्राप्न वे शीघ्र ही किया करते हैं और दिन-दिन मे भाग्य रहित हैं जिन्होंने कभी प्रमाद से भी अपने मुख से "शिव"— इन दो अक्षरों को कभी भी नहीं कहा है ॥२६॥२७॥२८॥

सपूज्ये सर्वसामान्ये स्वाराधये सर्वकामदे ।

भवेऽपि सति सीदन्ति भाविनो यत्तदद्भु तम् ॥२९

उपसर्गा. क्षय यान्ति चिद्धहन्ते विघ्नपल्लवा ।

मनः प्रसन्नतां याति पूज्यमाने महेश्वरे ॥३०

पूजिते सर्वदेवेशे सर्वदेवनमस्कृते ।

पूजिता सर्वदेवाः स्युर्यतोऽप्यौ सर्वगो विभु ॥३१

शिवाचनरतो नित्य महापातकसर्भ्व. ।

दोषेन लिप्यते विद्वाम्पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥३२

किमत्र शास्त्रमालाभि. सक्षेपेणोपदिश्यते ।

व्यापारान्सकलास्त्यक्त्वा पूजयन्वा महेश्वरम् ॥३३

निकटा एव दृश्यन्ते कृतान्तनगरद्रुमा ।

शिव स्मर शिवा ध्याय शिवा चिन्तय सर्वादा ॥३४

किं वेदं किमु वा शास्त्रैः किवा तीर्थादिसेवया ।

शिवः सपूज्यता नित्यमुपदेशोऽप्यमुत्तम. ॥३५

भलीभांति पूजन करने के योग्य—सभी के लिये परम साधारण— अपने द्वारा आराधना करने के योग्य—सभी कामनाओं को प्रदान करने वाले भगवान् भव के दिव्यमान रहने पर भी भावी वाले लोग दुःख उठाया करते हैं यह एक परम अद्भुत बात है ॥२९॥ उपसर्ग सब श्रय को प्राप्न हो जाते हैं और विघ्न पल्लवों का छेदन हो जाता है । महेश्वर भगवान् के पूजन करने पर मन प्रसन्नता को प्राप्त हो जाता है । सर्व देवों के द्वारा बन्दित सर्व देवों के पूजित होने पर सभी देव पूजित हो जाया करते हैं क्योंकि यह विभु सभी देवों में निवास किया करते हैं ॥३०॥३१॥ भगवान् शिव के अर्पण में, नित्य न रहने वाला

विद्वान् पुष्ट्य महापातको से होने वाले दोषो से लिप्त नहीं होता है जैसे पत्र का पत्र जल में लिप्त नहीं हुआ करता है ॥३२॥ इस विषय में शास्त्रो की मालाओ से क्या लाभ है । सशेष से ही यह उपदेश दिया जाता है कि सकल व्यापारो को त्याग करके भगवान् महेश्वर का ही पूजन करो ॥३३॥ सर्वदा भगवान् शिव का स्मरण करो—शिव का ध्यान करो और शिव का चिन्तन करो तो वृत्तान्त के नगर को द्रुमनि कर ही दिखलाई दिया करते हैं ॥३४॥ वेदो से क्या प्रयोजन है—शास्त्रो से भी क्या लाभ है अथवा तीर्थ आदि के सेवन से क्या प्रयोजन है केवल नित्य भगवान् शिव का ही पूजन करो । यही सर्वोत्तम उपदेश है ॥३५॥

अयमेव परो धर्मश्चीर्णमेमेतत्परं तपः ।

इदमेवाखिल ज्ञान पूजनं यन्महेशितुः ॥३६

शिवे दत्तं हुतं जप्तं बलिपूजानिवेदितम् ।

एकान्तोऽत्यन्तफल तद्भवेन्नात्र संशयः ॥३७

कर्मभूमौ हि मणुष्ये जन्मना नियुतोरपि ।

स्वर्गापवर्गफलद कदाचित्प्राप्यते नरैः ॥३८

तदीदृग्दुर्लभं प्राप्य नाचंरन्तीह ये शिवम् ।

तेषां हि हस्ते मूर्खाणां विवेकः कुत्र तिष्ठति ॥३९

आराधितो हि यः पुंसामैहिकामुष्मिकं फलम् ।

ददाति भगवाञ्शुभुः करतं न प्रतिपूजयेत् ॥४०

यो यमिच्छति विप्रेन्द्राः समाराध्य महेश्वरम् ।

निःसशयः समाप्नोति पुरा वैश्वरणो यथा ॥४१

दृष्टः संपूजितो ध्यानः सस्मृतो वा स्तुतोऽपि वा ।

यो ददाति नृणां मुक्तिं तस्मात्कंताच्यते शिवः ॥४२

शिव का अत्यर्चन ही सबसे परधर्म है । इसका चीर्ण करना ही परम तप है । यह सम्पूर्ण ज्ञान है कि महेश भगवान् का पूजन किया जावे ॥३६॥ भगवान् शिव का उद्देश्य करके दिया हुआ दान-हवन-

जान-बलि-पूजा जो भी निवेदित किया गया है वह एतान्त रूप अत्यधिक फल प्रदान करने वाला होता—इसमें लगभग भी संशय नहीं है ॥३७॥ यह कर्मभूमि है । इसमें मनुष्य योनि अरबों जन्मों के पश्चात् ही प्राप्त होती है शायद कदाचिन् ही मनुष्यो के द्वारा मनुष्य जीवन में भी स्वर्ग-अपवर्ग के फल देने वाला प्राप्त किया जाया करता है । तात्पर्य यह है कि शायद कोई ही स्वर्ग और अपवर्ग के फल को प्राप्त किया करता है नहीं तो सभी आना यह दुर्लभ जीवन व्यर्थ ही गँवा दिया करते हैं । ३८॥ इस परम दुर्लभ मनुष्य जीवन को प्राप्ति करके भी जो मनुष्य इस संसार में आकर भी भगवान् शिव का अभ्यर्चन नहीं किया करते हैं उन मूर्खों के हाथ में विवेक कहीं पर स्थित रहता है ॥३९॥ पुरुषों में जिसने भी शिव को आराधित किया है तो उस पुरुष को भगवान् शिवलौकिक और पारलौकिक फल प्रदान किया करते हैं । ऐसे भगवान् शिव को कौन महामूढ़ है जो नहीं पूजा करता है ॥४०॥ हे विदेन्द्रो ! जो महेश्वर प्रभु की समागमना करके जिसको भी चाहता है उसे को वह बिना किसी संशय के प्राप्त कर लिया करता है जैसे प्राचीन काल में वैश्रवण ने प्राप्त कर लिया था ॥४१॥ केवल दर्शन किये हुए—भक्तीभांति पूजे हुए—ध्यान किये हुए—संस्मरण किये हुए और स्तवन किये हुए जो शिव मनुष्यो को मुक्ति देता है इससे किनके द्वारा वे शिव अर्चित नहीं किये जाते हैं ॥४२॥

श्वपचोऽपि मुनिश्चैष्टा शिवभक्तो द्विजाधिकः ।
 शिवभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि श्वपचाधमः ॥४३॥
 यद्वा तद्वा शिवे कर्म पुमान्कृत्वा शिवालये ।
 लोभात्सङ्गात्प्रमादाद्वा पृथिव्यामेकराड्भवेत् ॥४४॥
 कथं वैश्रवणः पूर्वं समाराध्य महेश्वरम् ।
 लब्ध तस्मात्कुवेरत्व सूत तद्वक्तुमर्हसि ॥४५॥
 शृणुष्वमृपय सर्वे यदुक्तं सप्तमेऽन्तरे ।
 माहात्म्यमूचनकथा शिवस्य परमेष्ठिनः ॥४६॥

कश्चिदासीद्द्विजोऽवन्त्या सोमशर्मति विश्रुतः ।

पुत्रक्षेत्रकलत्रादिव्यापारेषु रतः सदा ॥४७

विहायाथ स गार्हस्थ्यं धनार्थं लोभमोहितः ।

प्रचचार मही सर्वा संग्रामपुरपत्तनाम् ॥४८

भार्या तस्य विशालाक्षी तस्मिन्गोहाद्विनिर्गते ।

स्वच्छन्दचारिणी नित्यं वभूवानङ्गमोहिता ॥४९

हे मुनि श्रेष्ठो ! स्वपत्नी चाहे भगवान् शिव का भक्त है तो द्विज से भी अधिक श्रेष्ठ है । शिव की भक्ति से विहीन द्विज भी स्वपत्नी से भी कहीं अधिक अधम हुआ करता है ॥४३॥ शिवालय में जो कुछ भी जैसा-तैसा शिव के लिए कर्म करके मनुष्य चाहे वह लोभ से किया हो या प्रमाद से किया गया हो या किसी सङ्ग से किया हो पृथ्वी में एक राट् होता है ॥४४॥ ऋषियो ने कहा—हे सूतजी ! वैश्रवण ने पहिले किस प्रकार से महेश्वर प्रभु की समाराधना करके उनसे कुवेरत्व के पद को प्राप्त किया था—यह ही आप बतलाने के योग्य होते हैं ॥४५॥ श्री सूतजी ने कहा—हे ऋषि गणो ! आप सब लोग श्रवण करिए जो कुछ सप्तम अन्तर में कहा गया है परमेष्ठी शिव की माहात्म्य के सूचन की कथा है ॥४६॥ कोई एक द्विज जिसका नाम सोम शर्मा प्रसिद्ध था वह अवन्ती पुरी में रहता था । वह सदा ही पुत्र—कलत्र—क्षेत्र आदि व्यापारो में निरत रहा करता था ॥४७॥ उसने अपने गार्हस्थ्य का त्याग कर धन के लिए लोभ से मोहित होकर सम्पूर्ण भूमि पर जिसमें ग्राम-नगर और प्रद सभो थे प्रचरण किया था । उसके घर से विविर्गन हो जाने पर उसकी विशालाक्षी भार्या अनङ्ग (कामदेव) से मोहित होकर नित्य ही स्वच्छन्द ससाचरण वाली व भगयी थी ॥४८॥४९॥

तस्या कदाचित्पुत्रस्तु शूद्राज्जातो विधेवंशात् ।

दुरात्माज्जीव निर्गूढो नाम्ना दुःसह इत्युत ॥५०

सोऽथ कालेन महता व्यसनोपप्लुतोऽभवत् ।

सर्वेवंधुजनैस्त्यक्त पपिपन्थिपथे स्थित ॥५१

पूजोष्करणद्रव्यं (?) स कस्मिंश्चिच्छिवालये ।
 रजन्यां प्रविवेशाय व्यसनेन प्रपीडितः ॥५२
 यावद्दीपो गतप्रायो वर्तिच्छेदाऽभवत्किल ।
 तावत्तेन दशा दत्ता द्रव्यान्त्रेपणकारणात् ॥५३
 प्रबुद्धश्चोच्छ्रितस्तत्र देवपूजाकरो नरः ।
 कोऽस्य कोऽस्य मिति प्रोञ्चैर्व्याहरन्परिघायुधः ॥५४
 स च प्राणभयाघ्नष्टो वित्रस्तश्चापि मूढवीः ।
 न विन्दन्नात्मनो जन्म कर्म वाऽपि सुदुःखितः ॥५५
 पुरपालैर्हतोऽवन्त्या मृतं कालादभूत्ततं ।
 गान्धारारविपये राजा ख्यातो नाम्ना सुदुर्मुखः ॥५६

उस द्विज की भार्या ने से किसी समय में विधि के वश से एक सूत्र से पुत्र उत्पन्न हुआ था । वह दुष्ट आत्मा वाला—निर्गूढ़—और अतीव दुःसह तथा नाम भी दुःसह था ॥५०॥ वह विशेष काल के होने पर विदेश में व्यसनो में उपलप्युत हो गया था । जब वह परिपल्य में स्थित देख गया हो सभी बन्धुओं के द्वारा भी पणित्याक्त हो गया था ॥५१॥ छे यामतम में पूजा के उपकरण द्रव्य रहने ही हैं । वह एक बार किसी शिवालय में व्यसन से उत्पीडित होकर रात्रि के समय में प्रविष्ट हुआ था । जब तक दीपक बुझा था और दीपक की वत्ती का छेदन हुआ था तब तक द्रव्य के अन्वेपण करने के कारण से दृश्य दी थी ॥५३॥ वहा पर देवना की पूजा करने वाला मनुष्य जाग उठा । उसने 'यह कौन है—यह कौन है'—ऐसे कहते हुए जोर से चिल्लाया और हाथ में उसने परिघ ग्रहण कर लिया था ॥५४॥ वही पर वह विप्र प्राणों के भय से मूढ बुद्धि वाला नष्ट हो गया था । उसने अपना जन्म और कर्म को भी प्राप्त सही किया था और अत्यन्त दुःखिन हुआ ॥५५॥ अवन्ती पुरी में वह पुरी के पालन करने वालों के द्वारा मार दिया गया था । इसके उपरान्त क्रुद्ध काल में वह गान्धार देश में सुदुर्मुख नाम से राजा विख्यात हुआ था ॥५६॥

गीतवाद्यरत स्तब्धो वेषयापानरुचिर्भृशम् ।
 प्रजोपद्रवकृन्मुखः सर्वघर्मवहिष्कृतः ॥५७
 किं त्वचंपत्यसौ नित्य लिङ्गे राज्यक्रमागतम् ।
 पुष्पपुष्पसुनैवेद्यगन्धादिभिरमन्त्रवित् ॥५८
 स्मुरन्वै पौर्विक कर्म शिवस्याऽऽप्यतनेषु च ।
 ददाति बहुशो दीमान्वातितै नसमुज्ज्वलान् ॥५९
 कदाचिन्मृगयासक्तो ममाराथ स वीर्यवान् ।
 पूर्वारिभिर्हतो युद्ध ऐरावत्यास्तटे शुभे ॥६०
 शिवपूजाप्रभावेन विध्वस्ताशेषकिल्बिष ।
 पुत्रो विश्रवसश्चाभूत्सर्वयक्षाधिपो बली ॥६१
 कुबेर इति धर्मात्मा श्रुतिशास्त्रसमन्वितः ।
 सपूज्याथ स चेशान विधिवत्स्वर्धुनीतटे ॥
 स्तोत्रेणानेन तुष्टाव भक्त्वा ते सर्वकामदम् ॥६२

वह गान और वाद्य में रति रखने वाला—परम स्तब्ध और वेदया
 तथा भक्षण करने में रुचि रखने वाला अत्यधिक था । वह इतना मूर्ख
 था कि प्रजा में उपद्रव किया करता था तथा सभी घर्म के कर्मों से रहि-
 ष्कृत हो गया था ॥५७॥ किन्तु यह राज्य क्रम से आगत शिवलिङ्ग का
 नित्य ही अर्चन किया करता था । यह मन्त्रों का ज्ञाता तो बिल्कुल था
 ही नहीं किन्तु बिना ही मन्त्रों के पुष्प—धूम—नैवेद्य और गन्ध आदि के
 द्वारा अभ्यर्चन करता था ॥५८॥ वह पूर्व जन्म के कर्म का स्मरण करते
 हुए भगवान् शिव के आयतनों में बहुत से बत्ती और तेल से समुज्ज्वलित
 दीपकों को अर्पित किया करता था ॥५९॥ किसी समय में मृगया
 (शिकार) में समासक्त हुआ वह वीर्यवान् राजा मर गया था । ऐरावती
 नदी के शुभ तट पर पहिले शत्रुओं के द्वारा वह युद्ध में हत किया गया
 था ॥६०॥ किन्तु भगवान् शिव की पूजा के प्रभाव से उसके समस्त
 पाप नष्ट हो गये थे और फिर वह विश्रवा मुनि का पुत्र होकर समुत्पन्न
 हुआ था जो बलवान् समस्त यक्षों का अधिप हो गया था ॥६१॥ वह

कुवेर—इस नाम वाला परम धर्मात्मा हुआ था जोकि श्रुति (वेद) और शास्त्रों के ज्ञान समन्वित था । उसमें बधुनी के तट पर विधि-विधान के साथ भगवान् ईशान की भली भाँति पूजा करके उन समस्त कामनाओं के प्रदाता शिव को भक्ति से इस निम्नलिखित मंत्र से स्तवन किया था ॥६२॥

नमाम्यहं देवमज पुराणमुपेन्द्रवेधोमरराजजुष्टम् ।
 शशाङ्कमूर्याग्निसमाननेत्र वृपेन्द्रचिन्हे विलयादिहेतुम् ॥६३
 सर्वेश्वरं रुद्र त्रिदशैकबन्धुं ध्यानाधिगम्य जगतोऽधिवासम् ।
 तव ङाधारमनन्तशक्तिं ज्ञानार्णवं स्थैर्यगुणाकर च ॥६४
 पिनाकपाशाडकुशशूलहरत कपर्दिन मेघसहस्रधोपम् ।
 सकालकूटस्फटिकावभास नमामि शम्भु भुवनंरुनाथम् ॥६५
 कपालिन मालिनमादिदेव जटाधार भीमभुजगहारम् ।
 प्रदासितार च सहस्रमूर्ति सहस्रशीर्ष पुरप वरिष्ठम् ॥६६
 यमक्षर निर्गुणमप्रमेय तज्योतिरेकप्रवदन्ति सन्तः ।
 दूरगम वेदविदा च वन्द्य सर्वस्य हृतरथ पवित्रम् ॥६७
 तेजोनिधि बालमृगाङ्कमोलि नमामि रुद्र स्फुरदुप्रवक्त्रम् ।
 कालेन्द्रन कामदमस्तसङ्ग धर्मासनस्थ प्रकृतिद्वयरथम् ॥६८
 अतीन्द्रिय विद्वद्भुज जितारि गुणक्षयानीतमज निरीहम् ।
 मनोमय वेदमय च हस प्रजापतीश पुरहूतमिन्द्रम् ॥६९
 अनाहृतैकध्वनिरूपमाद्यं ध्यायन्ति य योगविदो यतीन्द्राः ।
 संसास्पाशच्छिद्र विमुक्तये पुनः पुनरतं प्रणमामि नित्यम् ॥७०

कुवेर ने कहा—मैं उपेन्द्र—वेधा और देवों के राजा के द्वारा सेवित—अज—प्रराण देव को नमस्कार करता हूँ । आप चन्द्र-सूर्य और अग्नि के समान नेत्रों वाले हैं और वृपेन्द्र के चिन्ह से युक्त तथा सृष्टि के विलय आदि के हेतु हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ । हे भगवान् ! आप एक ही सबके ईश्वर हैं—देवों के परम बन्धु—ध्यान से द्वारा ही अधिगमन करने के योग्य और हम जगत् के अधिवास हैं । उन याज्ञ-

व्यय के आधार—अनात शक्ति से सम्पन्न-ज्ञान के सागर और स्वयं गुण के आकर आपको मैं प्रणाम करता हूँ ॥६४॥ आप पिनाक धनुष, पाश, अंकुश और त्रिशूल इन आपुषों के धारण करने वाले हैं—कपर्दी—सहस्रो मेघो के समान घोष वाले—कालकूरम हाविष से युक्त—स्फटिक मणि के समान भासित—भुवनो के नाथ भगवान् शम्भु को मैं नमस्कार करता हूँ ॥६५॥ कपाली—और कपालो की मालाधारी—आदि देव—जटाधारी—भीषण सर्पों के हार को पहिने वाले—प्रशासिता—सहस्र मूर्तियों वाले सहस्र शीपों वाले—वरिष्ठ पुरुष आपकी सेवा में प्रणाम समर्पित करता हूँ ॥६६॥ सन्त लोग जिनको अक्षर—निर्गुण—अप्रमेय—एक ज्योति कहा करते हैं। जो वेदो के ज्ञाताओ को बहुत दूर रहने वाले हैं सबके वन्दना करने के योग्य हैं—हृदय में ही स्थित रहने वाले और परम पवित्र हैं ऐसे तेज के निधि और बाल चन्द्र को गस्तन पर धारण करने वाले स्फुरित अग्र-मुख वाले भगवान् रुद्र से लिए मैं नमस्कार करता हूँ। काल के ई धन-कामनाओ के प्रदान करने वाले—समस्त सङ्ग से रहित—धर्म-धर्म के आसन पर समवस्थित—प्रकृति ह्य में स्थित भगवान् रुद्र को प्रणाम करता हूँ ॥६७॥६८॥ इन्द्रियो की पहुँच से परे—विश्व के भोग करने वाले—शत्रुओ के जोतने वाले—तीनों गुणो से अतीत—अज-निरीह—मनोमय—वेदमय—हस—प्रजा पतियो के ईश-पुरूत-इन्द्र-अनाहत एक ध्वनि और रूप वाले—आद्य-आप हैं जिनको योग के ज्ञाता यतीन्द्र गणध्यान में लाया करते हैं। ससार के पाशो के छेदन करने वाले—विमुक्ति के प्रदान करने वाले उन भगवान् शम्भु को मैं बारम्बार नित्य प्रणाम करता हूँ ॥६९॥६९॥७०॥

न यस्य रूपं न बलप्रभावो न च स्वभाव. परमस्य पुंसः ।

विज्ञायते विष्णुपितामहाद्यै रतं वामदेवं प्रणामाम्यचिन्त्यम् ॥७१॥

शिव समाराध्य यमृग्रमूर्ति पपी समुद्रं भगवानगस्त्यः ।

लेभे दिलीपोऽप्यखिलां स चोर्वी तं विश्वयोनि शरणं प्रवद्ये ॥७२॥

ससूजयन्तो दिवि देवसवा ब्रह्मेन्द्र मुख्या विविधाश्च कामान् ।
 त रतीमि नौमीह जपामि शव वन्देऽभिवन्द्य शरः प्रपद्ये ॥७३॥
 स्तुत्वैवमीश विरराम यावत्तावत्सहस्रार्कसमानतेजा ।
 ददौ स तस्मै वरदोऽन्धकारिवरत्रय वैश्ववणाय देव ॥७४॥
 कृत्वाऽधिराज च ततस्त्रिनेत्रो यशस्विन गृह्यकराजमत्र ।
 ब्रह्माच्युतेन्द्रादिनताड्घ्नपद्मो जगाम कैलासममोघवाक्य ॥७५॥
 सस्य च दिक्पालपद चतुर्यं घनाधिपत्य च दिवीकसा स ।
 तयाऽधिक चैतदनित्यकीर्ति सुखी बभूवाप्रतिमप्रभाव ॥७६॥
 दोषाचरेन्द्रश्च तथा दशास्य ससूज्य दोषाकरचारुमौलिम् ।
 दोषावरश्चाप्यजितेन्द्रियश्च मुक्तिं स लेभेऽन्तसमरतदाप ॥७७॥

जिनका कोई भी रूप नहीं है और न कोई बल का ही प्रभाव है—न स्वभाव है ऐस यह परम पुरुष हैं । विष्णु और पितामह आदि के द्वारा ही उनका ज्ञान प्राप्त किया जाता है उन आचार्य वामदेव प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥७१॥ भगवान् अगस्त्य मुनि ने भगवान् निव की ही समाराधना करके जो नि अष्टमूनि हैं समुद्र का पान कर लिया था । राजा दिलीप ने भी इन्हीं के अनुग्रह से सम्पूर्ण पृथ्वी का साभ प्राप्त किया था उन्हा विश्व की योनि प्रभु की धारणागनिया म प्राप्त होता हू ॥७२॥ ब्रह्म इन्द्र जिनम प्रभु हैं एसे सब देवों क समुदाय ने त्विनोर म भनीभ नि पूजन करत हूण अत्र मनोरपा को प्राप्त किया था उन्हा भगवान् निव का मैं उगम्भार करता हूँ— स्तवन करता हूँ—जाप करता हूँ और वन्दना करता हूँ । उन अभि- यन्दना करने क योग्य प्रभु की मैं धारण म जाता हूँ ॥७३॥ इग गीति म स्तुति करके जैम ही कुवेर विरत हुआ था वंग ही मन्त्रा गुर्यों क समान तेज म मुन प्रपण के शत्रु देव के जो करदात दन दान हैं उग वैश्ववण क त्रिय तीन वर प्रदान किये थे ॥७४॥ इग उरान्त भगवान् त्रिनेत्र ने उग वैश्ववण को अधिराज बनाकर जोति परम योग्यी और

गुह्यको का राजा या फिर ब्रह्मा—अच्युत-इन्द्र आदि वे द्वारा प्रणत चरणो वाले और अमोघ वाद्यो से युक्त प्रभु कैलाश पर्वत पर चले गये थे ।७२। सख्य-हिस्पातवापद-और वह दोनों के घन का आधिपत्य प्राप्त करके उससे भी अधिक अनिन्य कीर्ति वाला और अप्रतिम प्रभाव पे युक्त वह परम सुखी हो गया था ।७६। द्रोणाचर—इन्द्र तथा दशास्य (रावण) ने चन्द्रदेव को मस्तक पर धारण करने वाले प्रभु शङ्कर का पूजन करके समस्त देवों का निराकरण करके उस अजित इन्द्रियो वाले और दोषो के आकरने भी मुक्ति को प्राप्त कर लिया था ।७७।

स्वर्गस्य मार्गा बहव प्रविष्टास्ते वृच्छसाध्या बहव सविघ्ना ।

निमेषमात्रेण महाफलोऽयमृजुथ पन्था स्मरण पुरारे ।७८।

दृष्ट तदेवाद्भूतमत्र मर्त्या माहात्म्यमेश ससुरासुराश्च ।

त्यक्त्वाऽऽत्मयोग च मलक्रियाश्च

यजन्त्यतस्त्र्यम्बकमेव सर्वे ॥७९॥

गायन्ति देवा किल गीतकानि घन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।

स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूय पुरुषा सुरत्वात् ॥८०॥

कर्माण्यसकल्पिततत्फलानि सन्यस्य रुद्रे परमात्मरूपे ।

अवाप्य ते कर्ममहीमनन्ते तस्मिन्लैय ये त्वमला प्रयान्ति ।८१।

जानीय (?) नैताद्वि कदा विलीने शुभप्रदे कर्मणि देहबन्ध ।

प्रासाम खण्डे किल भारताख्ये कुलेऽकलङ्के शिवधर्मनिष्ठा ।८२।

स्तोत्रेण येऽपि कचिदत्र मक्ता प्रसस्तुवन्ति प्रमथैकनाथम् ।

प्रयान्ति ते लोकेमिहान्धकारे पुरदरोद्गीतमहाप्रभावा ।८३।

एव वैश्ववणो जातो महादेवप्रसादत ।

सर्वमेतशेषेण कथित मुनिपु गवा ।८४।

य पठेच्छृणुयाद्वाऽपि सर्वपापं प्रमुच्यते ।

ब्रह्मलोके वसेत्कल्मषि देवोऽप्रवीद्वि ।८५।

गो तो स्वर्ग के प्राप्ति करने के लिए बहुत से मार्गों को बताया गया है किन्तु वे सभी मार्ग कठिनाई से साधन करने के योग्य हैं और उनसे बहुत से विघ्न भी रहा करते हैं। एक निमित्त मान में ही महान् फल देने वाला—परमाधिक सरल यही एक सुगम मार्ग है जो भगवान् पुरारि का स्मरण किया जावे। ७८। यहाँ पर मनुष्य सुर और अमुर सभी ने भगवान् ईश्वर के माहात्म्य में एक परम अद्भुतता देखी है और सभी लोग आत्म योग—यज्ञादि की क्रिया इन सबका त्याग करके एक केवल भगवान् त्र्यम्बक का ही भजन किया करते हैं। ७९। देवगण ऐसे अनेक गीतों का गान किया करते हैं कि जो भारत देश की भूमि भाग में वर्तमान प्राणी हैं वे परम धन्य हैं। यह भारत देश की भूमि स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्षपद) के मार्ग के ही समान है अर्थात् इसी भूमि में उत्पन्न होकर प्राणी स्वर्ग और मोक्ष के स्थान की प्राप्ति किया करते हैं। जो भारत में जन्म प्राप्त करते हैं वे परम धन्य हैं। अतएव देवगण की सुरतव का त्याग करके इस भारत में पुन पुरुष होकर जन्म ग्रहण करने के इच्छुक रहा करते हैं। ८०। परमात्मा के स्वरूप वाले भगवान् इन्द्र के चरणों में ही सब असङ्ख्यत पात्रा धारण कर्मों को समर्पित करके वे सब इन कर्मभूमि को प्राप्त करके उस अनन्त में लय प्राप्त कर निर्मल होने हुए प्रयाण किया करते हैं। ८१। यह न जानकर कि सब शुभप्रद कर्म के विहीन होने पर देह का बन्धन होता है। अतएव भारत नाम वाले भूगण्ड में किसी कनक में रहित कुल में शिव के घर्म में निष्ठा रखने वाले निवास करें। यहाँ पर इन्द्र स्तोत्र के द्वारा जो भी कही पर भक्त लाग प्रमथा के एर नाथ प्रभू का स्तवन किया करते हैं वे अल्पकारि भगवान् शिव के शोक में प्रयाण किया करते हैं और इन्द्र के द्वारा उनके महाप्रभाव के गीत गाये गये हैं। ८२। ८३। श्री मूतजी ने कहा—इन प्रकार से वैश्वान महादेवजी के प्रसाद से ही मनुष्यमन दृष्टा था। हे मुनि पुत्रावो! मैं यह सब पूर्ण रूपसे कह दिया है। ८४। जो इन्द्रको पढ़ता है अथवा श्रवण किया करता

है वह सभी पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है। रविदेव ने यह कहा था कि वह अन्त में जाकर ब्रह्मलोक में कल्प पर्यन्त निवास किया करता है। ८५।

॥ सुदेव्युपाख्यान ॥

पुनर्वक्ष्यामि माहात्म्यं देवदेवस्य शूलिनः ।
 पठता शृण्वतां सद्योऽद्यानि हन्ति बहून्यपि ॥१॥
 जितारीन्द्रियपङ्गवा योगिनोऽप्येनहृक्ताः ।
 यजन्ति ज्ञानयोगेन शिवमात्मस्वरूपिणम् ॥२॥
 तीर्थोदकविशुद्धा ये दानयज्ञतपोव्रतैः ।
 ते यजन्ति महेशानं कर्मयोगेण साधवः ॥३॥
 लुब्धा व्यसनितोऽज्ञाश्च न यजन्ति जगत्पतिम् ।
 अजरामरयन्मूढास्तिष्ठन्ति नरकीटकाः ॥४॥
 शिवधर्मरताः शान्ताः शिवशास्त्ररताः सदा ।
 देवात्केऽपीह जायन्ते पृथिव्या पुरुषोत्तमाः ॥५॥
 रूपं न शक्यते तस्य सस्थानं वा कदाचन ।
 निर्देषुं प्राणिभिः कैश्चिद्द्रष्टुं वाऽप्यकृतात्मभिः ॥६॥
 क्रियता मद्ब्रह्म कर्णं शिवे वाऽऽत्मा नियुज्यताम् ।
 आदीप्ते भवने रूपं खनितुं नैव शक्यते ॥७॥

श्रीसूतजी ने कहा—देवदेव भगवान् शूली के माहात्म्य को मैं पुनः बतलाता हूँ। इसके पढ़ने और सुनने वालों के अद्य सद्य ही नष्ट हो जाया करते हैं चाहे भले ही बहुत—से ही क्यों न हों। १। पङ्गव इन्द्रियों के शत्रुओं के जीत लेने वाले—बिना अहंकार वाले योगीगण भी आत्मस्वरूपी भगवान् शिव का ज्ञान योग के द्वारा यजन किया करते हैं। २। जो साधुगण तीर्थोदको से और दान-यज्ञ-तप और व्रतों से विशुद्ध हुए हैं

वे भगवान् महेश का कमंयोग के द्वारा भजन किया करते हैं ।३। जो सुम्भकव्यसनी—अज्ञ जो हैं वे जगत् के पति का यजन नहीं किया करते हैं । वे अजरामर घृत मूढ नरकीटक स्थित रहा करते हैं ।४। भगवान् शिव के घर्म में रत—शान्त और सदा शिव के शास्त्र में निरत ऐसे उत्तम पुण्य देववश कुछ ही इस पृथ्वी में उत्पन्न हुआ करते हैं ।५। बिन्ही भी प्राणियों के द्वारा जो अकृतात्मा हैं उन प्रभू का रूप—सस्यान कभी भी निदिष्ट करना अथवा देखना नहीं हो सकता है ।६। अतएव मेरे वचन को कानों में स्थान दो और अपनी आत्मा को भगवान् शिव में नियोजित करदो । जब चारों ओर से भवन में आग लगकर वह जलने लगता है तो उस समय में अग्नि के बुझाने के लिये पुये का खोदना सम्भव नहीं हो सकता है जिसके जल से आग बुझाई जा सके ।७।

सत्या वच्मि हितं वच्मि सारं वच्मि पुनः पुनः ।

असारे दग्ध ससारे सारं यच्छिद्रवपूजनम् ॥८॥

तदस्या दग्धससारग्रन्थेरत्यन्तदुभिदः ।

पर निर्मूलविच्छेदि क्रियता तद्भवाचनम् ॥९॥

मनस्तद्विद्वि कर्मज्ञ शरूरे यत्प्रवर्तते ।

सा वाणो वावपति शभु या रतौत्यच्युतमच्युता ॥१०॥

श्रवणी तौ श्रुतौ याम्या श्रूयन्ते तत्कन्या शुभाः ।

पादौ तौ सफनौ पुंमा शिवायतनगामिनौ ॥११॥

ते च नेत्रे शुभायाल याम्या शहश्यते शिवः ।

सफनौ तौ स्मृतौ विप्रास्तत्पूजा कारिणी वरौ ॥१२॥

तदेव सफलं कर्म शिवमुद्दिश्य यत्कृतम् ।

सेयं तदमीः पुंमां सेय भक्तिः समीहिता ॥१३॥

श्रेयम्बरी भक्तिमुंक्तैर्यै गिरिजापतेः ।

रिपवरनं न हिमन्ति न च ग्राहन्ति मादागः ॥१४॥

मैं सर्वथा सत्य कहता हूँ—हित की बात कहता हूँ और सार भूत वारम्बार कह रहा हूँ कि इस सार शून्य दग्ध सप्तर मे सार वस्तु केवल एक भगवान् शिव का ही पूजन है । ८। अत्यन्त दुर्मिद इम रुग्ध सप्तर की ग्रन्थि के पर निर्मूल का विच्छेदन करने वाला भगवान् भव का अर्चन ही होता है अतः उसे करो । ९। कर्म के जाता उस मन को ही जानना चाहिए जो शंकर मे प्रवृत्त हो जाता है । वाणी भी वहीं है जो वाणी के स्वामी अच्युत शम्भु को अच्युता होती हुई स्तवन किया करती है । १०। वे ही श्रवण श्रुत हैं जिनके द्वारा उनकी शुभ कथा सुनी जाया करती है । वे ही परमनुष्य के सफल एवं सार्थक हैं जो भगवान् शिव के आपतन तक गमन करने वाले हो । वे ही नेत्र शुभ एवं भूपित हैं जिनके द्वारा शिवेश्वर प्रभु का दर्शन प्राप्त किया जाया करता है । हे विप्रो ! उन भगवान् की पूजा करने वाले कहो वे ही कर सफल बताये गये है । कर्म भी वहीं सफल है जो भगवान् शिव का उद्देश्य करके ही किया गया होवे । पुण्यो की वही सधमी परा अर्थात् उत्कृष्ट कोटि वाली है जो यह भक्ति ही कही गयी है । ११। १२। १३। गिरिजापति की जो भक्ति है वही मुक्ति के श्रेय के करने वाली कल्याणकारिणी है उसको रिपुगण हिसित नहीं किया करते हैं और राक्षस लोग नहीं खाते है ॥१४।

न दशन्ति च नागेन्द्रा नर रुद्रपरायणम् ।

विपाककटुकान् रम्यान् विषयां विषसनिभान् ॥

सत्यज्याऽऽराघयेद्देव शंकर लोकशंकरम् ॥१५

अहिंसा सत्यमस्तेयं दया भूतेष्वनुग्रहः ।

यस्यैतानि सदा विप्रारनस्य तुष्यति शंकरः ॥१६

दृष्ट्वा सपूजित लिङ्गं भक्त्या यश्चाभिनन्दति ।

तीर्थत्रिकं वायः कुर्यात्तस्य तुष्यति शंकरः ॥१७

वाङ्मनःकायकर्मैश्च यस्य भक्तिमहेश्वरः ।

व्यसनोपहतमपि तस्य तुष्यति शंकरः ॥१८

यथा द्विजा हस्तिपदे गदानि सलीयन्ते सर्वेसत्त्वोद्भवानि ।
 एव घर्मा. शिवधर्मो तु सर्वे सलीयन्ते नात्र चित्र मुनीन्द्राः ॥१६
 अल्पाश्रयानल्पफलास्त्वरश्च घर्मानन्यान्प्राहुरिह द्विजेन्द्राः ।
 महाश्रयवहुकल्याणरूप वदन्ति सन्त शिवधर्ममेकम् ॥२०
 सर्वे वर्णा देवदेवस्य शभोः पूजा कृत्वा सत्पवावयानि चोक्त्वा ।
 त्यक्त्वा धर्मं दारुण मृत्युलोके यान्ति स्वर्गं मात्र कार्यो विचारः ॥२१
 ये वामदेव हि यजन्ति नित्यं सद्ब्रह्मशीलाः किल लिङ्गमूर्तिम् ।
 ते ध्वरतदोपा हि भवन्ति मर्त्या भवाय्वुराशि विपम तरन्ति ॥२२।

भगवान् रुद्रदेव मे परायण रहने वाले नर नागेन्द्र भी नहीं हुआ करते हैं । विपाक की दशा में अर्थात् परिणाम प्राप्त करने के समय में महान् बटुला आरम्भ काल में बड़े ही सुरम्य ऐसे विप के समान विपयो को परित्याग कर लोक के मङ्गल करने वाले भगवान् शंकर देव का आराधन करना चाहिए । १५। अहिंसा-सत्य-अस्तेय-भूतमात्र पर दया अनुग्रह-ये गुण किसके अन्दर विद्यमान हैं हे विप्रो ! उसी पर शंकर भगवान् परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हुआ करते हैं ॥१६॥ भलीभाँति से समचित शिव लिङ्ग का दर्शन कर भक्ति भाव से जो अभिनन्दन किया करता है अथवा जो तीर्थत्रिक (नृत्यगीत) किया करता है उसमें भगवान् शंकर परमसन्तुष्ट हो जाया करते हैं । १७। त्रिमयी भक्ति महेश्वर प्रभु में है और वह वाक्-मन-कार्य-ब्रह्म और इच्छा के किसी भी रूप में हो । चाहे वह व्यसनी से भी उपहत भी बयो न हो भगवान् शंकर उस पर प्रमन्न हो जाते हैं । १८। हे द्विजो ! जिस तरह से सभी प्राणियों के पैरों के चिन्ह हाथी के पैर के चिन्ह के अन्दर ही समा जाया करते हैं उसी भाँति सभी धर्म भगवान् शिव के धर्म में ही मुनीन्द्रो ! लीन हो जाया करते हैं—इसमें बुद्ध भी विचित्रता की बात नहीं है । १९। हे द्विजेन्द्रो ! अन्य का आश्रय ही अल्प फल वाले ही होते हैं और यहाँ पर अन्य धर्म स्वर कहे गये हैं । गन्त पुण्य एक शिव धर्म को महान् आश्रय माना और बहुत अधिक कल्याण करने के स्वप्न वाला कहा करते हैं । २०।

देवदेव दाम्भु की पूजा सभी वर्णों वाले करके तथा सत्य वचन कहकर और मृत्यु लोक में दारुण धर्म की त्याग कर स्वर्ग को जाया करते हैं इस विषय में कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ।२१। जो नित्य ही वामदेव प्रभु का यजन किया करते हैं और सुन्दर आचरण के स्वभाव वाले लिङ्ग मूर्ति को पूजते हैं वे मनुष्य अपने समस्त दोषों को ध्वस्त कर दिया करते हैं और महान् विषम इस ससार रूपी सागर को तैर कर पार हो जाया करते हैं अर्थात् साधारणिक बन्धनों से छूटकर सुगति को प्राप्त कर लिया करते हैं ।२२।

तैरिष्टं विविधयंज्ञं देवपितृमानवाः ।

तपित्ताः स्युर्जंगद्धेतुर्यैरिष्टो भगवान्भवः ॥२३

पर्वतान्दश यदृत्वा महादानानि पांडश ।

धेनुश्च दश यदृत्वा यदृष्ट्वा लिङ्गमाप्नुयात् ॥२४।

शिवभक्तो न यो राजा भक्तोऽन्येषु सुरेषु सः ।

स्वपत्नी युवती त्यक्त्वा यथैवान्यासु रज्यते ॥२५

व्याजेनापि हि ये कुर्युः किञ्चित्कर्म शिवालये ।

न ते यान्तीह नरक पापात्मानोऽपि मानवाः ॥२६

समार्जनादिकर्तारो मार्गशोभाकराश्च ये ।

तेऽवश्यं पृथिवीपाला भवन्ति त्रिदशोपमा ॥२७

अस्मिन्नर्थे पुरा वृत्तं तच्छृणुष्व द्विजोत्तमाः ।

यच्छ्रुत्वा प्राणिनः प्रायो न मोहमुपयान्ति ते ॥२८

देव-ऋषि-पितृ और मानव कोई भी हो उन्होंने विविध प्रकार के यज्ञों के द्वारा यजन किया है जिन्होंने जगत् के हेतु स्वरूप भगवान् भव का यजन किया है वे पूर्णतया सभी प्रकार से तपित भी ले जाते हैं ।२३। दश पर्वतों का दान करके और सोलह महादान करके तथा दश धेनुओं का दान करके जो पुण्य-फल प्राप्त होता है वही फल भगवान् के लिङ्ग का दर्शन करने हुए मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है ।२४। जो राजा शिव का भक्त नहीं है और अन्य देवों में भक्ति किया

करता है वह इसी प्रकार का होता है जैसा कोई अपनी युवनी पत्नी का त्याग करके अन्य स्त्रियां में रमण क्रिया करता हो ॥२५॥ जो किसी बहाने भी शिवालय में कुछ कर्म किया करते हैं वे मानव पापात्मा भी हों तो भी वे नरक में नहीं जाया करते हैं ॥२६॥ जो समाजंन आदि कर्मों के करने वाले होने हैं तथा मागों की शोभा को करने वाले हैं वे अवश्य देवों के ही समान पुरुष हैं और पृथिवीपाल ही हुआ करते हैं ॥२७॥ हे द्विजोत्तमो ! इस अर्थ में जो कुछ भी पहिले घटित हो चुका है उसका आप लोग श्रवण करिये । जिसको सुनकर प्रायः प्राणी-गण मोह को नहीं प्राप्त हुआ करते हैं ॥२८॥

स्वाम्यभुवेऽन्तरे त्वासीद्राजा परमार्थिक ।
 पञ्चालविषये विप्रा नरवर्मेति विश्रुत ॥२९॥
 दैवमन्त्रविदुत्साहशक्तियुक्त प्रतापवान् ।
 पाङ्गुशक्ति-महासत्त्व स्मितपूर्वाभिभाषित ॥३०॥
 तस्य भार्यासहस्राणां दर्शनीयतमावृति ।
 दशानामप्रमहिषो सुदेवीत्यभिविश्रुता ॥३१॥
 सर्वलक्षणसपत्ना शचीव वरवणिनी ।
 भर्तुं श्रापि प्रिया साध्वी चन्द्रकान्तिसमप्रभा ॥३२॥
 करोति प्रत्यहं राज्ञी भूमिममार्जनादिभि ।
 द्वारशोभा मागशोभा शिवस्याऽऽप्यन्ते शुभे ॥३३॥
 तां तयाऽभिरता हृष्ट्वा तस्य राज्ञ पुरोहित ।
 पप्रच्छेद स तन्वङ्गो गान्धर्वो रहसि स्थिताम् ॥३४॥
 श्रूहि मुञ्च महाभागे विमर्षं हरमन्दिरे ।
 समाजनरता नित्यमन्यकमंपराङ्मुखी ॥३५॥

स्वाम्यभुव मन्वन्तर में एक परम धार्मिक राजा हुआ था । हे विप्रो ! वह पाञ्चाल (पञ्जाब) देश में हुआ था और नरवर्मा-द्वय नाम से प्रसिद्ध था ॥२९॥ वह राजा दैव मन्त्रों का ज्ञान और उत्साह शक्ति से युक्त था तथा महात् प्रताप वाप्य भी था । वह राजा पद् गुणों से

युक्त था—प्रह्लाद सत्त्व वाला था और मन्द मुस्कान के साथ भाषण करने वाला था ॥३०॥ उसकी एक सहस्र भार्याओं में परम-दर्शनीय आकृति वाली और दशों में भी अग्रमहिषी जो थी वह सुदेवी—इस नाम से विश्रुत थी ॥३१॥ वह सुदेवी राजा की पटरानी सभी सुलक्षणों से सम्पन्न थी तथा वह चरवणिनी शची के ही समान थी। उसकी कान्ति चन्द्रमा के ही समान थी और वह अपने भर्ता की परम प्यारी थी तथा परम साध्वी थी ॥३२॥ वह रानी प्रतिदिन भूमि की समाजना आदि के द्वारा शुभ भगवान् शिव क आयतन में द्वार की शोभा और मार्ग की शोभा किया करती थी ॥३३॥ उस रानी को उस प्रकार स अभिरत देखकर उस राजा का पुराहित गालव मुनि ने उस रानी से एकान्त में स्थित हुई से यह पूछा था ॥३४॥ हे महाभाग ! हे सुभ्रु ! आप अन्य सभी कर्मों से पराङ्मुखी होकर नित्य ही समाजना के करने में किसनिये इतनी रत रहा करती हैं—यह मुझे बतनाइये ॥३५॥

सैवामुक्ता तदा तेन मुनिना विनयान्विता ।
 प्रहस्याऽऽह विशालाक्षो मुनीन्द्र गालव प्रति ॥३६
 न मेऽन्यत्र परा भक्तिर्यथा समाजनादपु ।
 तवाह कथयिष्यामि पुरा कर्म कृत मया ॥३७
 पूर्वमाप्तमह शृङ्गी पक्षिणी व्योमचारिणी ।
 कदाचिद्भ्रममाणा तु गता किष्किन्धपर्वतम् ॥३८
 सिद्धविद्याधराकीर्णं हेमकूटमिवापरम् ।
 आश्चर्यवन्निरावाध खलिङ्ग यत्र तिष्ठति ॥३९
 यस्य सदशनादेव स्वर्गं यान्ति मनीषिण ।
 सपूज्याथ तमेवेश पुष्पं धूर्वाशतादिभि ॥४०
 न्यस्त केनापि तत्पाद्वे नैवेद्य यत्तदेव हि ।
 तदादानु समागत्य लिङ्गं कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥४१
 शुघातार्ऽह महाभाग नैवेद्य तु क्रानोद्यमा ।
 तद्गृह्णत्या क्रमाद्विप्र पक्षाम्या समाजनाम् ॥४२

उस मुनि के द्वारा जब उस रानी से इस प्रकार से कहा गया था तो वह बहुत ही विनय से समान्विता होकर विशाल नेत्रों वाली उसमें हंसकर गालव मुनि से कहने लगी थी ॥३६॥ मेरी अन्य किसी भी कर्म में अधिक भक्ति नहीं है जैसी कि समागमन आदि के कर्म में होती है। अब मैं आपको बतलाती हूँ जोकि मैंने पहिले जन्म में कर्म किया है ॥३७॥ पहिले जन्म में मैं व्योम में सचरण करने वाली गृध्री पक्षिणी थी। किसी समय में भ्रमण करती हुई किष्किन्धा नाम वाले पर्वत पर पहुँच गई थी ॥३८॥ वह पर्वत सिद्ध और विद्याधरो से घिरा हुआ था-और ऐसा प्रतीत होता था कि मानो दूसरा हेमाचल का ही शिखर होवे। वह आश्चर्य से भरा हुआ—निरावाध था जहाँ पर खलिङ्ग स्थित था जिसके केवल दर्शन से ही मनीषी लोग स्वर्ग को प्रमाण किया करते हैं। उन्हीं ईश की पुष्प धूल और अक्षत आदि से भलीगति पूजन करके उनके पार्श्व भाग में किसी ने नैवेद्य रक्ता था। उसी समय में उसको लेने के लिये खलिङ्ग की प्रदक्षिणा करके हे महाभाग ! मे ध्रुवा से अत्यन्त आर्त वहाँ आई और उस नैवेद्य को प्राप्त करने का उद्यम करने वाली हुई थी। हे विप्र उसको जैसे ही ग्रहण करने को मैंने शपका मारा तो वहाँ पर मेरे दोनों पंगों से वहाँ की धूल का समाजंन होगया था ॥३९-४२॥

श्रुत देवस्य पुरतो देवयोगाख्याणात्ततः ।

तावत्तत्र समायातस्तस्य देवस्य पूजकः ॥४३

उद्गताऽह ततः कालान्मृता जाता वसोगृहे ।

नृवमंगे च तेनाह प्रदत्ता प्रथमा वधूः ॥४४

दशराज्ञीमहस्तापामुत्तमा मत्प्रभावतः ।

मान्या च दयिता राज्ञः पुत्रपौत्रममन्विता ॥४५

अपामादीद्वरागारे शूर्ययं पांशुमाजंनम् ।

दुहित्वाऽहं वसोर्जाता राज्ञो जातिस्मरा तथा ॥४६

कामात्ममाजंनं शूर्या भविष्यामि न वेपि तत् ।

एवमुक्तस्तथा राज्ञा प्रहृष्टनामयाद्रवीत् ॥४७

समाराध्य सुरेशान सर्वद त्रिपुरान्नकम ।

किमाश्चर्यं गुणावासे यदेतत्प्राप्तवत्यसि ॥४८

चक्षुषा प्रेक्षणं च नमनं च प्रदक्षिणम् ।

लिङ्गमूर्तेः शिवस्यैव राज्यावासिकरं स्मृतम् ॥४९

मैंने देव के ही आगे ऐसा किया था । देवयोग से एक ही क्षण भर में तब तक वहाँ पर देवकी पूजा करने वाला वहाँ पर आगया था ॥४३॥ उसी काल में मैं वहा से उदगता होगई और मृग होने के पश्चात् वसु के घर में समुत्पन्न हुई थी । उसने मुझको नृवर्षा के लिये प्रथमा बभ्रु के रूप में दे दिया था ॥४४॥ उसी के प्रभाव में मैं दश सहस्र रानियों में सर्वोत्तमा रानी हूँ । मैं महामान्या हूँ और राजा की पुत्र-पौत्र से समन्वित प्रिया रानी हूँ ॥४५॥ बिना ही किसी कामना के ईश्वर के श्रायतन में इस प्रकार से धूमि का साजंन कर देने पर मैं वसु की बेटा हुई तथा एक परम श्रेष्ठ राजा की जातिस्मरार्थ्यात् परम प्रिया पत्नी होगई हूँ ॥४६॥ यदि कामनाओं से समार्जन करके मैं क्या हो जाऊँगी—इसको मैं नहीं जानती हूँ । इस तरह रानी के द्वारा कहे गये गालव मुनि ने परम प्रहृष्ट होकर उससे कहा था ॥४७॥ सभी कुछ के प्रदान करने वाले त्रिपुरान्तक सुरेशान का समाराधन करके गुणावास में जो यह आपने प्राप्त किया है—इसमें क्या आश्चर्य की बात है ? ॥४८॥ केवल चक्षु के द्वारा देखना और प्रक्षिण देवेश को करन नमन करना लिङ्ग मूर्ति भगवान् शिव इतना ही सम्मान करना राज्य की प्राप्ति करा देना वाला बताया गया है ॥४९॥

जातिस्मरत्वमैश्वर्यं विद्याज्ञान प्रजासुखम् ।

अज्ञानाद्वा भयाद्वाऽपि दृष्ट्वैवेह महेश्वरम् ॥५०॥

नाम्नाऽपि नरकच्छेदः स्मरणाद्बुध पदम् ।

पूजानाद्यस्य निर्वाणं तमीश को न सथयेत् ॥५१॥

फनं प्रमादाज्जायेत घ्रुवं कालेन देहिनाम् ।

अथिना त्वस्त्रिनान्वामान्सद्यः फलति शवरः ॥५२॥

शाठघेनापि नरा नित्यं ये स्मरन्ति महेश्वरम् ।
 तेऽपि यान्ति तनुं त्यक्त्वा शिवलोकमनामयम् ॥१३॥
 चराचरगुरोरस्य शंभोरमिततेजसः ।
 न कृता येदं ङा भक्तिर्गञ्चितास्ते स्फुटं जनाः ॥१४॥
 प्रमादेनाप यैः कापि प्रणामः शून्यिनः कृतः ।
 कल्पान्तेऽपि भवग्रन्थिनं तं पा जायते पुनः ॥१५॥

जाति स्मरत्व-ऐश्वर्य-विद्या का ज्ञान अज्ञा का मुग यह सब तो अज्ञान से अथवा भय से यहाँ पर महेश्वर प्रभु को देगवर ही प्राप्त हो जाया करता है । केवल नाम का उच्चारण करने से ही नरको का छेदन हो जाया करता है और शिव का स्मरण करने से विबुधो का पद प्राप्त होता है । पूजन करने से उस पुरय को निर्वाण पद प्राप्त हो जाया करता है ऐसे महामहिम देव का कौन मूढ़ है जो समाश्रय ग्रहण नहीं करेगा ॥१०॥११॥ देहचारियों को बुद्ध पात्र में भगवान् के प्रसाद से फल होता है और निश्चित रूप में हुआ करता है । जो जर्षीजन हैं उनकी सम्पूर्ण कामनाओं को भगवान् शङ्कर तुल्य ही फलित कर दिया करते हैं ॥१२॥ जो नर शठगा में भी नित्य ही महेश्वर प्रभु का स्मरण किया करते हैं वे भी अपने शरीर का परित्याग करने के पश्चात् अनामय निषण्ण को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥१३॥ अपरिमित तेज वाले पर-अनर सबके गुरु भगवान् शम्भु की भक्ति जिन्होंने नहीं की है और एक भक्ति भाव हृदय में नहीं लाये हैं वे मनुष्य स्फुट रूप में बन्धित ही रह जाया करते हैं ॥१४॥ प्रमाद में भी जिन्होंने कही पर भी शून्यी प्रभु को प्रणाम किया है उनकी कल्याण में भी गतिविक्रम शून्य नहीं हुआ करती है ॥१५॥

सायन्ध्रमग्नि म गारे शौरमोहप्रयाणा ।

नाभंयान्नि विस्वाश सावदेव शरीग्निः ॥१६॥

द्विहागपुराणादिनिबन्धनव्याचनम् ।

ये तु पुं मनुस्त्वैव भवन्तान्नाग्नि वे नरा ॥१७॥

प्रतीपवागदानेषु तीर्थेग्नोषु मत्तन्म ॥

तत्तेषा स्यान्न स देह इत्याह परमेश्वर ॥५८॥

विनष्टलोभा विषयेषु निस्पृहा प्रसन्नचिताश्च शिवार्चनोद्यता ।
ब्रजन्ति श भो परम सनातन निरामय यत्प्रवदन्ति सूरय ॥५९॥
कुल पवित्र पितर समुद्धृता वसुन्धरा तेन च पाविता द्विजा ।
सनातनोऽनादिरनन्तविग्रहो हृदि स्थितो यस्य सदैव शकर ॥६०॥

तभी तक ये प्राणी इस ससार में शोक मोह में परायण होकर भ्रमण क्रिया करते हैं जब तक ये शरीरधारी भगवान् विरूपाक्ष की अर्चना नहीं किया करते हैं ॥५९॥ इतिहास और पुराणादि जो भगवान् शिव के विषय में लिखित पुस्तकें हैं उनका वांचवा जो कोई एक बार भी इस जीवन में किया करते हैं और इस प्रकार से जो नर भक्ति भाव से श्रवण किया करते हैं। उनको व्रत उपवास और दानों में जो भी कुछ पुण्य-फल प्राप्त होता है वह हो जाया करता है—इसमें लेशमात्र भी सन्देह का कोई भी अवसर नहीं है—ऐसा परमेश्वर ने स्वयं कहा है ॥५८॥ विषयों में लाभ को नष्ट कर देने वाले—निस्पृह अर्थात् किसी भी प्रकार की कोई भी इच्छा नहीं रखते हैं प्रसन्न चित्त वाले और शिव के अर्चन में उद्यत रहने वाले मनुष्य भगवान् शम्भु के परम सनातन विरामय पद को प्रणाम किया करते हैं ऐसा सूरिगण कहते हैं ॥५९॥ हे द्विजो ! उस पुरुष का कुल परम पवित्र हो जाता है—उसके पितृगणों का समुद्भव कर देते हैं—और उसके सम्पूर्ण वसुन्धरा को भी पावित कर दिया है जिनके हृदय में सनातन-अनादि-अनन्त विग्रह वाले भगवान् शङ्कर सदा ही स्थित रहा करते हैं अर्थात् जो सर्वदा शिव का मन में स्थान रक्खा करते हैं ॥६०॥

॥ रक्तासुर वध कथन ॥

पार्वत्या श्रोतुमिच्छामो माहात्म्य रोमहर्षण ।
जघान सा यथा दैत्यान् रक्तासुरपुरोगमान् ॥१॥

प्राणित्य महादेवी शङ्करार्धशरीरिणीम् ।
 महेंद्राणोश्वरनुत। भक्तानुग्रहकारिणीम् ॥२॥
 एकाक्षरीति विरुपाता ब्राह्मी दाक्षयणीति या ।
 उमा हैमवती दुर्गा सती माता महेश्वरी ॥३॥
 आर्याऽम्बिका मृडानी च चण्डी नारायणी शिवा ।
 महालम्बोजगन्माता कालिका मेनकात्मजा ॥४॥
 नानारूपधरा सीवमवतीर्वै पार्वती ।
 धर्मसंस्थापनार्थाय निघ्नती दैत्यदानवान् ॥५॥
 परमात्मा यथा रुद्र एकोऽपि बहुधा स्थितः ।
 प्रयोजनवशाद्देवी गीवाऽपि बहुधा भवेत् ॥६॥
 आमोदकतामुरो नाम महिषस्य मुतो बली ।
 महाभायो महाबाहुर्हिरण्याक्ष इवापरः ॥७॥

ऋषियों ने कहा—हे रोम हर्षणजी ! अब हम देवी जगदम्बा पार्वतीजी का माहात्म्य श्रवण करना चाहते हैं जिनमें रवनमुर जिनमें प्रधान या ऐमे दैत्यों का हनन किया था ।। श्री मूतजी ने कहा— भगवान् शंकर देव की अर्धाङ्गिनी महादेवी को प्राणपात करके जो महेंद्राणी और ईश्वर के द्वारा भी वन्दिता हैं और अपने भक्तों पर अनुग्रह करने वाली हैं । २। जो एकाक्षरी—दम नाम से विख्यात हैं और जो ब्राह्मी-दायादणी-उमा-हैमवती-दुर्गा सती-माता-महेश्वरी-अम्बिका-मृडानी-चण्डी-नारायणी-शिवा-महालम्बी-जगत् की माता-कालिका-मेनकात्मजा और अनेक रूपों के धारण करने वाली हैं वह ही 'पार्वती' दम नाम से अर्वाणी होकर आई हैं । उनसे धर्म की सम्स्थापना करने के लिए दैत्य और दास्यों का निह्वन किया है । ३। ४। जिन प्रकार से एक ही परमात्मा रुद्र स्थित रहा करते हैं वैसे ही प्रयोजन के घन से वह देवी भी एक ही होके दृष्ट पद्वन से स्वस्वों में हो जाया करती हैं । ५। एक रवनामुर नाम वाला भाई पागुर का पुत्र बहूत ही अपर

बलवान् था । वह महती माया वाला महान् भुजाओं से युक्त बहुत बलवान् था । ७।

स विजित्य सुरान्सर्वान्विण्वन्द्राग्निपुरोगमान् ।
 त्रैलोक्येऽस्मिन्निरातङ्कश्चके राज्य प्रतापवान् ॥८॥
 तस्यैते मत्त्रिणश्वऽऽसन्द्वात्मानो मदोत्कटाः ।
 त्रयस्त्रिंशद्विजश्रेष्ठाः सहस्राक्षीहिणीयुताः ॥९॥
 सिंहस्कन्धा महाकाया दुरात्मानो महाबलाः ।
 धूम्राक्षो भीमदंष्टश्च कालपाशो महाहनुः ॥१०॥
 ब्रह्मघ्नो यज्ञकोपश्च स्त्रीघ्नो बालघ्न एव च ।
 विद्युन्माली च बन्धूकः शङ्कुकर्णो विभावसुः ॥
 देवान्तको विघ्नमंश्च दुर्भिक्षः क्रूर एव च ।
 हयग्रीवोऽश्वकर्णश्च केतुमान्वृषभो गजः ॥१२॥
 शलभः शरभो व्याघ्रो निकुम्भो मणिको वकः ।
 सूर्यको विश्रुरो माली कालो दण्डश्च केरलः ॥१३॥
 स कदाचित्ममासीनो दैत्यकोटिसमावृतः ।
 सदस्ययात्रवीहृत्यान्दानवान्सनरांस्तथा ॥१४॥
 मा यजध्वं स्तुवाध च पूज्योऽहं भवतां सदा ।
 यस्तु देवान्समातिष्ठेत्स गच्छेद्ब्रह्मघ्यता मम ॥१५॥

उगने सभी गुरों को युद्ध में जीत लिया था जिनमें विष्णु-इन्द्र और अग्नि सभी पुरोगामी थे । वह ऐसा प्रताप चाला था कि त्रैलोक्य में निरातङ्कराज्य कर रहा था । ८। उगके द्वात्मा मदोत्कटा मयी थे । हे त्रिज श्रेष्ठो ! ये सब तैतीम थे जो महसों अक्षीहिणी गेदाओं से गमा-वृत रहा करते थे । ९। इनके रत्न्य सिंहों के समान थे—इनका शरीर विशाल था—ये सभी बड़े दुरात्मा थे और महान् बलशाली थे । उनके नाम—धूम्राक्ष-भीमदंष्ट-कालपाश-महाहनु-ब्रह्मघ्न-यज्ञकोप-स्त्रीघ्न-बालघ्न-विद्युन्माली-बन्धूक-शङ्कु-कर्ण-विभावसु-देवान्तक-विघ्नमं-दुर्भिक्ष-क्रूर-

हयग्रीव-अश्वकण्ठं केतुमाद्-वृषभ-यज्ञ-शानन धारम-राघ्न-निमुम्भ-मणिक
 चक-सूर्यव-विश्वरु मात्ती का न दण्ड-वेग्न ये वे । वह किसी समय में
 करोड़ों दैत्यों ने समावृत्त हुआ पैदा हुआ था । उसने सभा में सब
 दैत्यों—दानवों और नरों से कहा था—तुम लोग किसी का भी यजन
 मत करो—सवन न करो क्योंकि मैं ही सदा आप सब लोगों का पूज्य
 हूँ । जो कोई भी देवों का पूजनार्चन करेगा मैं उसको मार
 डालूँगा । १०।१५।

दानयज्ञोपवामाश्च त्यक्त्वा देवपिदर्शितान् ।
 प्रत्यक्षमोक्ष्यान्भुञ्जध्व यथेष्ट सुरयोपित ॥१६
 इति दैत्येन्द्रवाक्येण नष्टा यज्ञक्रियास्तदा ।
 नाधीयन्ते तदा वेदा न पूज्यन्ते च देवता
 उत्सवा न प्रवर्तन्ते सर्वं मासीत्तदाऽऽमुरम् ।
 धर्महीनस्ततो लोको म्लेच्छाकुल इवाभवत् ॥१८॥
 धर्मनाशात्सुरेन्द्रस्य बलहानिरजायत ।
 ज्ञात्वा हीनबल शक्र दानवास्त समाद्वबन् ॥१९
 सोऽभिभूतोऽसुरैर्गाढं त्यक्त्वा राज्यं च देवराट् ।
 बृहस्पतिमुनागम्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥२०
 रक्तासुराम्यनुज्ञाता दैत्या कोटिसहस्रशः ।
 आवाघन्ते स्म सर्गान् मद्द्वयार्थं न स शय ॥२१

दान यज्ञ-उपवास जो देवों ने और ऋषियों ने दक्षिण किये हैं उन
 सब का त्याग करके प्रत्यक्ष सुरों का भोग करो और यथेष्ट रूप से
 देवाङ्गना का उपभोग किया करो । १६। इन दैत्येन्द्र के वचन से त्रिलोकी
 में सभी यज्ञ की क्रियाओं का विनाश हो गया था । उस समय में कोई
 भी वेदों का अध्ययन नहीं किया करते थे और देवताओं का यजन भी
 नहीं किये जाते थे । १७। कोई भी उत्सव नहीं पर प्रवृत्त नहीं होते थे
 उस समय में तो महादैत्यों के भय में समस्त समार ही आसुरी प्रकृति

वाला हो गया था । तब लीं सब लोक धर्म से हीन म्लेच्छों के द्वारा ही धिरा हुआ सा हो गया था । १८। धर्म की हानि होने से सुरेन्द्र के बल की कमी हो गयी थी । जब दानवों ने इन्द्र को हीन बल वाला समझ लिया था तो सब दानवों ने उस पर आक्रमण कर दिया था । १९। वह देवों का राजा जब असुरों के द्वारा बहुत अधिक अभिभूत हो गया था तो उसने अपना राज्य का सिंहासन ही त्याग दिया था । इन्द्र ने सुर गुरु बृहस्पतिजी के पास जाकर यह वान्य कहा था— २०। हे भगवद् ! रक्तासुर के द्वारा आज्ञा प्राप्त किये हुए करोड़ों सहस्र दैत्यगण सर्वत्र बाधाएँ सब ओर से कर रहे हैं और—वे सब मेरे वध के लिए ही तैयार हो रहे हैं—इसमें तनिक भी सशय नहीं है । २१।

न स्यातुमत्र शक्रोमि न गन्तुं तैस्त्वभिद्रुतः ।
 सर्वाया योद्धुमिञ्जामि यद्भविष्यति ॥२२
 नश्यतो युध्यतो वाऽपि तावद्भवति जीवितम् ।
 यावत्प्रमार्ष्टि न विधिर्मलिऽस्य लिङ्गिताक्षरम् ॥२३
 जयमाशस मे ब्रह्मन्योत्स्येऽहमरिभिः सह ।
 मूहतं ज्वलितं श्रेयो न तु धूमायितं चिरम् ॥२४
 विवृतस्य जीवित पुंसः शत्रूणामाततायिनाम् ।
 अपकर्तुं शक्यतो यो जीवामीत्यधिगच्छति ॥२५
 कर्मायत्तं किलैश्वर्यं भदायत्तं च पौरुषम् ।
 तन्मायुद्धं करिष्यामि ध्रुव श्रेयो भविष्यति ॥२६
 श्रुत्वैव मघवद्वाक्यं वाचस्पतिरथाब्रवीत् ।
 न कालो विग्रहस्याद्य किं कोपेन शचीपते ॥२७
 न च खेदस्त्वया कार्यः कार्याणां गतिरीदृशी ।
 दैवाद्भ्रून्ति भूतानां संपदो विपदोऽपि वा ॥२८

मैं न तो यहाँ पर ही स्थित रह सकता हूँ और न उनके द्वारा अभिद्रुत हुआ वही अन्य स्थान पर ही जाने में समर्थ हूँ । मैं तब प्रचार से युद्ध करने की ही इच्छा करता हूँ फिर जो भी होनाएँ हैं

वहीहोगा ।२२। नष्ट होते हुए और युद्ध करते हुए अभी तक मैं
 रूँगा तब तक मेरा जीवित शेष रहेगा मैं बराबर युद्ध करता ही
 रूँगा जब तक विधाता इसके माल में लिखे हुए अक्षरों का प्रमार्जन नहीं
 करते हैं ।२३। ह ब्रह्मन् ! आप मुझे विजय होने का आशीर्वाद दीजिए ।
 मैं अपने शत्रुओं के साथ युद्ध करूँगा । एक मुहूर्त मात्र का समय
 जाज्वल्यमान रहे वही कल्याण करने वाला होता है और जो समय
 धूमयित रहे वह अत्यधिक भी अच्छा नहीं हुआ करता है ।२४। उस
 पुरुष का जीवन ही शिवकारने के योग्य है जो आनतायी शत्रुओं के
 अपकार करने में असमर्थ होवे और मैं जीवित रहता हूँ—ऐसा मन में
 समझा करता है ।२५। ऐश्वर्य तो कर्म के ही अधीन हुआ करता है
 और पीत्य मदायत्ता होता है । इस लिए मैं युद्ध करूँगा । निश्चय ही
 मेरा श्रेय होगा ।२६। इस तरह के इन्द्र देव के वाक्य को सुनकर इसके
 उपरान्त बृहस्पतिजी ने उससे कहा था हे शचीपते ! आज तो विग्राह करने
 की काल ही नहीं है । फिर इस कोष का करना भी तुम्हारा ध्येय ही
 है । आपको इस विषय में भेद भी नहीं करना चाहिए क्योंकि कार्यों
 के होने की गति ऐसी ही हुआ करती है । प्राणियों को ससम्पाए और
 विपदाएँ देव के वश से हुआ करती हैं ।२७।२८।

स्वशक्ति परशक्ति च पाद्गुण्यविदुदारधी ।
 देशकालवलोपेताञ्ज्ञात्वा विग्रहमाचरेत् ॥२९॥
 देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।
 क्रियमाणानि दुष्यन्ति हविरप्रयतेष्विव ॥३०॥
 सम्यग्विशातशास्त्रयो राजा विजयसाचरेत् ।
 समाङ्गराज्यत्राण च बुद्ध्वा वाऽरिविनिग्रहम् ॥३१॥
 कुर्यादेवान्यथा नाशमुपयाति शचीपते ।
 विश्वासयति भूतानि न च विश्वसते क्वचित् ॥३२॥
 छिद्रेषु योऽन्विवियाच्छुश्रु च राज्य महदश्रुते ।
 साप्रत वद्धमूयोऽसौ र्तं दैवानवलोकित ॥३३॥

वाला हो गया था । तब तो सब तौक धर्म में हीन म्लेच्छों के द्वारा ही घिरा हुआ सा हो गया था । १८। धर्म की हानि होने से सुरेन्द्र के बल की कमी हो गयी थी । जब दानवों ने इन्द्र को हीन बल वाला समझ लिया था तो सब दानवों ने उस पर आक्रमण कर दिया था । १९। वह देवों का राजा जब असुरों के द्वारा बहुत अधिक अभिभूत हो गया था तो उसने अपना राज्य का सिंहासन ही त्याग दिया था । इन्द्र ने सुर गुरु बृहस्पतिजी के पास जाकर यह वाक्य कहा था— २०। हे भगवद् ! रक्तासुर के द्वारा आज्ञा प्राप्त किये हुए करोड़ों सहस्र दैत्याण सर्वत्र बाधाएं सब ओर से कर रहे हैं और—वे सब मेरे वध के लिए ही तैयार हो रहे हैं—इसमें तनिक भी सशय नहीं है । २१।

न स्थातुमत्र शक्रोमि न गन्तुं तैस्त्वभिद्रुत ।
 सर्वथा योद्धुमिञ्जामि यद्भविष्यति ॥२२
 नश्यतो युध्यतो वाऽपि तावद्भवति जीवितम् ।
 यावत्प्रमाष्टि न विधिभलिऽस्य लिखिताक्षरम् ॥२३
 जयमाशंस मे ब्रह्मन्योत्स्येऽहमरिभिः सह ।
 मूर्हतं ज्वलितं श्रेयो न तु धूमापितं चिरम् ॥२४
 विक्तस्य जीवित पुंस शत्रूणामाततायिनाम् ।
 अपकर्तुमशक्तो यो जीवामीत्यधिगच्छति ॥२५
 कर्मायत्तं किलैश्वर्यं मदायत्तं च पौरुषम् ।
 तस्मायुद्धं करिष्यामि ध्रुव श्रेयो भविष्यति ॥२६
 श्रुत्वैव मघवद्वाक्यं वाचस्पतिरथाब्रवीत् ।
 न कालो विप्रहस्याद्य किं कोपेन शचीपते ॥२७
 न च खेदस्त्वया कार्ग्यः कार्याणा गतिरीदृशी ।
 दैवाद्भद्रन्ति भूतानां संपदो विपदोऽपि वा ॥२८

मैं न तो यहाँ पर ही स्थित रह सकता हूँ और न उनके द्वारा अभिद्रुत हुआ वही अन्य स्थान पर ही जाने में समर्थ हूँ । मैं सब प्रकार से युद्ध करने की ही इच्छा करता हूँ और जो भी लोतार है

बहीहोगा ।२२। नष्ट होते हुए और युद्ध करते हुए जभी तब मैं रहूँगा तब तक मेरा जीवित शेष रहेगा मैं बराबर युद्ध करता ही रहूँगा जब तक विघाता इसके भाल में लिखे हुए अक्षरों का प्रमाञ्जन नहीं करते हैं ।२३। ह ब्रह्मन् ! आप मुझे विजय होने का आशीर्वाद दीजिए । मैं अपने शत्रुओं के साथ युद्ध करूँगा । एक मुहूर्त मात्र का समय जाज्वल्यमान रहे वही कल्याण करने वाला होता है और जो समय धूमामित रहे वह अत्यधिक भी अच्छा नहीं हुआ करता है ।२४। उम पुरुष का जीवन ही प्रिकारने के योग्य है जो आनतायी शत्रुओं के अपकार करने में असमर्थ होवे और मैं जीवित रहता हूँ—ऐसा मन में समझा करता है ।२५। ऐश्वर्य तो कर्म के ही अधीन हुआ करता है और पौष्ट्य मदायता होता है । इस लिए मैं युद्ध करूँगा । निश्चय ही मेरा श्रेय होगा ।२६। इस तरह के इन्द्र देव के वाक्य को सुनकर इसके उपरान्त बृहस्पतिजी ने उससे कहा था हे शचीपते ! आज तो विग्राह करने की काल ही नहीं है । फिर इस कोप का करना भी तुम्हारा व्यर्थ ही है । आपको इस विषय में खेद भी नहीं करना चाहिए क्योंकि कार्यों के होने की गति ऐसी ही हुआ करती है । प्राणियों को ससम्पाए और विपदाएँ देव के वध से हुआ करती हैं ।२७।२८।

स्वशक्ति परशक्ति च पाङ्गुण्यविदुदारधी ।

देशकालवलोपेताञ्जात्वा विग्रहमाचरेत् ॥२९॥

देशकालबिहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।

क्रियमाणानि दुप्यन्ति हविरप्रयतेष्विव ॥३०॥

सम्यग्विज्ञातशास्त्रयो राजा विजयसाचरेत् ।

सप्ताङ्गराज्यत्राण च बुद्ध्वा वाऽरिविनिग्रहम् ॥३१॥

कुर्यादेवान्यथा नाशमुपयाति शचीपते ।

विश्वासयति भूतानि न च विद्वसते क्वचित् ॥३२॥

छिद्रेषु योऽन्विवियाच्छुश्रु च राज्य महदश्रुते ।

साप्रत बद्धमूयोऽसौ तत देवानवलोकित ॥३३॥

अतो युद्धावकाश ते न पश्यामि शतक्रतो ।
 मत्सहायाश्च ये शूराः शक्तिमन्तो निरस्तुका ॥३४॥
 दुष्पर्षानपि ते शत्रूञ्जयन्त्येव सदा नृपा ।
 पुरोधसैवमुक्तस्तु पुनराह पुरदर ॥३५॥

पाङ्गुण्य को जानने वाला उदार बुद्धि से युक्त पुरुष अपनी शक्ति और पराधी शक्ति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके ही देश—काल और बल से उपेतो को समझकर ही युद्ध करे ॥३४॥ देश और काल से विहीन कर्मों को विपरीत के समान किये हुए कर्म अप्रयत्नों में दबिके ही तुल्य दूषित हो जाया करते हैं ॥३५॥ जो भली भाँति शस्त्रार्थों को ज्ञात कर लेता है वही राजा विजय प्राप्त किया करता है । अथवा साल राज्य के प्राण करने वाले अङ्गों को समझकर शत्रुओं के साथ विग्रह करे ॥३६॥ हे क्षत्रीपते ! जो इसके विपरीत युद्ध किया करके हैं वे नाश को प्राप्त हो जाया करते हैं । भूतो को विश्वास दिलाता है किन्तु स्वयं कहीं पर भी विश्वास नहीं किया करता है ॥३७॥ जो छिद्रों में शत्रु का अनुगमन किया करता है वही महान राज्य की प्राप्ति किया करता है । इस समय में यह बद्ध मून है और आप देव के द्वारा अवलोकित नहीं हो रहे हैं अर्थात् भाग्य आपके अनुभूत नहीं है । हे शतक्रतो ! अतएव इसीलिए मैं आपके युद्ध का अवसर नहीं समझता हूँ । मेरे सहायक जो धूर हैं वे शक्तिमान हैं किन्तु उत्सुकता से रहित हैं । नृप सदा तुम्हारे दुष्पर्ष शत्रुओं को भी जीत ही लेते हैं । इस प्रकार से पुरोहित जी के द्वारा कहे जाने पर फिर—इन्द्र ने कहा—॥३३॥३४॥३५॥

अभिभूतो भृश दैत्यैर्नाह जीवितुमुत्सहे ।
 शत्रुभिर्वर्तमानस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य च ॥३६॥
 व्याधितस्य दरिद्रस्य श्रेयो मृत्युर्न जीवितम् ।
 किमत्र बहूनीक्तेन योऽस्येह दानवैः सह ॥३७॥
 नृणां कर्मसमारम्भे श्रेयसी ह्येकचित्तता ।
 गुणदोषाबुभावेतावेसीवृत्त्य विचक्षण ॥३८॥

कार्यमारभते यस्तु तस्य दोषाः पराङ्मुखा ।
यावद्भयस्य भेतव्य यावद्भयमनागतम् ॥३॥
आगत तु भय दृष्ट्वा योद्धव्य वाऽप्यभीरुवत् ।
मृतस्य जीवतो वाऽपि नरस्येह प्रयुध्यतः ॥४०॥
श्रेय एव महर्षि. स्यात्तस्माद्योत्स्याम्यह परैः ।
तयो. सवदतोरेव ब्रह्माऽऽगत्येदमब्रवीत् ॥४१॥
मा वपाद कृथा शक्र शरणं व्रज पार्वतीम् ।
या जघ्ने महिष दैत्य रुद्र चित्रासुर तथा ॥४२॥

दैत्यो के द्वारा अभिभूत हुआ मे जो बहुत ही अधिक तिरस्कृत हो चुका हूँ । ऐसी स्थिति मे मैं जीवित रहना नहीं चाहता हूँ । जो शत्रुओं के द्वारा घिरा हुआ वर्तमान हो—मूर्ख हो और स्त्री के द्वारा जिन हो—व्याधि से युक्त हो—दरिद्र हो उमका श्रेय कभी नहीं हुआ करता है और उमकी मृत्यु ही है जीवन नहीं है । यहा पर बहुत अधिक कथन से क्या लाभ है । मैं तो दानवों के साथ अवश्य ही युद्ध करूंगा ॥३६॥३७॥ मनुष्यों के कर्मों के समारम्भ मे एकचित्त का होना ही कल्याणकारी होता है । विचक्षण पुष्प को गुणों और दोषों दोनों को एकीकृत करके ही कार्यों का आरम्भ करना चाहिए ॥३८॥ जो इस रीति से कार्य का आरम्भ किया करता है उसके सब दोष पण्डुमुख हो जाया करते हैं । भय से तभी तब डरना चाहिए जब तक नहीं आया है । आये हुए भय को देखकर तो अभीरुवी भाँति ही अर्थात् दूरता से युद्ध करना चाहिए । मृत अथवा जीवित मनुष्य का जो युद्ध कर रहा हो श्रेय ही महान् ऋद्धि है । इसीलिये मैं शत्रुओं से युद्ध अवश्य ही करूंगा । वे दोनों जब इस प्रकार से सम्वाद कर रहे थे तो वहा पर ब्रह्माजी ने उपस्थित होकर यह कहा था ॥३६॥३७॥३८॥३९॥४०॥४१॥ हे इन्द्र ! विपाद मत करो और तुम जगदम्बा पार्वतीजी की शरण मे चले जाओ जो देवी ने महिषासुर को रुद्र और चित्रासुर दैत्य को मार चुकी है ॥४२॥

सद्यो रक्तासुरं हत्वा स्व राज्यं ते प्रदास्यति ।
 एवमुक्त्वा हरिं ब्रह्मा त्रैवान्तरधीयत ॥४३॥
 शक्रोऽपि त्रिदशैः सार्धं जगाम हिमवान्दिरिम् ।
 स तत्र गन्वा शर्वाणी निभयौ विगतज्वरः ॥४४॥
 स्तोत्रेणानेन तुष्टाव शिवा शकरवल्लभाम् ।
 जयाक्षरे जयानन्ते जयाव्यक्ते निरामये ॥४५॥
 जय देवि महामाये जय त्रिदशवन्दिते ।
 जय भद्रे विदेहस्ये जयाऽऽद्ये त्रिगुणात्मिके ॥४६॥
 जय विश्वभरे गङ्गे जय सर्वार्थसिद्धिदे ।
 जय ब्रह्माणि कौमारि जय नारायणीश्वरि ॥४७॥
 जय वाराहि चामुण्डे जयेन्द्राणि महेश्वरि ।
 जय मातमंशुलाक्षि जय पावति सर्वमे ॥४८॥
 जय देवि जगज्ज्येष्ठे जयैरावति भारति ।
 मृगावति जयानन्ते तेजोवति जयामले ॥४९॥

यह जगदम्बा तुरन्त ही रक्तासुर को मार कर तुमको तुम्हारा
 राज्य प्रदान कर देगी । इस रीति से ब्रह्माजी इन्द्र से कहकर वहाँ पर
 ही अग्रहित हो गये थे ॥४३॥ इन्द्र देव भी अन्य सब देवों के साथ
 हिमवान् गिरि पर चले गये । उसने वहाँ पहुँचकर शर्वाणी की सन्निधि
 में निश्चर और विगतज्वर वाला होकर इस निम्न कथित श्लोक के द्वारा
 शङ्कर भगवान् की वल्लभा शिवा का स्तवन किया था । इन्द्र देव ने
 कहा—हे जयाक्षरे ! हे जय अनन्त वाली ! हे जया व्यक्ते ! हे आभयो
 से रहित रहने वाली ! हे महामाये ! हे देवि हे देवो के द्वारा वन्द्यमान
 होने वाली ! आपकी जय हो । हे भद्रे ! हे विदेह में स्थित रहने वाली
 आपकी जय होवे । हे आद्ये ! हे त्रिगुणात्मके ! आपकी जय हो ॥४५॥
 ॥४६॥ ॥४६॥ हे विश्वभरे ! हे गङ्गे ! आपकी जय हो । हे समस्त
 अर्थों की सिद्धि के प्रदाता करने वाली ! आपकी जय हो । हे ब्रह्माणि !
 रहे ! शौम ! हेनिरावतीश्वरि ! आता जय हो ॥४७॥ हे वाराहि !

हे चामुण्डे ! हे इन्द्राणि ! हे महेश्वरि ! आपकी जय होवे । हे माता महालक्ष्मि ! हे पार्वीत ! हे सर्वत्र सब में गमन करने वाली ! आपकी जय हो ॥४८॥ हे देवि ! हे जगत् मे सबसे श्रेष्ठे ! हे ऐरावति ! हे भारति ! हे अनन्ते ! हे तेजो वति ! हे प्रपले ! आपकी जय हो ॥४९॥

जयेशानि शिपे सवे जय नित्य जयाचिते ।
 मोक्षदे जय सर्वज्ञे जय धर्मार्थकामदे ॥५०॥
 जय गायत्रि कल्याणि जय सन्ध्ये विभावरि ।
 जय दुर्गे महाकालि शिवदूति जयाजये ॥५१॥
 जय दण्डमहामुण्डे जय नन्दे शिवप्रिये ।
 जय क्षेमकरि शिवे जय भ्रामणि रेवति ॥५२॥
 जयोमे साध्वि मङ्गल्ये हरसिद्धे नमोऽस्तु ते ।
 जयाऽऽनन्दे महावर्णे महिषासुरघातिनि ॥५३॥
 जयानघे विशालाक्षि जयानङ्गे सरस्वति ।
 जयाशेषगुणावासे जय वृत्रासुरान्तके ॥५४॥
 जय योगेशि सकल्पे जय त्रैलोक्यसुन्दरि ।
 जय शम्भनिशुम्भघ्ने जय पद्मेन्दुसभवे ॥५५॥
 जय कौशिकि कौमारि जय वारुणि कामधे ।
 नमो नमस्ते शर्वाणि भूयो भूयो जयाम्बिके ॥५६॥

हे इशानि ! हे शिवे ! हे सर्वे ! हे नित्ये ! हे अचिते ! आपकी जय हो । हे मोक्ष के प्रदान करने वाली ! हे सब कुछ का ज्ञान रखने वाली ! हे धर्म अर्थ और काम को देने वाली ! आपकी जय हो ॥५०॥ हे गायत्रि ! हे कल्याणि ! हे सन्ध्ये ! हे विभावरि ! आपकी जय होवे ! हे दुर्गे ! हे महा कालि ! हे शिव दूति ! हे अजये जय हो ॥५१॥ हे दण्ड महा मुण्डे ! हे नन्दे ! हे शिव प्रिये ! हे क्षेमके करने वाली ! हे शिवे ! हे भ्रामणि ! हे रेवति ! आपकी जय हो । हे उमे ! हे साध्वि !

हे मङ्गल्ये ! हे हरसिद्धे ! आपके लिये हमारा नमस्कार है । हे आनन्दे !
 हे महावर्णे ! हे महिषासुर को मारने वाली ! हे अनघे ! हे विशालाक्षि !
 हे अनङ्गे ! हे सरस्वती ! हे मरुत गुणों के आवास रूपे ! हे वृत्रासुर
 के अन्तकर देने वाली ! आपकी जय होवे ॥५२॥५३॥५४॥ हे योगेशि !
 हे सङ्कल्ये ! हे त्रैलोक्य सुन्दरि ! आपकी जय हो । हे शुम्भ और निशुम्भ
 का दमन करने वाली ! हे पद्मेन्दु से उत्पन्न होने वाली ! आपकी जय
 होवे । हे कौशिकि ! हे कौमारि ! हे वारुणि ! हे कामदे ! हे शर्वाणि !
 हे अम्बिके ! आपको बारम्बार नमस्कार समर्पित है । आपकी जय हो
 ॥५५॥५६॥

त्राहि नस्त्राहि नो देवि शरणागतवत्सले ।
 य इमा कीर्तयिष्यन्ति जयमाला भवानि ते ॥५७॥
 त्रिविधैरपि दुःखीर्षमुच्यन्ते परमेश्वरि ।
 सर्वपापविनिर्मुक्ताः सर्वैश्वर्यसमन्विताः ॥५८॥
 भान्ति लोके तथाऽऽदित्याः सर्वरोगविवर्जिताः ।
 देहावसाने तेऽवश्यं पश्यन्त्येव हि पार्वतीम् ॥५९॥
 नेन्द्रियाणा विकलता यथाऽऽप्येषां भवेन्नृणाम् ।
 देवीलोक गमिष्यन्ति स्कन्दलोकोपरिस्थितम् ॥६०॥
 पुनरावृत्तिरहित रतोन्नजाप्यान्न संशयः ।
 सर्वं स्तुता भगवती महेन्द्रेणाय पार्वती ।
 आत्मान दर्शयामास सर्वालंकरणान्वितम् ॥६१॥
 नमस्कृत्याथ तामूचुः मुरास्ते भयनाशिनीम् ।
 हत्वा रक्तासुर दैत्य पाहि नो महतो भयात् ॥६२॥
 तेषा तद्वचनं श्रुत्वा दत्त्वा तेभ्योऽभय ततः ।
 वभूवाद्भूतरूपा सा त्रिनेत्रा चन्द्रशेखरा ॥६३॥

हे देवि ! हे शरण में समागतों पर प्यार करने वाली ! हमारा
 परित्राण करो—हमारी रक्षा करो । हे भवानि ! जो कोई भी आपकी
 जयमाला का पीर्जन करेगा हे परमेश्वरि ! वे तीनों प्रकार के दुःखों के

समुदायों से मुक्त हो जाया करते हैं । वे कीर्तन करने वाले लोग सभी पापों में निर्मुक्त होते हुए सब तरह के ऐश्वर्य से समान्वित हो जाते हैं । १७।१८। वे आदित्य होकर लोक में जाया करते हैं और सभी रोगों में वर्जित हो जाया करते हैं । देह के ममाप्त हो जाने पर वे अवश्य ही पार्वतीदेवी का दर्शन प्राप्त किया करते हैं । १९। अन्य नरों की जैसी हुआ करती है वैसी इनको इन्द्रियों की विकसता कभी नहीं होनी है । वे सब स्नान के लोफ में ऊपर में स्थित देवी लोक को चले जाया करते हैं । इस स्तोत्र के जाप से पुनरावृत्ति से अर्थात् सप्तार में फिर दूसरा जन्म ग्रहण करने से रहित हो जाया करते हैं—इस विषय में कृष्ण भी मग्य नहीं है । ६०। श्रीमूनजी ने कहा—महेन्द्र के द्वारा इस तरह से स्तुत हुई भगवती पार्वती ने अपने आपका दर्शन दिया था जो कि उनका स्वरूप नमी आभूषणों से ममवद्ध न था । ६१। पार्वतीदेवी को नमस्कार करके इनके उपरान्त मुरा न उस भय नागिनी देवी से प्रार्थना की थी कि रक्तासुर दैत्य का हनन करके महात् भय से हमारा परित्राण करिए । ६२। उन देवों के भय से युक्त उन वचनों का श्रवण करके इनके उपरान्त उन सबको अमय वचन देकर वह तीन नेत्रों ताली मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करती हुई अद्भुत स्वरूप वाली हो गयी थी । ६३।

मिहास्तु महादेवी नानागस्त्रास्त्रधारिणी ।

सुवक्त्रा धिगतिभुजा स्पृजं द्विद्युल्लतोपमा ॥६४॥

ततोऽम्बिका ननादीच्चे माट्टहाम मुहुमुहु ।

तस्या नादेन घोरेण वृत्स्ममापूरित जगत् ॥६५॥

प्रवम्पिनाऽपिया चोर्वी तदा वारिधिमेगला ।

शैतोत्तुन्नस्तनी रम्या प्रमदेव भयानुगा ॥६६॥

तेऽपि तत्रामुरा प्रासाश्वतुरन्नवतोन्वटा ।

गम्यन्विदितवृत्तान्ना पालान्तरायमोपमा ॥६७॥

रक्षोदानवदंत्याश्च पातालैष्वपि ये स्थिताः ।

ते सर्वे एव दैत्येन्द्रं कोटिशस्तमुपागताः ॥६८॥

देवारयस्तदा सर्वे सनद्धाश्चोच्छ्रितध्वजाः ।

पालिता दानवेन्द्रेण नानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥६९॥

तमालालिकुलाभासा जीभूतध्वनिनि स्वनाः ।

युगान्तमिव कुर्वाणा नानालङ्कारभूयिताः ॥७०॥

मिह पर समाख्या हुई अनेक प्रकार के शस्त्रों और अस्त्रों को धारण करने वाली—सुन्दर मुख से सम्पन्न—बीस गुजाओं से युक्त महादेवी चमचमाती हुई विजली की लता के ही समान थी । ६४। इसके अनन्तर अम्बिकादेवी अट्टहास के साथ बारम्बार बहून ही ऊँचे स्वर में नाद करने लगी थी । उनके उस महान् धोर नाद से सम्पूर्ण जगत् ध्वनित होकर मर गया था । ६५। उस समय में समस्त पृथ्वी कम्पित हो गई थी जिसके चारों ओर समुद्र की गेखला थी । सैल ही है उत्तुङ्ग (ऊँचे) स्तन जिसके ऐसी परम सुरम्य भय से आतुर प्रमदा के ही समान वह उर्वी बम्पायमान्त हो रही थी । वे असुर भी वहाँ पर प्राप्त हो गए थे जिनके पास चतुरङ्गिणी सेना थी और इस सेना के बल से वे बहुत ही उत्कट हो रहे थे । भलीभाँति जिनको सब वृत्तान्त विदित था और जो कालान्तक यम के समान भीषण थे । ६९। ६७। राक्षस-दानव और दैत्य जो नीचे वाले पाताल लोक में भी स्थित थे वे सबके सब करोड़ों की संख्या उस दैत्येन्द्र की सहायता करने के लिए उसके समीप में समागत हो गये थे । ६८। देवों के शत्रु उस समय में सब अपनी ध्वजाएँ ऊँची करके सन्नद्ध हो गये थे । जो कि दानवेन्द्र के द्वारा पालित थे और अनेक शास्त्रास्त्रों को हाथों में धारण किये हुए थे । ६९। तमाल वृक्ष की पत्ति तथा भौरो के समुदाय के समान एकदम कृष्णवान्ति वाले और महामेघों के समान ध्वनि करने वाले थे । वे सब अनेक अलङ्कारों से भूयित हुए युग के अन्त जैसा करने के लिये प्रस्तुत हो रहे थे । ७०।

गजघण्टारवौञ्चोर्ग्रं ह्यनामय हेपितः ।
 गिहनादँश्च दूराणां शस्त्राणां वनणितेन च ॥७१॥
 रयनेमिनिनादँश्च कम्पयन्तो वमुधराम् ।
 ततस्ते दानवाः सर्वे देवो हृष्टा प्रहृषिताः ॥७२॥
 आम्फोटयन्तः पटहान्भेरीजर्जरिणीमुखान् ।
 अनेकान्वादयन्तोऽप्ये दारुडमरुटिण्डमान् ॥७३॥
 मनोजयैर्ह्यैर्गंजैश्चाचलननिभैः ।
 अत्यैविचित्रैरान्ढा विरेजुदँत्यपुंगवाः ॥७४॥
 एवविधे समाजे ता भवानी त्रिदशारयः ।
 सर्वा एव समाजघ्नुः शर्वाणी सर्वतोमुखीम् ॥७५॥
 वाणैर्नानाविधैर्घोरैर्यमदण्डोपमैः शितैः ।
 कुठारचक्रारणुमुसलाङ्कुशनाङ्गलैः ॥७६॥
 पाशतोमरशूलैश्च दण्डपट्टिशमुद्गरैः ।
 परिघप्रासशकटवृष्टिशतघ्नीकण(पाद)पोपलैः ॥७७॥

हाथियों के वण्ड में बंधे हुए घण्टाआ के महान् उग्र घनघनाहट से तथा अश्वों के हिनहिनाहट से और दूरों के सिंह के समान गर्जन की ध्वनि से एव शस्त्रों की सनसनाहट से—रथों की नेमियों के शब्दों से वे सब दैत्य दानव भूमि को प्रकम्पित कर रहे थे । इसके पश्चात् वे सब दानव समक्ष में देवी को देखकर अत्याधिक प्रहृषित हो गये थे । ७१। ७२। वे सब दैत्य पटहों को पीट रहे थे—कुछ भेरी और जर्जरिणी के मुखों पर डह्कू की चोट मार रहे थे । अन्य लोग शङ्ख—डमरू और डिण्डल आदि अनेकों वाद्यों को बजा रहे थे । ७३। वे सब दैत्य श्रेष्ठ बहुत उत्तम मन के समान वेग वाले अश्वों के ऊपर तथा पर्वतों के समान गजों पर एव अन्य चित्र-विचित्र वाहनो पर समारूढ हुए उस समय में शोभित ही रहे थे । ७४। इस प्रकार के दैत्यों के समाज में वे देवों के शत्रुगण उस भवानी शर्वाणी और सर्वतो मुखी के ऊपर एक साथ सबके सब शस्त्रास्त्रों के प्रहार करने के लिये द्रुट पडे थे । ७५।

उन दैत्यों के पास प्रहार करते के लिये अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र थे जो नाना प्रकार के वर्णों वाले महान् घोर और मनराज के दण्ड के समानसित थे । कुठार-चक्र-परशु-मुसल-अंकुश-लाङ्गल-पाश-तोमर-शूल-दण्ड-पट्टिश-मुद्गर-परिध-प्रास-शक्ति-ऋषि-शतघ्नी-तथा पांपल आदि अनेक शस्त्रास्त्रों से दैत्य आक्रमण कर रहे थे ॥७५॥७६॥७७॥

आयो गुडंभृं शुण्डीभिश्चक्रकुन्तगदादिभिः ।
 छादयन्तो महादेवी सिंहनादान्विनेदिरे ॥७८॥
 सा हन्यमाना रापेण जज्वाल समरेऽम्बिका ।
 अग्रस्तसाऽथ शर्वाणी शस्त्रास्त्राणि सुरद्विषाम् ॥७९॥
 शैलेन्द्रतनया देवी स्तूयमाना सुरपिभिः ।
 युयुधे दानवीः साधं महासमरदुदिने ॥८०॥
 ते हन्यमाना. पार्वत्या तामेवाभिप्रदुदुषु ।
 परिपूर्णै यथा काले शलभा जातवेदसम् ॥८१॥
 सैका प्रद्रवता तेषा बहूनामाततापिनाम् ।
 दधार वेग सर्वेषा मरुतामिव पर्वतः ॥८२॥
 पार्वतीशस्त्रनिर्मिन्ना दैत्यास्ते क्षतजेक्षणा ।
 आलिङ्ग्य शेरते क्षोणी रते कान्तामिव प्रियाम् ॥८३॥
 मण्डलीकृतकोदण्डा ददृशुश्चाम्बिका तदा ।
 मृत्युजिह्वोदिताकारा प्राणकर्पणतत्पराम् ॥८४॥

आयो गुड-भृगुण्डी-चक्र-कुन्ता और गदा आदि के द्वारा महादेवी को छादित करते हुए उन दैत्य-दानवों ने सिंहनाद किये थे ॥७८॥ उस समर में वह देवी जब दैत्यों के द्वारा हन्यमान हुई तो वह रोप से अम्बिका जल उठी थी । और उस शर्वाणी ने गुरद्वेषियों के सब शस्त्रास्त्रों को ग्रहित कर लिया था ॥७९॥ उस महासमर के दुदिन में शैलेन्द्र की तनया देवी सुर और ऋषियों के द्वारा स्तूयमान होती हुई दानवों के साथ युद्ध किया था ॥८०॥ वे सब पार्वती के द्वारा हन्य-

मान होते हुए उसी देवी पर अभिद्रुत हुए थे । जिस तरह मे काल के परिपूर्ण होने पर शलभ (पतङ्ग) अग्नि में जाकर एक साथ गिरा करते हैं । वह एक ही थीं और उन पर आक्रमणकारी वे सभी थे तो उन समस्त प्रद्रुत हुए बहुत से आतातापियों का वेग मर्त्तो का वेग पर्वत के ही समान देवी न धारण कर लिया था । १८१।१८२। पार्वतीदेवी के हास्य से छिन्न-भिन्न हुए सब के दैत्य क्षतजेषण हो गये थे और रति में प्रियवान्ता की तरह मे भूमि का आलिङ्गन करके सो रहे थे । १८३। मण्डली वृत्त कोदण्ड वाली अम्बिका को उस समय मे उन्होंने देगा था जो कि मृत्यु की जिह्वा के समान ही समुदित आजार वाली थी और प्राणा के अपकर्षण करने के कर्म परायण हो रही थी ॥८४॥

जध्नुस्ते कोटिशो दैत्या पावती समाराङ्गणे ।
 हु कारेण निनादेन पातयन्ती सहस्रश ॥८५
 प्रचिच्छेद रणोऽरीणा शिरसि निशतै शरै ।
 देवीकामुं कनिमुं कर्तैदिव्यैर्नानाविधै शरै ॥८६
 दह्यन्तेऽसुरसैन्यानि तृणानीव दवाग्निना ।
 सिंहवेगानिलोद्धृताश्र्चर्णयन्ती महारथान् ॥८७
 चवर्षं शरवर्षाणि युगान्ताम्बुदसनिभान् ।
 गजवाजिरथाना च द्रवता पतता तथा ॥८८
 दैत्येन्द्राणा च भारेण श्वसतीव वसु धरा ।
 समृत्थित रजो घोर सस्पृश्याकैन्दुमण्डलम् ॥८९
 गजाश्वदैत्यरत्तीर्षं प्रशान्तिमगमत्तत ।
 प्रावर्तत नदी तत्र शोणितोदतरङ्गिणी ॥९०
 हयमत्स्या गजग्राहा चर्मैर्मास्थिसकुला ।
 महारथमहावर्ता पताकाद्यत्रफेनिला ॥९१

उस समाराङ्गण मे उन करोडो दैत्यो ने मिलकर पार्वती देवी पर हनन करने के लिये प्रहार किये थे किन्तु पार्वती देवी ने अपने

हुकार के निनाद से ही सहस्रो भूमि पर गिराती हुई रणभूमि में शत्रुभो मस्तकों को अपने पैने पञ्जों से काट कर फेंक दिया था । देवी के धनुष से निकले हुए दिव्य नाना प्रकार के शरों के द्वारा दवाग्नि के द्वारा तृणों के समान ही अशुरों की सेनाएँ दग्ध होगयी थीं । तिह के वेग से उत्थित वायु के शोको से बड़े-बड़े महारथों को चूर्ण कर रही थी ॥८५-८७॥ युगान्त में होने वाले मेघों के समान ही शरों की वर्षा की थी । गज-अश्व और रथों के द्रविण एव पतित होने वालों के-देव्येन्द्रों के भार से भूमि साँसें सी ले रही थी । उप युद्ध क्षेत्र में महान् घोर रज उडकर छा गयी थी जो सूर्य और चन्द्र मण्डल तक व्याप्त होगई थी ॥८८॥८९॥ वह उड़ी हुई धूल हाथी घोड़े और दैत्यों के रुधिर के प्रचल बहाव से प्रशान्त हुई थी और वहाँ पर क्षोणित रूपी जल की एक नदी बहने लग गयी थी ॥९०॥ उसमें जो घोड़े बह रहे थे वे ही मत्स्य के समान दिखाई देते थे और हाथी ग्राह जैसे प्रवाहित हो रहे थे तथा चर्म कूर्म जैसे थे । इस तरह से वह अस्थियों से सकुल हो रही थी । बड़े-बड़े रथ ही उस नदी में महान् आवत्त जैसे दिखनाई पड रहे थे एव पताकाएँ और छत्र जो उसमें बहे चने जा रहे थे वे ही मानो फेन जैसे थे जिससे वह नदी फेनिल हो रही थी ॥९१॥

बहन्ती यमलोकान्त दैत्यासुरतटद्रुमान् ।

तद्वल च वभौ शीघ्र शस्त्रास्त्रक्षतकधरम् ॥९२

गलद्रुधिरफेनौघ घूर्णितार्णवसनिभम् ।

बध्यमान स्वक सैन्य दृष्ट्वा देव्याश्च विक्रमम् ॥९३

रक्तासुरोऽभ्युवाचेद सैनिकाञ्जातविस्मय ।

हन्यता हन्यता शीघ्र भवानीकालसनिभा ॥९४

परिवृत्य रथैर्नागैर्हयैश्चैव पदातिभिः ।

दानवेश्वरवाक्येण ततस्ते तस्य सैनिका ॥९५

त्यक्त्वाऽऽत्मान महारमानो देवीमापुर्बलान्विता ।

पूग्नाक्षप्रमुखा धीरा षोडशैव महारथा ॥९६

शरशक्तिगदाशूलैस्ताडयन्तोऽम्बिकां रणे ।

श्वसन्त इव नागेन्द्राः प्रज्वलन्त इवाग्नयः ॥६७

जम्भन्त इव शार्दूल गर्जन्त इव तोयदाः ।

युयुधुरते स्थिरीभूता विविधायुधयोधिनः ॥६८

दैत्य और असुर रूपी तट के ऊपर रहने वाले द्रुम जैसे थे जिनको यह रुधिर नदी यमलोक के अन्न तक ही बहाकर पहुँचा रही थी । उस समय में उस दैत्येन्द्र की सेना शीघ्र ही शस्त्रास्त्रों के द्वारा कटी हुई कन्धराओं वाली होकर एक विचित्र ही शोभा से युक्त हो गयी थी ॥६२॥ बहते हुए रुधिर के फेनो के समुदाय वाली और घूर्णित अर्थात् के सदृश वक्ष्यमान होती हुई अपनी सेना को देखकर और जगदम्बा देवी के महान् विक्रम को देखकर विस्मित होकर रक्तासुर अपने सैनिकों से यह बोला—अरे ! आप सब मिलकर इस काल के सदृश भवानी का हनन शीघ्र कर डालो ॥६३॥६४॥ इसके अनन्तर दामवेश्वर के इम वचन से उसके सब सैनिक रथ-गज-अश्व और पैदल वीरों के साथ चापिम लौट पड़े और अपने आपने जीवन की आशा छोड़कर सब महारथा वल से समन्वित होकर देवी पर आक्रमण करने लगे थे । घुम्राक्ष जिनमें प्रधान था ऐसे उस सेना में परमवीर सोलह ही महारथ थे । उन्होंने रणक्षेत्र में देवी पर शर-शक्ति-गदा और शूलों के द्वारा ताडन कर रहे थे । बड़े-बड़े नागेन्द्र अन्तिम भाँस लेते हुए जलती हुई अग्नियों के समान थे । बड़े-बड़े शार्दूल सिंहनाद करते हुए गर्जन करने वाले भेषों के सदृश दिखाई दे रहे थे । वे अनेक प्रकार के धायुधों से युद्ध करने वाले स्थिरीभूत होकर युद्ध कर रहे थे ॥६५-६८॥

नृत्यन्तीव च रुद्राणी नून भाति महाहवे ।

पावती चण्डकोदण्डनादापूरितदिङ्मुखी ॥६९

पट्टिशाभिहतान्काश्चिन्मुसलोन्मयितारतथा ।

सारोहान्नातयामास गजानश्वाच कीटिशः ॥१००

कालपाशशिरश्छित्त्वा साधं चन्द्रेण भासुरम् ।

गदया प्रभमाथाऽऽशु देवान्तकमहाहनुम् ॥१०१

ब्रह्मघ्नस्यासिना कापात्पातप्रामाग्य चाम्बिका ।

धूम्राक्ष कालदण्डेन वज्रेण क्रूरमेव च । १०२

यज्ञद्रष्ट यज्ञकोप विधमं च चतुपतिम् ।

रोद्रानन्यास्त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥१०३

सशङ्कुकर्णदुर्भिक्षविद्युन्मालिविभावसून् ।

दुर्वारपीरुपाश्चके चक्रेणोत्कृत्तमस्तकान् ॥१०४

रक्तासुरानुजौ चोभौ महाबलपराक्रमौ ।

कूष्माण्डशुभकाक्षौ तु जघनतुर्गुणानामभि ॥१०५

उम महा सग्राम मे रुद्राणी नृत्य सा करती हृई शोभित हो रही थी । पार्वती देवी ने अपने प्रचण्ड घनुप के निनाद से सब दिशाशा के मुखो को आपूरित कर दिया था ॥१६॥ देवी ने कुल्ल को पट्टिश के द्वारा निहत किया था तथा कुछ सैनिकों को मुसल से मार गिराया था । बहुत से सैनिकों को उनके बाहनों के ही सहित भूमि पर गिरा दिया था । ऐसे करोड़ो ही गजों और अश्वों को भूमिनाथी कर दिया था ॥१००॥ साधं चन्द्र के द्वारा कालपाश के शिर का छेदन कर दिया था और भासुर को-देवान्तक-महाहनु को गदा से बहुत ही घीघ्र प्रमाथित कर दिया था ॥१०१॥ उस अम्बिका ने ब्रह्मघ्न का शिर खड्ग के द्वारा शरीर से अलग कर गिरा दिया था कालदण्ड से धूम्राक्ष को और वज्र के द्वारा क्रूर को तथा यज्ञद्रष्ट यज्ञकोप-विधमं और चतुपति को और दूसरे रोद्रों को विशूल के द्वारा परमेश्वरी ने हनन कर दिया था । ॥१०२॥१०३॥ शङ्कु-कर्ण दुर्भिक्ष विद्युन्माली-विभावसु के मस्तकों को चक्र के द्वारा काटकर दुर्वार पीरुप वाले बना दिये थे ॥१०४॥ रक्तासुर के दो अनुज थे जो महाबल और पराक्रम वाले थे । उन कूष्माण्ड शुभकाक्षों को मुसल और पाषाणों के द्वारा मार गिराया था ॥१०५

महाबली महाकायी घोरी तत्र महासुरी ।
 दारै राशीविपाकारैर्जघानाथ तदा द्विजा ॥१०६॥
 तत स्त्रीघ्नोऽभ्यधावत्ता दृष्ट्वा ती त्रिनिपातितौ ।
 तमन्यपातयद्भूमौ खड्गेनाभिहत रपा ॥१०७॥
 घण्टकश्चाथ दैत्येन्द्रो गिरीन्द्र सदृशो वली ।
 परिधेणाऽऽयसेनाऽऽजी देवी क्रुद्रोऽभ्यताडयत् ॥१०८॥
 तत सपरिघश्चासौ देव्या करतलापतः ।
 स पपात तदा भूमौ वज्राहत इवाचल ॥१०९॥
 प्रापश्चि हो महाबाहुश्चक्रीकृतशरासनः ।
 शवत्या दग्धतनुत्राणो जगामान्तकमन्दिरम् ॥११०॥
 अष्टादशैव दुर्धर्पात्रिहत्यासुरसैनिकान् ।
 सानन्दा विननादीन्च सवर्तकघनोपमा ॥१११॥
 जघान दानवानीकमेकाऽनेकस्वरूपिणी ।

विद्युत्सपातनिह्लादा विद्युत्सपातश्चला ॥११२॥

महान् बल वाले और महान् शरीरी वाले वहाँ पर अति घोर महा-
 सुर दो थे । हे द्विजो ! उसी समय में सर्पों के समान आकार वाले
 घाणों के द्वारा उनका हनन किया था ॥१०६॥ उन दोनों को विधि
 पतित हुए देखकर स्त्रीघ्न नाम वाला दैत्य उस अम्बिका के ऊपर
 आक्रामक हुआ था । उसको भी देवी ने क्रोध से तल्ल के द्वारा मारकर
 भूमि पर गिरा दिया था ॥१०७॥ घण्टक नामक दैत्येन्द्र बहुत बलवान्
 गिरीन्द्र के सदृश था । उस युद्ध भूमि में लोहे के परिधि
 से उसको भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर मार गिराया था ॥१०८॥
 इसके पश्चात् परिघ के सहित इनकी देवी ने करतल से आहत
 कर दिया था और वह भूमि पर यज्ञ से आहा पर्वत के गमान
 गिर गया था ॥१०९॥ महान् बाहुओं वाला एक प्राश्चिक दैत्य
 था जिसने अपने घुणु के चक्र के समान कर रपना था । वह भी शक्ति
 के द्वारा दग्ध शरीर वाला होकर यमपुरी को गमन कर गया था ॥११०॥
 एक तरह से अष्टादश बहुत ही दुर्धर्द अगुर सैनिकों को मारकर वह

अम्बिका देवी आनन्द के साथ प्रलयकाल में होने वाले सम्पूर्ण मेघ के समान बहुत ही ऊँचे स्वर से नाद करने वाली हो गयी थी ॥१११॥ इस एक ही देवी ने जो अनेको रूपों वाली थी दानवों की सेना का हनन कर दिया था । वह देवी विद्युत् के सपत्न के ही समान निह्लाद वाली थी और बिजली के सम्पात के ही तुल्य चञ्चला थी ॥११२॥

पातयन्ती चचाराऽऽजौ साऽमुरेन्द्रमहाचमूम् ।

तत्तातुलश्च तुमुलो नादो वाद्येषु शत्रुषु ॥११३

बभूव येन ब्रह्माण्डमकाण्डाकुलता ययौ ।

जघानेव चतुस्रं त्रिदशस्त्रिदशाद्विषाम् ॥११४

अक्षीहिणीमहत्याणि त्रयस्त्रिंशत्सुरेश्वरो ।

एकत्रिंशत्सहस्राणि शतोन्यष्टौ च ममनि ॥११५

सानुगाना सयोधाना रथाना वातरडसाम् ।

सख्यैवैषा गजेन्द्राणामक्षीहिण्या महौजसाम् ॥११६

त्रिगुण चतुरङ्गाणां पञ्च चैव पदानिनाम् ।

वचिद्रथस्थिता संव त्रिविधायुधधारिणी ॥११७

जघानामुरसैन्यानि हयहस्तियगता कचित् ।

कचिच्च महिषारूढा वृषभे च स्थिता कचित् ॥११८

वेतालैः प्रेतभूतैश्च स्वेच्छासृष्टैर्वृताऽद्भुतं ॥११९

वह देवी युद्ध में अमुरेन्द्र की महाचमूका निपानन करती हुई सञ्चरण कर रही थी वहा पर अनुल-तुमुल नाद उन वाद्य यन्त्रों में हो रहा था ॥११३॥ जिस निनाद से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आकुलता को प्राप्त होगया था । इस प्रकार से देवों के यन्त्रों को अठ्ठाईस देवों के द्वारा हनन किया था ॥११४॥ सुरेश्वरी ने तीसरी सहस्र अक्षीहिणी-इकतीस सहस्र आठ सौ सत्तर को अनुगों के और योषाओं के सहित तथा वायु के तुल्य वेग वाले रथों की यह सरथा थी और महाद् ओज वाले गजेन्द्रों की अक्षीहिणी में यही सख्या थी ॥११५॥ ११६॥ चतुरङ्गों का त्रिगुण और पदानियों का पञ्च गुण कही पर रथ में स्थित वही विविध आयुधों

के भाग्य करने वाली किमी जगह पर रथों में स्थित और वहीं पर
 अश्व और हाथियों पर स्थित वह सेना अगुरों की थी । किसी स्थल
 पर महिषों पर समाह्वय और वहीं पर वृषभो धाम्द वेताल-प्रेत-भूतों
 में परिवृत्त थी जो स्वेच्छा में समुत्पन्न हुए थे और अत्यन्त अद्भुत थे
 ॥११७-११८॥

कवन्धनृत्यमंजुने ह्यमृश्वमाम्बिखदंभे
 रणाजिरे निशाचराम्नतो विरेजुम्जिता ।
 शृगान्गृध्रवायमा, पर प्रपानमादधु-
 मचचित्तरेतशावना, प्रतीतशोणिता वमु. ॥१२०॥
 मवचित्तनाराणय पिशाचयक्षराक्षसा,
 प्रत्यं चागृजा पितृन्गमचयन्नयाऽऽमिषं ।
 मजान्तराग्नुरङ्गमान्प्रभक्षयन्ति निघृंषा-
 ग्नदोदुपैन्तथाऽगरे तरन्ति शोणितायगाम् ॥१२१॥
 इति प्रमादगगरे मुराग्निमधमगु-
 त्रिराजोऽम्बिता धनु शरामिशूतधाग्निनी ।
 मजेन्द्रवृन्दमदिनी मुराग्निगुणपोधिनी
 मदारयोषपादिनी मुराग्निगन्धनादिनी ॥१२२॥

नममृत्य रक्तासुर तेऽम्यघावन्नरगो
 पार्वती ताडयन्तोऽश्रुपूर्ग. ॥१२५॥

समुद्धृत्य नेत्राणि किञ्चिद्धसन्ती
 द्विपत्सैन्यमघानि मा सहरन्ती ।
 न्यमुञ्चततोऽश्रागि दिव्यानि देवी
 नदत्स्वार्यंतूर्येषु सेज्जन्तसत्त्वा ॥१२६॥

कवचो (घडो) के नृत्य से मकुल तथा रुधिर और अस्थियों के कदम वाले रणाङ्गण में फिर निशाचर अत्यन्त अजित होते हुए शोभित हो रहे थे । गीदड गिद्ध और वीए परमाधिक प्रपान को प्राप्त कर रहे थे । वही पर मृत पुरुष के शवक प्रतीत शोभित शोभायमान हो रहे थे । १२०। वही पर हाथों में धनुष धारण किये हुए पिशाच-यक्ष और राक्षस रुधिर से अपने पितृगणों का तर्पण करते उनको मांस से समर्पित कर रहे थे । निर्घण लोग गजों को—अश्वों को भक्षण कर रहे थे । दूसरे लोग उन मृत गजादिक के उडवों के द्वारा उस रुधिर की नदी को पार कर रहे थे । १२१। इस रीति से सुरों के शत्रुओं के सघों से सकुल उस प्रगाढ युद्ध में अम्बिका देवी धनुष—शर—सङ्ग—शूल—इन आयुधों को धारण किये हुए विराजमान थी । वह अम्बिकादेवी बड़े-बड़े गजों के वृन्दों का मर्दन करने वाली—तुरङ्गों के यूथों का पोथन करने वाली—महान् रुधियों के समुदाय के घात करने वाली और सुरों के अरियों की सेना का विनाश कर देने वाली थी । १२२। इसके पश्चात् चण्डिका देवी के धनुष से छूटे हुए बाणों से दिवलोक के हरण करने वालों के सोलह करोड़ दैत्य हत किये गये थे और पट्टिशों के द्वारा तीन लाख अठारह करोड़ और नेतीस मारे गये थे । इसके अनन्तर दानवों के स्वामी पर रण क्षेत्र में तर्जना करती हुई देवी नृत्य करने लगी थी जो विलास से ही उल्लासित बाहुओं में शास्त्रों का धारण करने वाली थी । ऐसी प्रमेय प्रभाव वाली भवानी देवी आनन्द से महेन्द्र आदि देवों को हर्षित कर रही थी । १२३। १२४। फिर ह्यग्रीव जिनमें प्रमुख था

ऐसे दैत्या के सघ महारौद्र रूप वाले केवल दश ही शेष रह गये थे । उन्होंने रक्तासुर को प्रणाम किया था और फिर वे अस्त्रों के समुदाय से पार्वती देवी पर ताडन करते हुए घावमान हुए थे । १२५। नेत्रों का निःशाल कर कुछ ह सती हुई वह देवी शशुओं की सेना के समुदायों का महार कर रही थी इसके अनन्तर वह दिव्य अस्त्रों को छोड़ रही थी । आकाश में अनन्त सत्त्व वाले आर्य तुर्य का नाद कर रहे थे । १२६।

ततो गिरीन्द्रजाऽरीणा चक्रे सैन्यानि भस्मसात् ।
 रक्तासुरमथाम्यंत्य शस्त्रास्त्रमृतपाणिनम् (?) ॥१२७॥
 पादाक्रान्त्यानतभुव सक्षोभितजगन्नयम् ।
 मण्डलीवृतकोदण्ड गर्जन्त कालमेघवत् ॥१२८॥
 शरवर्षाणि मृञ्चन्त पार्वती तमुवाच ह ।
 वृत्वोपताप देवाना जीवन्क्वाद्य गमिष्यमि ॥१२९॥
 देष्टेत्युक्त्वाऽथ सा देवी शूनेनाभिहनद्धृदि ।
 समिन्नहृदयो दैत्यो मूर्ति चक्रे सुदारुणाम् ॥१३०॥
 रक्तविन्दुसमो दैत्यो देवी व्यामोहयन्निव ।
 जगामानेकरूपोऽसौ निहतोऽम्बिकया रणे ॥१३१॥
 रक्तासुरोऽपि निघन गत्वा त्रिदशकण्टकः ।
 पपात मुनिश दूर्ला प्रज्वलज्ज्वलनोपम ॥१३२॥
 हाहाकार प्रकृर्वाणा दैत्यस्तेऽथ प्रदुद्रुवु ।
 केचिच्छिष्टा भयत्रस्ता विमृष्टायुधजीविता ॥१३३॥

इसके उपरान्त गिरीन्द्रजा नगरिया की सेनाओं को भस्मसात् कर दिया था । इसके अनन्तर वह उसे रक्तासुर के समीप में प्राप्त हुई थी जो हाथों में शस्त्र और अस्त्र धारण किये हुए था । १२७। अपने चरणों की आक्रान्ति से भूमि को नत कर देने वाले—तीनों लोचों को मन्त्रो-भित कर देने वाले—धनुष को मण्डलीवृत्त करके रखने वाले तथा वाक्प्रेष के समान गर्जने हुए और शरों की वर्षा को मोचन करते हुए उसने देवी पार्वतीत्री ने कहा—अरे दुष्ट ! देवों का जगन्नाथ करके

जीवित रहने हुए तू आज यहाँ पर जायगा ? इतना ही कहकर उस अम्बिका देवी ने उसके हृदय में धूल से अभिहनन किया था । सभिन्न हृदय वाले दैत्य ने अपनी मूर्ति का परम दारण बना लिया था । १२८। १२९। १३०। रक्तविन्दु के समान दैत्य देवी को व्यामोहित सा करता हुआ यह अनेक रूपों वाला हो गया था और उस रण में अम्बिका के द्वारा निहत कर दिया गया था । १३१। वह देवी का कटक स्वरूप रक्तामुर भी निघन (मृत्यु) को प्राप्त होकर हे मुनि शार्ङ्गलो ! जलती हुई अग्नि के ही सदृश भूमि पर गिर पड़ा था । इसके अनन्तर वे सब दैत्य हाहाकार करते हुये प्रद्रुत हो गये थे । कुछ बचे हुए भय में डर गये थे जो आयुष्य जीवित विगृष्ट कर दिये गये थे । १३२। १३३।

केचित्समुद्रं विविशुरन्द्रीन्केविच्च दानवाः ।

केचिल्लुश्चित्तमूर्धानो नग्ना भूत्वा वनेऽवसन् ॥१३४॥

दयाधर्मं ब्रुवाणाश्च निर्ग्रन्थव्रतमाश्रिताः ।

केचित्प्राणपरा भीताः पाखण्डव्रतमाश्रिताः ॥१३५॥

हेतुवादपरा मूढा निःशौचा निरपेक्षकाः ।

अमुरस्य जनस्यैते क्षपणा इव लक्षिताः ॥१३६॥

ते चाद्यापीह दृश्यन्ते लोके क्षपणकाः किल ।

अर्हन्तश्च तथैवान्ये शिवशास्त्रबहिष्कृताः ॥१३७॥

मन्त्रौषधप्रयोगैश्च जनवञ्चनकारकाः ।

समुत्पत्स्यन्ति दैत्याश्च घोरेऽस्मिन्वै कलौ युगे ॥१३८॥

शिवोक्तं कर्मयोगं च द्विपन्तश्च कुयुक्तिभिः ।

देव्याः क्रोधाग्निं दग्धा वेदमार्गं विनिन्दकाः ॥१३९॥

शास्यन्ते नरकान्तौ ते निःशेषाः पापकर्मिणः ।

न दृष्ट्वा निष्कृतिस्तेषां शास्त्रेषु परमर्षिभिः ॥१४०॥

कुछ दैत्य समुद्र में प्रवेग कर गये थे और कुछ दानव महारण क्षेत्र से भागकर पर्वतों की गुफाओं में जाकर छिप गये थे । कुछ कटे हुए मस्तक वाले थे और नग्न होकर वन में निवास करने लगे थे । १३४।

वे दयाघर्म को बोलते हुए निर्ग्रन्थ व्रत के आश्रित हो गये थे। कुछ प्राणो की रक्षा में ही तत्पर हुए भयभीत होते हुए पाखण्ड व्रत का आश्रय लेने वाले हो गये थे। १३५। हेतुवाद में परायण—महामूढ— शौचरहित—निरपेक्षक ये अमुर जन के लोग थे किन्तु क्षपणा के समान लक्षित हुआ करते थे। १३६। वे आज इस समय में भी इस ससार में क्षपण निश्चय ही दिखलाई दिया करते हैं। तथा अन्य लोग अहंन्त हैं और शिवशास्त्र से बहिष्कृत हुआ करते हैं। १३७। ये लोग मन्त्रों और औषधियों के प्रयोगों के द्वारा साधारणजनों को बञ्चित करने वाले ही हुआ करते हैं। इस घोर कलियुग में ये ही दैत्यगण सर्वत्र समुत्पन्न हो जायेगे। १३८। अपनी कुत्सित युक्तियों के द्वारा भगवान् शिव के द्वारा वर्णित कर्म योग की ये बुराई किया करते हैं। देवी के क्रोध रूपी अग्नि के द्वारा दग्ध हुए ये लोग वेदमार्ग के विशेष निन्दा करने वाले होते हैं। १३९। ये सभी पाप कर्मों के करने वाले नरकों की अग्नि में पड़े हुए शासित किये जाया करते हैं। उनकी निष्कृति परमपियों ने शास्त्रों में कहीं पर भी नहीं देखी है ॥१४०॥

रराजाचिन्त्यमाहात्म्या चिद्रूपा परमेश्वरी ।

हृत्वाऽरिं जगदंश्वर्यं दत्त्वा नमुचिज्ञानवे ॥१४१॥

जगामादर्शनं देवी व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।

शक्रोऽपि ता प्रणम्याथ सर्वज्ञा विश्वरूपिणीम् ॥१४२॥

प्रययौ विद्युधै सार्धं स्वा पुरीममरावतीम् ॥१४३॥

अचिन्तनीय माहात्म्य वाली ज्ञानस्वरूप बानी परमेश्वरी ने शत्रु का हनन करने नमुचि शत्रु के लिए जगत् का ऐश्वर्य देकर वह परम दीक्षितमती हो गयी थी। १४१। वह व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाली वह देवी अदर्शन को प्राप्त हो गयी थी। इन्द्रदेव ने भी विश्वरूपिणी सर्वज्ञा उस जगदम्बा को प्रणाम किया था। १४२। फिर वह इन्द्रदेव देवों के ही साथ में अपनी पुरी अमरावती को प्रस्थान करने चले गये थे। १४३।

॥ पार्वती प्रभाव कथन ॥

अथोपविश्य सुरराट् पूज्यमानो वरासने ।
 अप्सरोगणगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ॥१॥
 सहस्रानुचराणां च देवतानां महोजनाम् ।
 निर्जराणां त्रयस्त्रिंशत्कोटिभिः परिवारितः ॥२॥
 सोऽभिषिष्वनस्यदा सर्वैर्वृहस्पतिपुरोगमैः ।
 त्रैलोक्येऽस्मिन्पुनः शक्रश्चक्रो राज्यमकण्ठकम् ॥३॥
 समाजगमुस्तदा द्रपुं प्राप्तराज्यं सुराधिपम् ।
 मुनयश्चाङ्गिरा दक्षधमिष्ठक्रनुगीतमाः । ४
 पुलस्त्यपुलहागस्त्यविश्वामित्रात्रिशोभकाः ।
 जमदग्निभरद्वाजभृगुभागुरिगालवाः । ५
 ऋभुः शण्डिल्यदुर्वासो गर्गजमिनारदाः ।
 दास्यूहोद्दालवाभ्रव्यशरभङ्गनिदाकराः ॥६॥
 मरीचिच्यवनोत्तङ्ककाश्यायनपराशराः ।
 सवतंसहृल्लिखितदेवभागसुपेणकाः ॥७॥
 त्रितरुंभ्ययवक्रीतश्वेतकेतूपमन्यवः ।
 शाकटायनकौण्डिन्यकचगृत्समदासिताः ॥८॥

श्री मृत जी ने कहा—इसके पश्चात् अपने वरासन पर बैठकर वह
 सुरों के राजा पूज्यमान हुए थे । और अप्सराओं के समुदाय—गन्धर्व-
 सिद्ध—विद्याधर और उरगों के द्वारा वह सेन्य मान हुए थे ॥१॥ सहस्रो
 अनुसर—देव गण—महान् भोज वाले निर्जरगण जो सख्या तीस करोड़
 थे वह महेंद्र देव उन सबसे परिवारित हो रहे थे ॥२॥ वे फिर उस
 समय में वृहस्पति जिन्में अग्रणी थे ऐसे महर्षियों के सबके द्वारा अभि-
 पिक्त हो गये थे । पुनः त्रैलोक्य में इन्द्रदेव ने अकण्ठक राज्य कर' दिया
 था ॥३॥ उस समय में राज्य की प्राप्ति कर लेने वाला सुरों के अधिप
 के दर्शन पाने के लिए मुनि लोगो ने भी वहाँ पर आगमन किया था ।

उन मुनिगणो मे अङ्गिरा—दक्ष—वसिष्ठ—ऋतु—गीतम—पुलस्त्य—
 पुलहा—अगस्त्य—विश्वामित्र—अत्रि—शैलक—जमदग्नि—भरद्वाज—
 भृगु—भागुरि—गालव—ऋभु—शाण्डिल्य—दुर्वासा—गर्ग—जैमिनि—
 नारद—शात्पूह—उद्दाल—वाभ्रभ्य—शरभङ्ग—निशाकर—मरीचि—च्यवन—
 अतङ्क—कात्याय—पराशर—संवत्स—शङ्ख—लिखित—देव—भाग—
 मुपेणन—त्रित—रंभ्य—यवं—क्रीत—श्वेतकेतु—उपमन्यु—शाकरायन
 —वीगिम्य—वचगृन—समद—अमित ॥४॥५॥६॥७॥८॥

देवरातश्च जाबालिर्हरीतश्चै कश्यपः ।

बृहदश्वाम्बिक्रीतश्चा जातूकपर्णः पराशरः ॥६

पैटीनसिर्वाघ्रपादो वीतिहोषाश्वलायनो ।

शातातपो मधुच्छन्दा ऋचोकक्रतुदेवलाः ॥१०

वामदेवश्च भैत्रेयमाकण्डेयपुरोगमाः ।

कृष्णाजिनोत्तरीयास्ते जटिला भस्मभूषिताः ॥११

रुद्रा इव महात्मानो वेदवेदाङ्गपारगाः ।

तानागतान्गुमपूज्य वृतासनपरिग्रहान् ॥१२

अक्षकल्पानुपोन्मर्वाण्यप्रच्छेद पुरदरः ।

कथमाराध्यते देधी वरदाऽचलकन्यका ॥१३

ते धन्यास्ते वृत्तार्थाम्ने ये सम्यक्पूजिता शिवा ।

यस्याः प्रसादाद्भूयोऽपि राज्यं प्राप्तमिदं मया ॥१४

देबरान—शकानि—हागीर—वश्यव—बृहदश्व—अम्बिर—श्रीनर्य—
 जातूकर्ण—पराशर—पंकीन—मिष्याङ्गजाद—वीतिहोत्र—अश्वलायन—
 शातानवन् मधुच्छन्द—ऋषीर—रतु—देवत—वामदेव—भैत्रेय—मर्कं
 ष्टिय त्रिन मुनिगणो मे पुरोगामी ये । ये तत्र कृष्ण मृग भ्रमं वा उत्तरीय
 धारण करने करने वाले—अट्टापारी और भस्म से विभूषित आंगुओं वाले
 ये । ये सब रुद्रों के ही समाज महान् आत्मा वाले ये और सभी वेद—
 वेदाङ्ग शास्त्रों के पारभार्य विद्वान् ये । उन समाज कृष्ण मुनियों का
 भारी भारी अत्यर्थन शिवा एवम् वा और जित् आत्मीय एव एवम् शिवा

गये थे ॥६॥१०॥११॥१२ इन सब ब्रह्माजी के सहस्र मुनियों से पुरन्दर ने पूछा था—कृपया आप लोग यह बतलाइये कि वरदा अचल कन्या जगदम्बा की आराधना कैसे की जाया करती है ? ॥१३॥ वे ही पुरुष परमधन्य एव वृत्तार्थ हैं जिन्होंने देवी शिवा का अच्छी तरह से पूजन किया है । उन्ही देवी का यह प्रमाद है जिसके प्रभाव से मैंने पुनरभि अन्ता राज्यासन प्राप्त कर लिया है ॥१४॥

भवान्या. सर्वंभेवैतद्वक्तुमर्हथ सत्तमाः ।

ते चैवमुक्ताः शक्रेण मुनयो मुनिपुंगवाः ॥१५

प्रत्यूचुस्ता नमस्कृत्य शर्वाणी शिवरूपिणीम् ।

ते धन्यास्ते कृतार्थाश्च साधवस्ते शचीपते ॥१६

भक्त्या यजन्ति ये नित्यं पार्वती परमेश्वरीम् ।

कुर्वन्तोऽपीह कर्माणि चण्डिकापिनमानसाः ॥१७

सूर्याश्व इव जालैर्न वाध्यन्तेऽत्र किल्बिषैः ।

आयुरारोग्यसौख्यानि सौभाग्यं च वरस्त्रियः ॥१८

भवन्ति तेषां ये नित्यं स्तुवन्ति परमेश्वरीम् ।

सवत्सरास्तथा मासा विफला दिवसाश्च ते ॥१९

नराणां विषयान्धाना येषां गेहे न पार्वती ।

यत्र यत्रार्च्यते देवी वरदा परमेश्वरी ॥२०

तत्र तत्राक्षयं पुण्यं त्यादित्याह प्रजापतिः ।

नामोच्चारणमात्रेण यस्याः क्षीणाघसचय ॥२१

हे श्रेष्ठतमो ! आप भवानी का यजनार्चनाराधन सभी कुछ बताने के योग्य हैं । इन्द्र देव के द्वारा इस प्रकार से पूछे गये उन मुनियों ने परमश्रेष्ठ मुनियों ने सर्व प्रथम उस शिव के स्वरूप वाली शर्वाणी देवी को नमस्कार किया था और फिर उत्तर दिया था हे शचीपते ! वे पुरुष परमधन्य और वृत्तार्थ जीवन वाले हैं तथा परम साधु हैं जो भक्तिभाव से नित्य ही परमेश्वरी पार्वतीदेवी का नित्य ही यजन किया करते हैं । चण्डिका ने समर्पित मनवाले महा पर कर्मों को करते हुए भी इनका

यजन करते हैं वे यहाँ ससार में कित्विषो के द्वारा वाधित नहीं हुआ करते हैं जैसे जालो के द्वारा सूर्य की किरणों कभी वाधित नहीं हुआ करती हैं । जो लोग नित्य ही परमेश्वरी का स्तवन किया करते हैं उनको आयु-आरोग्य-सुख-मौभाग्य और वर स्त्रीयाँ लिया करती हैं । प्रजापति ने यही बताया है कि उस—उसमे अक्षय पुण्य होता है । जिसके केवल नाम के उच्चारण से ही सब अर्थों का सचय क्षीण हो जाता है।

॥१५—२१॥

भवत्यवाप्नकल्याण कस्ता नाऽऽराधयेच्छिवाम् ।
 पशुभिस्त्रिह तुस्यास्ते मूढैर्वा ते शवा इव ॥२२
 ये मूढा नाच्यन्त्यार्या पार्वती परमेश्वरीम् ।
 अचिन्त्या सात्स्वरूपा ता शाश्वती विश्वतोमुखीम् ॥२३
 ये यजन्तीह धन्यास्ते शिवा स्वर्गापवर्गदाम् ।
 तपस्तीर्थप्रदानैश्च यज्ञैर्वा बहुदक्षिणैः ॥२४
 न ता गतिं लभन्नेऽत्र या स्तुत्वाऽवलकन्यकाम् ।
 सर्वान्कामानवाप्नोति यान्यानिच्छति मानवः ॥२५
 अत्रोपवासपूजाभि समाराध्य महेश्वरीम् ।
 व्रतेन येन देवेन्द्र प्रमीदत्यागु पावती ॥२६
 यच्चोल्कानवमीसज शृणु सर्वफलप्रदम् ।
 तस्या नवम्या शर्वाणी महिपादीन्महासुरान् ॥२७
 जधान समरे शक्र तेन सा नवमी प्रिया ।
 अश्वघुक्शुल्करक्षस्य नवम्या प्रयतत्सवान् ॥२८

मनुष्य देवी के यजन से कल्याण प्राप्त करने वाला हो जाता करता है । ऐसी उस देवी शिवा का कौन मूढ होगा जो आराधना नहीं करेगा । ॥२२॥ जो मूढता से इतना समाराधन नहीं करते हैं वे पशुओं के ही तुल्य मानव हुआ करते है अथवा वे मृग के शत्रु ही ही भाँति हैं जो कि सभी पेटाओं से शून्य हुआ करते हैं । जो महामूढ आर्या—परमेश्वरी—पार्वती देवी का अश्वघ्न नहीं किया करते हैं जोकि अचिन्नीया—सत्स्वरूपा

वाली — शाश्वती और विश्वतोमुगी है ॥२३॥ जो लोग यहा संसार मे स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) दोनो का प्रदान करने वाली शिवा देवी का समर्चन किया करते हैं वे परम धन्य एव महान् भाग्यवाली प्राणी होते हैं । तप—तीर्थ—दान— और बहुत अधिक दक्षिणा वाले यज्ञो के करने से उस गति को यहाँ नहीं प्राप्त किया करते हैं जिसको कि केवल गिरि कन्या अम्बिका के स्तवन करने से ही प्राप्त किया जा सकता है । जग-दम्बा के भजन से मनुष्य सभी कामनाओ को प्राप्त कर लिया करता है जिन-जिनकी वह मनमे इच्छा किया करता है ॥२४॥२५॥ व्रत उपवास और पूजाओ के द्वारा महेश्वरी का समाराधन करके मनोरथो के पाने का परम लाभ होना है । हे देवेन्द्र ! जिस व्रत के द्वारा वह देवी पार्वती बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाया करती हैं और जो उत्कानवमी नाम वाला है और सभी पुण्य—फलो के प्रदान करने वाला भी है । अब आप उसका श्रवण करिए । उस नवमी तिथि मे भगवती शर्वाणी ने महिष आदि महान् असुरो का समर मे हनन किया था । हे इन्द्र ! इसी कारण से वह नवमी तिथि उनकी प्रिय होती हैं । आश्विन के शुक्ल पक्ष की नवमी के दिन मे प्रयत आत्मा वाला होवे ॥२६॥

स्नात्वाऽभ्यर्च्य पितृन्देवान्मनुष्यांश्च यथाक्रमम् ।
 यजेत्पश्चान्महादेवी महिषामुरघातिनीम् ॥२६
 पुष्पं धूपैश्च नैवेद्यैः पयोदधिफलादिभिः ।
 भक्त्या सपूजयित्वैव स्तुत्वा सप्रार्थयेत्ततः ॥२७
 मन्त्रेणानेन वृत्रारे श्रद्धावान्प्रयतो व्रती ।
 महिषघ्न महाभाये चामुण्डे मुण्डघातिनि ॥२८
 द्रव्यमारोग्यविजय देहि देवि नमोऽस्तु ते ।
 भूतप्रेतपिशाचेभ्यो रक्षोभ्यश्च महेश्वरि ॥२९
 देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च भयेभ्यो रक्ष मा सदा ।
 सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वायसाधिके ॥३०
 उमे ब्रह्माणि कौमारि विश्वरूपे प्रसीद मे ।
 कुमारीर्भोजयित्वा वा कुर्यादाच्छादनादिभिः ॥३१

यथावर्णं कुमारीश्च भोजयित्वा क्षमापयेत् ।
 नव सप्ताथ एका वा चित्तवित्तानुसारतः ॥३५
 श्रद्धया प्रीतिमान्पोति देवी भगवती शिवा ।
 अनेन विधिना वर्षं मासि मासि समाचरेत् ॥३६

नवमो तिथि मे प्रातः स्नान करके पितृगण और देवों का यथा क्रम अग्न्यर्चन करके तथा गुरु वर्ग मे जो मनुष्य हो उनका भी यजन करके पीछे से महिषासुर के घात करने वाली महादेवी का अर्चन करना चाहिए ॥३५॥ पुष्प धूप-दीप नैवेद्य-दूध-जल दधि और फल आदि के द्वारा भक्तिभाव से इस प्रकार से अर्चन करके फिर प्रार्थना करनी चाहिए ॥३०॥ श्रद्धा से सम्पन्न प्रयत्न व्रतधारी को अमुक मन्त्र से प्रार्थना करनी चाहिए—हे वृत्रारे ! हे महिष के हनन करने वाली ! हे महामाये ! हे चामुण्डे ! हे मुण्ड दंत्य का घात करने वाली ! मुझे द्रव्य-आरोग्य और विजय प्रदान करो । हे देवि ! आपको नमस्कार है हे महेश्वरि ! भूत-प्रेत-विनाश-राक्षस-देव मनुष्य और सम्पूर्ण भयों से मेरी सदा रक्षा करिए । सभी मङ्गल के मङ्गल करने वाली । हे शिवे ! आप सब अर्थों के साधन बनन वाली हैं । हे उमै ! हे ब्रह्माणि ! हे पौमारि ! हे विश्व रूपे ! आप मूल पर प्रसन्न होइये । फिर इस प्रार्थना करने के पश्चात् कुमारियों को भोजन कराकर उन्नत आच्छादन वस्त्रा आदि का दान करना चाहिए । वर्ण के अनुसार कुमारियों को भोजन कराकर उनसे देवों के स्वरूप वाली समझ कर क्षमापन कराव । कुमारी सभ्या में नो हो या सात हो वे अथवा एक ही होये जैसी भी अपनी आविष्क स्थिति हो उन्हीं के अनुसार करें भगवती गिवा देवी तो श्रद्धा के भाव से ही प्रीति को प्राप्त हुआ करती हैं । इस विधि से एक वर्ष पर्यन्त प्रत्येक मास में इस व्रत को करना चाहिए ॥३१-३६॥

ततः सायत्सरम्यान्ते भोजयित्वा कुमारिणाः ।

वसं राभरणं पूज्या प्रणिपत्य विमर्जयेत् ॥३७

मरुक्मशृङ्गा गा दद्यात्सुविप्राय शुशोभनाम् ।
 नरो वा यदि वा नारी व्रतमेतत्करोति च ॥३८
 उल्कावत्सा सपत्नीना तेजसा भाति भूतले ।
 श्रीमहानवमीत्येषा ख्याता सुरपतेऽधुना ॥३९
 सर्वसिद्धिकरी पुण्या सर्वोपद्रवनाशिनी ।
 नाऽऽध्यात्मिक तस्य भय दैव स्यान्न ऽधिभौतिकम् ॥४०
 रक्षत्येव सदा शक्र सर्वापत्मु च चण्डिका ।
 शान्तिपुष्टिकरी पुण्या पुन्नारोग्यार्थलाभदा ॥
 अनुष्ठेया सदा पु भिश्चतुवगफलार्थिभि ॥४१
 यश्छद्मनाऽपि कुरुते व्रतमेतदित्य
 चण्डीप्रिय सुरपते मुनिसिद्धजुष्टम् ।

रुद्राङ्गनाकुलवराकुलित विमान

मारुह्य याति स सुखेन शिवस्य लोकम् ॥४२

फिर जब एक वष पूण हो जावे तो सम्बत्सर के अन्त में छोटी-
 छोटी कुमारिकाओं को भोजन कराकर वस्त्र और यथा शक्ति आभरणों
 के द्वारा उनकी पूजा करके फिर उनको प्रणिपत्य करे और विसर्जन
 कर देना चाहिए ॥३७॥ किसी परम अच्छे योग्य विप्र को एक सुवर्ण
 के सींगे वाली गौ का दान करना चाहिए जो कि गौ परमशोभना हो ।
 नर हो अथवा नारी हो जो भी कोई हो इस व्रत को किया करता है
 वह अपनी सपत्नियों के मध्य में उल्कावत्सा भूतल में तेज से
 मुभासित रहा करती है । हे सुरपते ! अब यह थी महानवमी
 के नाम से विख्यात है यह महानवमी समस्त सिद्धियों के करने
 वाली पुण्यमयी और सम्पूर्ण उपद्रवों के विनाश कर देने वाली
 होती है । इसके व्रत को करने या न पुरुष को कभी भी आध्यात्मिक-
 आधिदैविक और आधिभौतिक भय नहीं हुआ करता है ॥४०॥ चण्डिका
 देवी हे शक्र ! सभी आपदाओं में सदा उसका रक्षा किया करती है ।
 जो मनुष्य चतुवग के पना व प्राप्त करने की इच्छा धारण हो उनको
 यह व्रत सदा ही करना चाहिये क्योंकि यह नवमी शान्ति और पुष्टि

घाना स्वहस्तलिखितानि लताटपट्टे
 देवाक्षराणि दुरितैकनिबन्धनानि ।

गौरीप्रसाद्रजनितेन जन समस्त-

स्तान्येकत सपदि मार्जयतीति चित्रम् ॥४८

ते समता जनपदेषु धनानि तेषा

तेषा यज्ञासि न च सीदति बन्धुवर्ग ।

धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा

येषा सदाऽभ्युदयदा गिरिजा प्रसन्ना ॥४९

निचूल के अग्रभाग से भिन्न किये हुए सहिषामुर के पादरीठ पर मुखात खड्ग और रुचिर अङ्गदो से शोभित बाहुदण्डो वाली देवी को नवमी तिथि में जो रात्रि को भोजन करने वाले मनुष्य अर्घ्याचित किया करते हैं वे मनुष्य दुर्गति गहन-दुर्ग में कभी भी प्रवेश नहीं किया करते हैं । ४३। महात्मा भगवान् कपिल ने जो एक अन्य व्रत बतलाया है और मेरु पर्वत पर दैत्यो के गुरुदेव भृगुनन्दन को बतलाया है । उसको भी आप मुन्दर मन वाले होकर श्रवण कर लीजिये । हे मधवन्म ! तीनों जगता की जननी का कितना ही महान् आराधन होना है ॥४४॥ जो भक्ति के करने वाले मनुष्य हैं उनके लिये तो देवी कामदेवु के ही समान सबल मनोरथो को पूर्ण करने वाली है । और जो मुष्टिया के लिये वरपवृक्ष के समान है अथवा घन के इच्छुको के लिये यह चिन्तामणि ही जानी गयी हैं हे भृगु सुत ! यहाँ पर ऐसी उस गौरी को का क्यों नहीं यजन किया करते हैं ॥४५॥ गिरिशो के द्वारा बँधे हुए पैरो वाले भी जो उस देवी का स्मरण किया करते हैं और जो व्याघ्र अहि-धोर-नूर-अग्नि आदि के भय उपस्थित होने पर दुर्गा का यजन किया करते हैं उन मनुष्यो को वृद्ध भी शत्रुओ से भय नहीं होता है और जो वृद्ध होत हैं वे भी शक्ति की प्राप्ति करके सुख प्राप्त किया करते हैं ॥४६॥ हे भार्गव ! आर्य । गिरिजा के प्रणति के प्रसाद घाने मनुष्य पर निरद्व दैव भी अवश्य ही वृद्ध प्रभात्र नहीं किया करता है । तेषा का समस्त

जिनका समीप है ऐसी वनराजि को ऊँचे दरजे की श्रीम भी पल्लवों के उपपद्य से उपचित कर दिया करती है ॥४७॥ विद्याना ने खलाट पट्ट में अपने हाथ से जो दँवाधर लिख दिये हैं जो कि किये हुए पापों के लिए एक निवन्धन स्वरूप ही होते हैं उन सब को भी भगवती गौरी के प्रसाद में जनित प्रभाव से मनुष्य समस्तों को तुरन्त ही एक बार में परिमार्जित कर दिया करता है—यह एक अत्यन्त विचित्रता है क्योंकि भाग्य में लिखा हुआ जो कभी भी मिटा नहीं करता है और अवश्य ही भोगना पड़ता है वह भी गौरी के प्रसाद के प्रभाव से तुरन्त ही नष्ट हो जाया करता है । ऐसी देवी के प्रसाद में अद्भुत शक्ति है । ये देवी के प्रसाद प्राप्त करने वाले मनुष्य जनपदों में समत होते हैं—उनके पास अतुल धन होता है—उनका बहूत धन भी हुआ करता है और उनका बन्धु वर्ग कभी सीमिन नहीं होता है । वे ही पुण्य परम धन्य हैं जिनके निभृत् आत्मन-भृत्य और शरणे है और ये सब जिनके लिए सदा ही अभ्युदय के प्रशान करने वाले हैं जवनि गिरिजा देवी उन पर प्रसन्न हो जाया करती हैं ॥४६॥

यः कारयेद्वरपताकसिताभगौर

तद्गोपुरं च सुधयाऽऽप्रतनं भवान्याः ।

चन्द्रावदात्तभवने विपुले च सोढय

राज्यं श्रियं च भुवि काममूर्पति मयम् ॥५०

ये कारयन्ति भवनं भृगुनन्दनाऽऽर्या

पशत्या मुवर्णरजतायसनाऽऽर्शलम् ।

सागन्धमौलिम परदिमममुञ्जरे ते

गिहातनेऽङ्गदकिरीटभृशो रमन्ते ॥५१

ये मेरुमूर्ध्नि मुरगपट्टनाभिषेका

पञ्चामूर्त्तगिरिगुनाभिषेचयन्ति ।

ते दिग्गङ्गात्मतुभूय सुरेन्द्रराज्यं

राज्याभिषेकमतुनं पुनराप्नुवन्ति ॥५२

ये देवदारुमलयोद्भवचन्दनेन

ये कुङ्कुमेन च शिवाऽमुपलेष्यन्ति ।

ते दिव्यगन्धपटवासुगन्धदेहा

नन्दन्ति नन्दनवनेषु सहाप्परोभिः ॥५३

दिव्यैश्च पद्मकरवीरकजातिपुष्पै-

गौरी शुभ्रैरनुदिन मनु येऽर्चयन्ति ।

ते भूतले नरपतित्वमवाप्य योगा-

द्यास्यन्ति सौख्यमचिरेण परां च सिद्धिम् ॥५४

आमोदिभिर्मंरुकपुष्पसुगन्धधूपै-

यैलोकनाथदयितामिह धूयन्ति ।

वर्षं रसारसमगन्धवराः सुरामा

र्थात्तु यन्ति दयिता. सुरराजलोके ॥५५

दोषूयते कनकदण्डविराजितैश्च

सत्त्वामरैः प्रचलकुण्डलमुन्दरीभिः ।

दिव्याम्बुस्त्रगनुलेपनभूषिताङ्गः

वृत्वा मृडानिभवने वरवस्त्रपूजाम् ॥५६

देदीप्यते स कनकोज्ज्वलपद्मराग-

रत्नप्रभाभरणहेममये विमाने ।

दिव्याङ्गनापरिवृतो मनसोऽभिरामः

प्रज्वाल्य दीपममलं भवने भवान्याः ॥५७

जो पुराण भयानी के आयतन और मंगुल को ध्येष्ठ पताकाओ से सिताधमीर बनवाया करता है और मफेशी में निपन कराया करते हैं यह चन्द्र के समान अथदात भवन में जो अति विशाल होता है उसमें गौम्य-राज्य-श्री-मरुत काम सबकी हमी दत्त भूमण्डल में प्राप्ति किया करता है ॥५०॥ हे भृगुनन्दन ! जो मनुष्य आर्या देवी वा भवन गुवर्ण-पादी-मोह और पापाज में निर्माण कराया करते है ये सामन्तो के मन्त्रो की मणियों की किरणों में ममुज्ज्वल निहासन पर अद्भुत और

किरीट के धारण करने वाले रमण किया करते हैं ॥५१॥ जो लोग सुमेरु पर्वत पर अर्थात् गिरि के शिखर पर सुरों के समुदाय के द्वारा अभिषेक की गई गिरि मुना का पञ्चामृत से अभिषेक किया करते हैं वे दिव्यकल्प-पर्यंत सुरेन्द्र के राज्यासन-मुख का अनुभव करके पुनः अनुल राज्याभिषेक प्राप्ति किया करते हैं ॥५२॥ जो लोग देवदाह और मलय से समुद्रमं चन्दन से और कुङ्कुम से शिवा देवी का उरलेपन किया करते हैं । वे दिग्ग मुग्ध से युक्त पट और देहों वाले होकर अप्सराओं के समूह के साथ नन्दन (देवों का उद्यान) वन में आनन्द किया करते हैं ॥५३॥ जो लोग दिव्य पद्म-करवीर-जानी के पुष्पों से जो कि परम शुभ होते हैं प्रतिदिन गौरी की अर्चना किया करते हैं वे लोग इम भूतल में नरपति के पद को प्राप्त कर योग से सौम्य को प्राप्त करते हैं और थोड़े से ही समय में परासिद्धि को प्राप्त किया करते हैं ॥५४॥ जो लोग आमोद वाले मरुआ को पुष्प और मुग्धित घूप से भगवान् लोक नाथ की दयिता को धूपित किया करते हैं अर्थात् घूँवा आघ्राण कराया करते हैं वे कपूर के सार के समान गन्ध में श्रेष्ठ सुराभा दयिताओं का गुरुराज के लोक में आलिङ्गन किया करते हैं ॥५५॥ सुवर्ण के दण्ड में शोभित श्रेष्ठ चमरो को जो देवी पर दुनाता है वह हिलने कुण्डलों वाली मुन्दरियों के द्वारा दिव्य अम्बर-मन्त्र और अनुलेपन आदि में भूषित अङ्गो वाला होकर मृडानी के भवन में घर वस्त्र पूजा करता है वह कनक के समान उज्ज्वल और पद्मराग रत्न की प्रभा वाले आमरण युक्त सुवर्णमय विमान पर दिव्याङ्गनाओं से परिश्रुत हुआ मन में मुन्दर हो भयानी के भवन में दीपक को जलाया करता है वह देशीय-मान होता है ॥५६॥५७॥

यो जागर गिरिमुताभवने ददाति

चंद्रोत्सवादिदिवसेऽन्वधि तूर्यनादम् ।

वीणागृहमधुरम्बरभाषिणीभिः

सगीयते स हि ऽगोदरिक्विरिञ्चि ॥५८॥

कुर्वन्ति ये सदुपलेपनवासचित्रं
 समाजंन गिरिसुतायतनेऽनुरक्ताः ।
 मुक्ताकलापमणिकाञ्चनभित्तिविल्लै-
 वंदूर्यकुट्टिमतले भवने वसन्ति ॥५६
 दद्याच्च यः परमभक्तियुतो भवान्या
 घण्टावितानमथ चामरमातपत्रम् ।
 केरुहारमणिकुण्डलमण्डितोऽसौ
 रश्नघिपो भवति भूतलचक्रवर्ती ॥५७
 अभ्यर्चयन्ति विधिवद्विविधोपचारै-
 गन्धर्वसिद्धविबुधस्तुतपादपद्यान् ।
 भक्त्या प्रहृष्टमनसः प्रणमन्ति देवी
 ते भूर्भुवःस्वमहिमाप्तफला (?) भवन्ति ॥५८
 गायन्ति ये गिरिमुता च विलोकयन्ति
 ध्यायन्ति वाऽमलधियश्च शिवां स्मरन्ति ।
 गौरीमुमां भगवती जगदेकदेवी
 ते वै प्रयान्ति परम पदमिन्दु गीलेः ॥५९
 देवी समस्तभुवनादिविचित्रदेहा
 सूर्याग्निचन्द्रनयनामिह कालवक्त्राम् ।
 दीर्घाष्टदिग्भुजचया मृदुभावहाता
 येऽभ्यर्चयन्ति हृदि हन्त त एव धन्या ॥६०
 इक्ष्वाकूपुरुषयुराघवधुन्धुमार-
 माघातृहैहययात्यजमीडमुह्यैः ।
 आरोग्यसततधराजयसीस्यलुब्धं
 सपूजिता भगवती मनुर्जंभवानी ॥६१

जो गिरि सुता के भवन में जागरण किया करता है और चंद्र के उदयव आदि के दिवस में मध्य में त्र्यंनाद किया करना है तथा धीणा-मृदङ्ग से मधुर स्वरों में भाषण करने वाली वृन्दीदरी किन्नरियों के

साथ में गान किया करता है ॥५८॥ जो भक्त लोग मदुपलेपन के द्वारा वासको चित्र किया करते हैं और समार्जन करते हैं तथा गिरि मुता के आयतन में अनुराग रगने वाले होने हैं वे लोग मुता कलाप-मणि-काञ्चन की भित्तियों से चित्रित वेदूयंकुट्टिम तन वाले भवन में जाकर निवाम किया करते हैं ॥५९॥ जो परमाधिक भक्ति से युक्त होकर भवानी को घण्टा बितान-चामर और मातपत्र समर्पित किया करता है वह केपूर-हार-मणि-मुण्डलो से मण्डित होकर ग्लो का स्वामी और भूतल पर चक्रवर्ती राजा हुआ करता है ॥६०॥ जो लोग गन्धर्व मिद्धि-त्रियुधो के द्वारा स्तुति किये गए चरण कमला वाली देवी हैं उन देवी को भक्ति भाव से प्रणाम करके विधिपूर्वक अनेक उपचारों में अम्यचन किया करते हैं और प्रसन्न मन वाले होकर प्रणाम करते हैं वे भूभुव स्व की महिमा के प्राप्त फल वाले हुआ करते हैं ॥६१॥ जो गिरिसुता के गुणों का गान किया करते हैं जो उनका विलोकन करते हैं और ध्यान किया करते हैं अथवा अमल बुद्धि वाले लोग शिवा का स्मरण किया करते हैं जो गौरी उमा भगवती जगन् की एक ही करने वाली है वे इन्दु मोलिके परम पद को प्राप्त किया करते हैं ॥६२॥ समस्त भुवन आदि से विचित्र देहवाली सूर्य अग्नि और चन्द्र के नयना वाली-काल रूपी मुख वाली दीर्घ आठ दिशाओं के भुजाओं के समुदाय वाली मृदुभाव हास से मम्पला को हृदय में जा अम्यचन किया करते हैं वे ही परम घन्य होत हैं ॥६३॥ इशवाकु पूरु-पृषु-राघव पु-धुमार माधाता-हैहय-वयाति और अजामोड जिनमें प्रमुत्त हैं जो कि आरोग्य पन्तति-पृथ्वी जय-सौर्य के लुब्धक थे उन मनुष्यों के द्वारा भगवती भवानी भलीभाँति पूजित हुई है ॥६४॥

योगेश्वरी वेदवती भवानी ब्राह्मी

कुमारी सुभगा च वाणीम् ।

नारायणी हैमवतीमनन्ता

विश्वादिभृता भज भार्गवाऽऽर्याम् ॥६५॥

यशासि विद्या सुखमर्घ्यमायुर्विभूतय
पुष्टिनर्थहानि ।

तद्भक्तिभाजा भविना विमुक्तये
भवन्ति योगानेगता समाधय ॥६६॥

नीचोऽपि मन्दमतिरल्पकुलोद्भवोऽपि
भीरु शठोऽपि चपलोऽपि निरुद्यमोऽपि ।

गौरोपदाब्जयजनार्थमिहोद्यतश्च
सदृश्यते ननु सुरैरपि गौरवेण ॥६७॥

तावत्कृताकृतमपि प्रतिघातमेति
कमार्जितेन विधिनाऽपि कृतोद्यमेन ।

आर्यापिदाम्भुजरजो विरज प्रणम्य
यावन्नवत्स शिरसा ध्रियते जनेन ॥६८॥

विद्या तप कुलजनिर्विधि च शिल्प
शौर्यं मतिश्च विनयस्तु विदग्धता च ।

एते गुणागुणावता परमे च भद्रा
गौरीप्रसादरहितस्य तृणी भवन्ति ॥६९॥

तावन्य सिध्यति रसो न रसायनानि
मन्त्रा महोदयफला विलसत्प्रवादा ।

विलश्यन्ति साधकजना भुवि वर्तिवाश्च
यावन्न तुष्यति कवे वरदा भवानी ॥७०॥

हे भागव ! योगेश्वरी—वेदवती—भवानी—ब्राह्मी—कुमारी—
सुभागा—वाणी—नारायणी—हैमवती—अनन्ता—विश्व की आदि—
भूता—आर्या वा सेवन करो ।६५। उस दवी की भक्ति करने वाले
मनुष्यो ने यश—विद्या—सुख—अर्घ्य—आयु—विभूति—पुष्टि—
अनर्थों की हानि ये सब योगानुगत समाधियाँ हुआ करती हैं ।६६। चाहे
कोई अत्यन्त नीच भी हो—मन्दमति—छोट कुल में उत्पन्न—भीरु—
शठ—चपल—निरुद्यम भी कोई हो किन्तु गौरी के चरण कमल के

भजन के लिये यहाँ सप्तर में उद्यन रहना हो तो देवों के द्वारा भी बड़े गौरव के साथ देखा जाया करता है । १६७। तब तक भी कृत और अकृत भी प्रतिघात को प्राप्त हुआ करता है । कर्म के द्वारा अजित विधाना भी कृत उद्यम वाला हुआ करता है जब तक आर्या के चरण कमलों को प्रणाम करके विरज अर्थात् निर्मल हो जाता है और हे वत्स ! जब तक चरण कमलों को मनुष्य अपने शिर से धारण नहीं किया करता है । १६८। विद्या—तप—भुल—जन्म—विविध सिन्धु—शूरता—मति—विनय—त्रिदग्धता—ये सभी गुण गुणवानों के परम भद्र होते हैं किन्तु इन सबके होने पर भी यदि मनुष्य देवी गौरी के प्रसाद से रहित है तो ये सब कृष्ण के ही समान हो जाया करते हैं । १६९। तब तक न तोर ससिद्ध होता है और रमायन ही सिद्ध हुआ करती हैं । महाद् उदय के पनों वाले मन्त्र और विनय प्रवाद भी सिद्ध नहीं होते हैं और इनके साधन करने वाले मनुष्य और वक्त्रिक इस भ्रमण्डल में क्लेश ही उठाया करते हैं जब तक है वके । वरदा भवानी तुष्ट नहीं हुआ करती है । १७०।

गोत्राह्यणार्चनपराश्च रता स्वधर्मे

ये मद्यमासविमुखा शुचयश्च शैवा ।

सत्यप्रिया सखलभूतहिने रताश्च

तेषा च तुष्ट्यति मदा मुमते मृडानी ॥७१॥

भूतादिभूता विषयेन्द्रियाणा परा

तयाऽन्त वरणात्मन्धाम् ।

म्यदाऽदाया पायमनोवचोभि

मन्तिन्तयाऽऽर्ष्या सखलायदाश्रीम् ॥७२॥

अजामेवा मोहितशुक्लवर्णा

वर्ही प्रजा मृजमाना मुरूपाम् ।

अजो ह्येवो जुषमाणोऽनुगेने

जहारयेना भुक्तभोगामजोऽप्य ॥७३॥

प्रभावमेतं त्रिजगज्जनन्यास्तवोदितं
भार्गव वेदगुह्यम् ।

श्रोतुं यदिच्छा तदुदीरयस्व विप्रेषु
किं वाऽकथनीयमस्ति ॥७४॥

शृण्वन्ति ये वाऽयं पठन्ति मर्त्याः
स्तवान्विताख्यामिदं भवान्याः ।

भुक्त्वाऽक्षयान्कामसुखांश्च तेऽत्र
प्रयान्ति शंभोः परमं पदं च ॥७५॥

एवं मुनीनां गदितं भवान्याश्चरितं शुभम् ।
श्रुत्वा पुरंदरं श्रोमान्भक्त्या परमया द्विजाः ॥७६॥

आराधयामास तदा पार्वती परमेश्वरीम् ।
वरांश्च विविधाल्लब्ध्वा चक्रे राज्यमकण्ठकम् ॥७७॥

हे सुमते ! मुडानी देवी उन्ही के ऊपर सदा प्रसन्न हुआ करती हैं जो गी-ब्राह्मण के अभ्यर्चन में तत्पर रहा करते हैं तथा अपने धर्म में निरत रहा करते हैं—जो मद्य-मांस से सर्वदा पराङ्मुख रहा करते हैं—शुचि-शैव अर्थात् शिव के भक्त हैं तथा सत्य से प्यार करने वाले और सबल भूतो के हित में रति रखता करते हैं ॥७१॥ सतस्त भूतो की आदि भूता-विषयेन्द्रियो में परा अर्थात् विषयेन्द्रियो से परे रहने वाली—अन्तःकरण के आत्म स्वरूप वाली—सदा अक्षय—सकलायं दात्री आर्ष्या का मन-वाणी और शरीर से भलीभाँति चिन्तन करो ॥७२॥ अजा—मेवा—लोहित तथा सुक्ल वर्ण वाली बह्वी-प्रजा को सृजन करने वाली—सुन्दर रूप से सम्पन्न-मुक्त भोगों वाली उमको त्याग देते हैं वो अन्य-अज-एक सेवमान होता हुआ अनुपायन किया करता है ॥७३॥ तीनों जगतों की जननी का यह प्रभाव वेदों में भी परम गोपनीय है और मैंने हे भार्गव ! आपको बतला दिया है । यदि श्रवण करने की इच्छा है तो उसे बतलाओ । विप्रों को बुद्ध भी न कहने के योग्य नहीं होता है ॥७४॥ जो मनुष्य इस वितानास्य नामक भवानी के स्तव का

श्रवण करते हैं अथवा पढ़ने हैं वे यहाँ पर अक्षय काम मुग्ध का भोग
 वरके अन्त ममय में भगवान् शिव के परम पद को प्रमाण किया करते
 हैं । ७५। श्री सूतजी ने कहा—इस प्रकार के मुनिगणों के कहे हुए को
 भवानी के शुभ चरित को पुरन्दर ने श्रवण किया था । हे द्विजो !
 इन्द्रदेव ने श्रीमान् होते हुए भी इमको परम भक्ति के साथ गुना था ।
 और उसी समय में उम महेंद्र देव ने परमेश्वरी पार्वती देवी का समा-
 राधन किया था । उमने देवी से विविध वरदान भी प्राप्त किये थे और
 फिर कण्ठरु रहित राज्य लिया था । ७६। ७७।

॥ तिथि निर्णयादि कथन ॥

तिथिना निर्णय सूत प्रायश्चित्तात्रिधि तथा ।
 वक्तुमर्हसि चास्माक व्यामशिष्य महामते ॥१॥
 शृणुष्वमृषय मर्वे तिथिना निर्णय परम् ।
 अनिर्णीतासु तिथिषु न किञ्चित्कर्म सिध्यति ॥२॥
 श्रोत स्मात्तं व्रत दान यच्चान्यत्कर्म वैदिकम् ।
 निर्णीतासु तिथिष्वेव कर्म कृर्वीत नान्यथा ॥३॥
 प्रायः प्रान्तमुपोष्य स्यात्तिथेर्देवफलेष्पुभिः ।
 मून हि पितृनुष्टयं पिश्य चोक्त मर्हपिभिः ॥४॥
 या प्राप्यास्नमुपेत्यर्कं मा चेत्स्यान्निर्मुहूर्तिका ।
 धर्मवृत्त्येषु मर्वेषु मपूर्णा ता विदुस्तिथिम् ॥५॥
 क्षये पूर्वा प्रवर्तव्या वृद्धौ वायां तयोत्तरा ।
 तिथेस्तस्यान्निर्क्षणायाः क्षयवृद्धत्वकारणम् ॥६॥
 अटम्येनादसो षष्ठी मृतीया च चतुर्दशी ।
 वत्तंभ्याः परममुक्ता अपराः पूर्वमिथिनाः ॥७॥

ऋषियो ने कहा—हे सूतजी ! तिथियो का निर्णय तथा प्रायश्चित्त की विधि आप हम लोगो को बताने के लिये परम योग्य है क्योकि एक तो वैसे ही महती मति वाले हैं और आप महामनीषी व्यासदेवजी के प्रमुख शिष्य है । १। सूतजी ने कहा—हे ऋषियो ! आप सब लोग तिथियो के विषय में जो परम निर्णय है उसका अब मुझसे श्रवण कीजिए । जो तिथियाँ निर्णीत नहीं हैं उनमें किया हुआ कर्म कभी भी सिद्ध नहीं हुआ करता है । १। कर्म श्रुति प्रतिपादित हो चाहे स्मृति प्रतिपादित हो—भले ही कोई व्रत या दान हो और जो कोई भी वैदिक कर्म हो इन सभी को निर्णय की हुई तिथियो में करना चाहिए । इसके विपरीत कभी भी नहीं करना चाहिए । २। दैवफलो की इच्छा रखने वालो के द्वारा प्रायः तिथि के प्रान्त का ही उपवास करना चाहिए । मूल पितृगण की तुष्टि के लिये ही होता है और महर्षियो ने उसे विष्य-इस नाम से कहा है । ४। जिस तिथि शासन काल में सूर्यदेव अस्ताचल की जाते हैं वह तिथि यदि ती । मुहूर्त पाली हो तो समस्त धर्म सम्बन्धी कृत्यो में उस तिथि को सम्पूर्ण ही समझना चाहिए । ५। क्षय में पूर्वा तिथि ही करनी चाहिए और तिथि की वृद्धि में उत्तरा तिथि को मानना चाहिए । तीन क्षण वाली उस तिथि का कारण क्षय और वृद्धि का हो जाना ही हुआ करता है । ६। अष्टमी—एकादशी—चण्डी—तृतीया और चतुर्दशी इन तिथियो को पर से सेयुक्त ही करना चाहिए । और दूसरी तिथियाँ पूर्ण मिश्रित करनी चाहिए । ऐमा शास्त्रो का सिद्धान्त होता है । ७।

बृहत्पा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी ।

कृष्णाष्टमी च भूता च वर्तव्या समुखी तिथि ॥८॥

शुक्ले द्वे द्वे तथा वृष्णे युगादी कवयो विदु ।

शुक्ले पूर्वाह्निके नाये कृष्णे चैवापरार्ह्निके ॥९॥

नागविद्धा तु या पशुी शिवविद्धा तु सममी ।

दशम्यैकादशी विद्धा नोयोष्यैव कथचन ॥१०॥

ज्ञात्वंव सूर्यचन्द्राम्ब्या तिथि स्फुटतरं व्रती ।
 एकादशी तृतीया च पष्टी चोपवसेत्सदा ॥११
 फलमेकादशी हन्ति विहित दशमीयुता ।
 पारण तु त्रयोदश्यामुल्लङ्घ्य द्वादशीव्रतम् ॥१२
 पारणाहे न लभ्येत द्वादशी सकलाऽपि चेत् ।
 तदानीं दशमीविद्धा ह्युपोष्यैकादशी तिथिः ॥१३
 शुक्ले वा यदि वा कृष्णे भवेदेकादशीद्वयम् ।
 उत्तरा तु यतिः कुर्यात्पूर्वामिव सदा गृही ॥१४

वृहत्तया—रम्भा—सवित्री—वह पैल वी—वृष्णाष्टमी—मृता—
 इनको तभी करे जब तिथि समुखी होवे ॥८॥ दो शुक्ल और दो वृष्णा
 को वधि लोग युगादी कहा करत हैं । जो शुक्ल हो उन्हें पूर्वाह्निक में
 करना चाहिए । और जो वृष्ण हो उन्हें अपराह्निक में करना चाहिए
 ॥९॥ जा पष्टी नाम में विद्धा हो और जो मप्तमी शिवविद्धा हो और
 दशमी में विद्धा एवादनी हो तो इनका उपवास कभी भी नहीं करना
 चाहिए ॥१०॥ व्रत करने वाले व्यक्ति को सूर्य और चन्द्र के द्वारा स्पष्ट
 रूप से तिथि का ज्ञान प्राप्त करके एवादनी-तृतीया और पष्टी का
 सदा ही उपवास करना चाहिए ॥११॥ दशमी से युक्त एवादनी
 विहित व्रत का दमन कर दिशा करती हैं । द्वादशी व्रत का उल्लङ्घन
 करके त्रयोदशी में पारण होता है । पारण के दिन में यदि द्वादशी
 सम्पूर्ण न भी मिले तो उस समय में दशमी से वेध पायी हुई एवादनी
 तिथि का ही उपवास कर लेना चाहिए । शुक्ल पक्ष में अथवा वृष्ण
 पक्ष में यदि दो एवादनी होय तो उत्तरा एवादनी व्रत तो यति को
 करना चाहिए और गृहस्थों को गदा पूर्ण ही एवादनी का व्रत करना
 चाहिए ॥१२॥१३॥१४॥

दशं च पीर्णमाम न सप्तमी पितृवासरम् ।
 पूर्वविद्धमनुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥१२

सिनीवाली द्विजैर्ग्राह्या साग्निकैः श्राद्धकर्मणि ।
 बृह् स्त्रीभिस्तथा शूद्रैरपि चान्यैरग्निकं ॥१६॥
 पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता ।
 निशाव्रतेषु च ग्राह्या प्रदोषव्यापिनी सदा ॥१७॥
 उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः ।
 यच्च वा युज्यते विप्रः प्रदोषे हिमरश्मिना ॥१८॥
 सर्वावपोडश नाड्यस्तु परतश्चैव षोडश ।
 पुण्यकालोऽर्कसक्रान्ती स्नानदानजपादिषु ॥१९॥
 आसन्नसक्रमं पुण्यं दिनाद्यं स्नानदानयोः ।
 रात्रौ सक्रमणे भानोर्विपुवक्ष्यते दिने ॥२०॥
 सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम् ।
 न स्वप्याद्यं च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः ॥२१॥

दशं—पौर्णमास—सप्तमी और विंशति वासर इनका जो पूर्व तिथि से विद्वानों नहीं किया करता है वह नरक को प्राप्त किया करता है ॥१५॥ साग्निक द्विजों के द्वारा श्राद्ध कर्म में सिनीवाली का ही ग्रहण करना चाहिए । स्त्रियों के द्वारा और शूद्रों के द्वारा और अनातिक अग्नियों के द्वारा भी बृह का ग्रहण करना चाहिए ॥१६॥ पारण में और मनुष्यों के मरण में तात्कालिकी अर्थात् उस समय में वर्तमान रहने वाली ही तिथि ग्रहण करनी चाहिए—ऐसा बताया गया है । रात्रि काल के जोव्रत हों उनमें सदा बही तिथि ग्रहण करनी चाहिए जो प्रदोष काल में व्यापिनी होवे ॥१७॥ जिसके द्वारा भगवान् भास्कर अस्ताचल को गमन किया करते हैं वही नक्षत्र उपवास में ग्रहण करे । हे विप्रो ! और जो प्रदोष में हिमरश्मि (चन्द्र) के द्वारा युज्यमान किया जाना हो ॥१८॥ सोलह नाडियों के पूर्व और षोडश नाडियों के परे अर्क (सूर्य) की सक्रान्ति में स्नान-ज्ञान और जप आदि कर्मों के लिए पुण्य काल माना जाता है ॥१९॥ जो समीप में ही रहने वाला सक्रमण है । वही पुण्य है और समान-दान में दिन का आधा भाग लेवे

आदि का कर्म करना चाहिए क्योंकि दीक्षा में स्थित होने पर उनको न तो माघ अर्थात् मृत्क का आशीर्ष लगता है और न आत्माओं का सूतक ही होता है ॥२५॥ जिसका देवार्चन शिव में है अथवा जिसका अग्नि परिग्रह होता है तथा ब्रह्मचारी और मत्तियों को शरीर में कभी सूतक नहीं होता है ॥२६॥ जो महत् शक्त से प्रयुक्त हो और जो उपपदा के सहित तिथि ही वह अभावम्या के ही समान होनी है और दान तथा अध्ययन कर्मों में उसे ऐसा ही माना जाया करता है ॥२७॥ अपर पक्ष में मार्ग और पूर्व मन्वा शब्दिता ये तीन चतुरष्ट का होने हैं और सप्तमी आदि में अनुक्रम से हुआ करते हैं ॥२८॥

माघे पञ्चदशी वृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी ।
 तृतीया माघवे शुल्का नवमी कार्तिके सिता ॥२९
 एता युगादय प्रोक्ता सर्वाश्च क्षयपुण्यदाः ।
 सिंहवश्रिकयो कुम्भसक्रान्तिषु (१) भवन्त्युत ॥३०
 क्रमात्कृतयुगादीना युगान्ताश्च महर्षय ।
 श्राद्धपक्षे त्रयोदश्या मघास्त्विन्दु करे रवि ॥३१
 यदा तदा गजच्छाया श्राद्धे पुण्यैरवाप्यते ।
 धनुस्त्रोगीनयुग्माङ्कु पञ्चशीतिमुखा स्मृता ॥३२
 अश्वयुक्शुल्कनवमी द्वादशी कार्तिके सिता ।
 तृतीया चत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥३३
 फाल्गुनस्य त्वमावास्या पीपस्यैकादशी तथा ।
 आपाटस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥३४

माघ में वृष्ण पक्ष की पक्ष दशमी और नभस्य में त्रयोदशी—माघ में शुक्ल पक्ष की तृतीया—कीर्तिक मास में शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि—ये तिथियाँ युगा में आदि मानी गयी हैं और ये सब अक्षय पुण्य प्रदान करने वाली मानी गयी हैं । सिंह और वृश्चिक की सक्रान्तियों में और कुम्भ की सक्रान्तियों में मानी हैं ॥२९॥३०॥ हे महर्षियों ! क्रम से इन युगादि के युगान्त होने हैं । श्राद्ध पक्ष में त्रयोदशी में—मघाओं में

चन्द्रमा और पर मे रवि हो । जब ऐसा हो तब गजसप्त होना है और पुण्यो के द्वारा ही प्राप्त की जाया करनी है । धनु-म्वो-मीन युगाद्ध पडगी ये प्रमुक्त बचाई गई हैं ॥२१॥३२॥ अथ युवन माम की युवन पश की नक्षमी तथा कार्तिक मास के युवन पश की द्वादशी—चैत्रमाम की और भाद्रपद मास की तृतीया—फाल्गुन मासकी अमा-चम्या तथा पीप मास की एकादशी—आषाढ की दशमी और माघ मास की सप्तमी तिथि ॥३३॥३४॥

श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढी च पूर्णिमा ।

कार्तिकी फाल्गुनी चैव ज्येष्ठे पञ्चदशी सिता ॥३५

मन्वन्तरादयश्चैना दत्तस्याकारिका ।

सकृन्तयस्तथा पुण्या भाम्बनो द्वादशैव हि ॥३६

पवंस्वेतेष दानानि धेनुर्जा नादिकानि च ।

प्रयच्छन्नि 'द्वजेन्द्रेभ्यो लभन्त चाक्षया गतिम् ॥३७

पानायमप्येषु तन्निविशित्य दद्यात्पितृभ्य प्रयतो मनुष्यः ।

श्राद्धं कृतं तेन समाप्तहस्यं रहस्यमेतत्पितरो वदन्ति ॥३८

श्रावण की अष्टमी जो कि कृष्ण पक्ष में हो—आषाढी पूर्णिमा जो मिनपक्ष में आती है और कार्तिकी फाल्गुनी और ज्येष्ठ में मिनपक्ष की पचदशी ये मत्र तिथियाँ मन्वन्तर होने की आदि होने की तिथियाँ होती हैं । इन तिथियों में दिये हुए दान अक्षय होने वाले माने जाया करते हैं । सूर्य देव की जो वर्ष में श्राद्ध मकान्तिदा होती है वे तिथियाँ भी परम पुण्य मयी हुआ करती हैं ॥३५॥३६॥ इन उपर्युक्त पर्वों में जो दान दिये जाते हैं और द्विजेन्द्रों को धेनु तथा गैर आदि दिये जाते हैं वे अक्षय गति को प्राप्ता हुआ करते हैं ॥३७॥ इन पर्वों में तियों के माघ विमिश्रित करके अत्र प्रयत्न मनुष्य करके पितृपणों को देना है उनके द्वारा एक महत्तर वर्ष तथा वे श्राद्धों के ही समाप्त होते हैं—ऐसा यह रहस्य पितृपण कहा करके है ॥३८॥

पार्वती के पनि देव भगवान् के माहात्म्य को भतीभाँति जानते हैं । आपने अतिरिक्त दूसरा कोई भी अन्य इमका ज्ञाता नहीं है—ऐसा श्रुति ने कहा है । ४) क्यों कि आप तो ईश की ही दूसरी मूर्ति हैं और परमेश्वर ही हैं । अतएव आप ही महेश की महिमा को जानते हैं । ५) मैं आन ही की शरण म जाता हूँ क्यों कि आप ही वरद रुद्र-सिख और परम कारण हैं । आप तपन हैं—ज्योतियो के भानु हैं और अव्यय ज्योति हैं । आप ही अम्बिका के पनि-ईशान-ज्योतिष्मान् और दिवाकर हैं । ६।७।

हिरण्यवाहु जटिलमोकारास्य प्रचेतसम् ।
 ब्रूहि मे देवदेवश विवाह परमोष्ठिन ॥८॥
 कानी हैभवती गौरी पुनजनि - । त्रिभो ॥९॥
 पृष्ट यत्तत्प्रवद्यामि शगुप्ज मनुजेश्वर ।
 सर्वपापक्षयकर पर ब्रह्म मनातनम् ॥१०॥
 नीलग्रीवो महादेव शरण्या गोशक्तिविराट् ।
 प्रपद्ये त्वा महेशानमग्र सर्व कपदिनम् ॥११॥
 त्वा नमामि पर ह्यन पशुभर्दारमेश्वरम् ।
 गर्वेश स्मरणादेव देहिना मोक्षमाघनम् ॥१२॥
 य एतं नामिभि रतीति प्रात मप्रयतात्मवान्
 तस्य पाप क्षय यानि लक्ष्मीश्चैव पवर्धने ।
 सर्वगोगविनिभुं त्तो जीवेद्वर्षसत नर ॥१३॥

गति न जाता हूँ । १११। मैं पशुभर्ता-ईश्वर-परम हूँ आपको प्रणाम करता हूँ । सब देहधारियों को स्मरण मात्र से ही मोक्ष का साधन हुआ करते हैं । ११२। जो कोई इन नामों के द्वारा सम्प्रपन्न आत्मा वाला होकर प्रातःकाल में स्तुति किया करता है उसके समस्त पाप क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं और लक्ष्मी की वृद्धि हुआ करती है । वह मनुष्य सभी रोगों से निर्मुक्त होकर सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है । ११३।

एव मनोर्वच श्रुत्वा यदुवाच दिवाकर ॥१४॥

तदहं सप्रबक्ष्यामि शृणुष्व मुनिपुंगवा ॥१५॥

या सा दक्षसुता देवी सती नैलोक्यपूजिता ।

त्यक्त्वा दाक्षशरीरं च बभूवाचलकन्यका ॥१६॥

नाम्ना कालीति विख्याता विश्वरूपा महेश्वरी ।

जगच्चैतन्यरूपा च जगच्चैतन्यबोधिनी ॥१७॥

अधिष्ठितरतया काल्या हिमवान्पर्वतोत्तमा ।

पुण्यस्थानमभूद्विप्रा मोक्षद सर्वदेहिनाम् ॥१८॥

सिद्धानां च मुनीनां च गन्धर्वाणां दिवोकसाम् ।

आवासं किन्नराणां च स्मरणात्पुण्यदो नृणाम् ॥१९॥

शिव भर्तारमिच्छन्ती तस्मिन्निरिवरोत्तमे ।

तपस्तप्तुं गता काली शिवा पित्रोरनुज्ञया ॥२०॥

अथास्मिन्नन्तरे दैत्यस्तारको लोककण्ठक ।

जातो दैत्यबुधो वीरो मृत्युरूपो दिवोकसाम् ॥२१॥

श्री सुतजी ने कहा—इस प्रकार के मनुमहाराज वचन को सुनकर भगवान् दिवाकर ने जो कुछ भी कहा था हे मुनि श्रद्धो ! वही मैं अब आप लोगों को बतलाता हूँ आप लोग उसका श्रवण करिये ॥१५॥ जो दक्ष की सुता देवी थी वह सती नैलोक्य के द्वारा पूजित थी । उसने दक्ष से समुत्पन्न शरीर का त्याग करके पुनः, अचल (हिमालय) की कन्या होकर वह समुत्पन्न हुई थी । १६। वह विद्वरूपा महेश्वरी काली इस नाम से विख्यात हुई थी । वह जगत की चैतन्य

रूपा और जगत् के चैतन्य के बोध करने वाली है । १७। उस काली के द्वारा पर्वता म उत्तम हिमवान् अधिष्ठित हो गया था । ह विप्रो ! सब देह धारिया क लिये मोक्ष देन वाना परम पुण्य स्थान हो गया था । वह हिमवान् गिरिराज मिद्धा का मुनिया का- गन्धवा का और देवा का तथा किन्नीरो का आवास स्थल हो गया था और स्मरण करन से मनुष्यों को पुण्य देने वाना था । १८-१९। उम उत्तम गिरिवर म शिव को अपना भर्ता चाहती हुई वह कानी शिवा माता पिता की आज्ञा प्राप्त करके तपस्या करने को चनी गयी थी । इमने अनन्तर इमी बीच म तारक दैत्य हुआ था जा समस्त लोका के लिए बन्धक स्वरूप था अर्थात् महात् दुःपशयी था । वह दैत्य दवा का मृत्यु स्वरूप ही वीर दैत्य कुल म समुत्पन्न हुआ था । २०-२१।

ब्राह्मण तपसाऽऽराध्य वर तस्मादवाप ह ।
 देवा पलायिनारतेन तारकेण बलीयसा ॥२२॥
 देवाना घोषितो याश्च वनादपहृताश्च ता ।
 दुःखगिना मुमत्ता शक्राद्या प्रथितोजस ॥२३॥
 गता सशवा शरण ब्राह्मण त्रिदशेश्वरम् ।
 आगताश्च सुरान्दृष्ट्वा तत्र प्रावाच पद्मज ॥२४॥
 करमात्रत्ता सुरा यूष्मागता वी ममान्तिके ।
 ब्रूत तत्सखल देवा उपाय धर्म्मि व स्फुटम् ॥२५॥
 तारकाद्भयमत्रस्ता शरण देवमागता ।
 यथा मृत्योर्भय देव तस्मान्नस्त्रातुमहमि ॥२६॥
 अपि क्षण सुरश्रेष्ठ न लभामो वय मुखम् ।
 त्रिशद्वर्षमहञ्जाणि हृत्तारकपास्तदा ॥२७॥
 वहनिगमत्रिभ्रान्त युद्धनामीत्पुदाग्णम् ।
 तयार्जा न जितस्तेन देवदेवेन चक्रिणा ॥२८॥

तन्मया व द्वारा ब्रह्माग्नी की आराधना करके उनग उगरी वरदान प्राप्त किया था । उन वनी तारक व देवा को भगा दिया था । २२। २३।

पी जो स्त्रियाँ थीं वे मय दुग् देता के वन से अरहून वर लिया था ।
 इन्द्र आदि प्राच्य और याने मय दुग् की अग्नि में गुनगुप्त हो गये थे
 १२३। इन्द्रदेव व महिष तार देवता देवों ने ईश्वर ब्रह्माजी की शरण में
 गये थे । ब्रह्माजी ने जब समागत हुए देवों को देना था तो वे उनमें बोले
 १२४। श्री ब्रह्माजी ने कहा-हे सूरगणों ! आप लोग जिस कारण से मेरे
 समीप में समागत हुए हैं। हे देवों ! यह सब मुझे आप बतलाइये जिसने
 मिर्मि आपको स्पष्ट कोई उपाय बतलादूँ ॥२५। देवों ने कहा-हम लोग
 तारक दैत्य के भय से डरे हुए हैं और अब आपकी शरणगति
 उपस्थित हुए हैं । हे देव ! उससे मृत्यु जैसा भय है उससे आप रक्षा
 करने के योग्य होते हैं ॥२६। हे सुरश्रेष्ठ ! हम लोग एक क्षण मात्र भी
 सुख प्राप्त नहीं करते हैं अर्थात् एक क्षण को भी हमको चैन नहीं
 मित्रता है । जब समय में तीस सत्स्र वर्ष तब अहनिदा निरन्तर-परम
 दारुण युद्ध हरि और तारक इन दोनों का हुआ था । तो भी देवों के
 देव चकी प्रभु ने उसको नहीं जीता था अर्थात् इतने लम्बे समय तक
 युद्ध होने पर भी विष्णु भगवान् ने जब पर विजय प्राप्त नहीं की
 थी ॥२७।२८।

अवध्योऽयोमिति ज्ञात्वा ययौ त्यक्त्वा महोदधिम् ।
 भ्रान्तचित्तस्तदा शार्ङ्गी गतस्तूर्णं महाबल ॥२१॥
 वयमप्यवमेव हि भीमास्त्वा शरण प्रभो ।
 जागतास्त्राहि नस्तस्मात्मुखदो भव पञ्चज ॥३०॥
 शृणुध्व मेऽमरा सर्वा युष्माक सुखद महत् ।
 योऽसौ ह्यस्तारकारयस्तताप परम तप ॥३१॥
 तस्य दैत्यस्य तनसा दह्यमान चराचरम् ।
 दृष्ट्वा तद्भरदानार्थं गतोऽह तारकान्तिकम् ॥३२॥
 उक्त मया वर वत्स वरयेति महासुर ।
 अग्रवीहेत्यराजो मामभिवन्द्य कृताञ्जलि ॥३३॥

अवध्योऽह सुरै सर्वैर्विष्णवाद्यैः पद्मसभव ।

भवाम्यह यथा देव तथा त्वा देहि मे वरम् ॥३४॥

एवमस्त्वित्यह तस्मै वर दत्त्वा मुरोत्तमा ।

अन्यच्चोत्त इह तार्थं व कम्माद्वध्योऽसि तद्वद ॥३५॥

यह तारक दैत्य वध करने के योग्य नहीं है—यहां समझाकर महान् बल वाले शार्ङ्ग भगवान् भ्रान्त चित्त वाले होकर महा देवि का त्याग करके वहां से क्षीघ्र ही चले गये हैं । २२। हे प्रभो ! इसी प्रकार मैं हूँ भी भयभीत हुए आपकी शरण में नमामग्न हुए हूँ । हम लोग आपके समीप समुपास्थित हो गये हैं । हे पद्मज ! आप हमारी रक्षा कीजिए और हमको सुख प्रदान करने वाले होइये । ३०। श्री ब्रह्माजी ने कहा— हे अमरगणो ! आप सब लोग मेरी बात सुनिये । मैं तो आपको महान् गुण देने वाला हूँ । जो यह तारक दैत्य है उसने परम तप किया था । १। उग दैत्य के तप से यह समस्त चराचर दृश्यमान हो रहा है । उसको तप करते हुए देगकर उगको वरदान देने के लिये मैं स्वयं तारक के गभीर में गया था । २। हे बल ! मैंने उगसे कहा था— महान् गुर वरदान माँग लो । उग दैत्यगज ने मुझको प्रणाम करके हाथ जोड़कर मुझसे बोला था । ३। तारक ने कहा— हे पद्म सम्भर ! मैं विष्णु जादि ममत्त नुरो से द्वारा तदध्य हो जाऊँ । मैं हे देव ! तेसा हो जाऊँ । तेसा ही वरदान आप मुझको प्रदान कीजिए ॥३४॥ हे मुरोत्तम ! तेसा शक्या—यह मैंने उगसे वरदान दिया था आपने तिनके तिन मैंने अन्य बात भी नहीं थी तिन पुर यह बात श्री तिन एतदा वय तिमम होता चाहिण । ३५।

याज्य देवा धिदेवश वषर्दी नीतलोहित ।

तस्य रेव मुरा पीन्वा मगर्भा विष्णुना गत ॥३६॥

भविष्यन्ति तथा जानान्मृत्युरिटो न याजत ।

तत्पार्श्वेऽस्वनि तनद्वोत्तमा ततोऽह् मेरुमूर्धेति ॥३७॥

मृच्छन्त मरण तन्माच्छन्त न संदेहिनाम् ।

चिन्तयन्तुमातान् मरण पीरशतम् ॥३८॥

मक्त्वा हरात्मन देव त्रैलोक्ये सचराचरे ।
 न त पश्यामि भो देवास्तारक यो वधिष्यति ॥३६॥
 ब्रह्माणो वचन श्रुत्वा सहस्राक्ष शचीपति ।
 कथं भविष्यतीत्येवमालोच्य मनमा द्विजा ॥४०॥
 गुरुणा देवैर्वा सावै पुनरेव स देवराट् ।
 हरस्यैव सुतोत्पत्तावुपायश्चिन्त्यता सुरा ॥४१॥
 इत्युदत्त्वा प्रययुर्देवा शक्राद्या ब्रह्मणा मह ।
 मेरोरत्तरत शृङ्ग यत्र तिष्ठति माधव ॥४२॥
 गुप्तरितष्टत्यमेयात्मा तारकाद्भयपीडित ।
 सब्रह्मकान्पुरान्दृष्ट्वा हृष्ट प्रोवाच माधव ॥४३॥

तारक ने कहा—जो यह देवाधिदेवगर्षदी नोन लोहित प्रभु हैं उनके रेत को विष्णु के साथ सुरो ने पीकर वे सब सगर्म हो गये हैं । इसके पश्चान् जात हुए से मृत्यु अभीष्ट है । दूमरा कोई भी नहीं है । ऐसा ही होवेगा—यह कहकर मैं इसके उपरान्त मेरु की शिखर पर गमन कर गया हूँ । सब देहधारिया के गरुष्य—विश्वेश्वर—उमाकान्त लोक का श्रेय करने वाले भगवान् शकर के समीप गया या । ८। चराचर त्रैलोक्य मे हरात्मक देव को छोड़कर हे देवो ! मैं उसको नहीं देखता हूँ जो इस तारक का वध कर देगा । तात्पर्य यह है कि शङ्कर के शिवाय अन्य कोई भी देव नहीं है जो तारक को मार देवे । इस प्रकार के ब्रह्माजी के वचनों को सुनकर शचीपति सहस्राक्ष ने कहा— यह कैसे होगा—यही मन से विचार करके हे द्विजो गुरुजी के और अन्य देवों के गाय देवों का राजा पुन कहा—हे सुरो ! अब तो आप लोग यही विचार करो कि भगवान् हर के मुत की उत्पत्ति हो जावे । यह कहकर समस्त देवगण ब्रह्माजी के ही साथ म मेरु पर्वत के उत्तर की ओर शिखर पर चने गये थे जहाँ पर माधव स्थित रहा करते हैं । वे अमेय आत्मा वाले प्रभु तारक के भय मे पीडित होकर गुप्त रूप से ही बड़ा पर अवस्थित रहा करते हैं । माधव ने जब ब्रह्माजी के साथ

मे से गणदेवों को देगा तो बहुत ही हर्षित होकर बोले—१३६।४०।
४१।४२।४३।

उपायश्चिन्तितः कोऽत्र ववार्थं तारकस्य हि ।
अरितं चेदुच्यता देवा. शर्शं नो जायते यथा ॥४४॥
एव विष्णोर्वच. श्रुत्वा ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः ।
यथोक्तं ब्रह्मणा तेभ्यस्तथोक्तं विष्णवे सुरैः ॥४५॥
किमिदानीं तु कर्तव्यमिति सचिन्त्य देवराट् ।
सोऽस्मरन्मनसा काममजेयमसुरैः सुरैः ॥४६॥
शक्रस्य चिन्तितं ज्ञात्वा कामो रतिपति. स्वयम् ।
शचीपतिं समागम्य प्राह पुष्पधनुर्धर ॥४७॥
किं कार्यं त्रिदशश्रेष्ठ कर्तव्यं किं मया प्रभो ।
तीव्रेण तपसा को हि स्थानमीहेत तावकम् ॥४८॥
किं वा काचित्तवाऽऽदेशं कर्तुं नेच्छति चाङ्गना ।
ता कामिनीं करोम्यद्य तव ध्यानपरायणाम् ॥४९॥

भाष्य प्रभु ने कहा—इस विषय में इस तारक के घट के लिये क्या उपाय सोचा है ? यदि कोई भी ऐसा उपाय हो तो हे देवो ! बतलाइये जिससे आपका कल्याण हो जावे ।४४। श्रीमूतजी ने कहा— इस प्रवार में भगवान् विष्णु के वचन को सुनकर ब्रह्मा आदि सब श्रेष्ठ गुरों ने जैसा कि ब्रह्माजी ने उनमें कहा था वह उन्होंने विष्णु के लिये वह दिया था ।४५। देवराज ने यह सोचा था कि अब क्या करना चाहिए । उसने मन में स्मरण किया था कि यह कामदेव असुरों और गुरों के द्वारा अजेय ही है ।४६। इन्द्रदेव की इस चिन्ता का विचार करके रतिवा पति स्वय ही दाची के पति के समीप में उपस्थित हो गया था और वह गुरों के धनुष को धारण करने वाला कामदेव ने कहा—हे देवो ! मे परमश्रेष्ठ ! हे प्रभो ! क्या कर्तव्य मुझे करना चाहिए । यह कौन है जो तीव्र तप से आपका स्थान को प्राप्त करना चाहता है ।४८। अथवा कोई अङ्गना ऐसी है जो आपके आदेश करना

नहीं चाहती हो । तो मैं उठी वामिनी को ऐसा बना सबता हू जो आपके ही ध्यान परायण हो जाये ॥४६॥

न कश्चिदरित मे सूरो न माग्नी न च पण्डित ।
 व्यापयाज्ञि जगत्कृत्स्न ब्रह्माद्य स्तम्बगोचरम् ॥५०॥
 अथ किं बहुनोक्तेन दुर्वासा वा महामुनि ।
 सोऽपि विद्ध पतत्यागु मद्वाणैर्मरुता पते ॥५१॥
 जानाम्यह रतेर्माथ सामर्थ्यं पुष्पधन्विन ।
 नून हि सर्वकार्याणि त्वत्त सिद्ध्यन्ति नान्यथा ॥५२॥
 गच्छ पार्श्वं महेशस्य सुरार्णा हितकाम्यया ।
 चित्त हरस्य सक्षोम्य पार्वत्या सगम कुरु ॥५३॥
 एतधुव हि मे कार्यमिष एव मनोरथ ।
 एतस्मात्कारणात्त्व हि स्मृत पुष्पधनुर् ॥५४॥
 एव शक्रवच श्रुत्वा वलमान्मकरध्वज ।
 मथो सखा रतीयुक्त पञ्चवाणो मनोभव ॥५५॥
 यत्राऽऽस्ते भगवाञ्शभुर्ध्यानहृष्ट्या समाहित ।
 निष्कम्प स्वात्मनाऽऽत्मान चिन्तयानो महेश्वर ॥५६॥

मेरे सामने कोई भी ऐसा शूर नहीं है न कोई मानी है और न कोई ऐसा पण्डित है । मैं तो सम्पूर्ण जगत् में व्यापक रहता हू ब्रह्मा से आदि लेकर जो भी कुछ स्तम्ब पर्यन्त है मैं सभी में व्यापक रहता हू । ५० हे मरुता पते ! इस विषय में अत्यधिक कथन निष्प्रयोजन ही है । अथवा महामुनि दुर्वासा बहुत शक्तिशाली हैं किन्तु वे भी मेरे वाणों से पीछे ही विद्ध होकर गिर जाया करते हैं ॥५१॥ इन्द्रदेव ने कहा— हे रति के नाथ ! पुष्पों के धनुर्गारी आनकी सामर्थ्य मैं सूत्र जानता हू । यह गवथा निश्चिन्त है कि आपसे ही समस्त कार्य सिद्ध हुआ करते हैं अन्य किसी भी साधन से असम्भव ही है ॥५२॥ अब तुम सूरों की हित कामना के लिये महेश भगवान् के पास में जाकर पहुँच जाओ वहाँ पर

तुम्हारा इतना ही कर्त्तव्य है कि महादेवजी के चित्त में क्षोभ करदो कि पार्वती का सङ्गम करो ॥१३॥ मेरा यही कार्य है और मेरा यह ही मनोरथ है । हे पुष्पधनुर्धर ! इसी कारण से मैंने तुम्हारा स्मरण किया था ॥१४॥ इस रीति से महेन्द्र के वचन को सुनकर बलवान् मकरध्वज—मधुसूता सया—रति से युक्त—पाँव बाणों वाला—मनोभव ने जहाँ पर भगवान् राम्भु ध्यान की दृष्टि से समाहित थे और अपनी आत्मा से आत्मा का चिन्तन करने हुए महेश्वर निष्कम्प थे उनको देखा था । ॥१५॥१६॥

प्राप्य शभोरायतनमपश्यन्मकरध्वज ।
 शैलादि द्वारदेशे तु मेरुशृङ्गमिवोदितम् ॥१७॥
 सर्वाभरगमयुक्त सहस्रादित्यवर्चसम् ।
 शूलहन त्रिनेत्र च चन्द्रावयवभूषणम् ॥१८॥
 वज्रपाणिं चतुर्बाहुं द्वितीयमिव शबरम् ।
 त दृष्ट्वा मदनो विप्राश्चित्ताक्रान्तस्तदाऽभवत् ॥१९॥
 कथं प्रविश्य वक्ष्यामि शम्भु त्रिदशवान्दतम् ।
 कथं कार्यं करिष्यामि सुराणां प्रीतिवर्धनम् ॥२०॥
 चिन्तयित्वा तु बहुधा वञ्चनार्थाय नन्दिन ।
 वायुरूप तन उृत्वा मुगन्ध मृदुशीतलम् ॥२१॥
 प्रविवेश तदा वामो दक्षिणा दिशमाश्रयम् ।
 तेन याम्या दिशि गतो वायुर्वाणि सुग्रावह ॥२२॥
 अद्यापि वारणात्मोऽयं मुगन्धो मृदुशीतल ।
 अपश्यत्तत्र मदन मूर्ध्नि गोटिमिवोदितम् ॥२३॥

मारुध्वज ने भगवान् राम्भु के जायान में पशुपत्त देता था कि द्वार देश में मेरु को शिखर के समान ही उगा शैलदि स्थित थे जो धामरणा में गमगिया—मरुत मूर्त्तों के समान यषम् वाते—द्वार में त्रिसूत्र त्रिनेत्रों से मधुसूता—रति हाथ में धारण त्रिनेत्र दृष्ट—

चन्द्रवला के मस्तक भूषण वारे—चार भुजाओ से युक्त दूसरे शरर की ही भांति विराजमान थे । ३ विप्रो ! उस शैलादि का देखकर मदन उस समय में चिन्ता से समाक्रान्त हो गया था । ५७।५८।५९॥ कामदेव को यही चिन्ता हुई थी कि मे किस प्रकार से अन्दर प्रवेश करके देवा से वन्दित भगवान् शम्भु को बोलूंगा । और सुरो की प्रीति का बढ़ाने वाला कार्य करूंगा । ६०। नन्दी के वञ्चन करने के लिये बहुत सी रीतियो से सोच करके उस मदन वायु का स्वरूप धारण किया था जो परम सुन्दर गन्ध वाला—मृदुल और शीतल था । ६१। उस समय मे कामदेव ने दक्षिण दिशा का आश्रय ग्रहण करके अन्दर प्रवेश किया था । उसके द्वारा याम्य दिशा मे जाकर वहाँ पर सुख देने वाली वायु बहान करने लगा था । ६२। आज भी इसी कारण से वह यह सुगन्ध मृदु और शीतल वायु है । वहाँ पर मदन ने उदित करोड़ों सूर्यो के सदृश भगवान् शम्भु को देखा था । ६३।

सहस्रनयन देव सहस्रतनुमीश्वरम् ।
नीलकण्ठ मुधाभास शुभ्रखण्डेत्बुधारिणम् ॥६४॥
जगदुत्पत्तिसह्यारम्यित्यनुग्रहकारिणम् ।
शुद्धस्फटिकसकाश विद्युन्मामिव पावकम् ॥६५॥
रण्डमालाचित देव सूर्यमालाविभूषितम् ।
अनौपम्यमसादृश्यमप्रमेयमनाकुलम् ॥६६॥
जयञ्चक्षुर्जगद्बाहु जगच्छीर्षं जगन्मयम् ।
जगत्पाद जगच्छ्रोत्र मूढमस्थूल परात्परम् ॥६७॥
रुद्र सर्वं पशुपतिमुग्र भीम भव द्विजा ।
महादेव महेशानमष्टमूर्ति जगत्पतिम् ॥६८॥
व्यक्ताव्यक्त त्रिलोकेश पूजित च सुरासुरं ।
अथ दृष्ट्वा महादेव प्रहृष्टो मनरध्वज ॥६९॥
निवृप्य चापमापूर्य स्थित पश्यन्भवोद्भवम् ।
एव स्थितस्य क्रामस्य सहस्राण्ययुतानि पट् ॥७०॥

भगवान् शम्भु को स्वरूप जो कामदेव ने वही पर देना था वह महस्र नयनों से युक्त था और ईश्वर महस्र शरीर वाले देव थे—नीले कण्ठ वाले और मुग्धा मान तथा परम शुभ्रचन्द्र की कला को मस्त कपट धारण करने वाले थे । इस जगत् की उत्पत्ति में हार तथा स्थिति का अनुग्रह करने वाले थे । शम्भु का स्वरूप शुद्ध स्फटिक मणि के समान स्वच्छ एव घूमरहित पावन व मदस्र तेज युक्त था । ६४।३५। नरमुण्डों की मालाओं से चित्रदेव सूर्यों की मानाओं से विभूषित शिव का स्वरूप था । उन भगवान् शम्भु का स्वरूप एसा विलक्षण था कि अनुपम सादृश्य से मुक्त-अप्रमेय एव अनाकुल था । वे इस जगत् के नेत्र थे—जगत् बाहु थे—जगत् शीर्ष और जगन्मय थे । जगत् पाद-जगत् श्रोत्र-सूक्ष्म एव स्पृन्त तथा परमे भी पर थे । ६६।६७। रद्रशर्व-पशुपति-उग्र-भीम-भव गहसान-अष्टमूर्ति-जगत्पति-व्यवनाव्यवन-तीनों लोगों के ईश और सुर-असुरों के द्वारा पूजित महादेवजी का दर्शन करके मकरब्रज बहुत प्रसन्न हुआ था । ६८।६९। मदन ने आप धनुष निवालकर उस चाप को आवूरित किया था तथा इस मसार को उत्पन्न करने वाले भगवान् शम्भु को देवत हुए वह स्थित हो गया था । इसी तरह से स्थित हुए कामदेव को छे महस्र अयुत वर्ष व्यतीत हो गये थे । ७०।

गतानि तस्य वर्षाणि मुनीन्द्रादिचराजन्मन ।

तत म भगवान्देवो नेत्रे उन्मील्य शङ्कर ॥७१॥

अपश्यदिरिजा देवीमग्रे विश्वेश्वर निव ।

गिरीन्द्रपुत्रो तपस मि) प्रमक्ता नज्जयाऽन्विताम् ॥७२॥

दृष्ट्वा मिमत्रेति विक्पबुद्ध्या कामोऽज्यमत्रेति विचिन्त्य शत्रं ।

शात्वा त्रिनोक्य प्रविकृष्टचाप नेत्राग्निनाऽमी मदनोऽपि दग्ध ॥७३॥

हे मुनीन्द्रा ! मन में समुत्पन्न हान वात मदन को दग्गी तरह से स्थित रहते हुए बहुत म वर्ष व्यतीत हो गये थे । हमने परचाय भगवान् शम्भु देव ने नेत्रों का उन्मीलित करके विश्वेश्वर देव न आगे देवी गिरिजा को देना था वह गिरीन्द्र की पुत्री पार्वती तप में स्थित थी और मन्त्रों से मगन्धित थी । ७१।७२। उन्मीलित देना था कि यह यही पर बना है और विकल्प बुद्धि से विचार किया

था कि यह तो कामदेव है । भगवान् शर्व ने यह विचार कर उस काम को चाप चढाये हुए देखकर और भलीभाँति जानकर उनने अपने तीसरे नेत्र की अग्नि से उस मदन को दग्ध कर दिया था । ७३।

॥ महादेव वर प्रदान ॥

दग्धे रतिपती शभ्रुवाचाचलकन्यकाम् ।

किमह तव देवेशि करोमि मनासि स्थितम् ॥१॥

वर ब्रूहि महादेवि दास्याभ्यद्य सुरेश्वरि ।

मयि प्रसन्ने देवेशि किं दुर्लभतिहास्ति ते ॥२॥

हते तु कामे वद नीलकण्ठ वरेण किं देव करोमि तेऽद्य ।

विनैव कामेन न चास्ति भाव स्त्रीपुंसयोभास्करकोटिकल्प ।३

भावस्य हाने सुखमनिकर्ष कथं भवेद्ब्रूहि सुरेश्वरवन्द्य ।

उवाच भूयो मदनान्तकारी देहे न चाह मदन सुनेत्रे ॥

नेत्रस्य चैव ज्वलनात्मकस्य स्वरूपमेत्तादूद किं करोमि ॥४॥

वालिति मत्वा भव भूतनाथ व्यामोह(मुह्य)से किं त्वमनिन्द्यवर्य ।

स्वतन्त्रष्टित्यदि वा तवैषा तदा दहेसामपि चाग्रसस्याम् ॥५॥

यदि विद्वेश्वरो देवो ब्रह्मादीना हर शिव ।

प्रतारण प्रवृत्ताश्चेत्को निवारयितु क्षम ॥६॥

नाह प्रतार्या भगवस्त्वामह शरण गता ।

गतिर्नान्याऽस्ति मे देव तस्मात्मा त्रातुमर्हसि ॥७॥

श्री मूतजी ने कहा—रति के पति कामदेव के दग्ध हो जाने पर भगवान् शम्भु ने अञ्जल कन्या पार्वती से कहा था—हे देवेशि ! मैं आपका मन म म्पित किस मनोरथ को पूर्ण करूँ ? हे महादेवि ! आप अब मुझमें वरदान माँग लो । हे सुरेश्वरि ! मैं आज जो भी आप याचना करूँगे दे दूँगा । हे देवेशि ! आप यह समझ लो कि मेरे प्रसन्न हो जाने पर इस समार म कुछ भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहा करता है तो फिर आपको भी किसी की भी कमी नहीं रहेगी । १।२। श्री पार्वती देवी ने कहा—हे नील कण्ठ ! कामदेव के निहत हो जाने पर मैं आज आपसे दिये हुए वरदान से क्या करूँगी । बिना कामदेव के रहे स्त्री-पुंगव का भास्कर कोटि कल्प भाव ही नहीं होता है । ३। हे गुरेश्वर ! भाव की हानि से गुण का गनिकर्ष बँस होगा—यह आप ही मतलाइये ।

इसके अनन्तर मदन के अन्न कर देने वाले प्रभु ने कहा—हे सुनेत्रे ! मैं और मदन देह में नहीं हूँ । मेरा जो ज्वननात्मक नेत्र है उमका ही यह स्वरूप मैं क्या कहूँ । ४ देवी ने कहा—हे भूतो के स्वामी भव ! आप तो अनिन्द्य वर्ण हैं । आप मुझको याना मानकर क्यों व्रामोहित कर रहे है ? यदि आपकी ऐसी ही स्वतन्त्र वृत्ति है तो मैं जो आपके सामने न स्थित हूँ मुझको भी आप दग्व कर दीजिएगा । यदि विश्व का स्वामी देव हर शिव ब्रह्मा आदि देवों के भी प्रनाग्ण मे यदि प्रवृत्त हैं तो फिर आपको निवारित करने में कौन गमर्थ हो सकता है । ५ ६। हे भगवान् ! मैं आपके द्वारा प्रतारण करने याग्न नहीं हूँ । मैं तो आपकी शरण में प्राप्त हो गयी हूँ । हे देव ! मेरी अन्य कोई भी गति नहीं है । इमलिये आप मेरा परित्राण करने के योग्य हांते है । ७।

त्वमेव चक्षुर्जगतस्त्वमेव वचसा पति ।

त्वमेव धाता जगतो विधाता विश्वतोमुखः ॥८॥

नमाम्यह देववरं पुराणशुपेन्द्रवेधोमरराजजुष्टम् ।

शशाङ्कसूर्याग्निमय त्रिनेत्र ध्यानाधिगम्य जगतः प्रकाशम् ॥९॥

त्वा वाङ्मनयाधारमनन्तवीर्यं ज्ञानार्णव चैव गुणार्णव च ।

परापर धामनिधि सुसूक्ष्मनादिमव्यान्तविहीनरूपम् ॥१०॥

हिरण्यगर्भं जगत प्रसूतिं नमामि देव हरिणाङ्कचिह्नम् ।

पिनाकपाशाङ्कुशशूलहस्त कर्पादिन मेघमहस्त्रघोषम् ॥११॥

तमालकण्ठ स्फटिकावदात नमामि शशु भुवनैकसिंहम् ।

दशार्धवक्त्र सुरमिन्धुशीर्षं शशाङ्कचिह्नं नरसिंहदारणम् ॥१२॥

त्वा नमामि शरभरूपधरोरगेन्द्रराजहार चलद्वलयभूषण हरम् ।

चरविभुधमुकुटाचिताङ्घ्रि नमामि हि हरिचर्मवसनं त्वाम् ॥१३॥

यददार निर्गुणमप्रमेय यज्ज्योतिरेक प्रवदन्ति सन्न ।

द्रगम देवमनन्तमूर्ति नमामि मूढम परम पवित्रम् ॥१४॥

नमामि रद्र प्रथमाधिनाथ घर्मासनस्थ प्रवृत्तिद्वयस्थम् ।

तेजोनिधि वालगशाङ्कमौलि कालेन्धन वह्निरखोन्दुनेत्रम् ॥१५॥

हे भगवन् ! आप ही इस जगत् के नत्र हैं और आप ही वाणिजा के स्वामी हैं—आप ही दग जगत् के धाता हैं और आप विश्वतोमुख विधाता हैं । ८। मैं परम पुराण देव वर को जो उगेन्द्र देवा और देवों के द्वारा तेषित चन्द्र-सूर्य और अग्नि भय तीन नेत्रों वाले—ध्यान के

द्वारा अधिगमन करने के योग्य और जगत् के प्रकाश है उन आपकी नमस्कार करती हूँ । ६। आप इस वाङ्मय के आधार है—अनन्त वीर्य वाले है—ज्ञान के सागर है—गुणों के अणु हैं—परसे भी पर है—धाम के निधि है । आप सुसूक्ष्म हैं और आदि-मध्य और अन्त से विहीन रूप वाले है ऐसे आपको मैं प्रणाम करती हूँ । १०। आप हिरण्य गर्भ हैं—आप इस जगत् की प्रसूति हैं—हरिणाङ्क (चन्द्रमा) के निह्न वाले है ऐसे देव को मैं नमस्कार करती हूँ । आपके हाथों में पिनाक-पाश, अक्षुध, मूल धारण किये हुए है—वर्षा और सहस्रों मेघों के समान घोष वाले हैं—आप तमाल के सहस्र नीलरुण्ड वाले तथा स्फटिक मणि के समान अवदात हैं ऐसे भुवन के एक सिंह आपको मैं प्रणाम करती हूँ । आपके पाँच मुख है—युरामिन्धु (गङ्गा) को मस्तक पर धारण किये हुए है—चन्द्र के चिह्न वाले है तथा गरुडिह के समान परम दारुण है । आप शरम रूप के घारी उरगेन्द्र राज के हार धारण करने वाले—चत्रायमान बलय भूषण से युक्त हर आपकी सेवा में मेरा प्रणाम अर्पित है सिंह के चर्म के बसन वाले तथा थोष्ट देवों के मुकुटों से सम-चित्त धरण वाले आपको मैं प्रणियात करती हूँ । जिनको मरुत पुरुष अधर-निर्गुण-अप्रमेय एक ज्योति कहा करते हैं उन दूरगम-अनन्त गति सूक्ष्म धरम पवित्र-धर्मों अधिनाथ धर्म के आमन पर त्रिराजमान-परम पवित्र प्रकृतिद्वय में स्थित रुद्रदेव को मैं प्रणाम करती हूँ । तैम के निधि-बालचन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाले काल के ईधन और अग्नि रवि और चन्द्र के तीन नयों वाले आपकी सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित है । १५।

प्रसन्नोऽयाद्रवीद्देवी वाली त्रिपुरहा हर ।

वरयस्व वर देवि ददामि तव सुव्रते ॥१६॥

जीवत्वय महादेव कामो लोकप्रतापन ।

विना कामेन भगवन्नाह याचे कथवन ॥१७॥

भवत्वन्ङ्गो गदनस्त्वत्प्रियार्थं सुलोचने ।

तेन रूपेण लोचन्त क्षोभणाय भवत्वलम् ॥१८॥

तदोत्थितो वायुरिवाप्रमेयस्त्वन्ङ्गरूपो मकरध्वजश्च ।

हरस्य वाक्पादुमयोरितश्च सचापयाण मरतिर्बभूव ॥१९॥

इति प्रीत्या महेशानी वर दत्त्वा हर स्वयम् ।

स्मरम्य पञ्चवाणम्य तत्र वान्तरधीयत ॥२०॥

य पठेदिममध्याय भक्त्या देवम्य म निधी ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्म लोके महीयते ॥२१॥

सूतजी ने कहा—इस प्रकार की स्तुति करने के बाद में त्रिपुर दैत्य के हान करने वाले भगवान् हर परम प्रसन्न होकर वाली देवी से बोले—हे मुझे । हे देवि । आप वरदान मांगने । मैं आपसे जो भी चाहोगी प्रदान कर दूंगा । १६। देवी ने कहा—हे महादेव । गर्व प्रथम तो मैं यही चाहती हूँ कि यह कामदेव जीवित हो जाय जो लोकों को प्रतपन कराते वाला है । हे भगवन् । कामदेव के जीवित हुए बिना मैं तिमि भी प्रवार म बुद्ध भी याचना नहीं करती हूँ । १७। ईश्वर ने कहा—हे मुनोचने । आपका प्रिय करने के लिए मदन अनङ्ग हो जावेगा । यह उषी बिना अङ्ग वाले स्वल्प के ही द्वारा लोका के हृदय म क्षोभ समुत्पन्न करने के लिये पयापगति वाला हो जायगा । १८। उगी समय म वायु की तरह में अप्रमेयनाय है य उत्थित हो गया था उत समय म वह मरुच्छ्रज बिना अङ्ग के स्वरूप वाला ही था । भगवान् हर के वाक्य स उमा देवी के द्वारा ईरित वह मदन चाप आर घाण के सहित और गति य माय म रहने वाला हा गया था । १९। दूगरी गीति म भगवान् महेशान तर स्वय गीति के माय वरदान देकर तथा यय वाण समर की आङ्ग के स्वरूप म जीवित करके वही पर अनाहित हो गये थे । २०। जो पुत्र्य इम अध्याय का भक्ति के माय पाठ किया करता है और देवेश्वर की गन्धिपि म पढ़ता है । वह सब पापों मे छुटकारा प्राप्त करके अन्त मे ब्रह्मनात म प्रतिष्ठा प्राप्त करता है । २०। २१।

॥ महेश्वर ज्ञान कथन ॥

नङ्कगच्च यत्र कञ्चन देवी त्रैलोक्यरूजिता ।

उतः भगवती तानी मप्रत्या त्रिमन्दिरम् ॥१॥

आव्यदित्रिगजम् ॥ च द्वागिर्निर्गतानाम ।

दीपयन्ती जगत्पथं त्रिभुवनगतप्रभाम् ॥२॥

अङ्गे वाली मगाभाय त्रिमयाभाय च द्विजा

उवाच परमा श्री या विदानी पर्वेश्वर ॥३॥

तपसा तोषितं श भुरमेयात्मा सनातन ।
 कीदृशश्च वरो लब्धस्त्वया देवान्महेश्वरात् ॥४॥
 तपसाऽऽराध्य विश्वेश गोपतिं शूलपाणिनम् ।
 तमेवेश पतिं लब्ध्वा कृतार्थाऽस्मीति मे वर ॥५॥
 भेदोऽस्ति तत्त्वतो राजन्न मे देवान्महेश्वरात् ।
 सिद्धमेवाऽऽवयोरैक्य वेदान्तार्थविचारणात् ॥६॥
 यदेतद्देश्वर तेजस्तन्मा विद्धि नगेश्वर ।
 सर्वाभूतात्म शान्त विश्व यत्र प्रतिष्ठितम् ॥७॥

श्री मूतजी ने कहा—श्री लोक्य की पूजित देवी पार्वती ने भगवान् शङ्कर से वरदान प्राप्त करके वह भगवती उमा काली अपने पिता के मन्दिर में प्राप्त हो गयी थी । १। चन्द्रमा की कान्ति के सदृश मुग्न वाली उम उमा को गिरिराज हिमाचल ने देखा था जो वि सम्भूण जगत को दीप्त कर रही थी और विद्युत् के समान प्रभाव वाली थी । २। हे द्विजो ! गिरिराज ने अपनी गोद में काली को बिठाकर उसके शिर पर आघ्राण किया था । फिर पर्वतेश्वर ने परमप्रीति के साथ विश्वेश्वरी से पूछा था । ३। हिमानय ने कहा—अमेय आत्मना वाले वाले भगवान् शम्भु जो कि सनातन प्रभु है तुम्हारी तपस्पर्या में तोषित हो गये है । हे पुत्रि ! यह बतलाओ कि तुमने महेश्वर देव से किस प्रकार का वरदान प्राप्त किया है । ४। देवी ने कहा—मैंने अपनी तपस्या के द्वारा विश्वेश्वर पशुपति शूलपाणि का समाराधन करके और उन्हीं ईश को अपना पति प्राप्त करने में श्रुतार्थ हो गयी हूँ—यही मेरा याचन किया हुआ वरदान था । ५। हे राजन् ! तात्त्विक रूप में महेश्वर देव से मेरा भेद नहीं है । एग दोनों की एगता तो सिद्ध ही है और यह अमेद वेदान्त के अर्थ के विचार करने से ही होता है । ६। हे नगेश्वर ! जो यह ईश्वरीय तेज है उमी को मुझे आज गमन लीजिए । जग तेज में सर्व भूतात्मक परम शान्त विश्व प्रतिष्ठित रहा करता है । ७।

अह सर्वान्तरा शक्तिर्माया मायी महेश्वरः ।
 अहमेका परा शक्तिरेक एव महेश्वर. ॥८॥
 नाऽऽवयोविद्यते राजन्भेदो वै परमार्थतः ।
 एकाऽह विश्वगाऽनन्ता विश्वरूपा सनातनी ॥९॥
 पिनाकपाशोर्दयिता नित्या गिरिवरोत्तम ।
 ज्ञातु न शक्ता प्रह्लाद्या मत्स्वरूप हि तत्त्वत. ॥१०॥
 इच्छाशक्तिरह राज्ञानशक्तिरहं पुनः ।
 क्रियाशक्तिः प्राणशक्ति शक्तिमान्भगनेत्रहा ॥११॥
 क्लृप्तम्यमचल सूक्ष्म गत्य निर्गुणमव्ययम् ।
 आनन्दमक्षर ब्रह्म तात जानीहि मत्पदम् ॥१२॥
 तत्पद ते प्रपश्यन्ति येषा भक्तिर्मयि स्थिरा ।
 नान्यथा कमवाण्डैश्च तयोभिश्चापि दुष्करं ॥१३॥
 शिवस्य परमा शक्तिर्नित्याऽऽनन्दमयी ह्यहम् ।
 ब्रह्मणो वचनाद्राजन्नभव दक्षकन्यवा ॥१४॥

मैं सर्वान्तरा शक्ति माया हूँ और महेश्वर मायी है । मैं ही एक परा शक्ति हूँ और महेश्वर देव भी एक ही हैं ॥८॥ हे राजन् । हम दोनों का परमार्थ रूप से कोई भी भेद नहीं है । मैं भी एक ही हूँ जो कि विश्व मे गमन करने वाली—अनन्ता—विश्वरूपा और सनातनी हू । हे गिरिवरो मे उत्तम । पिनाक पाशिकी मैं नित्या दायिता हू । ब्रह्मा आदि देवगण भी तात्त्विक रूप से मेरे स्वप्न को जानने मे समर्थ नहीं हैं । ९।१०। हे राजन् । मैं ही इच्छा शक्ति हूँ और पुन ज्ञान की शक्ति भी हूँ । मैं क्रिया करने की शक्ति हूँ—प्राण शक्ति हूँ और भग के नेत्रों के हनन करने वाले महेश्वर पूर्ण शक्तिमान् हूँ । ११। हे तात । मेरे पद को आप क्लृप्त—अचल—सूक्ष्म—गत्य—निर्गुण—अव्यय—आनन्द अक्षर और ब्रह्म जानिये । १२। उग पद को ये ही मनुष्य देग मवते हैं जिनकी मेरे विषय मे स्थिरा भक्ति होती है । अन्य विगी भी प्रपार के

साधनों से नहीं देख साने है । बडे-बडे कर्म काण्डों के द्वारा तथा परम दुष्कर तर्कों से भी उसे नहीं देख पाते हैं । ११ । भगवात् शिव की परमानिता और आनन्दमयी शक्ति में ही हूँ । हे राजन् ! ब्रह्माजी के वचनानुदेश से मैं उस मम में प्रजापति दक्ष की कन्या हुई थी । १४ ।

शूलिनो देवदेवस्य निन्द्रक परमेष्ठिन ।
 विनिन्द्य पितर दक्ष जानाऽम्मितव कन्यका ॥१५॥
 स्वेच्छयैवावतारो मे नैव चान्यवशात्पित ।
 तस्मान्मा परमा शक्तिमिति ज्ञात्वा मुखो भव ॥१६॥
 नाशयामि तवाज्ञान भवबन्धनकारणम् ।
 दिव्य ददामि ते ज्ञान दु खत्रयविनाशकृत् ॥१७॥
 एव देव्या प्रसादेन हिमवान्पर्वतेश्वर ।
 लब्ध्वा माहेश्वर ज्ञान जीवन्मुक्तस्तदाऽभवत् ॥१८॥
 अपश्यदाखिल विश्वमुमामहेश्वरात्मकम् ।
 नित्यानन्द निर्विभागमात्मान च तदात्मकम् ॥१९॥
 मानमेयादिरहित भेदाभेदविर्वाजितम् ।
 बाह्याभ्यन्तरनिर्मुक्त शुद्ध निर्गुणमव्ययम् ॥२०॥
 न समीप न दूरस्थ न स्थूल नापि वा कृशम् ।
 न दीर्घं नापि वा ह्रस्व न पीत नापि लोहितम् ॥२१॥

त्रिगुलघारी देवों के भी देव परमेष्ठी की निन्दा करने वाले पिता दक्ष को विनिन्दित करने में आपनी कन्या ने स्वयं में सगुलान्न हुई हैं । १५ । हे पिताजी ! मेरा यह अवतार स्वेच्छा ही से हुआ है अन्य किसी वश से नहीं हुआ है । इस कारण से मुझको परमाशक्ति समझाने आप मुची होइये । १६ । सांसारिक बन्धन का कारण जो आपका अज्ञान है उसका मैं नाश कर देती हूँ । और फिर मैं आपको परम दिव्य ज्ञान दे दूँगी जो तीनों प्रकार के दुःखा का विनाश करवा वाला है । १७ । इस प्रकार से देवी के प्रसाद में पर्वतेश्वर हिमवान् महेश्वर ज्ञान को प्राप्त

करके उगी समय में जीवन मुक्त हो गया था । १८८१ फिर तो उसने सम्पूर्ण विश्व को ही उमा महेश्वरात्मक देवा था । और अपने आप को भी नित्यानन्द से युक्त—निर्मिभाग तथा तदस्मक देवा था । १९६१ उसने शिव को किम रूप में देखा था यह बतलाने हुए कहते हैं कि शिव का स्वरूप मानमेरात्रि में रक्षित है—भेदागेद में वर्जित है—ब्रह्मायाम्यन्तर से निर्मुक्त है—शुद्ध—निर्गुण और अव्यय है । २०१ न वे समीप में हैं और न दूर में ही स्थित है और न स्थूल है और न सूक्ष्म ही है । न वे दीर्घ हैं और न ह्रस्व है—न पीत हैं और न श्वेता हैं । २११

न नील न च कृष्ण च न शुक्ल नापि कर्पूरम् ।
 पाणिपादत्रिनिर्मुक्त न श्रो (श्री) न च चाक्षुषम् ॥२२॥
 अनामिकमजिह्व च मनोत्रु द्विविजितम् ।
 वन्प्रमोक्षविनिर्मुक्त बोधाबोधविजितम् ॥२३॥
 नाऽऽधारम्य न नाभिम्य न हृदिम्य न कण्ठगम् ।
 नापि नामाग्रग विप्रा न धूमध्यगत हि तत् ॥२४॥
 न नाडीत्रयमध्यम्य द्वादशान्तगत न च ।
 नोर्णातन्तुनिभ तत्तु विद्युत्पुञ्जनिभ न च ॥२५॥
 सर्वोपाधिविनिर्मुक्त चैतन्य भवग शिवम् ।
 तदेवेदमिद विश्व तस्मादन्यन्न विद्यते ॥२६॥
 आम्थाय परमा भक्ति शिवयो पादपङ्कजे ।
 पित्रोर्हिरण्यगर्भस्य शान्तिरश्वा प मुनेनी ॥२७॥

शिव का स्वरूप न नील है—न कृष्ण है—न शुक्ल है और न कर्पूर ही है । पाणि और पाद में विनिर्मुक्त हैं—न श्रोत्र है अर्थात् श्रोत्रा का विषय है और न चाक्षुष अर्थात् चाक्षुषों के द्वारा देखे जाने वाले हैं । २२१ नासिका में रक्षित—विद्या से हीन तथा मन और बुद्धि से वर्जित है । २३१ न शिरो आधार पर स्थित है—न नाभि में स्थित है और न कण्ठ में गता करने वाले ही है । २४१ विद्यो ! नासिका न अग्र

भाग में ही रहने वाले है और न भौहो के मध्य में ही रहने वाले है ॥२४॥ उनका स्वरूप तीनों नाडियों के मध्य में भी स्थित रहने वाला नहीं है और द्वादशान्तगत भी नहीं है । न तो ऊर्णाकितन्तु के ही सदृश है और न विद्युत् के पुञ्ज के तुल्य ही है ।२५। सर्वत्र गमन करने वाले—चैतन्य स्वरूप शिव सभी उपाधियों से विनिर्मुक्त है । वही मद् विश्व है क्योंकि उनसे अन्यत् कुछ भी नहीं है ।२६। शिवा और शिव इन दोनों के चरण कमल में परमोत्कृष्ट भक्ति को समास्थित करके ही जीवन बिताना चाहिए । ये दोनों हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी थे और हे सुव्रत ! भगवान् शाङ्गी के भी माता-पिता है ।२७।

॥ साम्ब विवाह मंडप वर्णन ॥

अद्वानयत्ततो विश्वकर्माणं पर्वतेश्वरं ।
 विवाहमण्डपं कर्तुं नानाश्चर्याविभूषितम् ॥१॥
 तेनाऽऽहूतस्ततः शीघ्रं विश्वकर्मा महामतिः ।
 प्रययी हिमवत्पार्श्वं कुशलो विश्वकर्मणि ॥२॥
 दृष्ट्वाऽथ विश्वकर्माणं हृष्ट पर्वतराट् स्वयम् ।
 आगतासनपाद्याद्यैः सादरस्तमपूजयत् ॥३॥
 विधिवत्पूजयित्वा तु विश्वकर्माणमब्रवीत् ॥४॥
 विश्वरामेन्महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
 यत्कारणादिहाऽऽहूतो मया त्वं तह्यवीम्यहम् ॥५॥
 विश्वेश्वरो महादेवो भगवान्नीललोहितः ।
 आगमिष्यति विश्वं शी परिणेतु शिवः स्वयम् ॥६॥
 मण्डपरत्तत्र कर्त्तव्यो यज्ञार्थं हि हिरण्यमयः ।
 योजनायुनविरतीर्णमनेकाश्चर्यसंयुतम् ॥७॥

श्री मूनजी ने कहा—इसके पश्चात् पर्वतेश्वर हिमालय ने विश्व-
कर्मा को बुनवाया था और उसे आज्ञा दी थी कि वह अनेक अद्भुत
आश्चर्यों से विभूषित विवाह का एक मण्डप विरचित करे । १। हिमाचल
के द्वारा बुलाये गये विश्वकर्मा ने जो महती मति वाला था शीघ्र ही
हिमाचल के समीप में गगन किया था । विश्वकर्मा ने विश्व के सम्पूर्ण
कर्मों में बहुत ही कुशल था । २। विश्वकर्मा को गमापत हुए देवन्दर
पर्वतों का राजा स्वयं अत्यन्त हर्षित हुए थे । विश्वकर्मा का स्वागत-
आसन आदि के द्वारा बड़े ही आदर के साथ उनका अभ्यर्चन किया
था । ३। हिमाचल ने विद्यान के साथ उनका अर्चन करके विश्वकर्मा से
पट्ट कहा था—। ४। पर्वतराज ने कहा—हे विश्वकर्मा ! आप तो
महान् मनीषी और मेधावी हैं और सभी शास्त्रों के आप पण्डित भी
हैं । जिस वाग्णवेश मैं आज आपको यहां बुलाया है उसे भी मैं
आपको यत्नसाग है । ५। विश्व के ईश्वर महादेव जो त्रिलोकन भगवान्
हैं नील लोहित है वे माध्याग शिव स्वयं ही विश्वेश्वर पांचमी के साथ
परिणय करने के निये यहाँ पर पदापण करेंगे । अतएव यहाँ पर उम
विवाह यज्ञ के कार्य का सम्पादन करने के निये एतद्दिग्गम मण्ड की
रचना करनी चाहिए । यह मण्डप दस हजार गजान के बराबर
विस्तीर्ण और अनेकानेक आश्चर्यों में समन्वित होना चाहिए । ६। ७।

दृग्गोत्रेण सर्वस्य प्रीतिर्भवति चै यथा ।

तदा ह्य मण्डप शीघ्रं कुरु विश्वेश्वरप्रियम् ॥८॥

एवमुक्त्वास्तदा तेन गिरिणा विश्वकर्मात्पु ।

दीवाह मण्डप शीघ्रममृजद्रव्यनविग्रहम् ॥९॥

स्यर्भर्तुं ममयेत्स्वर्भर्तुं मं जभि मूरुगनिर्भ ।

दन्द्रनीतमशीदस्त्रीतेदुधोविभूमेरपि । १०॥

मीनिर्भर्तुं ममयेत्स्वर्भर्तुं मं जभि मूरुगनिर्भ ।

स्यर्भर्तुं ममयेत्स्वर्भर्तुं मं जभि मूरुगनिर्भ ॥११॥

चामरालकृतैरुच्चैर्दंपणैर्विविधैरति ।
 सूर्यविम्बप्रतीकाशीश्चन्द्रविम्बसमप्रभैः ॥१२
 ध्वजमालाकुल दिव्य पताकानेकशोभितम् ।
 रत्नजैः सिंहाशादूँलैर्गजवर्णैर्निरन्तरम् ॥१३
 रचित मण्डप दिव्य प्रिय त्रिपुरविद्विप ।
 रुद्राणां च तथा रूपैर्गन्धर्वाप्सरसां तथा ॥१४

आप यहाँ पर एक ऐसा उत्तम मण्डप बनाइए कि जिसे देखते ही सबकी प्रीति उत्सन्न हो जावे । आप वृषया ऐसा ही एक मण्डप बहुत ही शीघ्र निर्मित कर बीजिए जो भगवान् प्रभु को भी बहुत प्रिय लगे ॥१२॥ गिरिराज हिमालय के द्वारा जब इस रीति से कहा गया तो वह विश्वकर्मा ने विवाह के मण्डप को जो रत्नों के द्वारा विरचित विग्रह बना था बहुत ही शीघ्र बना दिया था ॥१३॥ वह मण्डप ऐसा बनाया गया था जिसमें सुवर्णमय बहुत से स्तम्भों से युक्त था—विचित्र मणियाँ जो सूर्य के सदृश दीप्ति वाली थी उस मण्डप में जड़ी गयी थी । दिव्य इन्द्रनील मणियाँ वैदूर्य विद्रुम-मोती वज्रनील मणि और चन्द्रकान्त मणियाँ भी उसमें खचिन की गयी थी । स्फटिक-विद्रुम मणियाँ उसमें लगाई गयी थी जो मोतियों की झालरों के सहित लट्टी हुई थी ॥१०॥११॥ वह मण्डप चमरों से अलङ्कृत था और अनेक भाँति क ऊँचे-ऊँचे दंपण उसमें लगे हुए थे । जो सूर्य विम्ब के तुल्य थे और चन्द्र विम्ब के समान प्रभा से युक्त थे ॥१२॥ वह मण्डप दिव्य मालाओं से घिरा हुआ था और वह अनेक पताकाओं से भी शोभा वाला था । उस मण्डप में रत्नों के बने हुए अनेक सिंह शादूँल और गज विद्यमान थे जो निरन्तर ही शोभायमान हो रहें थे ॥१३॥ वह रचित मण्डप परम दिव्य और भगवान् निव वा बहुत ही प्रिय था तथा गन्धर्व-अप्सरारों और रुद्रों के रूपों से भी युक्त था ॥१४॥

द्वैश्वैर्गमनोहार्यैर्मंत्यैर्जैश्च तथा परैः ।

मालाभिः स्तम्भैर्विभ्रा रत्नजैः कुमुमैर्भृशम् ॥१५

ववचिच्चामीकरेणाथ हृद्या भूमि विनिर्ममे ।
 ववचित्पद्मदलाकारा मन्द्रायुधसमप्रभाम् ॥१६॥
 ववचिद्यीलोत्पलाभासा नीलजीमूतसप्रभाम् ।
 मनसंब यथा ब्रह्मा विश्वमेतद्वि निर्ममे ॥१७
 ववचिद्वन्धुकसकाशा दीप्ता विद्रुमसनिभाम् ।
 अनेकाकारविन्यासैस्ततो धात्री विनिर्ममे ॥१८
 ववचित्कलशविन्यासै. ववचित्स्वस्किभूपितै. ।
 हरिचन्दनगन्धाद्यै कपूरोद्गारगन्धिभिः ॥१९
 जातीपाटलपद्माना चम्पकाना मुग्गन्धिभि ।
 आसनैर्विविधै पूतैश्चन्द्रजीमूतसनिभै ॥२०
 उदयाकसमाकारैर्मैरुशृङ्गोपमेभृंशम् ।
 तमालचम्पकाभैश्च इन्द्रनीलमयैस्तथा ॥२१

देवो के द्वारा-मनोहारी मर्त्यो के द्वारा तथा परो के द्वारा मालाओ से—स्वको से तथा रत्नो से निर्मित कुमुभो से बहुत अधिक शोभित था । उस मण्डप में तिसी स्थल सुवर्ण से एक बहुत मनोहर भूमि का निर्माण किया था । तिसी जगह पर पद्म दल के आकार वाली तो तिसी स्थान पर इन्द्र धनुष के समान प्रभा वाली भूमि का निर्माण किया था ॥१५॥१६॥ वही पर नीलोत्पलभा वाली बनाई थी जो वही पर नीले मेघो की प्रभा के तुल्य भूमि की रचना की गयी थी जिस प्रकार से मन के द्वारा ही श्री ब्रह्मा जी ने इस सम्पूर्ण विश्व की रचना की थी ॥१७॥ वही पर बंधूक पुष्प के सदृश दीप्ता तथा तिसी जगह पर विद्रुम के समान भूमि की रचना की थी । ऐसे अनेक आकारों के विन्यासों के द्वारा उस धात्री का निर्माण किया था ॥१८॥ वहीं पर बलसो के तुल्य विन्यासों से तथा वही पर स्वास्तिकों से भूषित विन्यासों से—हरि चन्दन गन्ध आदि से तथा कपूरोद्गार के गन्धों में और जाती-पाटल-गंधों की एक चम्पक मुग्गन्धों में उसकी रचना की गयी थी । चन्द्र और जीमूतों के तुल्य विविध भासों के द्वारा जो परम पूत से

निर्माण किया गया था ॥१९॥२०॥ उदय के समय में जैसा सूर्यदेव का आवार होता है उनके समान विन्यासों से तथा मेरु पर्वत के शिखरों के सदृश विन्यासों से और तमाल-चम्पा के आभास वाले तथा इन्द्र नीलमय आभासों वाले विन्यासों से रचना की गयी थी ॥२१॥

सिन्दूरचयसंकाशैर्जंपाकुमुमसनिभैः ।

सन्ध्यारागनिभैश्चायै × दाडिमिकुसुमप्रभै ॥

हेमकुम्भनिभैश्चान्यैर्मुक्ताफलनिभैराप ॥२२

तारकापुष्पमकाशै पद्मनीलेन्द्रनीलजैः ।

तत्रैव मण्डपे दिव्ये तोयस्थानान्यकलरयत् ॥२३

दीर्घिकास्तोयपूर्णाश्च क्षीरपूर्णास्तथैव च ।

दधिह्वदाननेकाश्च सुधासंपूरितानि वै ॥२४

घृतपूर्णा महानद्यो रत्नमपानमण्डिताः ।

वृक्षाश्च कामिकान्दिव्यान्दीर्घिकाणा तयोभयोः ॥२५

असृजत्कीडनार्याय सदा पुष्पाफजान्वितान् ।

भक्ष्यैर्नानाविधैर्दिव्यैः फलितान्मुनिपुग्वाः ॥२६

कदलीलण्डमध्ये तु तमान्गहनेर्ध्याप ।

क्रीडावापीः सुशोभाढ्यास्तथैवाशोकसकुलाः ॥२७

दीर्घिकाणा तटे रभ्ये तरुणाः स्निग्धशाखिपु ।

दोलाश्चऽऽबन्धयामासुर्मुक्तादागभिरुज्ज्वलैः ॥२८

सिन्दूर के समूह के सदृश-जया के कुमुमों के समान-सन्ध्याकाल के राग के तुल्य-दाडिम के पुष्पों के सदृश-सुवर्ण के कुम्भों के समान-अन्य मुक्ताफलों के समान-तारकाओं के समुदायों के सदृश और पद्म नीलेन्द्र नीलजों के तुल्य विन्यासों से उस भूमि की अनेक प्रकार की भूमि का निर्माण वही पर दिव्य मण्डप में करके जल के स्थानों की भी कल्पना की गयी थी ॥२२॥२३॥ वहाँ पर ऐसी दीर्घिकाएँ बनायीं थी जो जल से परिपूर्ण थी और शीर से भरी हुई थी । वहाँ पर अनेक हृदयपि से पूर्ण एव गुषा से संपूरित थे ॥२४॥ बहुत सी महा नदियाँ बनायीं थी

इस तरह से परम स्मणीय-अत्यन्त दिव्य मन की तुष्टि करने वाले उद्यान बनो के खण्ड थे जो कि स्थान-स्थान पर विरचित किये गये थे ॥२६॥ त्रैलोक्य में प्रमुख उसमें हेमपीठ के मध्य में स्थित श्वेत सिंहो से विधृत और सहस्र दंतों से मण्डित-पारिजात द्रुमों की मञ्जरियों से अलंकृत वेदी इन्द्र नील मणियों से परिपूर्ण थी और परम सुन्दर सीढियों से भूषित थी ॥३०॥३१॥ वह वेदी एकसौ योजनों के विस्तार से युक्त थी और स्तम्भों तथा कलशों से समन्वित थी । उस पर अनेक प्रकार की अनेक अप्सराएँ भी विद्यमान थी और वह रत्नों के द्वारा निर्मित की गयी थी तथा दिव्य रूप वाली थी ॥३२॥ जो अप्सराएँ वहाँ पर थी वे पीन अदृजघनों वाली थी तथा पीन एवं उन्नत स्तनों वाली थी । उनके हाथों के अग्रभाग में चमर लगे हुए थे और वे हारों की पक्तियों से विभूषित थी ॥३३॥ अन्यो के हाथों में वीणा तथा वेणु या और वे काञ्ची गुणों से विराजित हो रही थी, ललने नेत्र बहुत ही चञ्चल तथा आवृत थे और तिलक तथा अलकों से मण्डित थी ॥३४॥ जिनके मध्य भाग क्षाम थे—विम्ब फल के समान जिनके ओष्ठ थे—जो कमलोत्पल की माला धारण करने वाली थी ऐसी अनेक आकारों और विन्यासों से पृथक्-पृथक् निर्मित की गयी थी ॥३५॥ इस प्रकार से परम दिव्य सुरों की मुन्दरियों से-अनेक तरह के प्रयोगों से और विविध भाँति के चित्रों से जो मन को अभिराम लगाने वाले थे और नेत्रों को भी सुन्दर प्रतीत होते थे उनसे युक्त वेदी बहुत ही दीर्घ तैयार करदी थी ॥३६॥

॥ कालाग्न्याद्यागमन कथन ॥

मण्डप निर्मितं श्रुत्वा शंकरो विश्वकर्मणा ।
 सौलादिमग्नवीह्वयो विश्वेशो विश्वपूजितः ॥१
 हितार्थं सर्वदेवानामस्माकं च विशेषतः ।
 विवाहयज्ञ आरब्धो नगराजेन धीमताः ॥२
 दानार्थमद्रिकन्यायां प्रस्थितो हिमवान्स्वयम् ।
 अहं तत्र गमिष्यामि सुरैर्ब्रह्मादिभिः सह ॥३
 स्वमिहाऽऽवाहय सुरांकालाग्न्यादीन्दिजास्तथा ।
 द्वीपाश्च सागराश्चैत्र पवताश्च नदीस्तथा ॥४
 मण्डपं सुन्दरं यत्र निर्मितं विश्वकर्मणा ।
 तत्र तिष्ठत्युमा देवी मम ध्यानपरायणा ॥५
 विद्युत्स्रवतेव भागन्ती चन्द्रकोटिनिभानना ।
 एवमुत्तो महेशेन नन्दी सूर्यायुनप्रभ ॥६
 नन्दा विदवेश्वर देव ध्यानाऽऽत्मनदाऽभयत् ।
 ध्यात क्षणात्मभायात कात्यागिनिदिव्यदाहक ॥७

श्रीगुनजी ने कहा—भगवान् गङ्गूर ने विश्वकर्मा के द्वारा निर्माण किये हुए मण्डप का कृतान्त सुन्दर विश्वपूजित विश्वेश्वर शंभु ने सौलादि से कहा था—श्री भगवान् ने कहा—तमस्त देवों की मलाई के लिये और विशेष रूप से हमारे ही हित के सम्पादन करने के लिए नगराज ने जो यहन ही पीमान् है विवाह यज्ञ का आरम्भ किया है ॥१॥२॥ अद्रिकन्या के दान करने के लिये तिमशान् स्वयं प्रस्थित हुए हैं । अतएव मैं ब्रह्मा आदि तमस्त गुरो के ही साथ मैं यहाँ पर गमन करूँगा ॥३॥ अतएव तुम यहाँ पर जानाग्नि आदि सब गुरो का धोर द्वित्रो का, द्वीपो का, सागरों का, पर्वतों का तथा नदियों का आवाहन करो । जहाँ पर विश्वकर्मा के द्वारा एक सुन्दर मण्डप का निर्माण किया गया है वहाँ पर उमादेवी मेरे ही ध्यान में परायण होकर रिया है ।

वह देवी विद्युत् की लता के समान दीप्तिमती हो रही है और उनका मुल करोडा चन्द्रमाओं के समान सुन्दर है । इस प्रकार से जब नन्दी से कहा गया गया था तो वह नन्दी जिसकी छटा दश हजार सूर्यों की प्रभा के समान थी । उसने विश्वेश्वर देव को प्रणाम किया था और फिर वह उस समय में ध्यान में समाहूढ होगया था । जैसे ही ध्यान किया गया था वैसे ही विश्व का दाहक कालाग्नि वहाँ पर क्षणमान में ही समागत हो गया था ॥४-७॥

रुद्रं परिवृतो देवः कोटिकोटिगणेश्वरैः ।

ततोऽब्रवीत्स कालाग्निः सर्वज्ञ नन्दिकेश्वरम् ॥५

किमर्थमहमाहूना देवदेवेन शभुना ।

उपस्थितो वा प्रलयः सह्रिष्यामि तत्क्षणात् ॥६

एवमुक्तस्तदा तेन शैलादिस्तमथाब्रवीत् ।

प्रलयार्थं न चाऽऽहूतस्त्व विश्वेशेन शभुना ॥१०

ग्रहीष्यति गिरेः पुत्री पत्नीत्वेन महेश्वरः ।

तदर्थं त्वमिहाऽऽहूतो ब्रह्माद्याश्च दिवोकसः ॥११

नन्दिनो वचनं श्रुत्वा कालाग्निरिदमब्रवीत् ।

द्रष्टुकामा वयं सर्वे ब्रह्माद्याः शूलपाणिनम् ॥१२

शीघ्रं दशंय शैलादे निर्वृताः स्मो यथा वयम् ।

विज्ञापय महादेव ब्रह्माद्याश्चाऽऽगता इति ॥१३

सर्वे त्वद्ध्याननिरताः सर्वे त्वदृशंनोत्सुकाः ।

कालाग्निप्रमुखाणां च वचः श्रुत्वा गणाग्रणीः ॥

प्राह विश्वेश्वर देव स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥१४

वह देव रुद्रों से परिगृह्यत तथा और उसके चारों ओर करोडों गणेश्वर विद्यमान थे । इनके पश्चात् वह कालाग्नि ने सर्वज्ञ नन्दिकेश्वर से कहा था—मुझे यहाँ किस प्रयोजन के लिये बुलाया गया है जो कि देवों के भी भगवान् राम्भु ने मुझे याद किया है ? मैं उपस्थित होगया हूँ कि तरक्षण में ही मैं सहार कर दूंगा और प्रलय ही आयगा । जब

इस रीति से कालाग्नि ने कहा वो शैलादि ने उससे कहा था कि इस समय मे विश्वेश देव शम्भु ने तुमको प्रलय करने के लिये नही बुलवाया है । आज तो महेश्वर द्रभु गिरिराज की पुत्री पार्वती देवी को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण करेंगे । उसी के लिये आपको यहाँ पर बुलावा गया है । और ब्रह्मा आदि सब देवगण भी बुलाये गये हैं ॥८॥९॥१०॥ ११॥ नन्दी के इस वचन का श्रवण करके कालाग्नि ने नन्दी से यह कहा था कि हम ब्रह्मा आदि सभी देव बूलयाणि प्रभु के दर्शन करने की इच्छा करते हैं ॥१२॥ हे शैलादे । आप बहुत ही शीघ्र भगवान् शम्भु के दर्शन करोगे । जिससे हम सब निर्वृत्त हो जावें । आप अब महादेव जी को विज्ञापित कर दीजिए कि ब्रह्मा आदि सभी देव समागत होगये हैं ॥१३॥ ये सभी आपके ही ध्यान में निरत हैं और सभी आपके दर्शन करने के लिये बहुत ही उत्सुक भी हो रहे हैं । उस गणों के भुक्तिपा ने कालाग्नि प्रभुओं के इस वचन का श्रवण किया था और फिर जाकर विश्वनाथ से बहुत ही मित्र और गम्भीर वाणी से कहा था—॥१४॥

ब्रह्माद्याश्चाऽऽगता सर्वे पूजयामे तत्राऽऽजया ।
 द्रष्टुमिच्छन्ति ते सर्वे नमस्कृतुं तथा मुदा ॥१२॥
 दिशाऽऽदेश पुराणे मा नि वक्ष्यामि गुरासुरान् ।
 वारिता द्वारदूलेषु द्रष्टुकामाश्च सख्यता ॥१६॥
 यत्ते निररम रूपं तेजोमयमनिन्दितम् ।
 यदधोभागमाश्रित्य रद्र कालाग्निमजित ॥१७॥
 पश्यन्तु चैते भूतेश धूल चैव सदोऽऽम्बनम् ।
 रातो विवेग कालाग्निर्विष्णुब्रह्मा शनक्रतु ॥१८॥
 अन्ये च देवगन्धर्वा षष्ठयो मनवस्तथा ।
 सर्वे कोनाह्न वृत्वा देवागुरमपोरगा ॥१९॥
 विप्रिमुहुरगम्यानं नद्याद्या इव गामरम् ।
 प्रविश्य भवने रम्ये नानाधानुविनिधिते ॥२०॥

गणकोटिसमाकीर्णं रुद्रकोटिसुसेविते ।

अग्रजन्मगुरुं पूर्वं रुद्रैर्देवैर्बृत्तस्तदा ॥२१

नन्दिश्वर ने कहा—हे शूलपाणे ! आपकी आज्ञा से ये ब्रह्मा आदि सब देवगण आकर उपस्थित हो गये है । ये सब आपका दर्शन करने की इच्छाकर रहे हैं और आपको प्रणाम करना आनन्द के साथ चाहते है ॥१५॥ हे पुरारे ! भुक्तको अपना आदेश प्रदान कीजिए कि मैं सब सुरासुरो को क्या कहूँ । मैंने इन सबको द्वार मूल मे ही वारित कर कर दिया है और वे सब आपके दर्शन करने की इच्छा वाले है तथा वही पर खडे हुए है ॥१६॥ जो आपका यह निरुपम-तेजोमय एव अनिन्दित स्वरूप है जिसके अधोभाग मे आश्रय ग्रहण करके कालाग्नि से सजा वाला रुद्र है ॥१७॥ ये सब भूतो के ईश और सदा उज्ज्वल शूल का दर्शन प्राप्त करे ; इसके अनन्तर कालाग्नि ब्रह्मा-विष्णु और शतव्रतु ने अन्दर प्रवेश किया था । तथा अन्य देव मन्धवं-ऋषिगण-मनुगण-इनने की अन्दर प्रवेश किया था । सब देव-अमुर और महोरगो ने बडा भारी आनन्दोत्सास मे बोलाहल किया था ॥१८॥१९॥ जैसे नदी-नद आदि सब सागर मे प्रवेश करके उसमे ही मिल जाते है वैसे ही सबने हर के सस्थान मे प्रवेश किया था । वह भवन जिसमे उन्होंने प्रवेश किया था अनेक घातुओ से विचित्र घातुओ से विचित्र था और करोडो गणो से समाकीर्ण था तथा करोडो रुद्रो के द्वारा वह सेवित था । उस समय मे रुद्रो और देवो से परिवृत पूर्व मे अग्र जन्माओ के गुरु थे ॥२०॥२१

भवारिमन्धकारि तमपश्यदन्तकानलः ।

मुक्ताचलप्रतीकाशं शशाङ्कचयसनिभम् ॥२२

नीलवण्ठ त्रिनेत्रं च शूलिन सर्वतोमृत्तम् ।

कोटिसूस्यप्रतीकाशं गजदानन्दकारिणम् ॥२३

कपालमानिन देवं कपर्दशृतभूपणम् ।

दशबाहु दगाघास्यमनन्तं तेजसां निधिम् ॥२४

जगदुत्तिसंहारस्थित्यनुग्रहकाणरिम् ।

मनावास्मप्रपञ्चमनाकुलम् ॥२५

सिंहासनस्यमचल चराचरविभूतिदम् ।

क्षीरोदमिव निष्कम्प त्रैलोक्यप्रभव शिवम् ॥२६

सर्वत पाणिपादान्त सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ।

सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य स स्थितम् ॥२७

सुरासुरेन्द्र्यमान ध्यायमान मुमुक्षुभिः ।

इदं रूपं समाबोधय देवदेवस्य शूलिनः ॥२८

दन्तकानन ने भव के शत्रु और अन्धक के अरि उन त्रिको की देवा या जो मुक्ताभा के पर्वत के तुल्य थे और शशाङ्क (चन्द्रमा) के समूह के सदृश थे ॥२२॥ शिव का स्वरूप नीलकण्ठ वाला तीन नेत्रों से युक्त-दूलधारी-सब ओर मुखों वाला—करोड़ों सूर्यों के सदृश—जगत् के आनन्द को करने वाला—बपालो (नरभुण्डों की माला को धारण करने वाला—बपर्दों से भूषण करने वाला—दशबाहुओं से युक्त पाच मुखों वाला अनन्त और तगा की निधि था ॥२३॥२४ इस जगत् की उत्पत्ति-स्थिति और सहार और अनुग्रह करने वाला—अपमेय—अनाकाश—प्रपद्य रहित और अनाकुल भगवान् शम्भु थे ॥२५॥ सिंहासन पर स्थित—चर और अचर को विभूति के प्रदान करने वाले—क्षीर सागर की भाँति निष्कम्ब त्रिलोकी के प्रभव अर्थात् उत्पन्न करने वाले—सभी ओर हाथ और चरणा वाले तथा सब ओर नेत्र—शिर और मुख वाल—सभी ओर लोक में श्रुति रखने वाले—सबको ममावृत करके स्थित—सुरों और असुरों के द्वारा वन्द्यमान तथा मुमुक्षुओं के द्वारा ध्यायमान शिव हैं । देवों के देव शूली प्रभु के इस रूप का अवलोकन करके वह कायाभिन् उनके समक्ष में स्थित हो गया था ॥२६॥२७॥२८॥

अग्रे स्थित स कालगिर्मरौ मेरुरिवापर ।

अयोवाच स शैलादि प्रणिपत्य सनातनम् ॥२९

नरकाणाधोभाग पुरत्रय प्रतिष्ठितम् ।

योजनायुतविस्तीर्ण कामद शुभलक्षणम् ॥३०

यस्यैवैध्व निरालम्ब शतयोजनमानत ।

ज्वालामालाकुल दिव्य सर्वलोकभयकरम् ॥३१

प्राकाराट्टालकैर्युक्त गोपुरैस्तोरणान्वितम् ।
 रक्तनीलसमानाभं भीमघोषैर्दुरासदै ॥३२
 वृतो रुद्रसहस्रैस्तु सिंहरूपमहाबलैः ।
 नियम्य च स्वक तेज प्रीत्यर्थं तेऽधुनाऽऽगत ॥३३
 ध्वान्तचामीकराभासश्चन्द्रनागरुगन्धयुक् ।
 नीलकण्ठस्त्रिनेत्रश्च वृषकेतुर्महाबल ॥३४
 द्वीपिचर्मपरीधान पञ्चवक्त्रेन्द्रभूषण ।
 अनन्तमेखलाधारी कुण्डलीकृततक्षक ॥३५

भगवान् शिव के सामने स्थित हुआ वर कालाग्नि मेरु पर्वत पर दूसरे मेरु के ही समान था । इसके अनन्तर वह शैलादि मनातन प्रभु को प्रणिपात करके बोला ॥३६॥ नरको के नीचे वाले भाग में तीन पुर प्रतिष्ठित हैं । वे दस हजार योजन पर्यन्त विस्तीर्ण हैं—वामनाओ के प्रदान करने वाले हैं और परम शुभ लक्षणों में युक्त हैं ॥३७॥ जिसके ही ऊर्ध्व भाग में बिना अबलम्ब वाला—मान में शत योजन घाना—ज्वालाभा की मालाओं से—समाकुल परम दिव्य और तब लोरा की भय देने वाला प्राकार (बहार दीवारी) अट्टालकों से युक्त—गोपुरों वाला तथा तोरणों में समन्वित—रक्त, नील के समान आभा वाले भीम घोष में युक्त—दुरासद—सिंह के रूप वाले—महान बलवान् सहस्रों रत्नों से समावृत अपने तेज को नियमित करने वह आपसी प्रीति के लिये इस ममप म ममागत हुए हैं ॥३१॥३२॥३३॥ ध्वान्त चामी करके समान आभा वाले—चन्द्रन और अमर की गन्ध से युक्त—नील कण्ठ—तीन नेत्रों वाले—वृष केतु—गहान बलवान्—हाथों के चर्म का परिधान रखने वाले—पाँच मुख से युक्त—चंद्रका भूषण मस्तक पर धारण करने वाले—अनन्त—मेखला के धारी और तक्षण सर्व का कुण्डली के रूप में रखने वाले हैं ॥३४॥३५॥

दशबाहुर्महातेजा पीनवदा महाभुज ।

प्रदयोदनिधेर्घोषो रवननीनमहातनु ॥३६

आगत मौम्यरूपेण तव देव ममीपत ।

पश्यता मृदुभासेन देवदेव जगताते ॥३७

एते चैव महावीर्याः कालाग्नेस्तु समीपतः ।
 तिष्ठन्ति ज्वलनाभासा रुद्राश्च शतकोटयः ॥३८
 त्वद्वियोगान्महादेव कालाग्न्यादेशकारिणः ।
 तिष्ठन्ति स्वपुरे रम्ये क्रीडमाना मनोरमे ॥३९
 तवानुज्ञागता ह्येते शशाकमीलिनीऽमला ।
 शुद्धस्फटिकसकाशा पद्मरागसमप्रभा ॥४०
 तडिद्भ्रमरसकाशा वज्रशूलधनुर्धरा ।
 नीलकण्ठास्त्रिनेत्राश्च सुखदुःखविजिता ॥४१
 सर्वाभरणसपत्रा अनन्तबलविक्रमा ।
 जरामरणनिर्मुक्ता शार्दूलचर्मवासस ॥४२

दशबाहुओ वाले—महान् तेज मे सायुत पीन वदा स्थल वाले—महान्
 भुजाओ वाले—प्रलय काल के उदधि के घोष से मृकत—रवत—नील वर्ण
 के महान शरीर वाले वे हे देव आपके समीप में समागत हुये है ।
 हे देवो के देव । हे जगत् के स्वामिन् । आप मृदु भाव से ही देखिये
 ॥३६॥३७ ये महान् वीर्य वाले जो इस कालाग्नि के समीप में स्थित हैं
 और जो अग्नि के समान आभा वाले हैं वे सैकड़ो करोड़ रुद्र हैं ॥३८॥
 हे महा देव । ये आगे वियोग से कालाग्नि के आदेश के करने वाले
 हैं । य सब अपने परम मनोरम एवं रम्य पुर में क्रीडा करने वाले है
 ॥३९॥ ये शशाङ्कमीलिनी—अमल सब आपकी अनुज्ञा में रहने वाले है ।
 ये विशुद्ध स्फटिक के समान—पद्मराग के तुल्य प्रभा वाले—तरित्
 भ्रमर के महेश—वज्र, शूल और धनुष के धारण करने वाले—नीले कठ
 वाले तीन नेत्रा से युक्त—सुख-दुःख से रहित—समस्त धारणों से
 सम्पन्न—अनन्त बल और विक्रम वाले जरा मरण से निर्मुक्त और
 शार्दूल के चर्म के वस्त्र धारी हैं ॥४०॥४१॥४२॥

इमानपि महादेव पदयन्प्रीतिकरौ भव ।

हरिचन्दनलिप्ताङ्गानशोक्कमलाचितान् ॥४३

देव्याधिपतयश्चैव प्रह्लादाद्या महारता ।

समागता महादेव नागाः शेषादयः शिव ॥४४

सर्वा पातालवासिन्यो रूपयीवनगविता ।
 आगता देवदेवेश द्वीपैश्च सह सागरा ॥४५॥
 गन्धर्वा किन्नरा यक्षा सिद्धविद्याधरा शिव ।
 उर्वश्याद्याश्चाप्सरसो नद्य पापहरा शुभा ॥४६॥
 एते च मुनयो देव भृगवाद्या प्रथितौजस ।
 संप्राप्तानि पुराणीह शक्रादीना महात्मनाम् ॥४७॥
 एते लोका समायात सत्यान्ता सप्त शकर ।
 भूर्तयस्तव देवेश भवाद्याश्च समागता ॥४८॥
 आदित्या वसवो रुद्रा साध्याश्चैव मरुद्गणा ।
 सनकाद्या महात्मान सत्यलोकनिवासिन ॥४९॥

हे महादेव ! इनको भी आप देखते हुए अर्थात् कृपा पूर्ण दृष्टिपात करके प्रीति के करने वाले हो जाइए । ये सब हरिचन्दन से प्रलिप्त अङ्को वाले हैं और अशोक तथा कमलो से समन्वित हैं ॥४३॥ महान् बलवान् प्रह्लाद आदि दैत्यों के अधिपतिगण हे महादेव जी ! समागत हुए हैं—नाग भी शेष प्रभूति हे शिवजी ! आपके समीप से आकर उपस्थित हुए हैं ॥४४॥ हे देव देवेश ! सभी पाताल के निवास करने वाली—रूप और यौवन से सम्पन्न एवं गवित द्वीपों के साथ साथ सागर भी समागत हुए हैं ॥४५॥ हे शिवजी ! गन्धर्व—किन्नर—यक्ष—सिद्ध—विद्याधर—उर्वशी आदि अप्सराएँ और परम शुभ वापों के हरण करने वाली नदियाँ भी आयी हैं ॥४६॥ हे देव ! ये सब प्रथित बोज वाले भृगु आदि मुनिगण आये हैं और महात्मा इन्द्र आदि के पुर भी सम्प्राप्त हुए हैं ॥४७॥ हे शक्र ! ये सत्य के अन्त तव वाले समस्त लोक भी समायात हुए हैं हे देवेश ! आगकी भव आदि जो मूर्तिर्मा हैं वे भी समागत हुई हैं ॥४८॥ आदित्य—वसुगण—रुद्रगण—साध्वगण—मरुद्गण और सनकादि महात्मा लोग जो सत्य लोक के निवास करने वाले भी यहाँ आये हुए हैं ॥४९॥

सर्वा पातालवासिन्यो रूपयीवनगविता ।
 आगता देवदेवेश द्वीपैश्च सह सागरा ॥४५॥
 गन्धर्वा किनरा यक्षा सिद्धविद्याधरा शिव ।
 उर्वश्याद्याश्चाप्सरसो नद्य पापहरा शुभा ॥४६॥
 एते च मुनयो देव भृगवाद्या प्रथितौजस ।
 संप्राप्तानि पुराभीह शक्रादीना महात्मनाम् ॥४७॥
 एते लोका समायात सत्यान्ता सप्त शकर ।
 मूर्तयस्तव देवेश भवाद्याश्च समागता ॥४८॥
 आदित्या वसवो रुद्रा साध्याश्चैव मरुगदणा ।
 सनकाद्या महात्मान सत्यलोकनिवासिन ॥४९॥

हे महादेव ! इनको भी आप देखते हुए अर्थात् कृपा पूर्ण दृष्टिपात करके प्रीति क करने वाले हो जाइए । ये सब हृषिक-न्दन से प्रलिप्त अङ्गो वाल हैं और अशोक तथा कमलो से सन्निविन हैं ॥४३॥ महानु बलवान प्रह्लाद आदि दैत्यो के अधिपतिगण हे महादेव जी ! समागत हुए हैं—नाग भी शेष प्रभूति हे शिवजी ! आपके समीप मे जाकर उपस्थित हुए हैं ॥४४॥ हे देव देवेश ! सभी पाताल के निवास करने वाली—रूप और यौवन से सम्पन्न एव गवित द्वीपों के साथ साथ सागर भी समागत हुए हैं ॥४५॥ हे शिवजी ! गन्धर्व—किनर यक्ष—सिद्ध—विद्या-धर—उवशी आदि अप्सराएँ और परम द्रुम पापी के हरण करने वाली नदियाँ भी आयी है ॥४६॥ हे देव ! ये सब प्रथित ओज वाल भृगु आदि मुनिगण आय हैं और महात्मा इन्द्र आदि क पुर भी सम्प्राप्त हुए हैं ॥४७॥ हे शङ्कर ! ये सत्य के अन्न तक वाले समस्त लोक भी समा-यात हुए हैं हे देवश ! आगकी भव आदि जो मूर्तियाँ हैं वे भी समागत हुई हैं ॥४८॥ आदित्य—वसुगण—रुद्रगण—साध्यगण—महन्द्रण और सनकादि महात्मा लोग जो सत्य लोक के निवास करने वाले भी यहाँ आये हुये हैं ॥४९॥

पद्मरागनिभो देवो बन्धूककुमुमद्युति ।
 जटाभिस्तु शिरोनद्धो रत्नमालाविभूषित ॥५०॥
 कमण्डलुधर श्रीमान्दण्डहस्त सुलोचन ।
 कृष्णाजिनोत्तरीयेण रक्तमाल्याम्बरेण च ॥५१॥
 सुवर्णमेखलाधारी रौद्रमकुण्डलमण्डली ।
 हनध्वजश्चतुर्बाहु सुरासुरनमस्कृत ॥५२॥
 सावित्र्या सहितो देव पद्मरोनिरिहाऽऽगत ।
 अतसीपुष्पसकाशस्तमालदनवर्चस ॥५३॥
 पीताम्बरधर श्याम पीतगन्धानुलेपन ।
 शङ्खचक्रगदाधारी शार्ङ्गी गरुडवाहन ॥५४॥
 किरीटी कुण्डली हारी कौस्तुभाभरणान्वित ।
 केयूरवलयापीड पीनवक्षा गदान्वित ॥५५॥
 चामीकरसुमालाभिर्दीप्यमानो विराजते ।
 सूर्यायुतप्रतीकाशो नीलोत्पलदलक्षण ॥५६॥

पद्मराग के सदृश—बन्धूक के कुमुम के तुल्यद्युति वाले—जटाओं के द्वारा नद्ध शिर वाले—रत्नमाल से विभूषित—कमण्डल के धारण करने वाले—हाथ में दण्ड धारण किये हुए श्रीमान्—सुलोचन—कृष्ण मृग के घर्म के उत्तरीय से युक्त और रक्त मान्य और अम्बर से मयुक्त—सुवर्ण की मेखना के धारण करने वाले—रौद्रम के कुण्डली के मण्डल वाले—हस्त की ध्वजा से युक्त चार बाहुओं वाले—सुर—असुरों के द्वारा नमस्कृत—सावित्री देवी के सहित पद्मरागि देव भी यहाँ पर आये हुए हैं । अलसी के पुष्प के सदृश—तमाल के तरु के वर्चस वाले पीताम्बर के धारी—श्याम—पीतगन्ध के अनुलेपन वर्त्ता—शङ्ख चक्र-गदा के धारण वर्त्ता—शार्ङ्गीधनुष वाली—गरुड के वाहन वाले किरीट धारी—कुण्डल धारी—हार के पहिन में वाले—कौस्तुभमणी के आभरण वाले—केयूर—वलय और आर्ष ड वाले—पीनवक्षस्थल से युक्त—गदा से सधुत—स्वर्ण की मालाओं से दीप्यमान होकर विराजत

हैं । अयुत (ऽशहजार) सूर्यो के समान—नीलराल के दल के सदृश लोचनो से सम्पन्न विष्णु देव है । ५० ५६।

क्षीरोदाणवशायी च नीलजीमूतानि स्वन ।

रमामदितसर्वांग शेषपर्यङ्कालाम ॥५७

गुरुणां च गुरुदेव ईश्वराणामपीश्वर ।

वरदो भव वात्सल्यो दैत्यकोटिक्षयकर ॥५८

आगन्धेय महादेव विष्णु प्रियतरस्तव ।

तप्तचामोकरप्रख्यो वज्रहस्तो महाबल ॥

पट्टाशुकपरोधानो हेममालाविभूषितः ॥५९

प्रख्यातवीर्यो बलवृत्रहन्ता बालार्कभासो हरिचन्दनाङ्क ।

पुत्रागनागंबकुलेश्च जुष्टो मुक्ताफलालकृतकण्ठदेश ॥६०

अय समागत शक्रो वह्निर्वैवस्वतस्तथा ।

नञ्च तिवंरुणो वायु कुबेरश्च समागत ॥६१

ईशानश्च महाभागस्त्रिशत्कोटिगणवृत्त ।

आगतस्त्रिजगद्योने मिनाकी च गणेश्वर ॥६२

दशकोटिगणयुक्त कालकण्ठस्तथैव च ।

सप्तकोटिगणयुक्तो घण्टाकर्णो महाबल ॥६३।

क्षीर सागर मे क्षयन करने वाले—नीलमेघ के समान गर्जन करने वाले—रमा के द्वारा समस्त अङ्गो का मर्दन किये गये—शेष की शय्या पर क्षयन की इच्छा वाले—गुरुओं के भी गुरुदेव—ईश्वरो के भी श्वर—वरद—भव—वात्सल्य रूपी—जरोडा दैत्यो के क्षय को करने वाले—हे महादेव जी ! आपके अधिरु प्रिय यह विष्णु भगवान आये । तपे हुए मुषण के सदृश—हाथ में वज्र धारण करने वाले—महाबलवान्—पट्ट बन्ध के धारी—हेम की माला से विभूषित प्रख्यात वीर्य वाले—बल वृत्र के हनन करने वाले—गान सूर्य के समान आभा वाले—ऋचन्दन के तिलक वाले—पुत्राग—नाग और बज्र के द्वारा सेविन—मोनियो अनवृत्त कण्ठ भाग वाल यह इन्द्र—अग्नि और वैवस्वत आ

गये हैं । निम्न—वरुण—वायु—कुबेर भी आ गये हैं । महामाग ईशान जो तीस करोड़ गणों से परिवृत्त थे—हे त्रिजगत् की योनि ! पिनाकी और गणेश्वर आ गये हैं । दस करोड़ गणों से युक्त बालकृष्ण तथा सात करोड़ गणों से समन्वित महा बलवान् घण्टा कर्ण आ गये हैं । १५७-६३।

दशकोटिगणैर्युक्तो वसुधै पो महाबल ।
 चतुष्कोटिगणैर्दण्डी शिखण्डी दशकोटिभिः । ६४।
 पद्मिर्मयूरवदन सिंहास्यो दशकोटिभिः ।
 सप्तकोटिगणैर्बुक्त्वा किरीटी च समागतः । ६५।
 कालान्तकस्तु दशामर्कली दशकोटिभिः ।
 पद्मिस्तु मुण्डमाली च त्रिशूली पञ्चकोटिभिः । ६६।
 अष्टाभिविंशमाली च त्रिमूर्तिर्नवकोटिभिः ।
 एते गणेश्वरा सर्वे तथा चान्ये गणेश्वरा । ६७।
 येषां सख्या न जानन्ति ब्रह्मया देवतागणा ।
 आगतानां महादेव शृणु कोलाहल विभो । ६८।
 अमरेश प्रभासश्च पुष्करो नैमिषमन्या ।
 अषाढी दण्डी मृण्डी च भारभूतिस्तथा कुली । ६९।
 तीर्थाधिपतयो देवा आगता दिव्यमूर्तयः ।
 एते गुह्याष्टरा देव कामरूपा महाप्रजाः । ७०।

दस करोड़ गणों के सहित महा बलवान् वसुधाप—चार करोड़ गणों के साथ दण्डी—दस करोड़ गणों के सहित शिखण्डी—छे करोड़ों के साथ मयूर वदन—दस करोड़ गणों से समुत्ता सिंहास्य और सात करोड़ गणों से समन्वित किरीटी समागत हुए हैं । ६४-६५। दस करोड़ गणों के साथ बालकृष्ण—दशमर्क और नकुली समागत हुए हैं । छे करोड़ गणों से युक्त मुण्डमाली—पांच करोड़ गणों से युक्त त्रिशूली आठ करोड़ गणों के सहित विंशमाली—नौ करोड़ गणों से समुत्त त्रिमूर्ति—ये सब गणेश्वर तथा अन्य गणेश्वर दून ने अधिपत गम्या से है

कि जिस सश्या को ब्रह्मा आदि देवतागण भी नहीं जानते हैं अन्य की तो बात ही क्या है । हे विभो ! हे महादेव जी ! इन आये हुआ का कोलाहल का श्रवण कर लीजिये । अमरेश—प्रभास—पुष्कर—नैमिष—आपाढी—दण्डी—मुण्डी—भारभूति—कुली ये दिव्य मूर्तियों वाले तीर्थों के सब अधिपतिगण आये हैं । हे देव ! ये गुणाटक हैं जो काम रूप और महान् बन वाले हैं । ६६—७० ।

तवाऽऽज्ञयाऽऽगता देव ब्रह्माण्डान्तरवासिनः ।
 कोटिकाटिगर्णयुक्ता देवदेव महेश्वर । ७१।
 विश्वेश्वरजटोद्भृता सिन्धुश्चैव सरस्वती ।
 यमुना गण्डकी नागा विपाशा नर्मदा शिवा । ७२।
 रुक्मा घण्टा च निविन्द्या देविका च हृपद्वती ।
 शतद्रुश्च पयोष्णी च चन्द्रभागा च गोमती । ७३।
 चर्मण्वती च कावेरी सरयूश्च परावती ।
 धूतपापा च सारथ्या माणा माला सुगन्धिका । ७४।
 जम्बू तापी वती शूरा कौशिकी कुमुदा करा ।
 मन्दाकिनी चन्द्रलेखा चम्पकाऽऽमोदवाहिनी । ७५।
 ऐरावती कामवगा प्रेङ्खला कामचारिणी ।
 पूर्णभद्रा महामोदा गम्भीरावतिनी स्तृता । ७६।
 मेघमाला मेघवर्णा सदानोरा च नन्दिनी ।
 वेदा वेदवती घोणा सीता चित्रोत्पला तथा । ७७।

हे देव ! ये सब अन्य अन्य घण्टा, षण्डी के निवास करने वाले आपकी ही आज्ञा में यहाँ पर समागत हुए हैं । हे देवों के भी देव महेश्वर ! ये सब करोहो करोहो गणों से युक्त हैं । ७१। विश्वेश्वर प्रभु के जटाओं से ममुत्प्र हुई (गंगा)—तिष्ठी—सरस्वती—यमुना—गण्डकी—नागा—विपाशा—नर्मदा—शिवा—रुक्मा—घण्टा—निविन्द्या—देविना—हृपद्वती—शतद्रुश्च—पयोष्णी—चन्द्रभागा—गोमती—चर्मण्वती—कावेरी—सरयू—परावती—धूतपापा—सारथ्या—माणा—माला—सुगन्धिका—

जम्बू—तापी—वनी—शूरा—कौशिकी—कुमुदा—करा—मन्दाकिनी—
चन्द्रलेखा—चम्पका—आमोदवाहिनी—ऐरावती—वामवेगा—ब्रेह्मला—
वामचारिणी—पूर्वभद्रा—महामोदा—गम्भीरार्वाक्षिणी—मेघमाला—मेघवर्णा—
मदानीरा—नन्दनी—वेदा—वेदवनी—वीणा—मीता—चित्रोत्पला । ७२। ७३।

वेत्रवती न घृत्रघ्नी पिप्पला जञ्जली तथा ।
परजा कुमुदा शिक्षा कौशिकी निपथा सिता । ७८।
वैतरणी मिनीवाली वेगवती पुन. पुना ।
गौरी कृष्णा तथा दुर्गा तुङ्गभद्रोत्पलावती । ७९।
स्वर्णा भीमरथी शुद्धा कृतमाला तरङ्गिणी ।
एता देव महानद्य पावना वल्मपापहा । ८०।
मूर्तिमत्यरतवेशान रस्सवे त्विह आगता ।
सर्वा एता महादेव पश्य कारण्यवारिधे । ८१।
भवन्ति कृतिन सर्वे त्वयि दृष्टे महेश्वर ।
एवमुक्त्वा तदा नन्दी देवदेवस्य चाग्रत । ८२।
पपात दण्डवद्भूमौ भवत्या परमया मुत ।
नन्दिन त महात्मान दृष्ट्वा विश्वेश्वरः प्रभु । ८३।
प्रीतो भूत्वाऽऽह कालारिमन्दरे चारुन्दरे । ८४।
इद य पठते नित्य शृगुयाद्वाजी भक्तन ।
प्रीता स्वुदेवता सर्वारतस्याभीष्टफलप्रदा । ८५।

वेत्रवती—घृत्रघ्नी—पिप्पला—जञ्जली—परजा—कुमुदा—शिक्षा—
कौशिकी—निपथा—सिता—वैतरणी—मिनीवाली—वेगवती—पुन
पुन—गौरी—कृष्णा—दुर्गा—तुङ्गभद्रा—उत्पलावती—स्वर्णा—भीम-
रथी—शुद्धा—कृतमाला—तरङ्गिणी—ह देव ! ये सब परम पावन
नदियाँ हैं और वल्मपापों के अन्तर्ण करने वाली हैं । हे ईशान ! ये सब
भूमिमयी नदियाँ आपके लगव में ही समाप्त हुई हैं । हे कल्याण के
मातर ! हे महादेव श्री ! इह सब पर आप अरत दृष्टिमान कीजिये ।
. ७८। ८०। हे महेश्वर देव ! आप देगे जाने पर सब कृपी हो जायेंगे ।

इस प्रकार से कह कर नन्दीदेव देव के आगे भूमि में दण्ड के समान गिर गया था और परमा भक्ति से युक्त होकर उसने साष्टांग प्रणाम किया था । विश्वेश्वर प्रभु ने उस महात्मा नन्दी को देखा और उस चारु कन्दराओ वाले मन्दराचल पर ये कालारि परम प्रसन्न होकर बोले—इसको जोभी कोई पढना है या सुनना है और नित्य भक्ति से श्रवण करता है उस पर सब देव प्रसन्न होते हैं और उसे अभीष्ट देने वाले होते हैं ।

॥ साम्ब विवाह वर्णन (१) ॥

अथासी हिमवान्विप्रा देवीमात्मसुतामुमाम् ।
 प्रदानार्थं महेशाय सप्राप्तो मन्दर क्षणात् ॥१॥
 आह दृष्ट्वा गिरिं नन्दी देवदेव पिनाकिनम् ।
 वक्तुकाम समायातो भगवान्पर्वतेश्वर ॥२॥
 श्रुत्वा तु वचन श्लक्ष्ण व्यक्त नन्दीमुखात्तदा ।
 मेघगम्भीरया वाचा महादेवोऽब्रवीदिदम् ॥३॥
 वदत्वय गिरिश्रेष्ठो हृदये यत्प्रतिष्ठितम् ।
 कामस्तस्य (स्या) चिरादेव भविष्यति न सशय ॥४॥
 एवमुक्तस्तदा विप्रा देवदेवेन शम्भुना ।
 उवाच गिरिशार्दूलो भूत्वाऽग्नेऽवनताञ्जलि ॥५॥
 याऽऽग्नीत्पूर्वं च ते पत्नी साऽवतीर्णा गृहे मम ।
 तामेव तव दानार्थमागतोऽस्मि महेश्वर ॥६॥
 अमी ब्रह्मादयो देवास्त्वत्समीपमिहाऽऽगता ।
 किं गोनमिति मृच्छामि ह्येषामग्रे विभो वद ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर हे विप्रो ! वह हिमवान् अपनी पुत्री देवी उमा को महेश के लिये प्रदान करने के वास्ते क्षण मात्र में

ही मन्दराचल पर प्राप्त हो गये थे ।१। नन्दी ने गिरिराज हिमवान् को देखकर देवों के देव पितावधारी से कहा—यह कुछ कहने की इच्छा वाला भगवान् पर्वतेश्वर समागत हुए हैं ।२। उस समय में नन्दी के मुख में परम लक्षण वचन व्यक्त रूप में श्रवण करके भेष के सदृश परम गभीर वाणी से महादेवजी ने यह कहा था ।३। यह गिरियो म श्रेष्ठ कहें जो बुद्ध भी इनके मन में प्रतिष्ठित है । उनका मनोरथ शीघ्र ही हो जायगा—इसमें सशय की कोई भी बात नहीं है ।४। हे विप्रो ! उस समय में देवदेव के द्वारा इस प्रकार से कहने पर गिरि शार्ङ्गल उनके आगे प्रणत अञ्जलि वाला होकर यह बोला—।५। हिमवान् ने कहा— जो पूर्वजन्म है आपकी पत्नी थी वही अब मेरे घर में अबतोरण हुई है । हे महेश्वर ! उमी को आपके लिये दान देने के उद्देश्य से मैं वहाँ पर समागत हुआ हूँ ।६। ये ब्रह्मा आदि सब देवगण भी यहाँ पर आपके समीप में समुपस्थित हो गये हैं । हे विप्रो ! आप यह वतलाइये कि आपका गोत्र क्या है ? आप इन सबके समक्ष में वता दें ।७।

श्रुत्वा तु भारती तस्य विश्वेशो विश्ववन्दित ।
 किं गोत्रमिति सचिन्त्य नोत्तर प्रमसर्ज ह ॥८॥
 दृष्ट्वा निरुत्तर शम्भु जहमुर्देवदानवा ।
 एष एव जयद्योनिर्गोत्रिमस्य कथं भवेत् ॥९॥
 इत्युचुर्विबुधा भवो हिमवन्त नगोत्तमम् ।
 देवानां च वच श्रुत्वा गिरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥१०॥
 विश्वेश्वर पर धाम परमात्मानमव्ययम् ।
 शाश्वत गिरिश स्याणु विश्वाकार सनातनम् ॥११॥
 दत्ता दत्ता पुनर्दत्ता उमा मत्पुत्र ते प्रभो ।
 ततो महान्भवो विप्रा जयशब्दादिमङ्गलै ॥१२॥
 दुन्दुभीनां च वाद्यानामभवत्पागरोपम ।
 गृहीतेति शिव प्राह पावंती पर्वतेश्वरम् ॥१३॥

तद्धरते भगवाञ्शभुरङ्ग लीय प्र(न्य)वेशयत् ।

इम च कलश हैममाद्राय त्व नगोत्तम ॥१४॥

विश्व के ईश और विश्व के द्वारा वन्दित प्रभू ने उस हिमवान् की भारती का श्रवण करके मेरा क्या गोत्र है—इसका चिन्तन करके कुछ भी उत्तर नहीं दिया था । ८। जब शम्भू को बिना उत्तर वाला देता तो सभी देवगण और दानव हस गये थे । उन्होने कहा यह ही तो सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न करने वाले है । इनका गोत्र कैसे हो सकता है । ९। यही बात सब देवों ने नगो मे उत्तम हिमवान् से कही थी । देवों के इस वचन का श्रवण करके गिरिराज यह बोले—१०। विश्वेश्वर—परमधाम—परमात्मा—अव्यय—शाश्वत—गिरिश—स्थाणु—विश्वाकार—सनातन को मैंने अपनी पुत्री उमा दे दी—और पुत्र दे दी है—यह हे प्रभो ! यह मैं सत्य निवेदन कर रहा हूँ । हे विप्रो ! इसके पश्चात् जय शब्द आदि क मङ्गल सूचक शब्दों से महान् ध्वनि हो गयी थी । ११। १२। उस समय म दुन्दुभियो तथा अन्य वाद्यों का भी मांगर की गर्जना के समान बहुत भारी ध्वनि उत्पन्न हो गयी थी । तब भगवान् शिव ने पवतेश्वर हिमवान् से कहा था कि मैंने पार्वती को ग्रहण कर लिया है । उसके हाथ मे भगवान् शम्भू ने अङ्गलीय का प्रवेश करा दिया था । हे नगोत्तम ! आप इस हैमकलश को लाकर जाइये । १३। १४।

याहि गत्वा त्वनेनेव तामुमा स्नापय त्वरा ।

अन्देपा परिहारार्थमेव एव विधि सदा ॥१५॥

जगत्रयेऽपि नून स्याद्भ्रज तूर्णं नराधिप ।

ततस्तुष्टो महाशैलोऽभोजयत्सुसमाहित ॥१६॥

तव यज्ञरतो विप्रारतपणत्य चराचरान् ।

अभवद्देवमुद्दिश्य शंकर ग गिरिस्तदा ॥१७॥

तथाऽस्मिन्नन्तरे देवो घर्मकेतुमहेश्वर ।
 उत्थितो मुनिशार्दूला समालोक्य च शार्ङ्गिणम् ॥१८॥
 अभवज्जयशब्दाना तुमुलो हि महारतदा ।
 पुष्पवृष्टिनिपातश्च सत्यलोकाद्द्विजोत्तमा ॥१९॥
 नानावनाधिपाश्चैव क्लवश्च मुदान्विता ।
 कुमुमैर्दिव्यगन्धाढ्यैर्वैवृषुर्मैघवृन्दवत् ॥२०॥
 वीषीवेषुमृदङ्गाना दुन्दुभीना ततो रवः ।
 हरिविरश्चिशक्रात्ता पूरयन्ति सुरास्तदा ॥२१॥

आप जाइये और जाकर शीघ्र ही अपने से ही उस उमा का स्तनपन कराइये । अन्यो के परिहार के लिये यह ही सदा विधि है । यह शीघ्रो जगत् म भी निश्चय ही होती है । अतएव हे नराधिप ! शीघ्र ही गमन करो । इसके अनन्तर परम तुष्ट होकर महाशैल ने सुममाहित होने हुए भोजन कराया था । इस प्रकार से हे विप्रो ! चर और अचरो को तर्पण करने के लिये यज्ञ में रत हो गया था । उस समय म बहू गिरिराज भगवान् शङ्कर का उद्देश्य करके ही रत हो गया था । १५।१६।१७। हे मुनि शार्दूलो ! तथा इस अन्तर म देवघर्म केतु महेश्वर उत्थित हुए और शार्ङ्गी भगवान् को देखा था । १८। उस समय ने महान् जय-जय शब्दों का तुमुल हो गया था । पुष्पों की वृष्टि का विपात हुआ । हे द्विजोत्तमो ! कुसुमों की वर्षा सत्य लोक से हुआ था । अनेक प्रकार के वना क अश्वि और आनन्द से समन्वित ऋणुओं ने दिव्य गन्ध से युक्त कुसुमों के द्वारा मेघों के समुदाय के ही समान वर्षा की थी । उस शुभ समय म हरि-ब्रह्मा और महेन्द्र आदि सुरा ने वीणा—वेणु—मृदङ्ग और दुन्दुभियों की ध्वनि को पूरित किया था । १९।२०।२१।

विप्राखं लोक्यनादेन वेदघोष प्रचक्रिरे ।

गायत्री चैव सावित्री ह्रद्रकन्यारतयैव ॥२२॥

विद्याधर्योऽथ नागिन्यो देवानां च तथाऽङ्गना ।
 सिद्धकन्या मनोहार्या यक्षकन्यारतथैव च ॥२३॥
 मातर सप्त याश्चैव याश्च नक्षत्रमातर ।
 गिरीणा च तथा नार्यं समुदाश्च सरासि च ॥२४॥
 मङ्गल गायत्र्याश्च अर्धमष्टाङ्गसयुतम् ।
 सुप्रहृष्टा ददुः सर्वा देवदेवस्य पादयो ॥२५॥
 एतस्मिन्नन्तरे विप्रा हिमवत्सप्रणोदित ।
 मीनावस्तत्र सप्राप्तो हेमकुम्भकर सुधी ॥२६॥
 सालङ्कायनपीठरय गत्वा तस्याग्रत स्थित ।
 तेनापि देवदेवस्य ज्ञापितो गिरिरग्रत ॥२७॥
 अथासौ भगवान्देवो मङ्गलेशो जलाशय ।
 स्नापयद्द्वेषा युक्त समुद्रं शूलपाणिनम् ॥२८॥

विप्रो ने त्रं लोक्य नाद से वेदघोष अर्थात् वेदो के मन्त्रीच्चारण की ध्वनि को किया था । गायत्री—सावित्री—रुद्रो की कन्याएँ— विद्याधरी—नागिनी—देवो की अङ्गनाएँ—मनोहर सिद्धो की कन्याएँ तथा यक्षो की कन्याएँ—सात माताएँ जो थी उन्होंने और जो नक्षत्र माताएँ थी—पर्वतो की रिचर्या—समुद्र मर सब मङ्गल गान कर रहे थे और परम प्रहृष्ट होते हुए सबने देवदेव के चरणों में अष्टाङ्ग सयुत अर्घं दिया था ॥२३॥२४॥२५॥ इन्हीं बीच में हे विप्रो ! हिमवान् के द्वारा प्रेरित होकर मैं नाव सुधी हेम का कुम्भ हाथ में ग्रहण करने वहाँ पर सम्प्राप्त हुआ था ॥२६॥ सावङ्कायन पीठ के आगे जाकर वहाँ स्थित हो गया था । उसके द्वारा भी देवदेव के आगे गिरि ज्ञापित हुआ था ॥२७॥ इसके अनन्तर भगवान् देव मङ्गलेश जलाशय न वेधा से युक्त होकर समुद्रों के द्वारा शूलपाणि का स्नपन कराया था ॥२८॥

स्नाप्यमाने तदा देवे नद्यो वी सागरा द्विजा ।
 बभूवु सलिलैर्युक्ता कृशाङ्गा स्वैदसयुता ॥२९॥

अथ ते त्रिदशाः सर्वे सनारायणका द्विजाः ।
 पर विस्मयमापन्ना भर्गं पश्यन्ति चाद्भुतम् ॥३०॥
 ततो निलीयमानास्तु शरीरे शकरस्य तु ।
 नद्य सर्वा समुद्राश्च प्रपश्यन्ति सुविस्मिताः ॥३१॥
 योगमायाहतं वीक्ष्य तत्तोय जगति स्थितम् ।
 अस्तुवन्पशुमर्तारं ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥३२॥
 ततस्तैरतु स्तुतो देव प्रहस्य भगवाभवः ।
 विमृज्य च तदा तोयमभवत्पूर्वरूपवृत् ॥३३॥
 एव साम्ये स्थिते तस्मिन्देवदेवे पिनाकिनि ।
 स्नापितोऽसौ विरञ्चाद्यं स्निमूर्तिर्भगवान्भवः ॥३४॥
 मनाकोऽप्यञ्जलि कृत्वा देवदेवस्य चाग्रतः ।
 सस्थितो हर्षसयुक्तो निर्धि लब्ध्वा यथाऽधन ॥३५॥

उस समय मे देव के स्नप्पमान होने पर नदियों और सागर हे द्विजो ! कृशाङ्ग और स्वेद स सयुक्त सलिलो से समन्वित हो गये थे ।२६। इसके उपरान्त सब त्रिदशगण नारायण के सहित परम आश्चर्य को प्राप्त हो गये थे और अद्भुत स्वरूप वाले भगवान् भव को देख रहे थे ।३०। इसके उपरान्त भगवान् शङ्कर के शरीर मे विलीन होती हुई समस्त नदियों और सब समुद्र सुविस्मित होकर देख रहे थे ।३१। जगत् मे स्थित उम जल को योगमाया से हत देखकर ब्रह्मा आदि देवगणो ने पशुपति प्रभु का स्तवन किया था ।३२। इसके अनन्तर उन सबके द्वारा स्तुति किये गये देव भगवान् भव हैसकर उमी समय मे जल का विसर्जन करके पूर्व रूप के धारण करने वाले हो गये थे ।३३। इस रीति से साम्ब दशा मे स्थित उन देवो के देव विनाशी के वह त्रिमूर्ति भगवान् भव ब्रह्मा आदि के द्वारा स्नापित किये गये थे ।३४। मनाक पर्वत भी देवदेव के आगे अञ्जलि करके गस्थित हो गया था । उस समय मे वह इतना अधिक प्रदग्धित हो रहा था जैसे कोई बहुत

निधन पुरुष धन की निधि को प्राप्त करने खुश हो जाया करता है ।
॥३५॥

विसर्जितस्ततस्तेन देवदेवेन शम्भुना ।
त्रैलोक्यपतिलके तस्मिन्वयौ तूर्णं नगात्मज ॥३६॥
तदशुक परिधाप्य देवी तामरसेक्षणाम् ।
स्नापयस्तेन कुम्भेन हराङ्घ्रिपतितेन च ॥३७॥
नीरपात द्विजश्रेष्ठा कृतमेतत्कपर्दिना ।
पार्वतियविधिर्नूनं कुलजाना सदाऽनघ ॥३८॥
ततो भगवती देवी हृष्टपुष्टा तपोमयी ।
पितुरभ्याशगा भूत्वा विवेश परमात्मने ॥३९॥

इसके उपरान्त देवदेव शम्भु ने उसे विदा कर दिया था । त्रैलोक्य के तिलक उसके जाने पर बहुत शीघ्र नगात्मज अर्थात् हिमवान् का पुत्र गया था । तामर के समान नेत्रों वाली उस देवी को वह उनका वस्त्र पहिनाकर शिव के चरणों के ऊपर से गिरे हुए उसी कुम्भ के द्वारा स्रवन करते हुए है द्विज श्रेष्ठो ! कपर्दा प्रभु ने यह नीरपात किया था । कुलजों की सदाऽनघ पार्वतिय विधि निश्चय ही सम्पन्न हुई थी ॥३६॥३७॥३८॥ इसके पश्चात् तपोमयी भगवती देवी परम हृष्ट-पुष्ट होती हुई पिता के समीप वर्तिनी होकर परमात्मन पर प्रवेश कर बैठ गयी थी ॥३९॥

॥ सांख्य विवाह वर्णन (२) ॥

अथाऽऽयान्त शिव हृष्टा हिमवान्पर्वतिश्वर ।
मेरुश्चैव यथासक्यं रविचन्द्रदिवाकरं ॥१॥
तथा देवी स वेधात्तु वृत क्षत्रेण समुत्तम् ।
जयेत्सुवत्या नगेन्द्रस्तु ह्यात्मात्त्याम्बरस्तदा ॥२॥

उत्थित. सहसा विप्राः पुष्पहस्तो महेश्वरः ।
मुदा परमया युक्तो भवन्या चानन्यया द्विजाः ॥३॥
वक्षन्नाविधैश्चक्रं मार्गभूषां तदा गिरिः ।
पताकाभिर्जयन्तीभिः सग्दामैर्दिव्यगन्धिभिः ॥४॥
ध्वजैश्च विविधाकारैः पञ्चवर्णैर्मनोरमैः ।
चामरैश्चन्द्ररम्यैस्तु सम्बकैश्च समन्ततः ॥५॥
मुक्तानां प्रकरैश्चैव पुष्पाणां तु तथैव च ।
एवमार्धरत्नैकैश्च शोभां कृत्वा नगोत्तमः ॥६॥
स्थितस्तु वीक्षमाणोऽसौ विश्वव्यापिनमीश्वरम् ।
सपूर्णचन्द्रवदना मदनानलदीपिताः ॥७॥

श्रीसूतजी ने कहा— इसके अनन्तर पर्वतेश्वर हिमवान् ने आते हुए भगवान् शिव को देखकर और मेरु ने भी यथासंख्य रविचन्द्र दिवाकरो के तथा वेवा आदि देवों के द्वारा परिलुप्त और छत्र से सयुत थे । उस समय में नगराज ने “जय हो”—यह कहकर उग समय में हाथ में वस्त्र और माल्य लेकर सहसा उत्थित हो गया था । हे विप्रो ! महेश्वर पुष्प हाथ में लेने वाले हो गये थे । हे द्विजो ! उम समय में गिरिराज परम आनन्द से युक्त और अनन्य भक्ति से सयुत होकर उन्होंने उस समय में नाना प्रकार के वस्त्रों से मार्ग की सजावट की थी । पताकाओं से—जमान्तियों से—दिव्य गन्ध वाली मालाओं से विविध आकार वाले ध्वजों से—मनोरम पाँच वर्णों वाले चमरों में जो सभी ओर सम्बे और चन्द्रमा के समान सुरम्य थे । मोतियों के तथा पुष्पों के प्रकारों से इस प्रकार के अनेक पदार्थों के द्वारा नगोत्तम ने मार्गों की शोभा की थी । फिर वह स्थित होकर विश्वव्यापी ईश्वर को देखते हुए विराजमान थे । फिर मदन को अनन्त से दीपित हुई सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखे चापी अप्परायें वहाँ पर विद्यमान थी । १-७।

शतकोट्योऽप्सराराणां तु निर्ययुः समुखाश्च तम् ।
 हेमपात्रकरासक्ताः पद्मेन्दीवरहस्तकाः ॥८॥
 मणिपात्राणि पूर्णानि दूर्वातिद्वार्थकाङ्क्षितैः ।
 दधिरोचनमादाय व्रीहिभिश्चम्पकैर्यवैः ॥९॥
 हरिचन्दनलिप्ताङ्गा हरिचन्दनहस्तकाः ।
 विद्रुमाङ्कुरहस्ताश्च सथैवोत्पलशेखराः ॥१०॥
 × चूतमञ्जरिहस्ताश्च पारिजातकराः पराः ।
 स्वादूदकेन सपूर्णभृङ्गारकरपल्लवाः ॥११॥
 हावभावविलासिन्यो मदनातुरह्विताः ।
 मदनारिं प्रणोमुस्ता गायमानाखिलोचनम् ॥१२॥
 अथासौ भगवाञ्छूली चान्तर्यामी महेश्वरः ।
 त्रैलोक्यतिलके तस्मिन्क्षणादाविर्बभूव ह ॥१३॥
 ततो घनैर्बहुविधैः पूजयामास पर्वतः ।
 स्तुत्वा च पूजयित्वा च ननाम च पुनः पुनः ॥१४॥

सैकड़ों करोड़ अप्सरायें उनके सामने में निकली थीं । उनके हाथों में सुवर्ण के पात्र थे । कुछ के हाथों में इन्दीवर पद्म थे । कुछ के हाथों में दूर्वा-तिद्वार्थ काङ्क्षितों से युक्त पूर्ण मणियों के पात्र थे । व्रीहि-चम्पक और यवों से युक्त दधिरोचन लेकर हरिचन्दन से लिप्त शङ्खो वाली थीं और कुछ अप्सराएँ हरिचन्दन को हाथों में ग्रहण किये हुए थी । उन अप्सराओं में कुछ विद्रुमों के अङ्कुर हाथों में ग्रहण किये हुए थी तथा कुछ उत्पलो को मस्तक पर धारण किये हुए थी ॥८-१०॥ कुछ अप्सराओं के हाथों में आम्र मञ्जरियाँ लगी हुई थीं और दूसरी अपने करों में पारिजात तिये हुए थीं । कुछ स्वादिष्ट उदक से पूर्ण भृङ्गारक अपने कर पल्लवों में ग्रहण किये हुए थी ॥११॥ ये सब अप्सराएँ कामदेव से अत्यन्त आनुर और त्रिह्वल हो रही थी । ये सब गान, गीत, नृत्य, दूर्व, मदन, के. अति, भक्त्यन्त, पिस्तोन्त, को, पञ्चाङ्ग कर रही थीं ॥१२॥ इसके अनन्तर भगवान् शूली अन्तर्यामी महेश्वर त्रैलोक्य

तिलक उसमे क्षणभर म ही आविर्भूत होगये थे ॥१३॥ इसके उपरान्त बहुत प्रकार के धनो के द्वारा पत्रताराज ने भगवान् शिव की पूजा की थी । स्तुति करके और अम्बुधन करके बारम्बार प्रणाम किया था । १४ ।

गोतेश्च विविधैर्वाक्यै प्रविशेश हरन्तदा ।
 भद्राऽभवत्तदा वालो द्व्यष्टवर्षीकृति स्वयम् ॥१५
 हेमाङ्गा भगवाञ्शम्भु विरीटी कुण्डली हर ।
 सुरासुराश्च विप्रेन्द्रा दृष्ट्वा रूप पिनाकिन ॥१६
 अवलोक्य मुखाऽन्योन्य जहमुस्ते मुदाऽन्विता ।
 आत्ने हेमजे विप्रा नानारक्षेश्च भूपिते ॥१७
 विवेश भगवाञ्शुली महादेवा जगत्पति ।
 हरस्य दक्षिण वेशा वामभाग जनादन ॥१८
 शंलादिरग्रत शगो कालरुदश्च सुप्रता ।
 रुद्रं गं गोश्वरं देवै सिद्धं च मुनिभिस्तथा । १९
 उपविष्टेषु सर्वेषु गन्धर्वाद्या समन्तत ।
 जगुर्गीत च हिन्दोल तुम्बुरुनारदादय ॥२०
 मत्तमातङ्गगामिन्यो गेय तालनयान्वितम् ।
 रम्भाद्यप्सरस सर्वा मिनर्वो ननृतुर्द्विजा ॥२१

उस समय म हर भगवान् ने विविध प्रकार के गीतों के द्वारा तथा वाक्यों के द्वारा प्रवेश किया था । उस समय म सोनह वर्ष की आयु के वाले भगवान् भव स्वयं जातक होगये थे ॥१५॥ भगवान् हर हेम के समान अङ्ग वाले—विरीट की धारण किये हुए और कुण्डली की पहिनीये वाले होगये थे । हे विप्रेन्द्रो ! समस्त गुरु और असुरा ने भगवान् पिनाकी के सुन्दर स्वरूप को देखा था । शिव के रूप को देखकर आपस म एक दूसरे की ओर मुग्न कर के आगे द से युक्त होकर हँसने लग गये थे । हे विप्री ! नाग प्रकार के रत्नों से विभूषित मुखण निर्मित आसना पर जगत् के स्वामी भगवान् शुली महादेव जी विराजमान होगये

थे । हर के दक्षिण भाग में बेधा विराजमान हुए थे और वामभाग में जनार्दन प्रभु समवस्थित हुए थे ॥१६-१८॥ हे सुब्रह्मन् ! शम्भु भगवान् के आगे शैलादि विराजमान थे और कालरुद्र स्थित हुए थे । रुद्रो-गणो-ईश्वरो-देवो-सिद्धो और मुनियों के द्वारा सबके उपविष्ट हो जाने पर चारों ओर गन्धर्व आदि विराजमान हुए थे । नारद आदि ने तथा तुम्बरू ने हिन्दोल गीत का गान किया था । इस ताल और लय से मुक्त भोग पर हे द्विजो ! मस्त गज के समान गमन करने वाली सब रश्मा आदि अप्सराएँ और किन्नरियाँ नृत्य करने लग गयी थी ॥१७-२१॥

वीणावल्लकिवेणुना मृदङ्गाना विशेषतः ।

ध्वनिभिर्मनसस्तुष्टिर्जज्ञे सुमनसा तदा ॥२२

अथ विदवेश्वरः शम्भुं पणं नर्भास स्थितम् ।

प्रायच्छगिदरिजायं तदाह्लादजनक मुदा ॥२३

अनेनालकृता देवि मम योग्या भविष्यसि ।

पितुर्दक्षस्य यः कोपः पूर्वजस्य वरानने ॥२४

प्रहस्यसि तमेवाऽऽशु भाव चैव तु तामसम् ।

ततः सा पार्वती देवी गृहीत्वाऽऽकाशमण्डलात् ॥२५

पितुः समीपमगमद्वस्त्राभरणमुत्तमम् ।

महता ह्युत्सवेनाऽऽशु भूषयित्वा शिवा नमः ॥२६

वस्त्रं राभरणं देवी दिव्यैर्वै सिंहवाहिनीम् ।

मेनोत्तमङ्गना भूयश्चन्द्रलेखेन तोयदे ॥२७

दधती निवृता देवी वभौ तामर सेक्षणा ।

अथ देवं परिवृतो विष्णवाद्यंस्त्रिपुरान्तकः ॥२८

उस समय में वीणा-यन्त्रकी-वेणु और विद्योप रूप में मृदङ्गों की ध्वनियों से गुन्दर मन बागों के मन की मुष्टि उत्तम ह्रीं गई थी ॥२२॥ दक्ष ने पश्चात् विषय के ईश्वर भगवान् शम्भु ने नभ में स्थित रूपण विरिजा के सिधे प्रदान किया था । वह आनन्द के साथ महत ही आह्लाद का उत्पन्न करने वाला था ॥२३॥ हे देवि ! इस भूषण से

समलङ्कृत होती हुई आप मेरे योग्य हो जाओगी । हे वरानने ! जो तुम्हारा पूर्वज पिता दक्ष प्रजापति था उसके ऊपर उत्पन्न हुए कोप को बहुत ही शीघ्र त्याग दोगी और जो तामस भाव उस पर समुत्पन्न हुआ था उसका भी त्याग कर दोगी ॥२४॥ इसके पश्चात् पार्वती देवी ने आकाश मण्डल से उसका ग्रहण क्रिया था और फिर वह अपने पिता के समीप में गयी थी । पर्वतराज ने महान् उत्सव के साथ बहुत शीघ्र शिवादेवी को उत्तम वस्त्राभरणों से भूषित कर दिया था ॥२५॥२६॥ वह देवी वस्त्रों और आभरणों से जो कि परम दिव्य थे भूषित होकर सिंह गामिनी वह देवी मेना के गोद में स्थित हुई पुनः मेघ में चन्द्रमा की लेखा के ही तुल्य भासित हुई थी ॥२७॥ भूषणों को धारण करती हुई देवी परम निर्वृता हो गई थी और तामरस के तुल्य नेत्रों वाली अत्यन्त राजित हुई थी । इधर देवगणों से परिवृत त्रिपुरान्तक थे जिनमें विष्णु आदि सभी थे ॥२८॥

वभ्राम मुनिशार्दूलो क्रीडास्थानानि कृत्स्नशः ।

भगवन्देवदेवेश विश्वेशान्धकसदन ॥२९

प्रणम्य परया भक्त्या शैलादिरिमन्त्रवीत् ॥३०

वेदीयमिन्द्रनीलाभा भाति विश्वभरा शिव ।

सेय जलमयी नाथ निमिता विश्वकर्मणा ॥३१

या चैव परमा रम्या नोयाना भ्रान्तिकारिणी ।

सेय भाति महादेव रत्नानामीदृशी प्रभा ॥३२

इदं च द्वारस्थानं दृश्यते लम्बकैर्वृतम् ।

कुडचस्य रत्नविन्यासे लक्ष्यते द्वाररूपता ॥३३॥

इदं चित्ररथाकारं दृश्यते वनमुत्तमम् ।

प्रतिबिम्बं महादेव रत्नभूमेर्न सशय ॥३४

इदं च मन्दिराकारं सापानचयमडिप्तम् ।

प्रतिबिम्बमिदं चैव दृश्यते नवमडिप्तम् ॥३५

हे मुनि शार्दूलो ! फिर वे सम्पूर्ण क्रीडा के स्थानों में भ्रमण करने

लगे थे । शैलादि ने पराभक्ति से प्रणाम करके यह कहा था—हे भावन् ! हे देवदेवेश्वर ! हे विश्व के स्वामिन् ! हे अन्धक के सूदन करने वाले ! नन्दिकेश्वर ने कहा—हे शिव ! इन्द्रनील की आभा वाली यह वेदी शोभित हो रही है जो कि विश्वम्भरा है । हे नाथ ! वहाँ यह वेदी विश्वकर्मा के द्वारा जलमयी निर्मित की गयी है ॥२६-३१॥ जो यह परम रम्या है वह जलो की भ्रान्ति समुत्पन्न कर देने वाली है । हे महादेव जी ! रत्नों की ऐसी ही प्रभा है कि यह वेदी ऐसी ही शोभा वाली प्रतीत होनी है सम्बन्धको संयुक्त यह द्वार का सस्थान दिखाई देता है । भित्ति के अन्दर जो रत्नों के विन्यास में द्वार रूपता लक्षित हुआ करती है । यह चित्र रथ के आकार वाला उत्तम धन दिखाई दे रहा है । हे महादेवी जी ! यह रत्नों की भूमि का प्रतिबिम्ब है—इसमें बुद्धि भी संशय नहीं है । और यह जो मन्दिर के आकार वाला है वह सोपानों के समुदाय से मण्डित है । यह भी गवमण्डित प्रतिबिम्ब ही दिखलाई दे रहा है ॥३२-३५॥

या चेय सागराकारा दृश्यते तोयरूपिणी ।
 एषाऽपि परमेशान रत्नभूमिर्जलोपिता ॥३६॥
 यद्विद गणनाभास नूतिद्रव्यैरिवोजितम् ।
 क्रीडामण्डपमेतस्मिन्प्रदेशे देव तिष्ठति ॥३७॥
 अम्बराभ्रैर्महारत्नैर्वाह्यदेशे विनिर्मितम् ।
 अनेकवाद्यसमुक्त रमणीय ययी हरः ॥३८॥
 एव क्रीडति देवेशे सुरासुरमहोरगा ।
 विद्याधरास्तथा यक्षा गन्धर्वाप्तिरसादयः ॥३९॥
 दीर्घिकासु तडागेषु नदीषु च हृदेषु च ।
 क्रीडावापीषु ते रम्यैर्यन्त्रैर्नानाविधैर्भुशम् ॥४०॥
 बभूवुर्देवताः सर्वाः क्रीडारतिषु लालसाः ।
 अथ सक्रीड्य विश्वात्मा निवृत्तस्तत्प्रदेशतः ।
 वेद्याः समीपमगमत्सुयमानो मुनीश्वरैः ॥४१॥

प्राप्याऽऽरुरोह प्रसभ सुरेशस्तदिन्द्रनीलामलवेदिकान्तम् ।

सहस्रपत्रैवकुलैश्च नामः कीण हि यत्काञ्चनपारिजाते ॥४२

जो यह सागर के से आकार वाली जलके स्वरूप वाली सामने दिखलाई दे रही है । हे परमेशान ! यह भी जलोपिता रत्नभूमि ही है ॥३६॥ जो यह गगन के आभास वाला मूर्ति द्रव्यो से अजित के ही समान है । हे देव ! इस प्रदेश में क्रीडा का मण्डप ही म्थित है ॥३७॥ अम्बर के समान आभा वाले महा रत्नो से विरचित बाह्य दश में जो अनेक वाद्यों से समन्वित और परम रमणीय था वहाँ पर शम्भु गये थे । इस प्रकार से देवेश्वर के क्रीडा करने पर समस्त सुर-असुर-महोरग-विद्याधर-यक्ष गन्धर्व और अप्सरा आदि समस्त देवगण दीधिकाओ में तडागो में नदियो में-हृषो में और क्रीडा वापियो में अनेक प्रकार के मुन्दर यन्त्रो के द्वारा अत्यन्त ही क्रीडा की रति में लालसा वाले होगये थे । इसके अनन्तर विश्वात्मा उस प्रदेश में निवृत्त होगये थे और मुनीश्वरो के द्वारा स्तुति किये गये प्रभु वेदी के ममीप में गये थे । उस इन्द्रनील के समान निर्मल वेदिका के समीप में सुरेश प्राप्त होकर बल पूर्वक आहूढ हुए थे जो कि सहस्र पत्रो-वकुलो-नागो और काञ्चन पत्र जातो से समाकीर्ण था ॥३८-४२॥

तत प्रविष्टो हरिणाङ्गुचिह्न सरश्मिजालाकुलवेदिकान्तम् ।

विवेश सूर्यायुतसुप्रभासो वतो विरञ्ज्यादिसुरै समन्तात् ॥४३

अथोपविष्टं सवीक्ष्य विश्वेश पर्वतेश्वर ।

तस्य सस्थाप्य पुरतो ऽवेशीमघ्रवीदिदम् ॥४४

त्वमेवैक पर धाम अर्धनारीश्वरस्तत ।

देवताना हितार्थाय जातो ह्यर्धतनु पृथक् ॥४५

दक्षस्य दुहिता देवी जगद्धात्री ह्युमा सती ।

द्वितिन्य च ततो दक्ष त्यक्त्वा देह निज पुन ॥४६

तथैव पत्नी देवेश जाता मम सूता सती ।

तत श्रुत्वा गिरीन्द्रस्य वचस्त्रिभुवनेश्वर ।

प्रसन्नो वरद शम्भुरध्वीत्पर्वतेश्वरम् ॥४७

जानाम्यह येन ममैव माया शक्तिर्वरैषा नजराजिनिह ।

सत्यज्य देह तव घाम्नि जाता योगात्स्वय चारुशशाङ्कवक्त्रा ॥४८

आचारार्थं गिरिश्चेष्ट दत्ता गृह्णामि पार्वतीम् ।

अदत्ता यदि गृह्णामि तथा लोकेऽपि वर्तते (वर्तते वी जन) ॥४९

इसके पश्चात् हरिणाङ्क के चिह्न वाले भगवान् शिव जो अयुत (दश सहस्र) सूर्यों की प्रभा से युक्त-विरञ्चि आदि सुरों से चारों ओर परिवृत थे प्रभु शिव किरणों के जाल से समाकुल उस वेशी के समीप में प्रविष्ट हुए थे ॥४३॥ इसके अनन्तर पर्वतो के स्वामी हिमवान् ने विश्वेश्वर को वेदी के समीप में प्रविष्ट हुए देखकर उनके आगे देवीशी के संस्थापित करके उस समय में यह कहा था ॥४४॥ हिमवान् ने कहा—आप ही एक परमेश्वर और अर्ध सारीश्वर हैं। देवताओं के हित करने के लिये ही आपने पृथक् शरीर धारण किया है ॥४५॥ यह दक्ष प्रजापति की पुत्री जगत् की धानी सती उमा है। इसने अपने पिता दक्ष को विनिन्दित करके और अपने देह का त्याग करके यह है देवेश्वर। यह आपकी ही पत्नी फिर सती मेरी पुत्री होकर समुत्पन्न हुई है। इसके उपरान्त तीनों भुवनों के ईश्वर प्रभु शिव ने गिरीन्द्र हिमवान् के इस वचन का श्रवण करके वरदाता भगवान् शम्भु परम प्रसन्न हुए थे और पर्वतेश्वर से बोले—॥४७॥ ईश्वर ने कहा—हे नगराज सिंह। मैं यह सब कुछ भलीभाँति जानता हूँ कि यह मेरी वरा शक्ति माया है जिसने अपने देह का त्याग किया था और अब आपके यहाँ समुत्पन्न हुई है। और चारु शशाङ्कवक्त्र के द्वारा स्वयं ही योग से प्रसूत हुई हैं ॥४८॥ हे गिरि श्रेष्ठ। इस समय में मैं प्रदान की हुई पार्वती को केवल आचार के लिये ही ग्रहण कर रहा हूँ अर्थात् यह विवाह का कृत्य सब लोकाचार की रक्षा के लिये ही हो रहा है। यदि बिना दान किये हुए ही इस का ग्रहण करता हूँ तो लोक के लोग भी क्रिमान हैं उनके आचार की रक्षा नहीं हो सकती है ॥४९॥

अथ दिव्योदकं पूर्णमादाय कलश गिरि ।

परिपूर्णस्य नित्यस्य नित्यानुग्रहकारिण ॥५०

प्रक्षाल्य पादौ शिरसा प्रणम्य भृङ्गारमादाय स शैलराजः ।
मुमोच तोय भवपाणिपद्मे दत्तेति दत्तेति तदा प्रजल्पन् ॥५१॥
ततो मङ्गलनिर्घोषः समभूक्षिदिवोकसाम् ।
वीणावेणुमृदङ्गाना काहलाना च नि स्वनः ॥५२॥
सा हारकण्ठी कटिसूत्रदामा मुभ्रूलता चारुविलोलनेत्रा ।
मेरायंथैवोपरि चन्द्रलेखा तथा वभौ पर्वतराजपुत्री ॥५३॥
अथ वेद्या गतो ब्रह्मा विश्वमाया स्मरारणिम् ।
ददर्शोदकपात्रेण विभावसुपुरस्थितः ॥५४॥
माहेश्वरी काममयी दृष्ट्वा ता तु पितामहः ।
अक्षरत्सहसा शुक्र भग्नकुम्भादिवोदकम् ॥५५॥
पादेन तन्ममर्दाऽऽशु शुक्र तत्पद्मसभवः ।
पद्मजोऽपि महातेजा देवदेवस्य पश्यतः ॥५६॥

इसके अनन्तर दिव्य जल से पूर्ण कलश को हिमवान् ने लिया था और निश्चय ही परिपूर्ण और अनुग्रह करने वाले प्रभु के चरणों को धोकर शिर के बल प्रणाम करके फिर शैलराज ने भृङ्गार को ग्रहण किया था । भगवान् शिव के हस्त कमल में "दत्ता-दत्ता" अर्थात् प्रदान कर रही है ऐसा कहते हुए जल छोड़ दिया था ॥५०॥५१॥ इसके पश्चात् देवगणों में मङ्गल सूचक निर्घोष हुआ था तथा वीणा-वेणु-मृदङ्ग और षहलो की ध्वनि भी हुई थी ॥५२॥ वह देवी कण्ठ में हार धारण करने वाली-कटि में सूत्रदाम पहिने हुए-सुन्दर भृकुटियों से सम्पन्न-चारु और विशाल नेत्रों वाली पर्वतराज की पुत्री ऐसी शोभित हुई थी जैसे मेरु पर्वत पर चन्द्रमा की लेखा शोभित हुआ करती है ॥५३॥ इसके उपरान्त वेदीश्वर ब्रह्माजी गये थे और विभावसु के आगे स्थित उनमें विश्वमाया को तथा स्मरारणि को उदक पात्र से युक्त देखा था ॥५४॥ पितामह ने उन वाममयी माहेश्वरी देवी का दर्शन किया था तो उसी समय में पूटे हुए कुम्भ से जल की ही भाँति सहसा उनका शुक्र क्षरित होगया था । पद्म सम्भव ब्रह्माजी ने उम क्षरित शुक्र

को पाद से ही मर्दित कर दिया था । देवों के देव यह सब देख ही रहे थे कि महातेज वाले पद्मज क्या कर रहे थे ॥५५॥५६॥

मैवं मर्देति तं दृष्ट्वा त्रिपुरारिः पितामहम् ।
 कुरुष्वे (जुहुधी) तीति पोवाच भगवाधीललोहितः ॥५७
 अमोघं तत्तदा विप्रोः शुक्रमग्नौ प्रजापतिः ।
 जुहोति व (अजुहोद्) चनाच्छंभोवमिनाऽऽदाय पाणिना ॥५८
 हवनाच्च ततः प्राप्ता सवितारं वियद्धतम् ।
 तेजोमयाश्च ते सर्वे तपोनिष्ठाः सभन्ततः ॥५९
 अष्टाशीतिः सहस्राणि मुनयस्तूर्ध्वरेमसः ।
 माने त्वङ्ग छमात्रास्तु जाता ह्यथ मुवर्चसः ॥६०
 बभूवुस्ते महात्मानः पतङ्गसहचारिणः ।
 निस्पृहा रश्मिपाः सर्वे सर्वे ज्वलनसंनिभा ॥६१
 ततो देवा सगन्धर्वा सिद्धाश्च मुनयस्तथा ।
 पिशाचा दानवा दैत्याः किन्नराश्च महोरगाः ॥६२
 विद्याधराश्चाप्सरसस्तथा चान्ये सुरासुराः ।
 प्रहृष्टाः सर्वे एवैते पार्वत्या हरसगमात् ॥६३

त्रिपुरारि प्रभु ने पिता मह को देखकर उनसे कहा था इस प्रकार से मर्दन मत करो । भगवान् नील लोहित ने कहा था कि हवन करो ॥५७॥ उस समय उस अमोघ शुक को हे विप्रो ! प्रजापति न अग्नि मे भगवान् शम्भु के वचन से बाँधे हाथ से लेकर उसका हवन कर दिया था ॥५८॥ इसके उपरान्त वें सब तेजो मय—तपोनिष्ठ चारों ओर से आकाश मे स्थित सविता को प्राप्त हो गये थे ॥५९॥ इसके अनन्तर अट्ठासी हजार ऊर्ध्वरेता मूर्तिपा जो परिमाण मे अङ्गुष्ठ के बराबर सुन्दर वर्चस वाली समुत्पन्न हो गयी थी ॥६०॥ वे सब महान् आत्मा वाले सूर्य के सहचारी हो गये थे जो निस्पृह और सब रश्मियों के पान करने वाले और अग्नि के ही सदृश थे ॥६१॥ इसके पश्चात समस्त देव-गन्धर्व-सिद्ध-मुनिगण-पिशाच-दैत्य-दानव-किन्नर-महोरग-विद्याधर-अप्सरा

गण और अन्य सुरासुर बहुत ही प्रसन्न होते हुए पार्वती का भगवाद्
हर के साथ सङ्गम होने से आनन्द में निमग्न हो गये थे ॥६२॥६३॥

मुमोच वृष्टिं क्रनुराट्मुत्पुष्ट पुष्परनेकैर्भ्रमराकुलैश्च ।

वाद्यं विचित्रं वंरशङ्खनादैः सुगीतगानैर्वंरमङ्गलैश्च ॥६४

वीणारवैर्दुन्दुभिर्वेणुनादैः समन्तत कर्णमुख प्रजज्ञे ।

आनृत्यतीभिः सुरसुन्दरीभिर्जैगीयतीभिर्वंरकिन्नरीभिः ॥६५

दैत्याङ्गनाभिश्च वसीदतीभिः कामायतेऽतीव तदुत्सव च(वश्च)।

काञ्चीरवेणाय नितम्बिनीना मनोभिरामेण च नूपुराणाम् ॥६६

सामा स्मितेनाथ मुनीन्द्रवर्या वभूव कामानलदीपचर्या ।

होमावसाने मधुपर्कयुक्त देवाय तस्मै मधुभाजन च ॥६७

ततो निवेद्य प्रमथाधिपाय चत्वार तुष्टिं परमा विरञ्चि ॥६८

अथ देवेषु विश्वेशो वरदोऽभ द्विजोत्तमा ।

वराश्च विविधान्दत्त्वा ब्रह्मादिभ्यो महेश्वर ॥६९

व्यसर्जयत्तत सर्वान्स्थावराञ्छङ्गमास्तथा ।

विसर्जिता प्रणम्येश प्रीतिं ते परमा गता ॥७०

ऋतुराज ने परम सन्तुष्ट होकर भ्रमरो से समावृत्त अनेक प्रकार
के पुष्पो की वर्षा की थी । विचित्र वाद्यों से—नर शखों के नाद से—
सुगीत मान श्रेष्ठ मङ्गल गानों से—वीणा की ध्वनियों से—दुन्दुभि के
तथा वेणु के शब्दों से चारों ओर कानों को सुख समुत्पन्न हुआ था ।
चारों ओर नृत्य करने वाली सुरों की सुन्दरियों से और गान करने वाली
किन्नारियों से और वसीदती दैत्यों की अङ्गनाओं से वह उत्सव अत्यन्त
ही कामायमान हो गया था । नितम्बनियों की काञ्ची के शब्द से तथा
नूपुरों के मनोऽभिराम शब्द से तथा उन अङ्गनाओं के मन्द मुखान से
बड़े बड़े मुनीन्द्र गण भी कामाग्नि के प्रदीप्त चर्मा वाले हो गये थे ।
होम के अन्त में ब्रह्माजी ने मधुपर्क से युक्त मधु भाजन को उन देवेश्वर
को प्रमथा के अधिय के लिये निवेदन करके परमाधिक तुष्टि को प्राप्त
किया था ॥६४॥६५॥६६॥६७॥६८॥ हे द्विजोत्तमो ! इसके अनन्तर

देवों के ऊपर विशेष धरदान देते जाने हो गये थे । महेश्वर ने ब्रह्मा आदि देवों को अनेक धरदान देकर वहाँ में विदा करा दिया था । वे भी सब ईश्वर को प्रणाम करने परमाधिष्ठ प्रीति को प्राप्त हुए थे ॥६६॥७०॥

एव स क्षेपतो विप्रा विवाहो गिरिजापते ।

कथितो रविणा पूर्वं यथावत्समुदीरित ॥७१

शृणोति श्रद्धया यस्तु पठेद्वा प्रयतात्मवान् ।

सर्वान्कामानवाप्नोति वर्षादर्वाङ् न सशय ॥७२

सर्वं पापविनिर्मुक्तस्तेजस्वी प्रियदर्शन ।

जीवेद्विपंशत साग्र गच्छेद्ब्रह्मपद तत ॥७३

हे विप्रो ! इस प्रकार से परम सन्नेप से गिरिजा के पति का विवाह वर्णन कह दिया है जैसा कि पहिले रवि देव ने कृतवा वर्णन किया था ॥७१॥ जो इस भगवान् शङ्कर के विवाह का वर्णन प्रमत्त आत्मा वाला श्रद्धा से श्रवण किया करता है या पठता है वह एक वर्ष से ही पूर्व अपने मन की सब कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करता है—इसम तक भी मग्य नहीं है ॥७२॥ वह मनुष्य समस्त पापों से विनियुक्त होकर परम तेजस्वी—प्रिय दर्शन सौ वर्ष तक इस ससार में जीवित रहता है और अन्त में ब्रह्मपद को प्राप्त हो जाता है ॥७३॥

॥ साम्ब कीडादि वर्णन ॥

विवाह्याद्रिसुता शभुयंयो कैलासपर्वतम् ।

क्रीडा वै वर्षसाहस्रीमकरोत्तत्र श कर ॥१

गणैर्नानाविधैश्चव सिंहास्यै शरभाननै ।

कैश्चिद्वद्याघ्रमुखैभीमै कैश्चिन्दध्रमुखैरपि ॥२

कैश्चिन्दमुखैरन्यै कैश्चिन्मृगमुखैरपि ।

कैश्चिदुष्टमुखैर्दीर्घै कैश्चिद्वयमुखैरपि ॥३

कैश्चिच्चित्रमुरीरन्धो कैश्चिद्द्वृकमुनेरपि ।

मूपकाम्यैस्तथा = चान्यैर्माजिरवदनैरपि ॥४

सर्पास्यैर्नकुलास्यैश्च जम्बुकास्यैस्तथाऽपरैः ।

शिशुमारमुखैश्चान्यैश्च क्षवक्त्रैस्तथाऽपरैः ॥५

मयूरवदनैरन्यैर्वक्त्रैस्तथाऽपरैः ।

शाखामृगमुखैश्चान्यै खरास्यैश्च तथाऽपरैः ॥६

अन्यैरसस्यै प्रमथैर्जरामरणवर्जितैः ।

नित्यतृप्तोन्निरातङ्कः कालस हरणक्षमैः ॥७

श्री मून जी ने कहा—भगवान् शम्भु ने अद्रि की पुत्री के साथ विवाह करके वे फिर अपने कैलास पर्वत पर चले गये थे । वहाँ पर नाना सहस्र वर्षों तक क्रीडा करते रहे थे ॥१॥ वहाँ पर नाना प्रकार के स्वरूप वाले गणों के साथ भगवान् शम्भु क्रीडा किया करते थे । कुछ गण सिंह के समान मुखों वाले थे—कुछ शरभ के तुल्य आननों वाले थे । कुछ ऐम गण भी थे जिनके मुख व्याघ्र के तुल्य थे । कुछ के मुख बहुत भयानक थे तथा मृध्र के समान मुख थे—कुछ ऊट के से मुखों वाले थे—कुछ के मुख बहुत बड़े तथा अश्वों के समान थे—कुछ विचित्र मुखों वाले और अन्य वृत्ता के तुल्य मुखों वाले थे—भूपिकों के समान मुखों वाले—माजिर जैसे वदनो वाले—सर्पास्थ और नकुल के तुल्य मुखों वाले—जम्बुकों के सहस्र आननों वाले—दूसरे शिशुमार के समान मुखों वाले—अन्य रीछों के सहस्र आननों वाले गण थे—मोर के समान मुखों वाले—तथा वगुलाओं के सहस्र मुखों वाले—वन्दरो जैसे मुखों वाले—गधे के समान मुख से युक्त ऐसे बहुत से गण थे तथा अन्य असह्य प्रमथ थे जो जरा मरण से रहित थे—योग्ण नित्य तृप्त—निरातङ्क और बाल का भी सहार करने में समर्थ थे ॥२॥ से ॥७॥ तक

सहस्रक्रोतिसत्याकै स्वच्छन्दगतिचारिभिः ।

क्रीडा विधाय भगवान्कैलासे पर्वतोत्तमे ॥८

तपसा महता शशुरनुगृह्य च मन्दरम् ।

कैलास स परित्यज्य मन्दरे चारुकन्दरे ॥९

तत्रापि रममाणस्य गते वर्षसहस्रके ।
 देवताना हितार्थाय प्रकृत्या सह शूलभृत् ॥१०॥
 प्रक्रीडतीह विश्वात्मा कामासक्तश्च सर्वथा ।
 प्रार्थितोऽहं सुरैः पूर्वं तारकस्य बधोप्सया ॥११॥
 मद्रेतसः समुत्पन्नस्तारकं स हनिष्यति ।
 इति मत्वा मपादेवे रममाणे सहोमगा ॥१२॥
 उत्पाताश्च महाघोराः संप्रवृत्ताः सुदारुणाः ।
 रुधिराम्थीनि वर्षन्ति नदन्तो मेघसकुलाः ॥१३॥
 वायवश्च महावेगाः पर्वताश्चालयन्ति ते ।
 विमानानि सुराणां च निपेतुर्बुधधातले ॥१४॥

ऐसे गणों की सहस्रों करोड़ सख्या थी और ये सब स्वच्छन्द गति के धरण करने वाले थे । इन सबके साथ भगवान् शम्भु पर्वतों में उत्तम कैलास पर क्रीड़ा किया करते थे । ८। भिर भगवान् शम्भु ने महान् तप के द्वारा प्रसन्न होकर मन्दर पर्वत पर अनुग्रह किया था और कैलास का त्याग करके सुन्दर बन्दराओ वाले मन्तप गिरि पर जाकर क्रीडा करने लग गये थे । वहा पर भी रमण करते हुए भगवान् शङ्कर को एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे । यह इस प्रकार की क्रीडा शूली प्रभु ने प्रकृति के साथ देवों के ही हित सम्पादन करने के लिये की थी । ९। १०। यहाँ पर विश्वात्मा सर्वथा काम से आसक्त होकर ही क्रीडा कर रहे थे क्योंकि मैं तारक वध की इच्छा से सुरों के द्वारा प्रार्थित किया गया था । ११। क्योंकि मेरे वीर्य से जो समुत्पन्न होगा वही तारक दैत्य का हनन करेगा । यह मानकर ही उमादेवी के साथ रममाण महादेवजी के होने पर महान् घोर एव परम दारुण उत्पात संप्रवृत्त हो गये थे । साकुल हुए मेघ गर्जन करते हुए रुधिर और अस्थियों की वृष्टि करने लगे थे । उस समय में वायु भी महान् वेग वाली चलने लगी थी जो पर्वतों को भी चालित किया करते हैं । सुरगणों के विमान बुधधा तल में गिर गये थे । १२। १३। १४।

उल्काभिर्गगन व्याप्तं पतन्तीभिर्द्विजोत्तमा ।
 केतवश्चोदिता सर्वे जृम्भन्त इव पावका ॥१५॥
 दिग्दाहाश्च महाघोरा दावाग्निरिव सक्षये ।
 मृत्युकाले यथा जन्तुर्नैव सौख्यमवाप्नुयात् ॥१६॥
 जगत्रयमिदं कृत्स्नं न लभेत तथा सुखम् ।
 न वेदा पठितास्तस्मिन् विप्रा जजपुर्जपम् ॥१७॥
 पार्वत्या कम्पमानाया कम्पमाने च शकरे ।
 त्रैलोक्यमभवन्नूनं कम्पमानं भयातुरम् ॥१८॥
 कालाग्निक्म्पितो देवो विरश्चिमुनिभि सह ।
 चक्रायुधोऽपि चात्यर्थमिन्द्रार्घ्यं परिवारित ॥१९॥
 ये केचिद्देवगन्धर्वा सिद्धा गगनचारिण ।
 विद्याधराश्च यक्षाश्च संप्राप्ताश्च वसु धराम् ॥२०॥
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तं शक्र देवामिताम ।
 यथावन्मधुपर्वाद्यं शक्रन्तमभ्यपूजयत् ॥२१॥

ह द्विजोत्तमो ! गिरने वाली उल्काआ ने सम्पूर्ण गगन व्याप्त हो गया था । सब वेतु उड़िन हा गय थे जा कि जुम्भा लेने हुए पावको के ही समान थे ।१५। साथ वे समय में हाहाग्नि व ही तुल्य महान् घोर दिग्दाह होने लग गये थे । तिम प्रकार में मृत्यु के समय में जीव सुख प्राप्त नहीं किया करता है ।१६। य तीना भुवन सम्पूर्ण सुख प्राप्त नहीं किया करता था वह ऐसा समय समाप्त हो गया था कि उमम न तो वेदा का ही पाठ किया जाना था और न विप्रगण जाप किया करते थे ।१७। पार्वती देवी के कम्पमान होने पर तथा प्रभु शक्र के प्रवृत्त हो जा पर पूर्ण त्रैलोक्य निदिचन रूप में भयातुर और प्रवृत्त हो उठा था ।१८। देव विरश्चि मुनिया के साथ कालाग्नि से वृम्पित हो गये थे—मुदन्न चक्र को धारण करत वान विष्णु भी इन्द्र आदि व माप परिवारित होकर अत्यधिक कम्पमान हो गये थे ।१९। जो कुछ देव गन्धर्व गिद्ध गगन में सम्बरण पतन करे थे और वे गय

विद्याधर और यक्ष वसुन्धरा पर आकर प्राप्त ही गये थे । २०। इसी बीच में देवर्षिया में परम श्रेष्ठ नारद मुनि इन्द्र के समीप में समागत हुए थे । इन्द्रदेव ने जब तक मधुपर्क आदि के द्वारा उनका अभ्यर्चन किया था । २१।

अब्रवीद्देवराजस्तमपविष्ट महामुनिम् ।
 त्रिकालदर्शिन शान्तमात्मनिष्ठ तपोनिधिम् ॥२२॥
 उत्पाताश्च महाधीरा सप्रवृत्ता सुदारुणा ।
 कारण वद मे सर्व शान्तिश्चैव यथा भवेत् ॥२३॥
 उमया सह विश्वेश पर ज्योतिर्ममश्वर ।
 अहर्निशमविश्रान्त युक्त एव प्रवर्तते ॥२४॥
 तस्माद्धेतो प्रवर्तन्त उत्पाता वृत्रहन्किल ।
 विघ्न तस्य प्रकृतं व्ययदीच्छसि पर सुखम् । २५।
 उमागर्भसमुत्पन्न सर्वास्मादधिको हि स ।
 कथ धारयितु शक्ता ब्रह्माद्या ससुरासुरा । २६।
 जगन्नर्यामिद कृतस्त धरणी धारयिष्यति ।
 नापत्यधारणे शक्ता सजात शिवयो खलु । २७।
 नारदस्य वच श्रुत्वा शक्रो विस्मयता गत ।
 तदा चिन्तार्णवे मग्नो देवो सह पुरदर । २८।
 पङ्के गौरिव सीदत्सु देवेष्वथ जनार्दन ।
 उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवाना हितवाम्यया । २९।

जब देवर्षि अपने आसन पर समावित होकर उपविष्ट हो गये थे तो देवराज ने उन महामुनि स जो त्रिकाल की बातें जानने वाले थे तथा परम शान्त—आत्मनिष्ठ और तपो निधि थे । २२। शक्रदेव ने कहा—
 त्रे महामुने । परम कारण महान् धीर उत्पात धारो ओर प्रवृत्त हो गये हैं । इन सबका क्या कारण है ? उसे आप बतनाइय जिससे कि यह सब शांत होवे और हम सबको शान्ति की प्राप्ति हो सके । २३।
 श्री नारदजी ने कहा—पर ज्योति महेश्वर विश्वेश उमा के साथ अवि-

श्रान्त रूप से अहर्निश युक्त होकर ही प्रवृत्त होते रहे हैं । ॥२४॥
हे वृत्रहन ! उसी हेतु से ये सब उत्पात प्रवृत्त हो रहे हैं । उसका विघ्न
करना चाहिए यदि परम सुख की इच्छा करते हो । २५। उमा के गर्भ से
समुत्पन्न जो है वह सबसे अधिक है । ब्रह्मा आदि सुरासुर कैसे धारण
करने के लिए समर्थ हो सकते हैं । धरणी इस तीनों जगतों के सम्पूर्ण
समूह को धारण करेगी । शिव और शिवा इन दोनों के अपन्य के
धारण करने से सजात को शक्त नहीं है । श्री नारदजी के इस वचन को
सुनकर महेन्द्र विस्मय को प्राप्त हो गये थे । इससे अनन्तर पुरन्दर
देवों के साथ चिन्ता के सागर में निमग्न हो गये थे । २६। २७। २८।
इसके अनन्तर पद्म में गौ के ही समान देवों के अवसन्न होने पर
भगवान् जनार्दन ने देवों की हिन की कामना से परम दलक्षण वाणी से
पढ़ा था । २९।

शृणुष्व देवता सर्वा कामासक्तो न शङ्कर ।

युष्माक हितवामाय भोगयुक्तोऽभवच्छिव । ३०।

स्वतन्त्रशक्तिविश्वात्मा जितकाम स्वभावत ।

सपूर्णकामः स विभु कथ वामेन वाध्यते ॥३१॥

तद्रैतसा समुत्पन्नस्तारक स वधिष्यति ।

एतस्मात्कारणाद्देवो देव्या युक्तोऽभवत्पुरा ॥३२॥

किंतु तत्केवलोत्पन्न सेन्द्रैरपि सुरासुरै ।

तेजोधारयितु तस्य न शक्यमिति निश्चितम् ॥३३॥

इद यत्कार्यमुत्पन्न व्याधिरूप दिवीनसाम् ।

उपेक्षित न सदेहो हन्यान्नून जगत्रयम् ॥३४॥

यदि तत्केवलो जाती भविष्यति सुराम्स्तादा ।

असह्यो दुर्धरो घोर इति तथ्य न सगय ॥३५॥

भगवान् श्री विष्णु ने कहा—हे समस्त देवों के समुदायो ! आप
श्रवण कीजिए—भगवान् शङ्कर काम में गमासक्त नहीं होते हैं ।
भगवान् शिव आपके साथ लोगों के हित की कामना के लिये भोग में
युक्त हुए थे । ३०। स्वतन्त्र शक्ति वाले विश्वात्मा स्वभाव से ही काम

को जीतने वाले हैं। वह विभु सम्पूर्ण काम हैं वे काम के द्वारा वैसे वाधित किये जा सकते हैं। १३१। उनके वीर्य से जो समुत्पन्न होगा वही तारक का वध करेगा। हे सुरगणो ! इसी कारण से देवेश्वर देवी के साथ समुत्त हुए हैं। १३२। किन्तु उनसे ही केवल उत्पन्न वो इन्द्र के सहित सुरामुरो के द्वारा भी उसका तेज धारण नहीं किया जा सकता है— यह सर्वथा निश्चित है। १३३। यह जो व्याधिरूप जो देवों का कार्य समुत्पन्न हो गया है वह उपेक्षित नहीं है—इसमें कोई सन्देह भी नहीं है वरु निश्चय ही जगत्त्रय का हनन कर देगा। १३४। यदि वह केवल ही समुत्पन्न होगा तो हे सुरो ! उस समय में वह अमह्य—दुर्धर—घोर होगा—यह तथ्य है और इसमें कुछ भी संशय नहीं है। १३५।

स एव विष्णुर्वलवानिन्द्रश्चैव प्रजापति ।

स चाऽऽदित्यः कुबेरश्च ईशानो वरुणस्तथा । ३६।

स यम स च सोमश्च स वायु स्वर्गवासिन ।

स एव सर्व भविता भवद्भिश्चैदुपोक्षित । ३७।

दृश्यतेऽत्राप्युपायश्च कार्यस्यास्य सुरोत्तमा ।

यस्मादग्निमुखा यूय तस्मादग्निर्हि नान्यथा । ३८।

यदुग्र गहन घोरमप्रधृष्यमगोचरम् ।

हृदि यद्भवता कार्यमग्निस्तत्साधयिष्यति । ३९।

एवमुक्त्वाऽथ विश्वादि शङ्खचक्रगदाधर ।

अब्रवीत् ऋणवर्त्मनि देवाना सदसि स्थितम् । ४०।

शृणु मद्बचन वल्ले देवाना यदुपस्थितम् ।

त्वया तत्माधनीय हि हितार्थं त्रिदिवाकसाम् । ४१।

योऽसौ देव पर ज्योतिर्नोलग्नौवो विलोहित ।

रमते चोमया सार्धं चराचरपति शिव । ४२।

वह ही बलवान् विष्णु देव हैं और वही इन्द्र और प्रजापति हैं। वह आदित्य हैं—वही कुबेर हैं वही ईशान और वरुण हैं। ३६। वह यम—वह सोम वह वायु और स्वर्गवासी हैं। वह ही सब होगा। यदि

आप लोगों के द्वारा उपेक्षित है ॥३७॥ हे सुरोत्तमो ! यहाँ पर भी उपाय इस कार्य का दिखाई देता है । जिससे तुम लोग अग्नि मुख हैं इससे अग्नि ही है अन्यथा नहीं है ॥३८॥ जो आप लोगों के हृदय में अत्यन्त उग्र—गहन—घोर अप्रधृष्य और अगोचर है उस कार्य को अग्नि मिद्ध करेंगे ॥३९॥ इस तरह से कह कर विश्व के आदि—शस्त्र, चक्र और गदा के धारण करने वाले देवों के सभा में स्थित वृष्णवर्मा से बोले ॥४०॥ श्री विष्णु भगवान् ने कहा—हे बह्ने ! आप मेरे वचन वा श्रवण करो जो कि कार्य इस समय मे देवों का उपस्थित हुआ है । देवों के हित के लिये वह आपको साधित करना ही चाहिये । जो यह देव परम् ज्योति—नीलघोष—विलोहित है वे चराचर पति शिव उमा देवी के साथ रमण कर रहे हैं ॥४१॥४२॥

भयं तस्मात्समुत्पन्नं कारणाद्धि दिवोकसाम् ।
 तस्माद्धिताय गच्छ त्व महादेवम्य सनिधौ ॥४३॥
 मुक्त त्वमेव सर्वेषा कार्याणा चं व साधक ।
 इत्यवं वचन श्रुत्वा पावक केशवात्तदा ॥
 उवाचेद मुनिश्रेष्ठा श्रीवत्माङ्घ्रिनवदासम् ॥४४॥
 यदुक्त भवता देव किं त्वयुक्त सनातन ।
 महेशस्य रहस्यस्य प्रवेष्टु नैव साधतम् ॥४५॥
 ध्यानयुक्तो जनः कश्चिन्मन्त्रभोजनतत्पर ।
 रहः स्योऽयं च दानस्थरतदयुक्त प्रवेशनम् ॥४६॥
 जाप्योपहारयुक्तो वा होमयुक्तोऽप्यवा भवेत् ।
 अर्चनाभिरत कश्चित्तदयुक्त प्रवेशनम् ॥४७॥
 प्राकृतस्यापि देवेश रहस्यस्य रमापते ।
 तस्मिन्गाने सुरेशान गहितं तु प्रवेशनम् ॥४८॥
 किं पुनर्भगवान्भीमस्तिग्मरस्मिमहेश्वरः ।
 देवानां च हिनाप्याय प्रवृत्त्या सह मगतः ॥४९॥

उस कारण से देवों को भय समुत्पन्न हो गया है । अतएव देवगण के हित के लिये आप इस समय में महादेव जी की सन्निधि में गमन कीजिए ॥४३॥ आप ही सबके मुख हैं और देवों के कार्य के साधक भी हैं । उस समय में इस वचन को पावक ने वेशव के मुख से श्रवण किया था । हे मुनि श्रेष्ठो ! पावक देव ने शीवराज के अङ्क से चिह्नित वक्ष्य स्थल वाले समुद्र से यह वचन कहा था ॥४४॥ अग्नि देव ने कहा— हे देव ! हे सनातन ! आपने जो भी कुछ कहा है वह अयुक्त है । रश्मि में अर्थात् विलकुल एकान्त में स्थिति महेश के समीप में प्रवेश करना उचित नहीं है ॥४५॥ कोई भी जन ध्यान में युक्त हो अथवा मन्त्र, जाप और भोजन में परायण—एकान्त स्थल में स्थित हो और दान में समवस्थित हो तब उसके समीप में प्रवेश करना युक्त नहीं होता है ॥४६॥ जाप्योपहार से कोई युक्त हो अथवा होम के कार्य में व्यस्त हो तथा देव की अर्चना करने में निरत हो तो उसके समीप में प्रवेश करना उचित नहीं होता है ॥४७॥ कोई साधारण मनुष्य भी जब एकान्त लीला में नरत हो तो देव रमापते ! उसके पास जाना अनुचित ही हुआ करना है । हे सुरेशान ! उस समय में प्रवेश करना तो उचित नहीं है और गृहित भी माना जाता है ॥४८॥ फिर भगवान् के अवयव में तो कहने की बात ही क्या है । भगवान् तो बहुत ही भीम है—स्तिग्म राशिमयो वाले है । वे महेश्वर तो देवों के हित सम्पादन करने के लिये प्रकृति के साथ सङ्गत हुए हैं ॥४९॥

नाह तत्र विशे नून विभेमि मधुमूदन ।

आगत मा समालोक्य क्षणाच्छुभुर्हनिष्यति ।५०।

जुगुप्सितन्निद कार्यमिति कष्ट भयावहम् ।

विवस्त्रा जननी देवी कथं द्रक्ष्यामि केशव ।५१।

किं वक्ष्यति प्रविष्टस्य वक्ष्यामि किमहं विभो ।

जल्पयिष्यति मा देवो धिङ्मूर्खोऽप्यमिति ध्रुवम् ।५२।

यद्भाष्यं तद्भवस्तद्य न अरोमिह च निन्दितम् ।
 अग्निना चैवमुक्तरतु विष्णुर्दानवसूदनः ॥५३॥
 भयदं मोहदं श्रुत्वा वाक्ययं हृदयकम्पनम् ।
 उवाच भगवान्विष्णुः पुनर्वाह्निमिति स्तुवन् ॥५४॥
 त्रैलोक्यरक्षणार्थाय शक्रादीना च सन्निधौ ॥५५॥

हे मधुसूदन ! वहाँ पर मे निश्चय ही प्रवेश नहीं कर सकता हूँ—
 मैं तो डरता हूँ । मुझको आया हुआ यदि शिवजी ने देख लिया तो एक
 ही क्षण में शत्रु मेरा हनन कर देंगे ॥५०॥ यह कार्य बहुत ही निन्दित है
 अतएव कष्टप्रद है, भया वह भी है । हे केशव ! मैं आप यह तो विचा-
 रिए नग्न हुईं जननी को कैसे देखूँगा ॥५१॥ प्रविष्ट हुए मुझसे वे क्या
 कहेंगी और हे विमो ! मैं फिर क्या उत्तर दूँगा । देव मुझसे यही
 कहेंगे—घिबकार है—तू बड़ा निश्चय मूर्ख है ॥५२॥ जो भी कुछ होन-
 हार हो वह होवे, इस समय मैं बुरा काम नहीं करता हूँ । अग्नि देव के
 द्वारा दानवसूदन विष्णुभगवान् अब इस प्रकार से कहा गया तो भय
 देने वाला और मोह देने वाले वाक्य को सुनकर हृदय में कम्पन होता
 है । भगवान् विष्णु ने पुनर्वाह्नीकी स्तुति करते हुए कहा था जो त्रैलोक्य
 की रक्षा करने के लिए इन्द्र आदि देवों की सन्निधि में ही कहा था ।
 ॥५३॥५४॥५५॥

यदुक्तं भवता बह्वे सत्यमेतन्न सशय ।
 आत्महेतोर्विरुद्धं स्यात्परार्थं नैव दुष्यति ॥५६॥
 प्रदिष्टो देवदेवेन सहारार्थं कर्षदिना ।
 प्रविश त्वमणो रूपमादाय न हि दुष्यसि ॥५७॥
 प्रस्तुताप्रस्तुत नास्ति तेजोमूर्तेस्तवानघ ।
 सर्वदा सर्वंगस्त्व हि न क्वचित्प्रतिहन्यसे ॥५८॥
 भूतग्रामं समस्त वै त्वमेको व्याप्य तिष्ठसि ।
 उदरस्थः पचरपन्न प्राणिना मेपवाहन ॥५९॥

त्वयैकेन जगत्कृत्स्नं गोप्यते यदि पावक ।
 किं न प्राप्तं त्वया ब्रूहि दोषः कः स्याद्धताशन ।६०।
 जुगुप्साऽस्मिन्न कर्तव्या त्वया वै हव्यवाहन ।
 उत्पन्नस्यास्य कार्यस्य काल एष तत्रानघ ।६१।
 त्रिदशाः शरणं प्राप्ता हृतभुक्त्वा विभावसो ।
 अहो धन्यतरश्चासि श्लाघ्यो यदि करिष्यसि ।६२।
 कुरु कार्यं सुराणां त्वं मग्नानां करुणां कुरु ।
 सर्वकाले यथा मर्त्या वीक्षमाणास्तु भास्कग्म् ।६३।

भगवान् श्री विष्णु ने कहा—हे वहने ! तुमने जो कहा है यह सर्वथा सत्य ही है—इसमें कुछ भी सशय नहीं है किन्तु ऐसा करना अपने स्वार्थ के लिये तो अथशय दोष होता है पर यदि दूसरो की भलाई के लिये किया जावे तो यह कोई दोष नहीं हुआ करता है ।१५६। देवो के देव केपदी ने यह सहार के लिए प्रदिष्ट किया है । अनएव आप अणु रूप को ग्रहण करके प्रवेश करिये तो कोई दोष से युक्त नहीं होओगे ।१५७। हे अनघ ! आप तो तेज की मूर्ति हैं अतएव प्रस्तुत और अप्रस्तुत कुछ भी नहीं है । आप तो सर्वदा सर्वत्र गमन करने वाले हैं और कही पर भी आप प्रति हनन नहीं किये जाते हैं ? ।१५८। आप एक ही समस्त भूतो के समुदाय को व्याप्त करके स्थित रहा करते हैं । हे मेपवाहन ! आप प्राणियो के उदर मे स्थित होकर अन्न को पचाते हैं ।१५९। हे पावक ! यदि आप एक के ही द्वारा यह सम्पूर्णं जगत् की रक्षा की जाती है तो आपने क्या प्राप्त नहीं किया है—यह बतलाइये । हे हुताशन ! कौन सा दोष होता है ? ।६०। हे हव्यवाहन ! इस कार्य मे आपको जुगुप्सा नहीं करनी चाहिये । हे अनघ ! यह कार्य उत्पन्न हो गया है इसको करने के लिये आपका यह समय ही है । ।६१। हे विभावसो ! ये सब देवगण आपकी शरण मे प्राप्त हुए हैं । हे हृतभुक् ! आप इसके रक्षक हैं ? अहो ? आप यदि इस कार्य को कर देंगे तो अधिक धन्य और श्लाघा करने के ही योग्य होंगे ।६२। आप इस समय मे

सुरगणों का यह कार्य्य कर दीजिये और आप दुःख में मग्न हुए इनके ऊपर कृपा करिए । जिस तरह से सभी कष्टों में मनुष्य भास्कर भगवान् को देखा ही करते हैं । ६३।

तथा तवाऽऽनं वह्ने प्रश्यन्ति मुरसत्तमाः ।

चारुचन्द्रप्रतीकाशं कुण्डलाभ्यामलकृतम् । ६४।

अनेन किं न पर्याप्त वद नून विभावमो ।

एवं सम्बोध्यमानोऽग्निर्विष्णुना द्विजसत्तमाः । ६५।

हृदये चिन्तित तेन यास्यामि हरसंनिधौ ।

ततो वनोगत ज्ञात्वा अग्नेर्देवास्तदाऽनघाः । ६६।

सेन्द्राः सवरुणादित्याः सयक्षोरगराक्षसाः

तुष्टुवुस्ते शुभैर्वारियैः पावक द्विजसत्तमाः । ६७।

हे वह्ने ! उसी प्रकार से सब सुर श्रेष्ठ आप का मुख देखते हैं । जो सुन्दर चन्द्रमा के समान प्रकाश वाला है और दो कुण्डलों से अलंकृत है । ६४। हे विभावसो ! क्या इससे पर्याप्त नहीं है ? आप ही निश्चित रूप से बतलाइये । हे द्विज श्रेष्ठो ! भगवान् विष्णु के द्वारा इस प्रकार से सम्बोध्यमान अग्नि हुआ था । ६५। उस अग्नि देव ने अपने हृदय में सोचा था कि मैं भगवान् शिव की सन्निधि में गमन करूँगा । उस समय में अनद्यदेवो ने अग्नि के मन में रहने वाले भाव का ज्ञान प्राप्त कर लिया था । ६६। हे द्विज श्रेष्ठो ! उस समय में इन्द्र—वरुण—आदित्य—राक्षस—यक्ष और उरगों के सहित सब देशों में परम शुभ वाक्यों के द्वारा पावक की स्तुति की थी । ६७।

॥ पावक स्तुत्यादि कथन ॥

जलभीरो जलोत्पन्न जलाजल जलेचर ।

जलजामलपत्राक्ष यज्ञदेव हुताशन ।१।

कृष्णकेतो कृष्णवर्त्मन्स्वर्गमार्गप्रदर्शक ।

यज्ञाद्भुतिहुताहार यज्ञाहार हराकृते ।२।

पूर्णगर्भं गवा गर्भं जय देव महाशन ।

तमोहर महाहार स्वाहाभर्तन्म ऽस्तु ते ।३।

हव्यवाहन सप्तार्चं चित्रमानो महाद्युते ।

अनलाग्ने यज्ञमुख जय पावक सर्वग ४।

विभावसो महाभोग वेदभापार्थभापण ।

कृशानो क्रनुसभारप्रिय विश्वप्रभावन ।५।

सागराम्बुघृत देव त्वमश्वमुखसश्रितः ।

पिवश्च वोगिदरश्चैव न तृप्तिमधिगच्छसि ।६।

त्व वाक्येष्वनुवाक्येषु निपत्सूपनिपत्सु च ।

ब्राह्मणा ब्रह्मयोनि त्वा स्तुवन्ति त्वत्परायणा ।७।

देवगण ने कहा—हे हुताशन ! आप जल से ही समुत्पन्न हुए हैं और आप जलाजल हैं तथा जलेचर भी हैं किन्तु आपको जल से भय होता है अर्थात् जल से डरे हुए रहते हैं । हे जलज के अमल दल के समान नेत्रो वाले । आप तो यज्ञों के देवता हैं ।१। हे कृष्ण वर्त्मन् ! आप कृष्ण केतु हैं और स्वर्ग के मार्ग के प्रदर्शक हैं । आप यज्ञों की आहुतियों के हुत वा आहार करने वाले हैं—यज्ञों के आहार हैं और आप हर की आहुति वाले हैं ।२। हे देव महाशन ! आप पूर्ण गर्भ—गौओं के गर्भ हैं । आपका जय हो । आप तम के हरण करने पर महान् आहार वाले और स्वाहा देवी के भर्ता हैं । आपको हम सबका नमस्कार है ।३। हे हव्य वाहन ! आप सात अर्चियों से युक्त हैं । हे चित्रमानो ! आप महतीद्युति से

सम्पन्न हैं । हे अनलग्ने ! आप यज्ञ के 'मुख हैं । हे सर्वत्र गमन करने वाले पावरु देव ! आपका जय हो ।४। हे विभावसो ! हे महाभागा । आप वेदों की भाषा के अर्थ का भाषण करने वाले हैं । हे वृशानो ! आप ऋतुओं के सम्भार से प्यार करने वाले है और समस्त विश्व के ऊपर कृपा करने वाले हैं ।५। हे देव ! सागर के जल के घृत स्वरूप हैं और आप अश्व मुख में सश्रित हैं । आप उसका पान करते हुए और उसका उग्निरण करते हुए भी कभी तृप्ति की प्राप्त नहीं होते है ।६। आप ही में परायण रहने वाले ब्राह्मण ब्रह्मयोनि आपका स्तवन किया करते हैं । आप वाक्यों में—अनु वाक्यों में—निपदों में और उपनिपदों में है ।७।

तुभ्य कृत्वा नमो विप्राः स्वकर्मविहिता गतिम् ।

ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राणा लोकान्सप्राप्नुवन्ति च ।८।

त्वमन्तः सर्वभूताना भुवत भोक्ता जगत्पते ।

पचसे पचतां श्रेष्ठ त्रीँल्लोकान्संक्षयिष्यसि ।९।

साक्षी लोकत्रयस्यास्य त्वया तुल्यो न विद्यते ।

शरण भव देवाना विश्वत्रयमहेश्वर ।१०।

इत्येव स्तूपमानोऽमाद्युत्थाय ज्वलनस्तदा ।

देवान्प्रदक्षिणीकृत्य ययी शभुगृह द्विजाः ।११।

तस्नापय्यत्प्रतीहार महादेवसम बले ।

पूजित सेन्द्रकंदे वैर्महादेवदिदृक्षुभिः ।१२।

कपीद्रवदन देव कुलिशोद्यतपाणिनम् ।

शूलहस्त महावीर्यं सूर्यायुतमिवोदितम् ।१३।

नन्दिन तु तदा दृष्ट्वा पावकस्य द्विजोत्तमाः ।

वेगस्तस्यातुलस्तीक्ष्णः सहस्रैव व्यहन्यत ।१४।

हे विप्रो ! उन्होंने कहा—आपको नमस्कार करके प्राणी ब्रह्मा—
इन्द्र—विष्णु और रुद्रों के लोकों को जाकर अपने कर्मों द्वारा विदित
गति को प्राप्त किया करते हैं ।८। हे जगत्पते ! आप समस्त प्राणियों के

अन्त करण है—आप ही मुक्त हैं और आप ही भोक्ता है । हे पचन करने वालो में परम श्रेष्ठ । आप ही पाचन किया करते हैं और आप तीनों लोको का सक्षय कर देंगे ॥६॥ आप इस त्रिलोक्य के साक्षी हैं और आपके महेश अन्य कोई भी नहीं है । आप इस समय में सब देवो के कारण अर्थात् रक्षक हो जाइये । आप तीनों विश्वो के महेश्वर हैं ॥१०॥ इस रीति से स्तुति किये हुए अग्नि देव उस समय में उठकर खड़े होगये थे । हे द्विजो ! फिर अग्नि ने देवो की परिक्रमा करके फिर अग्निदेव शम्भु के घर में चले गये थे । वहाँ पर बल में महादेव जी से भी अधिक द्वारपाल को देखा था जो इन्द्र के साथ समस्त महादेव जी के दर्शन करने की इच्छा वाले देवो के द्वारा पूजित थे ॥११॥१२॥ वह द्वारपाल कपीन्द्र के समान मुख वाले और हाथ में कुलिश ग्रहण करके उद्यत, शूल में हाथ में ग्रहण किये हुए, महान वीर्य से युक्त और दश सहस्र उदित सूर्यो के तुल्य नन्दी को वहाँ पर देखा था हे द्विजोत्तमो ! उसी समय में पावक का जो अतुल्य और तीक्ष्ण वेग था वह सहसा ही हयमान होगया था ॥१३॥१४॥

तत्रस्थश्चिन्तयामास पश्यामीति कथं हरम् ।
 नन्दिना द्वारसस्थेन पुमाश्च प्रविशेद्गृहम् ॥१५
 पश्यमानस्य शैलादे प्रविशे यद्यहं गृहम् ।
 फलसिद्धिं न गच्छेय नन्दिना कुपितेन च ॥१६
 एव चिन्ताणवे मग्नो यावत्तिष्ठत्यसौ कवि ।
 द्विजान्नानविधास्तावद्भ्रममाणोश्च दृष्टवान् ॥१७
 तान्दृष्ट्वा चिन्तयामास हसस्य हरसनिधौ ।
 रूपं कृत्वा प्रवेक्ष्यामि इत्युपायमचिन्तयत् ॥१८
 आदाय हसरूपं तु प्रविष्ट पावकस्तदा ।
 प्र वश्यं शङ्कारहित सूक्ष्मरूपो व्यवस्थित ॥१९
 पार्वत्या वाहनं सिंहमपश्यच्च विभावसु ।
 गोक्षीरधवलाभास महालाङ्गूलशोभितम् ॥२०

जाज्वल्यमाननयन चन्द्रकोटिसमप्रभम् ।

प्रसारितच्छटाटोप हु कारकृतभूपणम् ॥२१

वहाँ पर खड़े हुए अग्नि ने चिन्ता की थी कि मैं भगवान् शिव को कैसे देखूँगा । द्वार पर सस्थित नन्दी के द्वारा कोई भी पुरुष गृह में प्रवेश नहीं कर सकता है ॥१५॥ इस गैलादि के देखते हुए यदि मैं प्रवेश करता हूँ तो कुपित हुए नन्दी के द्वारा मैं कभी भी फल की सिद्धि को प्राप्त नहीं कर पाऊँगा ॥१६॥ इस प्रकार से चिन्ता से आतुर होकर जब तक यह अग्नि स्थित होता है तभी वहाँ पर अग्नि ने इधर-उधर भ्रमण करते हुए अनेक द्विजों को वहाँ पर देखा था ॥१७॥ हर की सन्निधि में उन द्विजों को देखकर मैं हस का स्वरूप धारण करके प्रवेश करूँगा—यही उपाय उसने सोचा था ॥१८॥ उस समय में हस के रूप को ग्रहण करके पावक ने प्रवेश किया था । प्रवेश करके वह शब्दा से रहित होगया था और सूक्ष्म रूप वाला होकर व्यवस्थित होगया था ॥१९॥ विभावसु ने पार्वती देवी के वाहन सिंह को वहाँ पर देखा था जो कि जी के दूध के समान घबल आभास वाला था और बहुत बड़ी पूछ से शोभित था ॥२०॥ उस सिंह के जाज्वल्यमान नेत्र थे और बरोडो चन्द्रों के समान प्रभा वाला था । उस सिंह ने सटाओ के आटोप को प्रसारित कर रखा था और हु कारो के भूपण से सयुत था ॥२१॥

दानवाना क्षयकर देवानामभयप्रदम् ।

हु कारेण ततस्तस्य ज्वलनो बधिरीकृत ॥२२

अहो दु खमिद प्राप्तमिति सचिन्त्य चेतसा ।

यदि जीवन्गमिष्यामि सिंहादस्मादह तदा ॥२३

तेन पर्याप्तकामोऽहमिति सचिन्त्य निरंत ।

यत्र देवा महेन्द्राद्याः सस्थिता मेरुमूर्धनि ॥

देवाः सर्वे मृसहृष्टा ऊचस्त जातवेदसम ॥२४

अस्मत्कार्यं त्वया बह्वे गत्वा तत्र यथा वृतम् ।
 तत्सर्वं ब्रूहि न क्षिप्रं शर्मास्माव यथा भवेत् ॥२५
 गतोऽहं तस्य भवनं देवदेवस्य शूलिन ।
 मया नन्दीश्वरो दृष्टो द्वारदेश उपस्थित ॥२६
 ह सरूपं ततः कृत्वा प्रविश्यान्त पुरं सुरा ।
 तत्र सूक्ष्मवपुर्भूत्वा यावत्क्षणमहं स्थित ॥२७
 तावत्पञ्चाननो दृष्टो गिरिजायास्तु वाहनम् ।
 अतिरीदो महाकायं प्रलयान्तकसन्निभ ॥२८

वह सिंह दानवों के क्षय का करने वाला और देवों को अभय का प्रदान करने वाला था । इसके पश्चात् उस सिंह की हुंकार से वह अग्नि बहिरा गा होगया था ॥२२॥ अहो ! यह दुःख मुझे प्राप्त होगया है—ऐसा चित्त से उसने चिन्तन किया था । उस समय में इस सिंह से यदि मैं जीवन बचाना चाहता हूँ तो मैं इससे पर्याप्त काम वाला हूँ—ऐसा सोचकर वह वहाँ से निकल कर चला गया था । जहाँ पर महेंद्र आदि देव सुमेरु पर्वत के मस्तक पर सस्थित हो रहे थे । समस्त देवगण परम प्रसन्न हुए थे और उन्होंने अग्निदेव से कहा था ॥२३॥२४॥ देवों ने कहा—हे अग्ने ! आपने हमारा वहाँ पर जाकर जिस प्रकार से किया था वह सभी हमको आप बतलाइये जिससे हम सबका कल्याण होवे ॥२५॥ अग्निदेव ने कहा—मैं उन देवों के देव शूली के भवन में गया था वहाँ पर द्वारदेश में स्थित नन्दीश्वर को मैंने देखा था ॥२६॥ हे सुरो ! इसके अनन्तर मैंने इस का रूप धारण किया था और फिर मैंने अन्त पुर में प्रवेश किया था । फिर बहुत ही अधिक सूक्ष्म स्वरूप बना कर जब तक मैं क्षण भर वहाँ पर स्थित रहा था ॥२७॥ तब तक गिरिजा का वाहन पञ्चानन (सिंह) मैंने देखा था । वह अत्यधिक रौद्र, महात् वपु वाला और प्रलयान्तक के तुल्य था ॥२८॥

भीतोऽहं निर्गंतरतस्मादहृष्टैव पिनाकिनम् ।
 युष्मत्कार्यमकृत्वैव संप्राप्त इह भो सुरा ॥२९

पुनर्विचिन्त्यता कार्यं सर्वेषां वो यथा सुखम् ।
 एव वल्लेवंच. श्रुत्वा देवा विष्णुपुरोगमाः ॥३०
 यथुर्मुनिगणैः सार्धं मन्दर चारुकन्दरम् ।
 तमामाद्य गिरिश्रेष्ठ प्रिय देवस्य शूलिनः ॥३१
 कृताञ्जनिपुटा. सर्वे ह्यस्तुवन्वृषभध्वजम् ॥३२
 ॐ नमः परमेशाय त्रिनेत्राय त्रिशूलिने ।
 विरूपाय सुरूपाय पञ्चास्याय त्रिमूर्तये ॥३३
 वरदाय वरार्हाय कूर्माय च मृगाय च ।
 नीलालकशिखण्डाय मण्डलेशाय ते नमः ॥३४
 विश्वमानाय विश्वाय विश्वेशायाऽऽत्मरूपिणे ।
 कालघ्नाय मखघ्नाय अन्धकघ्नाय वै नमः ॥३५

मैं तो अत्यन्त ही भीत होगया था और भगवान् पिनाकी को न देखकर ही मैं उम स्थान से निर्गमन होगया था । हे सुरगणो ! आप लोगो का कार्य न करके ही मैं यहाँ पर प्राप्त हो गया हूँ ॥३२६॥ पुनः आप विचार कीजिये जिससे आप लोगो को सुख समुत्पन्न होवे । इस प्रकार से अग्नि क वचन को श्रवण करके विष्णु जिनमें प्रमुख थे ऐसे समस्त देवता सुन्दर कन्दराओ वाले मन्दराचल पर मुनिगणो के साथ गये थे । देवेश्वर भगवान् शूली के परम प्रिय उस थोष्ठ गिरि पर पहुच कर सब हाथो को जोड कर वृषभध्वज प्रभु का स्तवन करने लग गये थे ॥३०॥३१॥३२॥ देवो ने कहा—परमेश, त्रिनेत्र, त्रिशूली प्रभु के लिये हमारा नमस्कार अपित है । विरूप, सुरूप, पञ्चमुखी, त्रिमूर्ति, वरार्ह, कूर्म, भृग, नीले अलको वाले शिखण्ड और मण्डलेश आपकी सेवा में हमारा नमस्कार है ॥३३॥३४॥ विश्वमान, विश्व, विश्वेश, आत्मरूपी, कालघ्न, मखका हनन करने वाले तथा अन्धकामुर के मारने वाले आपके लिये हम सबका प्रणाम है ॥३५॥

नमो मन्त्राय जप्याय कोटिजाप्याय ते नमः ।

ध्यानाय ध्येयरूपाय ध्येयध्यानात्मने नमः ॥३६

ईशोऽनीशस्त्वमेवेश अन्तोऽनन्तस्त्वमेव च ।
 अव्ययस्त्व व्ययश्चैव जन्माजन्म त्वमेव च ॥३७
 नित्यानित्यस्त्वमेवेश धर्माधर्मस्त्वमेव च ।
 गुरुस्त्वमगुरुर्देव बीज वाऽबीजमेव च ॥३८
 कालस्त्वमसि लोकानामकालः परिगीयसे ।
 बलस्त्वमवलश्चैव प्राणश्चाप्राण एव च ॥३९
 साक्षी त्व कर्मणा देव तथाऽसाक्षी महेश्वर ।
 शास्ताऽशास्ता विरूपाक्ष ध्रुवश्चाध्रुव एव च ॥४०
 ससारी त्व हि जन्तूनामसारी त्वमेव च ।
 गोप्ता त्व सर्वभूताना नास्ति गोप्ता त्वेश्वर ॥४१
 जीवस्त्व जीवलोकस्य जीवस्नेऽन्यो न विद्यते ।
 न्यूनातिरिक्तभावेन त्वमायुश्च शरीरिणाम् ॥४२

मन्त्ररूप, जप्यस्वरूप और कोटि जाप्य के लिये नमस्कार है ॥३६॥
 हे ईश ! आप ईश और अनीश है । और आप ही अन्त तक अनन्त है ।
 आप अव्यय हैं और व्यय हैं । और आप ही जन्म तथा अजन्म है ॥३७॥
 हे ईश ! आप ही नित्य तथा अनित्य भी है । आप धर्म तथा अधर्म हैं ।
 आप गुरु और अगुरु हैं आप सबके बीज हैं और अबीज भी हैं ॥३८॥
 आप लोको के काल हैं और आप अकाल भी गये जाते हैं । आप बल
 है और अवल भी हैं । आप प्राण और अप्राण हैं ॥३९॥ हे भगवन् !
 आप साक्षी हैं जोकि सब लोग कर्म करते हैं उनको देखने वाले हैं ।
 हे देव महेश्वर ! आप असाक्षी हैं । आप शास्त्रा, अशास्त्रा, हे विरूपाक्ष !
 आप ध्रुव तथा अध्रुव हैं । आप जन्तुओं के ससारी है और आप ही
 अससारी हैं । आप समस्त भूतों के गोप्ता है और आपका गोप्ता ईश्वर
 नहीं है । आप इस जीव लोक के जीव हैं [और आपका जीव अन्य कोई
 भी विद्यमान नहीं है । न्यून तथा अतिरिक्त भाव से शरीर धारियों के
 आप ही आयु है ॥४०-४२॥

देहिना शकरस्त्व हि न चान्यस्तव शकर ।
 अरुद्रस्त्व महादेव रुद्रस्त्व धोरकर्मणाम् ॥४३
 देवाना च महादेवो महास्त्वत्तो न विद्यते ।
 कामस्त्व भविना सर्वकामदस्त्व जगत्पते ॥४४
 अजेयो जयिना श्रेष्ठो जयरूपस्त्वमेव हि ।
 पुराणपुरुषस्त्व हि पुराणोऽन्यो न विद्यते ॥४५
 व्यालयज्ञोपवीताय सरोजाङ्घ्राय ते नम ।
 नमोऽस्तु नीलग्रीवाय शितिकण्ठाय मीढुपे ॥४६
 नम कपालहस्ताय पाशहस्ताय दण्डिन ।
 नमो देवाधिदेवाय नमो नारायणाय च ॥४७
 ऊर्ध्वभागप्रणेत्रे च नमस्ते ह्यूर्ध्वरेतसे ।
 क्रोधिने वीतरागाय गजचर्मावगुण्ठिने ॥४८
 नमो ब्रह्मशिरोघ्नाय नमस्ते रुक्मरेतसे ।
 नमश्चण्डाय धीराय कमण्डलुनिपङ्क्तिने ॥४९

आप देहधारियों के शकर अर्थात् कल्याण करने वाले हैं और अन्य कोई भी आपके कल्याण करने वाला शकर नहीं है । हे महादेव ! आप ही अरुद्र हैं और जो घोर कर्मों के करने वाले प्राणी हैं उनके लिये आप ही रुद्र होते हैं । आनन्द देवो महादेव हैं और आपसे महान् अन्य कोई भी नहीं है । आप भावियों के काम हैं । हे जगत्पते ! आप सब कामनाओं के प्रदान करने वाले हैं ॥४३॥४४॥ आप स्वयं अजेय हैं और आप जय वाला मैं परम श्रेष्ठ हैं । आप स्वयं ही जय स्वरूप वाले हैं । आप परम पुराण पुरुष हैं । आपसे पुराण अन्य कोई भी नहीं है ॥४५॥ व्याल (सर्प) का यज्ञोपवीत धारण करने वाले और सरोजाङ्घ्र आपके लिये हम सबका प्रणाम है । नीलग्रीव, शितिकण्ठ, मीढुप आपके लिये नमस्कार है ॥४६॥ कपाल हाथ में रखने वाले, पाशहस्त, दण्डी, देवों के अधिदेव आपको नमस्कार है । नारायण आपको प्रणाम है ॥४७॥ ऊर्ध्वे भागे के प्रणेत्रा, ऊर्ध्वरेता आपके लिये नमस्कार है ।

क्रोधी, वीतराग, गज के चर्मन वा अगुष्टन करने वाले, ब्रह्मा के शिर का हनन करने वाले और स्वमरेता आपकी सेवा मे हम सब का प्रणाम समर्पित है । चण्ड, धीर, कमण्डलुनिपङ्गी आपके लिये नमस्कार है ॥४८॥४९॥

नमः प्रचण्डवेगाय क्रोधचण्डाय ते नमः ।
 वरेण्याय शरण्याय ब्रह्मण्यायाम्बिकापते ॥५०॥
 सर्वानुग्रहकर्ता त्व धनदाय नमो नमः ।
 नमः ससारपोताय अणिमादिप्रदायिने ॥५१॥
 ज्येष्ठसामादिसस्थाय रथतराय ते नमः ।
 त्रिगाथाय त्रिमात्राय त्रिमूर्ते त्रिगुणात्मने । ५२॥
 त्रिवेदिने त्रिसंध्याय त्रिशून्याय त्रिवर्मणे ।
 त्रिवेहाय त्रिकालाय त्रिशक्तिव्यापिने नमः ॥५३॥
 शक्तित्रयविर्हनाय शक्तित्रययुताय च ।
 शक्तित्रयात्मरूपाय शक्तित्रयधराय च ॥५४॥
 योगीशाय विपध्नाय विजयाय नमो नमः ।
 नमस्ते हरिकेशाय लोकपालाय दण्डिने ॥५५॥
 हलीशाय प्रमेयाय कुलीशाय तु चक्रिणे ।
 नमो बिन्दुविसर्गाय नादायानादधारिणे ॥५६॥

प्रचण्ड वेग वाले को नमस्कार है तथा प्रचण्ड क्रोध वाले को प्रणाम है । वरेण्य, शरण्य और ब्रह्मग्न आपके लिये हे चण्डिकापते ! नमस्कार है ॥५०॥ आप सभी पर अनुग्रह करने वाले हैं, धनद आपकी सेवा मे नमस्कार है तथा बारम्बार प्रणाम है । इस मणार रूपी सागर के तरण करने के लिये पोत स्वरूप आपकी सेवा मे प्रणाम हैं तथा अणिमा आदि सिद्धियों के प्रदाना आपकी मेरा नमस्कार है ॥५१॥ ज्येष्ठ सामादि सस्थ और रथन्तर के लिये नमस्कार है । त्रिगाथ, त्रिमात्र, त्रिमूर्ति और त्रिगुणात्मा आपकी सेवा मे नमस्कार है ॥५२॥ त्रिवेदी, त्रिमन्ध्य, त्रिशून्य, त्रिवर्मा, त्रिवेह, त्रिकाल और त्रिशक्ति व्यापी आपके लिये

नमस्कार है ॥५३॥ तीन शक्तियों से विहीन तथा शक्तित्रय से युक्त अर्थात् तीन शक्तियों के धारण करने वाले, योगीश, विष का हनन करने वाले, विजय आपके लिये बारम्बार प्रणाम अर्पित है । हरिकेश, लोकपाल, दण्डी, हतीश, प्रमेय, कुलीश, चक्री, विन्दुविसर्ग, नादरूप और अनादधारी आपको नमस्कार है ॥५४-५६॥

नाडीस्थाय च नाड्याय नाडीवाहाय वै नमः ।

नमो गायत्रीनाथाय गायत्रीहृदयाय ते ॥५७

नमो गायत्रीगोप्त्रे च गायत्र्याय नमो नमः ।

य इदं पठते स्तोत्रं गीर्वाणः समुदीरितम् ॥५८

यावज्जीवकृतं पापं मुक्तो याति परा गतिम् ।

एव स्तुतः सुरैः शम्भु प्रसन्नो वरदोऽभवत् ॥५९

वर वृणीष्व हे देवा इत्युवाच महेश्वर ।

अथ त वरदं ज्ञात्वा शम्भुमग्निमुखा सुराः ॥६०

ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे भयं त्यक्त्वा द्विजोत्तमाः ।

यदि तुष्टोऽसि विश्वेण देहीम वरमुत्तमम् । ६१

गिरिजाकुक्षिसंभूत पुत्रो मा भूत्तवानघ ।

एवमस्तिवत्ससौ शम्भुः पुनरुक्त्वा ततो वचः ॥६२

नाहं रेतो वृथा स्कन्दे त्रिलोक्यक्षयकारकम् ।

वृथा शुक्रं मदीये तु त्रिलोक्य भस्मसाद्भवेत् ॥६३

नाडीस्थ, नाड्य, नाडीवाद को नमस्कार है । गायत्री के नाथ,

गायत्री के हृदय, गायत्री के गोप्ता और गायत्र्य आपके लिये बार-बार नमस्कार है । जो कोई इस स्तोत्र को जो कि देवों के द्वारा समुदीरित है पढ़ता है वह जब तक जीवन में बिये हुए पाप होते हैं उन सबसे विमुक्त होकर परमगति को प्राप्त किया करता है । इस प्रकार से देवों के द्वारा स्तुति किये गये भगवान् शम्भु परम प्रसन्न होगये थे और वरदान प्रदान करने वाले होगये थे ॥५७-५९॥ महादेव जी ने कहा— हे देवगणो ! वरदान का वरण करलो । इसके अनन्तर अग्निमुख सुरों

ने भगवान् शम्भु को वरदाता जानकर हाथों को जोड़ते हुए सब देवगण हे द्विजोत्तमो ! भय छोड़कर बोले ॥६०॥६१॥ देवगणों ने कहा—हे विश्वेश ! यदि आप परम तुष्ट होगये हैं तो आप इस उत्तम वरदान को प्रदान कीजिए ॥६२॥ हे अनघ ! गिरिजा के कुक्षि से समुत्पन्न आपका पुत्र न होवे । ऐसा ही होवेगा—यह शम्भु ने यह बहकर फिर यह वचन कहा—॥६२॥ मैं अपना रेत (वीर्य) वृषा स्कन्दिन नहीं करता हूँ क्योंकि यह त्रैलोक्य के क्षय का करने वाला है । मेरे गुरु के वृषा होने पर तो यह त्रैलोक्य ही भस्मसात हो जायगा ॥६३॥

हिताय तस्माल्लोकाना मम रेतो दिवोकसः ।
 शान्त्यर्थं चैव युष्माभिः शीघ्रमेव प्रगुज्यताम् ॥६४
 एवं शभोर्वचः श्रुत्वा देवाग्ने भयविह्वलाः ।
 सलोकेशाः सगोविन्दा न किञ्चिदन्न वन्द्विजाः ॥६५
 अथ देवेषु सीदत्सु वह्निर्गौरिव कर्दमे ।
 प्रसार्य स्वाञ्जलिं शम्भुं रेतो मुञ्चेति चाब्रवीत् ॥६६
 देवदेवामृत दिव्य हस्ताभ्या मम शंकर ।
 शीघ्रमेव प्रयच्छस्व निबन्तु सुरपुंगवाः ॥६७॥
 ततो लिङ्गाद्विनिष्क्रान्त चन्द्रविम्बात्सुनिर्मलम् ।
 जातीनीलोत्पलामोद पाणौ वह्नेर्ददौ शिवः ॥६८
 कराभ्यां पतित रेतस्तदाऽभूत्पावकस्य वै ।
 पपौ वह्निस्तत शुक्रं ज्वलत्तद्भास्करप्रभम् ॥६९
 सुधेति मनसा मत्वा हृष्टात्मा मृदयाऽन्वितः ।
 अथ पीते तदा शुक्र वह्निना मुनिपु गवा ॥७०

इस कारण मे लोको के हित के लिये ही हे देवगणो ! मेरे रेत को आप भोग शक्ति के लिये शीघ्र ही प्रयोग मे लाइये ॥६४॥ इस प्रकार के शम्भु के वचन को सुनकर वे सब देवगण भय से विह्वल होगये थे । हे द्विजो ! लोकपालों के सहित और गोविन्द के सहित देवों ने कुछ भी नहीं कहा था ॥६५॥ इसके अनन्तर देवों के दुःखित होने पर अग्नि

कीच मे फँसी हुई गौ की तरह से अपनी अञ्जलि को फँताकर शम्भु के समक्ष मे वहा था कि आप रेत का मुञ्जन कीजिए ॥६६॥ हे शंकर ! मुझे दिव्य आप देव देवामृत हाथों से शीघ्र ही प्रदान कीजिये जिसको सुरश्रेष्ठ पान करें ॥६७॥ इसके पश्चात् भगवान् शिव ने लिङ्ग से त्रिनिष्क्रान्त चन्द्रविम्ब से सुनिर्मल-जातीफल नीलोत्पल के समान आमोद अग्नि के हाथ मे दिया था ॥६८॥ करो से गिरा हुआ रेत उस समय मे पावक का होगया था । इसके अनन्तर वह्नि ने ज्वलते हुए भास्कर की प्रभा के तुल्य प्रभा वाला वह शुक्र पावक ने पी लिया था ॥६९॥ यह सुधा है—ऐसा मन से मानकर बहुत प्रहृष्ट आत्मा वाला और आनन्द से युक्त होगया । हे मुनि श्रेष्ठो ! इसके अनन्तर वह्नि के द्वारा उस समय मे शुक्र के पान किये जाने पर परम प्रसन्नता हुई थी ॥७०॥

रेत पातेन सतप्यं स देवासुरपूजितः ।

विसृज्य तास्तु भगवास्तत्रैवान्तरवीयत ॥७१

तदा हविर्भुज देव सेन्द्रा ब्रह्मपुरोगमाः ।

ययाऽऽगता ययुस्तत्र नूजयित्वा दिवोकस ॥७२

रेतसा दह्यमानोऽग्निः पातालात्सुतल गतः ।

ततो विवेश गिरिशो यत्राऽऽस्ते पार्वती शिवा ॥७३

उवाच पार्वती शम्भुः प्रहसन्कमलेक्षणाम् ।

शृणु देवि महाभागे यद्वृत्त तल्लक्ष्मीम्यहम् ॥७४

स्वतन्त्रकामाऽसि शिवे यथाऽहं वरवर्णिनि ।

देवा मच्छरण प्राप्ता न चाहं शरण त्यजे ॥७५

गोप्या मया सदा कान्ते महादेवो मतः स्मृतः ।

भविष्यति महाभागे पुत्रस्तव पडानन ॥७६

किं त्वीरमस्तु सुश्रोणि देवैर्नेष्टस्तवांशतः ।

तस्माच्छुद्धं (क्षिप्त) मया रेतो मुसे वै जातगेदसः ॥७७

उन देवों और अमुरों के द्वारा पूजित प्रभु ने रेतम् के पात के द्वारा भन्नीभाँति तपण कर और उनको विद्या करके भगवाद् वहीँ पर

अन्तर्हित होगये थे ॥७१॥ उस समय में इन्द्र के सहित ब्रह्माजी जिनमें अग्रगामी थे सब देवों ने हविर्भुंज देव का पूजन किया था तथा फिर जैत आये थे वैसे ही सब चने गये थे ॥७२॥ उस युद्ध के पीने से अग्नि दह्यमान होगया था और वह पाताल से गुप्तलोक को गया था । इसके पश्चात् त्रिरीश प्रभु ने अन्दर प्रवेश किया था जहाँ पर शिवा पार्वती विराजमान थीं । उन कामन के समान खोचनी वाली पार्वती जी से भगवान् शम्भु ने हँसते हुए कहा था—ईश्वर ने कहा—हे महाभागे । हे देवि ! आप मुनि—जो बुद्ध घटित हुआ है उपरों में आरों योवता है ॥७३॥७४॥ हे शिवे ! आप मन्त्र काम वाली हो हे वर वणिनि ! जिस प्रकार से मैं हूँ । देवगण मेरी शरण में प्राप्त हुए थे और जो मेरी शरण में आजाये उसका मैं त्याग नहीं किया करता हूँ ॥७५॥ हे काम्ते ! ये शरणागत देव मेरे द्वारा सदा ही रक्षा करने के योग्य होते हैं और महादेव रत कहे गये हैं । हे महाभागे ! आपका पुत्र पडानन होगा ॥७६॥ किन्तु हे मुश्रोणि ! आपका और सपुत्र देवों के द्वारा आपके अश से अभीष्ट नहीं था । इनसे मैंने शुद्ध वीर्य अग्नि के मुख में डाल दिया है ॥७७॥

वह्निष्कुक्षिगत रेतो गत देवान्विभागश ।
 यच्छेषमुदरे वह्निस्नग्दङ्गाया प्रदास्यति ॥७६
 तत साऽपि विदह्यन्ती मम तेज पतापवत् ।
 कृत्तिका पट समाख्याता गङ्गाया म्नातुमागता ॥७६
 तासु गङ्गाविनिक्षिप्त मम रेतस्तदद्भुतम् ।
 ततस्ता कृत्तिका स्तब्धा देवि मा शरण गता ॥८०
 अनुग्रहान्मय तासामिदमुक्त तदा शिवे ।
 ममाऽऽदेशान्दता सर्वा शरधानवन शुभम् ॥८१
 मोचयिष्यन्ति ता गभं देवाश्च कमनेक्षणैः ।
 वचनान्मम सुश्रोणि भंशल्य वरानने ॥८२

ततस्ते भविता पुत्र एकीभूत्वा स्वतेजस ।

वालसूर्यायुतप्रस्थो वालेन्दुभ्रूलताङ्कित ॥८३

आग्नेयो वह्निजो गाङ्ग्ये कृत्तिकामुत ।

स्कन्दो गुहस्तथा पुत्रो नामभिरते भविष्यति ॥८४

अग्नि की कुक्षि में प्राम हुआ रेत विभागदा देवा को गया था । जो कुछ उदर में शेष रह जायगा उसको वह अग्नि गङ्गा में प्रदानकर देगा ॥७८॥ वह भी इसके अनन्तर विहाय होतौ हुई मेरे प्रताप वाले तेज को उम गङ्गा ने उन कृत्तिकाओं में पिनिश्लिप्त कर दिया था । जो छै कृत्तिकाएँ समाख्यात की गयी हैं और जो गङ्गा में स्नान करने के लिये ही वहाँ पर समागत हुई थी किन्तु मेरा शूक्र बटुन ही अद्भुत था । हे देवि ! इसके अनन्तर वे कृत्तिकाएँ स्तब्ध हो गयी थी और मेरी शरण में समागत हों गयी थी ॥७९॥ हे शिवे ! उनके ऊपर अनुग्रह करके मैंने उम समय में उनसे यह कहा था कि तुम शुभ शरणान वन में चली जाओ और मेरे आदेश से वहाँ पर चली गयी थी ॥८०॥ हे कमलेश्वरे ! वे वहाँ पर गर्भ का मोचन करेगी । देव रानने ! और देवगण हे सुश्रोणि ! मेरे वचन से वह गर्भ शल्य हो गया था । इसके पश्चात् वह तेरा पुत्र होगा जो अपन तेज को एकीभूत होकर ही होगा । वह वायु सूर्य जो दस हजार हा उनक समान मुख्य होगा और वालेन्दु के समान भ्रूलताओं से अङ्कित है । उसक बटुन से नाम भी होंगे—केनाम गाङ्ग्ये—वह्निज—देव—आग्नेय—कृत्तिका मुत—स्कन्द—गुह वे सभी उसके हाने ॥८२॥८३॥८४॥

एव शभोर्वच श्रुत्वा प्राह देवी गिरीन्द्रजा ।

मम कुक्षिसमुत्पद्य यतो नेच्छन्ति पुत्रकम् ॥८५

अत पुत्रविहीवारते भविष्यन्ति सुरादय ।

यो हि नन्दी महावीर्य सुरासुरमहोरगै ॥८६

दुर्जय सर्वभूताना योगी योगवलान्वित ।

प्रविश्यान्त पुरे वह्निर्दृष्ट्वा मा वस्त्रवजिताम् ॥८७

यस्मादुपेक्षितस्तस्मान्मनुष्यत्व प्रयातु स ।
 शाप श्रुत्वाऽथ शैलादिवेन्द्रोऽप्येव हतो गिरि ॥८८
 न्यपतद्योगिनामग्यो ज्ञानमूर्तिधरो द्विजा ।
 पुनश्च शभोर्वचनाच्छैलादिमनुगृह्य च ॥
 समालिङ्ग्य महादेव स्थितिं देवीति न श्रुतम् ॥८९

इस रीति से कथित भगवान् शम्भु के वचन को सुनकर गिरीन्द्रजा ने कहा—मेरी कुक्षि से साक्षात् समुत्पन्न होने वाले पुत्र को जिन कारण से भी देवगण नहीं चाहते हैं अतएव वे समस्त सुरगण आदि देव यानि वाले पुत्रो स विहीन ही हो जायेंगे । अर्थात् उनके किसी के भी पुत्र नहीं होंगे । दूमरो का जो अहित चाहते हैं उनको वही परिणाम होना ही चाहिए । जो महान्दी है और ऐसा महान् वीर्य वाता है जिसको सुर-अमुर और महेश्वर भी नहीं जीत सकते हैं वह समस्त भूतो मे योगी और योग के बल से समन्वित है उसके द्वारा जिस कारण से उपेक्षित बह्मिन्को कर दिया गया था और उस बह्मिन्वे ने मुझको वस्त्र से रहित देखा था इस कारण से वह मनुष्यत्व को प्राप्त करेगा । इस शाप का श्रवण करके शैलादि वज्र से हत गिरि के ही समान हत होकर हे द्विजो ! वह ज्ञान मूर्तिधारी और योगियो से अग्रणी गिर गया था । फिर शम्भु देव के वचन से शैलादि पर अनुग्रह किया गया था । इसके पश्चात् वह देवी महादेव जी का समालिङ्गन करके स्थित हो गयी थी—ऐसा ही हमने सुना है । ८५।८६।

॥ परमेश्वर-सुर सम्वादादि कथन ॥

बह्नी संतर्पिते सूत रेतसा त्रिदिवीकसः ।
 सगर्भाः खलु संजाता देवदेवेन शंभुना ॥१
 सौख्यं कथमवापुस्त उदरस्थेन रेतना ।
 किमकुर्वंस्तदा सर्वे नारायणपुरोगमाः ॥२
 गर्भनिष्क्रमण तेषामुत्मन्नेन च किं कृतम् ।
 एतत्सर्वं समासेन ब्रूहि नः सूत पृच्छताम् ॥३
 बह्नी संतर्पितास्तेन रेतसा त्रिदिवीकसः ।
 रेतसा चोदरस्थेन संतप्तास्ते सुरादयः ॥४
 दशपञ्चसहस्राणामतीतेषु द्विजोत्तमाः ।
 वर्षाणां च तथाऽष्टौ च गूढगर्भा दिवोकसः ॥५
 दुःखिताः पार्वतीकान्तं शफर शरण ययुः ।
 ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥६

ऋषियो ने कहा—हे श्री सूतजी । बह्नि के संतर्पित होने पर देव देव शम्भु के द्वारा वीर्य्य से समस्त देवगण गमर्ग हो गये हैं तो उन्होंने फिर उदर में स्थित शक्र से किस प्रकार में मुक्त की प्राप्ति की थी । फिर उन समस्त देवगणों ने जिनमें साक्षात् नारायण भगवान भी पुरोगामी थे क्या किया था । १।२। उनके गर्भों का निष्क्रमण कैसे हुआ और समुत्पन्न उसने क्या किया था—यह सम्पूर्ण वृत्तान्त सजोप से हे सूत जी ! हमारे सामने वर्णित कीजिए क्योंकि हम इस समय में सभी यह पूछ रहे हैं । ३। श्री महा मुनीन्द्र सूतजी ने कहा—उम वीर्य्य से जो बह्नि में विधिपूर्वक किया गया था सभी देवगण संतर्पित हो गये थे किन्तु यह अवश्य ही हुआ कि उस उदर में स्थित वीर्य्य से वे सभी सुरादि गण सन्तप्त हो गये थे । ४। हे द्विजोत्तमो ! पन्द्र हजार वर्षों के व्यतीत हो जाने पर और आठ वर्ष ऊपर होने पर गर्भ को गूढ़ रमने वाले देवगण परम दुःखित होकर पार्वती के स्वामी शक्र की शरण में प्राण

हुए थे । सबने दोनों हाथों को जोड़कर करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा वाले भगवान् शंकरजी में प्रार्थना की थी । १५६।

भगवत्यदिदं दुःखं गर्भजं देहशोषणम् ।

यथा नश्यति देवेश तदुपायं कुरु प्रभो ॥७

वह्निना पीतमात्रेण रेतसा तव शंकर ।

वयं मगर्भाः सजाता गर्भकाले च तोयदा ॥८

उपहास्यमिदं देव पुंसां यद्गर्भसंभव ।

सर्वे वै भृशमुद्विग्नास्तव तेजोवशाद्विभो ॥९

दह्यमाना महादेव नरके पापिनो यथा ।

शरणं भव देवानां करालम्बं ददस्व न ॥१०

दुःखोदघ्नीं प्रदुस्तारे प्रणतार्तिविनाशन ।

एव श्रुत्वा तु वचनं देवानां पार्वतीर्षति ॥११

ईषद्विहस्य भगवानुवाचेदं सुरेश्वर ।

भवद्भिरीदृशं कार्यमिष्टं वै सुरपुंगवा ॥१२

नेष्टं देव्योऽव्युदरस्थं हि तस्मान्दर्भदशागता ॥१३

उदानी यत्प्रकर्तव्यं शृणुध्वं तत्सुरोत्तमा ।

वह्निं यूयं पुरस्कृत्य मेरुं व्रजत मन्दरात् ॥१४

देवो ने कहा—हे भगवन् ! जो यह गर्भ से ममुत्पन्न देह के शोषण

करने वाला दुःख है हे देवेश ! हे प्रभो ! यह जैसे भी बिनष्ट हो जाये

वही अब उपाय ढीजिए । ७। हे शंकर ! वह्नि के द्वारा पीत मात्र

आपके वीर्य से हम सभी गर्भों में सम्भ्रित हो गये हैं और गर्भों के

समय में तो यह हो गये हैं । ८। हे देव ! यह एक बहुत ही उपहास

योग्य बात हुई है कि पुरुषों के उदर में गर्भ हो जाये ? हे

विभो ! आपने तेज के वश से हम लोग अत्यन्त अधिव उद्विग्न हो रहे

हैं । हे महादेव जी ! जैसे नरकों में पड़े हुए महा पापी

होते हैं वैसे ही हम सब दह्यमान हो रहे हैं । अब आप हम समस्त देवों

के शरण (रक्षा) हा जाइयें और हम सबको अपना करालम्ब प्रदान

कीजिए । १११०। हे प्रणत भक्तों की आर्ति के विनाश करने वाले प्रभो ! इस बहुत ही अधिक बड़े हुए दुःखों के सागर में हम विमग्न हैं । पार्वती देवी के स्वामी शम्भु ने इस प्रकार के देवों के वचन श्रवण करके भगवान् मुरेश्वर ने थोड़ा सा हँसकर यह वचन कहा था—ईश्वर ने कहा—हे मुर श्रेष्ठो ! आपके द्वारा ही ऐसा कार्य अभीष्ट हुआ था । ११११२। आप लोग स्वयं ही देवी के उदर में रहने वाले गर्भ को नहीं चाहते थे । इसीलिये आप लोग इस तरह की गर्भ की दशा को प्राप्त हुए हैं । १३। हे सुरोत्तमो ! इस समय में जो भी आप भक्तों करना चाहिए उनके विषय में आप श्रवण कीजिए । अब आप सब लोग अग्नि को अपने आगे बरके इस मन्दर पर्वत से सुमेरु पर्वत पर चले जाइए ॥१४॥

शरघानवने यूय हृदोत्सङ्गे प्रसूयत(?) ।

नि सरिप्यत्यस देह तत सौर्यमवाप्स्यथ ॥१५

तत शभोर्वच श्रुत्वा नारायणपुरोगमा ।

अग्निमन्विष्य च ययुर्मह गिरिवरोत्तमम् ॥१६

तस्य चोत्तरदिग्भागे शरघानवने शुभे ।

उपविश्य महात्मानो मध्ये स म्याप्य वेधसम् ॥१७

नारायण पुरस्कृत्य प्रमूता सर्वदेवता ।

गर्भं शल्यविनिमुक्ता जातारते मुखिनो द्विजा ॥१८

शार्वेण तेजसा तेन रक्षितो मेरुपर्वत ।

तत वाञ्छनता प्राप्त मशीनवनवानन ॥१९

शार्वं तेजो घृत यस्माद्देवीवंहिनपुरोगमं ।

तस्माज्जरादिभिमुक्ता अमराश्च मुरोत्तमा ॥२०

सिद्धाश्च मुनयश्चैव ये केचित्तात्र म स्थिता ।

तृणगुन्मनताश्चैव जलस्थानरहाश्च ये ॥२१

यहाँ पर शरघान वन में जो हृद है उगम उताङ्ग म आप गर्भ का प्रसन्न करिये । यह गर्भ कहा पर नि गदेह रूप म निवन जायेगा और

उसके पश्चात् आप लोग सुख की प्राप्ति कर लेंगे । १५। इसके पश्चात् भगवान् शम्भु के वचन सुनकर नारायण प्रसेगम समस्त देवगण मेरु में चले गये हैं जो गिरिवरो में बहुत ही उत्तम था । १६। उस पर्वत के उत्तर के भाग में शुभ शरधान वन था उसमें सभी महान् आत्मा वाले उपविष्ट हो गये थे और मध्य में वेद्या को स स्थापित कर लिया था । १७। भगवान् नारायण को आगे करके सब देवों ने प्रसव किया था । हे द्विजो ! फिर वे देवगण गर्भ के श्लेष से विनियुक्त होकर वे सब सुखी हो गये थे । १८। उस शर्व के तेज से वह सम्पूर्ण मेरु पर्वत रज्जित हो गया था । इसके पश्चात् वह सम्पूर्ण पर्वत और उसका वन एव वानन सुवर्ण को प्राप्त हो गया था । १९। अग्नि जिनमें प्रमुख था ऐसे सब देवों ने भगवान् शम्भु का तेज धारण किया था इसी कारण से सब जरा आदि से तुरोत्तम विमुक्त होकर अमर हो गये थे । २०। सिद्ध-मुनि और जो भी कोई वहाँ पर स स्थित थे —तरु—गुल्म—लताएँ—जन और स्थल म समुत्पन्न सब जो भी वे सभी सुवर्ण स्वरूप हो गये थे ॥२१॥

सर्वे काञ्चनसकाशा सजातास्तत्प्रभाक्त ।
 पाश्वं मेरोद्विनिभिद्य शभोस्तेजो विनिर्गतम् ॥२२
 गङ्गाया निहित यच्च तदेकम्यमभूद्द्विजा ।
 अथ देवो महादेवस्तेजोराशिरुमापति ॥२३
 गोपयामास तत्तेज पिङ्गल प्रेक्ष्य शबर ।
 गोप्यमाने तु तस्मिश्च मेरी सूर्यायुतप्रभ ॥२४
 वर्षाणा च सहस्रेण कठिन म्यन्दता गत ।
 स्वन्द इत्युच्यते तेन तदाप्रभृति मुव्रता ॥२४
 हराज्जातो यतस्तेन कुमार इति वच्यते ।
 स्वन्द कुमार पङ्कजस्तया द्वादशलोचन ॥२६
 भुजैर्द्वादशभिस्सर्व शोभमानोऽभवत्तदा ।
 ईशादेशात्पुन स्नातु वृत्तिवा परमोज्ज्वला ॥२७

ताभि क्षीर यतो दत्ता कार्तिकेय इति स्मृत ।

गर्भपङ्कविलिप्ताङ्गो गङ्गाया स्नापित प्रभु ॥२८॥

उम वीर्य के प्रबल प्रभाव से सभी नाचन के सहस्र हो गये थे । मेरु पर्वत के पार्श्व भाग का विनिर्भेदन करके भगवान् शम्भु का तेज निर्गत हो गया था ॥२२॥ हे द्विजो ! जो भी गङ्गा में निहित तेज था वह सब मितकर एक में ही स्थित हो गया था । इसके अनन्तर देव उमा के पति तेज के राशि महादेव श कर ने उस तेज को पिङ्गल वर्ण वाला देखकर गोपित कर लिया था । उसके गोप्यमान होने पर उस मेरु पर्वत में वह अयुत सूर्य की प्रभा के समान हो गया था । एक सहस्र वर्षों के समय व्यतीत होने पर वह कठिन होकर स्कन्दता को प्राप्त हुआ था । इसी कारण से हे सुव्रतो ! तभी से लेकर वह स्कन्द इन नाम से कहे जाते हैं ॥२३॥२४॥२५॥ क्योंकि भगवान् हर से समुत्पन्न हुए हैं अतएव कुमार इस नाम से कहे जाते हैं । स्कन्द—कुमार—पड-वक्त—द्वादशोचन ये उनके नाम हैं और वे द्वादश भुजाओं से उस समय में परम शोभमान हुए थे । ईश के आदेश से वृत्ति का पुन स्मान करने के लिये प्रस्तुत हुई और परम उज्ज्वल हो गयी थी ॥२६॥२७॥ उनके द्वारा ही उनको दूध पिनाया गया था । इसी कारण से य कार्ति-केय इन नाम से कहे गये हैं । गर्भ के पङ्क से विनिस्र हुए अङ्गो वाचे य प्रभु गङ्गा में स्नापित हुए थे ॥२८॥

तप्तचामोकराभाम शरधानवने तदा ।

नाम्ना सहस्रेण तदा कुमारो वेधसा स्तुत ॥२९॥

मुमोच नादमृत्याय सर्वभूतभयकरम् ।

पाताल भेदयित्वा तु तच्छृङ्ग शतधा वृतम् ॥३०॥

सिंहादयोऽपि तत्रम्यास्तेन नादेन सूदिता ।

ततस्त श्रीऽमान तु दृष्ट्वा देव शिवात्मजम् ॥३१॥

पिङ्गलो देवदेवेश ज्ञापयामाग शकरम् ।

पश्य त्व देवदेवेश श्रीऽमान कुमारवम् ॥३२॥

सूर्यायुतप्रतीकाशमात्मसूनु पडाननम् ।
 ज्ञापित पिङ्गलेनेशो वाक्य देव्यै मुदावहम् ।
 वरो वरेण्यो वरदो विश्वाकार उवाच ह ॥३२॥
 गच्छाव एहि देवेशि मेरौ यत्र सुतस्तव ।
 पश्यावस्त वराराहे कुमार तु पडाननम् ॥३४॥
 पुरा त्वयेष्ट वनकावभास प्रश्याद्रिजे मानसराजहसम् ।
 प्रधावमान शतसूर्यकल्प पडानन कार्मुकपाणिमग्र ॥३५॥

उस समय मे तपाये हुए सुवर्ण के समान आभास वाले शरधान वन मे उस समय मे सहस्र नामो के द्वारा कुमार का स्तवन ब्रह्माजी ने किया था । ३१। समस्त प्राणियो को भय करने वाले नाद को उठाकर छोड दिया था । पाताल का भेदन करके उस भृङ्ग के सँकडा टकडे हो गये थे । ३०। वहाँ पर स्थित सिंह आदि भी उस नाद से सूदित हो गये थे । इसके अन तर शिव के पुत्र देव गो भी क्रीडा करते हुए देखकर पिङ्गल ने देवदेवेश भगवान् शङ्कर को विज्ञामित किया था—हे देव देवेश्वर ! आप क्रीडा करते हुए कुमार को देखिए । ३१। ३२। अयुत (दश सहस्र) सूर्यो के सहस्र अपने पुत्र कुमार पडानन के विषय मे पिङ्गल के द्वारा भगवान् ईश ज्ञापित किये गये थे । यह वानप देवी के लिये आनन्द के प्रदान करने वाला था । वर—वरोग्य—वरद और विश्वाकर्म ने कहा—। ३३। ईश्वर ने कहा—हे देवेशि ! आइये, चले, मेरु पर्वत पर जहाँ आपका पुत्र है । हे वरासे हे ! उस पडानन कुमार को देखें । ३४। हे अद्रिजे ! जैसा कि पहले आपका वनर के समान आभास था। मानस राजहस आपको बहुत ही प्रिय था उसको अब आप देख लो । शत सूर्य के सहस्र दौड नगाने वाला और हाथ मे धनुष धारण किए हुए आगे गो ओर देख लीजिए । ३५।

समागती स ज्वलनोऽथ दृष्ट्वा त्रिलोचनाथो जगत प्रदीपो ।
 उवाच वह्निर्वरद कुमार हराम्बिके दो पितरो तवनी । ३६।

त्वामागती द्रष्टुं मनन्तवीर्यं व्रजाश्रयेति प्रमयाधिनाथो ।
 गतोऽथ बह्वैर्वचनं निशम्य ततः सुतत्वाग्निरिजाङ्कगोऽभूत् ॥३७॥
 त सा पिबन्त महुरङ्कसस्थमृतृष्यमान कलहसनादिनी ।
 उमाङ्कमथो मदनारिसुनु करेण तस्मास्तिलकालकौ तु ॥३८॥
 ममदं शभोश्च भुजङ्गहार जग्राह चन्द्र स कपर्दसस्थम् ॥३९॥
 पञ्चम्या स्थापित सोऽथ पष्ट्या पष्टीप्रियो गुह ।
 चतुष्पादवती त्यक्त्वा त्रैलोक्यं हन्तुमुद्यत ॥४०॥
 अवोधयत्तदा बालो जन्तून्स्थावरजङ्गमान् ।
 ववच्छिद्वाङ्ग गिरे शौर्यान्नियत्याशु समानताम् ॥४१॥
 ववचिर्त्सिहान्समाकृष्य पातयामास भूतले ।
 आरुह्याभ्यहनत्पृष्ठे (?) तानेव भ्रामयन्पुन ॥४२॥

वह ज्वलन समागत हो गया था । जगन् के प्रवीण तीना लोका के नाथ दोना को देखकर अग्नि ने वरद कुमार से कहा था—हर और अम्बिका ये दोनों तुम्हारे माता पिता हैं । ३६। अनन्त वीर्य वाले आपको ही अवलोकन करने के लिये ये यहाँ पर ममागत हुए हैं आप जाइए और इन दोनों प्रमया के अधिनाथा का समाश्रय ग्रहण कीजिए । इसके अनन्तर यज्ञि से बचा वा शरण करने वह इसके उपरान्त गिरिजा के अङ्गन हो गये थे । ३७। इगन् पदचार् कल्प ह्य क समान नाद करने वाली वह देवी ने गोद में बैठे हुए और बार-बार दूध का पान करके भी तृप्ति को न प्राप्त होकर जाने कुमार को देखा था और उमा देवी के गोद में समस्थिता मदनारि के पुत्र कुमार ने उन अपनी माना अम्बिका के तिलक और अलका का मर्दन कर रहे थे । ३८। उम कुमार ने दम्भु प्रभु के भुजङ्गों के हार को ले लिया था और कपर्द में स्थित चन्द्र को ग्रहण कर लिया था । ३९। वह पञ्चमी में स्थापित हुआ था और पष्टी में गुरु पष्टी प्रिय हुए । चतुष्पादवती तो त्याग करने के त्रैलोक्य का हनन करने को समुद्यत हो गये थे । ४०। उन समय में वाज ने स्वर्ग-जन्म जन्तुओं को धिता करा दिया था । वही परती शौर्य में पीठि के मङ्ग

को डीघ्र ही समानता को ले आया करते थे । ४१। और कही पर किसी समय में सिंहों को खींचकर भूतल में गिरा दिया करते थे । उनकी पीठ पर आरोहण करके फिर उनको ही श्रामित करा दिया करते थे । ४२।

क्वचिन्नागी गृहीत्वा तु कराम्या समुखावुभी ।
 आस्फोटयत्तादाऽत्योन्य कुम्भाभ्या स च लीलया ॥४३॥
 समुत्पत्य समादाय खेचराणामुमासुत ।
 चिक्षेप सहसा बालो विमानान्यवनीतले ॥४४॥
 पुनरुत्पत्य वेगेन प्रेक्ष्यमाण खमण्डले ।
 मार्गं हरोध सूर्येन्द्वोर्ग्रहाणा च तथैव स ॥४५॥
 उत्पाट्य मेरुशृङ्गाणि इतश्चेतश्च सोऽक्षिपत् ।
 पर्वताश्च विशेपेण नदीश्चोन्मार्गतोऽनपत् ॥४६॥
 श्रासित तु जगत्सर्वं दामोदरपदत्रये ।
 ततस्ते भृशमुद्विग्ना शक्र शत्रुप्रतापनम् ॥४७॥
 ऊचुर्गत्वा द्विजश्रेष्ठा भृता वाक्यमिदं तदा ।
 अयमकायुतप्रख्यो बालो नो हन्ति वृत्रहृत् ॥४८॥
 तवैष राज्यहर्ता वै भविष्यति न सशय ।
 पराक्रमाद्बलाच्छक्र तथोत्साहाच्च तेजस ॥४९॥

वही पर दो नागों को अपने सामने दोनों को स्थित करके हाथों से एक दूसरे से आस्फोटित कर दिया करते थे अर्थात् दोनों की टक्कर बिला दिया करते थे । दोनों को भिड़ाकर स्फोटित कर देना उनकी एक लीला मात्र ही थी । ४३। वह उमा मुत ऊपर को उछल कर खेचरों को पकड़ लाते थे और वह बालक कुमार सहसा ही विमानों को भूतल पर प्रक्षिप्त कर दिया करते थे । ४४। फिर एक उछाल मारकर वे वेग के साथ आकाश गण्डल में दृष्टिपात करते हुए सूर्य और चन्द्र या तथा अन्य ग्रहों के मार्गों को रुद्ध कर दिया करते थे । ४५। मेघ पर्वत के शिखरों को उखाड़कर इधर-उधर वह कुमार फेंक दिया करते थे ।

त्रिवेप रूप में पाँतों को और नदियों को उन मार्गों में डालकर ला दिया करते थे । ४६। दामोदर के पत्रत्रय में अर्थात् त्रिलोकी में सम्पूर्ण जगत् को उन्होंने आसित कर दिया था । इसके अनन्तर सभी बहुत ही उद्विग्न हो उठे थे और सन्तुओं को प्रतापन देने वाले इन्द्रदेव के समीप में पहुँच गये थे और उनसे हे द्विज श्रेष्ठो ! उस समय में यह वाक्य बोले—हे वृत्रहन् ! यह अयुत अर्कों से तुल्य बालक हमको हनन करता है । ४७। ४८। यह आपके राज्य का भी हरण कर्ता होगा—इतने बुद्ध भी शय नही है । यह अपने पराक्रम से—अपने बल से तथा तेज के समुत्साह से आपके राज्यासन का भी कर्ता होगा । ४९।

नून शतगुणेनायमधिकश्चेह दृश्यते ।

यदि सूदयसे नाथ तत्त्व सुखमवाप्स्यसि । ५०।

करिष्यसि वचोऽस्माक तव राज्य भविष्यति ।

उपेक्षा नैव कर्तव्या शिशु मत्वा पुरदर । ५१।

एतद्विचाम यत्नेन ततो बाल निपूदय ।

एवमुक्तस्ततरतैस्तु भूतघ्नै पुरदर ॥

उवाच वचन श्लक्ष्ण तपा धमपरायणम् । ५२।

कथमुक्तमिद भूना बालस्य हनन प्रति ।

धर्मघ्नं पापसपात कीर्तिघ्न वै चराचरे । ५३।

श्र यतामभिधास्यामि धर्मशास्त्रस्य निश्चितम् ।

ऋषिभिश्च पुराऽऽख्यात पुराणेषु चराचरा । ५४।

आतुर भीरुमुद्विग्नमेकस्य शरणागतम् ।

स्त्रियमाप्यथवा बालमन्ध पङ्ग तपस्विनम् । ५५।

लिजपन्त तयोन्मत्त विश्वन्तं ब्राह्मण तथा ।

पनित प्रपलायन्त कामामक्त निरायुधम् । ५६।

यह बालक तो निश्चिन् राग में भी गुने में भी कहीं अधिक है—
ऐसा यही पर दिगनाई देना है । हे नाथ ! यदि आप मूर्खित करते हैं

को डीछ ही समानता को ले आया करते थे ।४१। और कही पर किसी समय में सिंहो को खीचकर भूतल में गिरा दिया करते थे । उनकी पीठ पर आरोहण करके फिर उनको ही श्रामित करा दिया करते थे ।४२।

क्वचिन्नागौ गृहीत्वा तु कराम्या समुखावुनी ।
 आस्फोटयत्तादाऽत्योन्य कुम्भाम्या स च लीलया ॥४३॥
 समुत्पत्य समादाय खेचराणामुमासुत ।
 चिक्षेप सहसा बालो विमानान्यवनीतले ॥४४॥
 पुनरुत्पत्य वेगेन प्रेक्ष्यमाण खमण्डले ।
 मार्गं रुरोध सूर्येन्दोर्ग्रहाणा च तथैव स ॥४५॥
 उत्पाट्य मेरुशृङ्गाणि इतश्चेतश्च सोऽक्षिपत् ।
 पर्यन्ताश्च विशेषेण नदीश्चोन्मागतोऽनयत् ॥४६॥
 त्रासित तु जगत्सर्वं दामोदरपदत्रये ।
 ततस्ते भृशमुद्विग्ना शक्र शत्रुप्रतापनम् ॥४७॥
 ऊचुर्गत्वा द्विजश्रेष्ठा भृता वाक्यमिदं तदा ।
 अयमकायुतप्ररयो बालो नो हन्ति वृत्रहन् ॥४८॥
 तवैष राज्यहर्ता वै भविष्यति न सशय ।
 पराक्रमाद्विलाच्छक्रं तथोत्साहाच्च तेजस ॥४९॥

वही पर दो नागों को अपने सामने दोनों को स्थित करके हाथों से एक दूसरे से आस्फोटित कर दिया करते थे अर्थात् दोनों की टक्कर खिला दिया करते थे । दोनों को भिडाकर स्फोटित कर देना उनकी एक लीला मात्र ही थी ।४३। वह उमा मुत ऊपर को उछल कर खेचरो को पकड़ साते थे और वह बालक कुमार सहसा ही विमानों को भूतल पर प्रक्षिप्त कर दिया करते थे ।४४। फिर एक उछाल मारकर वे वेग के साथ आकाश मण्डल में दृष्टिपान करते हुए सूर्य और चन्द्र का तथा अन्य ग्रहों के मार्गों को रूढ़ कर दिया करते थे ।४५। मेरु पर्वत के शिखरों को उगाटकर ऊपर-ऊपर बहूँ कुमार फेंक दिया करते थे ।

विशेष रूप से पर्वतों को और नदियों को उन मार्गों में डालकर ला दिया करते थे ४६। दामोदर के पत्रत्रय में अर्थात् त्रिलोकी में सम्पूर्ण जगत् को उन्होंने त्रासित कर दिया था । इसके अनन्तर सभी बहुत ही उद्विग्न हो उठे थे और शत्रुओं को प्रतापन देने वाले इन्द्रदेव के समीप में पहुँच गये थे और उनसे हे द्विज श्रेष्ठो ! उस समय में यह वाक्य बोले—हे वृत्रहन् ! यह अयुत अर्कों से तुल्य बालक हमको हनन करता है । ४७। ४८। यह आपके राज्य का भी हरण कर्त्ता होगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । यह अपने पराक्रम से—अपने बल से तथा तेज क समुत्साह से आपके राज्यासन का भी कर्त्ता होगा । ४९।

नून शतगुणेनायमधिकश्चेह दृश्यते ।

यदि सूदयसे नाथ तत्त्व सुखमवाप्स्यसि । ५०।
करिष्यसि वचोऽस्माक तव राज्य भविष्यति ।

उपेक्षा नैव कर्तव्या शिशु मत्वा पुरदर । ५१।
एतद्विचय यत्नेन ततो बाल निपूदय ।

एवमुक्तस्ततस्तेस्तु भूतघ्नं तं पुरदर ॥
उवाच वचन श्लक्ष्ण तेषा घमपरायणम् । ५२।

कथमुक्तमिदं भूना बालस्य हननं प्रति ।
धर्मघ्नं पापसघातं कीर्तिघ्नं वै चराचरे । ५३।

श्रयतामभिधास्यामि घमशास्त्रस्य निश्चितम् ।
ऋषिभिश्च पुराऽऽख्यातं पुराणेषु चराचरा । ५४।

आतुर भोरुमुद्विग्नमेकस्थ शरणागतम् ।
स्त्रियमाप्यथवा बालमन्धं पद्मं तपस्विनम् । ५५।

लिजपन्तं तथोन्मत्तं विश्वन्तं ब्राह्मणं तथा ।
पतितं प्रपलायन्तं कामासक्तं निरायुधम् । ५६।

यह बालक तो निश्चित रूप से सौ गुने से भी कहीं अधिक है—
ऐसा यहाँ पर दिखाताई देता है । हे नाथ ! यदि आप सूचित करते हैं

ता तभी आप सुख प्राप्त करेंगे ।५०। आप यदि हमारे द्वारा कथित वचन को करेंगे तभी आपका राज्य रहेगा । हे पुरन्दर ! इसको बहुत छोटा सा शिशु समझ कर इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ।५१। यह विचार करके यत्नपूर्वक इस बालक का निपूदन कर दीजिये । इस प्रकार से इसके पश्चात् उन भूतो के समुदायो के द्वारा कहे गये पुरन्दर ने उनसे धर्म परायण और परम श्लक्ष्ण वचन कहा था ।५२। इन्द्र देव ने कहा—हे भूतो ! बालक के हनन करने के विषय मे यह आपने कैसे कहा है ? इसका हनन करना तो धर्म का घातक—पापो का सघात और चराचर मे कीर्ति का नाशक ही है ।५३। आप लोग श्रवण कीजिएगा, मैं आपको धर्मशास्त्र का जो निश्चित सिद्धान्त है उसको बतलाऊँगा । चराचर ऋषियो ने पहिले पुराणो मे कहा है ।५४। वे मनुष्य महाभूत ही होते हैं जो किसी भी आतुर को—भीरु को—उद्विग्न को—एक स्थान पर स्थित को—शरण म समागत हुए को—स्त्री—बालक—अन्धा—पगला—तपस्वी—विलाप करने वाले को—उन्मत्त—विश्वास मे स्थित—ब्राह्मण—पतित—पलापमान—काम मे समा सक्त—विना हथियार वाते को मारेंगे वे नरक के सागर से ही मर्त मे स्थित हाथी के तरह से ही अम्युस्थित होंगे ।५५। ५६।

नग्न दीन तथा वृद्ध नखरोमसममन्वितम् ।
 मुक्कवेश तथा मत्त सुप्त च भुवनीकसः ।५७।
 मूदयिष्यन्ति ये नून मूढास्ते नरकाणवात् ।
 अनुत्थाना भविष्यन्ति गर्तस्य कृष्णरो यथा ।५८।
 तस्माद्द्रज्जध्व शरणयस्य क्षभुमुतो गुह ।
 नाह बालवध कर्तुं मुस्सहे सचराचरे ।५९।
 एवमुक्ते तु शक्रेण भूतास्ते भृशदु खिता ।
 श्लोघतदीपन चावय पुनरुधुश्चराचरः ।६०।
 गर्भो दितेर्यथा शक्र सरम्भात्सूदितस्त्वया ।
 तदा नीतिर्गता कुत्र दास्ये गर्भपातने ।६१।

अशक्यामिति मत्वेव नीतिमानसि मानद ।
 अशक्यकर्मणि विभो नीतिमान्पुरुषो भवेत् ।६२।
 कश्च नाय नर शूरो यो बाल योवयेद्रथो ।
 अत्रि शक्रशतैस्तस्य वज्रकोटिनिशतनै ।६३।

जो नग्न—दीन—वृद्ध—नख और रोमों में समन्वित को—मुक्त केशों वालों को—यज्ञ—सुप्त को भुवनीरुप मारेंगे वे नारकीय प्राणी ही होंगे । इस कारण से आप लोग उन्हीं की शरणागति में जाइये जहाँ पर यह भगवान् शम्भु के पुत्र गुह विराजमान हैं । मैं तो इस चराचर में बालक के वध करने का उरसाह ही नहीं करता हूँ । १५७।६८।१६। इस प्रकार से इन्द्र देव के द्वारा कहे जाने पर वे समस्त भूत अत्यन्ताधिक दुःखित हो गये थे । वे चराचर पुत्र क्रोध के सदीप्त करने वाला वाक्य बोले थे । ६०। भूता ने कहा—हे शक्र ? आपने सरम्भ में आकर दिती के गर्भ को जिस तरह से सूदित किया था उस समय में आपकी यह घर्म नीति उस दारुण गर्भ को परतन करने के समय में कहा चली गयी थी अर्थात् उस समय में आपने इस घर्म शास्त्र के सिद्धान्त पर आपने क्या नहीं विचार किया था जो अत्र हमको बता रहे हैं । ६१। यह आपके द्वारा किया ही नहीं जा सकता है—यह मानकर ही इस समय में आप घर्म नीति के मानने वाले बने रहे हैं । हे मानद ! जो कर्म शक्ति क चाहिर होता है हे विभा ! उसी क विषय में पुरुष नीति के मानने वाला बना करता है । ६२। कौन मनुष्य शूरवीर है जो रण में उस बालक के साथ युद्ध करेगा आप तो हैं ही क्या ? संजडा इन्द्र भी करोड़ों बच्चों के नियातनों से भी उस बालक के एक भी रोम का निपानन नहीं कर सकते । ६३।

अप्येकमपि रोमाग्र पातिनु नैव शक्यते ।
 एवमुक्तस्ततस्तस्तु भूतव्रात पुरदर ।६४।
 आज्यधाराभिपिबतोऽग्नियथैव प्रज्वलस्तथा ।
 उवाचेऽवचस्तान्स क्रोत्राह्निप्रदीपिन ।६५।

वज्रमुद्यम्य हस्तेन वृत्रहा कुलिशायुध ।६६।
 पूरा मया यथा गर्भो धानितश्च चराचरा ।
 दिते काय समाविश्य तथेदानीं निहन्यते ।६७।
 अथ गत्वा हनिष्यामि पतङ्गमिव वह्निना ।
 वज्र हस्ते समादाय आहवे प्रसहेत क ।६८।
 एवमुक्त्वा तत शक्र क्रोधानलसमीरित ।
 आज्ञापयत्तदा विप्रान् साध्यान्देवान्दिवाकरान् ।६९।
 शरधान गमिष्यामि वधार्थं बालकस्य च ।
 हसकुन्देन्दुवर्णाभि चतुर्दन्त महागजम् ।७०।

यह पुरन्दर जब उन भूतो के समुदाय के द्वारा इस प्रकार से कहा गया था तो घृत की धाराओं से अभिषिक्त अग्नि के ही समान प्रज्वलित होते हुए क्रोध की अग्नि से दीपित होकर उनसे यह वचन बोले—उस समय मे वृत्रहा ने कुलिश के आयुध को धारण करते हुए हाथ मे वज्र को उठाकर ही वचन कहा था—इन्द्र देव ने कहा—पूर्व मे मैंने हे चराचरो ! जिस प्रकार से गर्भ का धात किया था और दिति के शरीर मे मैंने समावेश किया था उसी प्रकार से इस समय मैं भी निहनन किया जाता है ।६४।६७। अग्नि के द्वारा पतङ्ग के ही समान जाकर मार दूंगा । वज्र हाथ मे ग्रहण करके जब मैं सम्मुख खड़ा होऊंगा तो मेरे प्रहार को बौन सहन कर सकता है ? अर्थात् किसी मे भी वज्र के प्रहार को सहन करने की शक्ति नहीं है ।६८। इस प्रकार से बहकर वह महेंद्र क्रोध की अग्नि से समीरित हो गये थे । हे विप्रो ! उसी समय मे उसने साध्यों को—देवों को और दिवाकर आदि को आज्ञा दी थी ।६९। मैं अब शरधान वन मे उस बालक के वध करके त्रिये गमन करूंगा जो हस—कुन्द और पन्द्रमा के तुल्य वर्ण की आभा वाला है—चार दन्तों वाला है और महान् गज के समान है ।७०।

आनयध्व ममाग्रे तु परीन्द्र मम बल्लभम् ।

जलधे (घि) रिव गम्भीर दीर्घहस्त घनस्वनम् ।७१।

दंत्यदानवरक्तेन क्लिन्नदष्ट्र भयावहम् ।

तदादेशात्सुरैस्तूर्ण सर्वायुधसमन्वित ॥७२॥

निवेदित स शक्राय तमारुह्य पुरदर ।

विश्वदैवैश्च साध्यैश्च वसुभिश्च महन्दणै ॥७३॥

आदित्यंरश्विनीभ्या च ययौ स्कन्दववाय सः ।

वियन्मण्डलमास्थाय स्तूयमानश्चराचरै ॥७४॥

नृत्यमानाप्सरोभिश्च वाशमानैश्च किनरै ।

गीयमानश्च गन्धर्वैः सुगीतंगीतशालिभि ॥७५॥

नदद्भिश्च महार्सिहैर्गर्जाद्भिश्च गजत्तमै ।

हरिभिर्होपमाणंश्च वायुवेगमहारथै ॥७६॥

पताकाभिर्जयन्तीमिध्वंजैश्छत्रैश्च चामरै ।

एवमाचैरनेकैश्च नन्दीश्वर इवापर ॥७७॥

दोघूयमानश्चमरैश्च दिव्यैर्जैगीयमान सुरकिनरीभि ।

पेपीयमान सुरमुन्दरीभि कामातुराभिनयनेरजस्रम् ॥७८॥

संपूज्यमानो मुनिसिद्धिसधैमुंदाऽन्वितो वज्रधर किरीटी ।

कुमारमुद्दिश्य गतोऽय देगाद्धरिहरिर्वै म(द)नुजान्यथैव ॥७९॥

अब मेरे सामने मेरा प्रिय जो गज है उसको ले आओ जिस पर मैं समाप्त होऊँगा वह मेरा प्रिय गज जलधि के समान गम्भीर—दीर्घ मूँड वाला और घनेस्वम (ध्वनि) वाला है ॥७१॥ दंत्यो जोर दानवा के रघिर से उसकी दाढ़ क्लिन्न हो रही है और बहुत ही भयावह है । उसने आदेश से मुग्धन से सुरन्त ही गव तैयारी कर दी थी और इन्द्र सभी आयुधों से समन्वित हो गया था ॥७१॥७२॥ उसको लाकर द्रुद्र देव के लिये निवेदित कर दिया था और फिर पुरन्दर देव ने उस पर समारोहण किया था तथा विश्वदेवा—साध्य—वसुगण—मरुद्गण—आदित्य और अश्विनी कुमारों के साथ स्कन्द देव के यज्ञ करने के नियम गया था । वह जब विग्नमण्डल पर गभा स्थित हुआ था तो सब पराचरों के द्वारा स्तुति किया गया था । ॥७३॥७४॥ नृत्य करती हुई अप्सराओं के द्वारा—वाद्यों के—वज्राने वाले किन्नरों के द्वारा गन्धर्वों के द्वारा गीयमान होने हुए तथा गान करने वालों के सुन्दर गीतों के द्वारा गान लिये गये

थे । महार्सिहो की गर्जनों से युक्त और गर्जना करने वाले महागजों के साथ समन्वित होकर । वह ह्येपमाण अश्वो से युक्त तथा वायु के समान वेग वाले महारथो से सप्रुक्त था । जयन्ती पताकाओ के द्वारा—ध्वज और चामरो से समन्वित होकर इस प्रकार से अनेको से युक्त होकर वह दूमरे नन्दीश्वर के ही तुल्य हो गये थे । चमर उस समय मे उसके ऊपर डुराये जा रहे थे और किन्नरियाँ सुरो का गान कर रही थी । जो काम से आतुर सुरसुन्दरियाँ थी उनके नेत्रो के द्वारा निरन्तर पान किये गये थे । ७५ । ७८ । मुनि और सिद्धो के समुदाया के द्वारा वह भली भाँति पूज्यमान हो रहे थे—वज्र कें धारण करने वाले—किरीटधारी आनन्द से समन्वित हो रहे थे । वह हरि हरि के ही नमान जैसे मनुजा के ऊपर चढ़ाई कर रहे हो उसी तरह मे कुमार का उद्देश्य लेकर वह इन्द्रदेव गये थे । ७६ ।

॥ नारद-इन्द्र संवादादि कथन ॥

एव गत्वा सहस्राक्षो यत्राऽऽस्ते पार्वतीमुत ।
 वाल सूर्यायुतप्रम्य तमपश्यच्छचीपति ॥
 प्रलयान्निचयाकार दृष्ट्वा नारदमब्रवीत् ॥१॥
 इद कि भाति देवपे मेरो शतगुणोच्छ्रयम् ।
 तेजसा व्याप्तभुवन सर्वभूतभयङ्करम् ॥२॥
 एव शक्रवच श्रुत्वा भगवान्पद्मभूसुत ।
 ऐरावतगजारूढ शचीपतिमथाब्रवीत् ॥३॥
 योऽमौ देव त्रया न्यस्तौ गर्भश्चैव सहामरं ।
 तस्यैवैष प्रभावोऽय नून देव शतव्रतो । ४।
 भास्वाराणा न पुञ्जोऽय नैव पर्वतमचय ।
 चालेनोत्पाद्यमानेन सह देीञ्च रञ्जित । ५।

अधो योजनसख्याभि सहस्राण्येव षोडश ।
 चतुरशोतिरुत्सेधो द्वात्रिंशद्विस्तर स्मृत ।६।
 यग्दिर्न सकलोऽय तु मेर काञ्चनता गत ।
 तत्तीज स्वन्दना यात सहस्राद्द्वैर्गतिस्तथा ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा था—इम प्रकार से सहस्रांश इन्द्र जाकर वहाँ पर पहुँचे जहाँ पर पावती व सुत कुमार विद्यमान थे शची पति ने उस भयुत सूर्यो के समान प्रख्य उस बालक को रखा था । प्रलय काल की अग्नि व समुदाय क समान आकार वाले उसको देखकर वह महेंद्रदेव नारदजी बोल ।१। इन्द्रदेव न कहा—हे देवर्षे ! यह मरु पर्वत की ऊँचाई से भी शतगुण ऊँचाई वाला क्या आनासित हो रहा है ? जिसके तेज से समस्त भुवन व्याप्त हो रहा है और जो सब भूता के लिये महान् भयङ्कर है ।२। इस प्रकार के इन्द्र के वचन का श्रवण करके ब्रह्माजी के पुत्र भगवान् नारदजी न ऐरावत हाथी पर बैठे हुए शचीपति न कहा था ।३। श्री देवर्षि नारदजी न कहा—हे देव ! अमरा के साथ गर्भों से जो यह न्यस्त किया गया था ह शतक्रतो ! उसी का यह निश्चित प्रभाव है ।४। यह भास्करा का समुदाय है और पर्वता का सचय नहीं है । देवा क साथ उत्तमधमान बालक के द्वारा यह र जित हो गया है ।५। नीचे की द्वार सालह सहस्र योजना की सख्या से युक्त है और चौरासी योजना की ऊँचाई है तथा दत्तीस याजना का विस्तार है ।६। यह सम्पूर्ण पर्वत काञ्चनता को प्राप्त हो गया है । वह तन स्कन्दता को एक महस्र अदया क समाप्त होने पर प्राप्त हुए ह ।७।

चतुर्थ्या साकृतिर्द व पञ्चम्यामङ्गवाँस्तत ।
 पष्ठ्या पद्म्या यथा नीप त्रैलोक्य विजयप्यिति ।८।
 त्वया सहाय सप्तम्या पालयिष्यति वा पुन ।
 त्व तु नून न शक्तोऽसि जेतु वर्षशतैरपि ॥९॥
 कुमार वरद देव पार्श्वत्यानन्दवर्जन्म ।
 नानाप्रहरणोपेत नानाभरणभूषितम् ॥१०॥

मातृभिर्गणवृन्दैश्च सेव्यमानमुमासुतम् ।
 एव सजलमानोऽसौ जम्भारिर्बालक प्रति ।११।
 वञ्च मुमोच वृत्रारि स्फुलिङ्गोद्गारिभीषणम् ।
 वृणवन्मन्यमानोऽसौ वञ्च तत्पार्वतीगुत ।१२।
 शरेणैकेन विव्याध पपात च स मूर्च्छित ।
 पुनरन्य समादाय शर ज्वलनमानभम् ।१३।
 छत्र ध्वज पताकाश्च हरेश्चिच्छेद पणमुख ।
 विभेदान्मन तीक्ष्णेन हस्त वी वञ्चिणो गुह ॥१४।

हे देव ! चतुर्थी में आकृति से युक्त हुए थे और पचमी में वह फिर
 अङ्गो वाला हो गया था । पष्ठी में पदों से युक्त हो गया था—जैसे कि
 यह श्रौलोक्य पर विजय को प्राप्त करेगा । ८। सप्तमी में फिर आपके
 साथ सहाय का पालन करेगे । आप चढाई करने के लिये तैयार होकर
 जो यहाँ पर आये है सो आप तो सो वर्षों में भी इनको जीत नहीं सकते
 हैं । ९। कुमार वरदान देने वाले देव पार्वती के आनन्द के वर्धन करने
 वाले हैं । ये अनेक प्रहरणों से समन्वित हैं तथा अनेक आमरणों से भी
 विभूषित हैं । यह उमा के सुत माताओं और गण वृन्दा के द्वारा
 सेव्यमान हैं । इस प्रकार से अच्छी तरह से बहा गया भी उस जम्भारि
 ने उस बालक के प्रति वृत्रादि ने वञ्च का मोघन किया था जो स्फुलिङ्गों
 के उद्धरण करने वाला और महाद् भीषण था । उस पार्वती के सुत ने
 उस वञ्च को एक तिनके के ही 'समान मान लिया था । १०। ११। १२।
 उस कुमार ने एक ही शर से विद्ध कर दिया था और वह इन्द्र मूर्च्छित
 होकर गिर गया था । फिर दूसरे अभि के समान शर को लेकर पणमुख
 ने इन्द्र के छत्र-ध्वज और पताकाओं का छेदन कर दिया था । फिर गुह
 ने अन्य एक तीक्ष्ण शर से इन्द्र के हाथ का भेदन कर दिया था ।
 १३। १४।

शरेणाऽऽदित्यतुल्येन रघु शभुर्गयाऽऽह्वे ।

पुनर्गण समादाय त जघान शतक्रुम् ।१५।

अपरेण तु तीक्ष्णेन मुकुट तु तथा हरे ।
 शरेण वह्नितुल्येन निच्छेद च स लीलया ॥१६॥
 यम च पञ्चभिर्वाणैर्निर्हृति दशाभिर्गुह ।
 दशपञ्चशरैराशु वरुण च विभेद स ॥१७॥
 विशत्या वायुदेव च रवि च दशपञ्चभि ।
 त्रिशद्भि सोमराजान ताडयित्वा रणे पुन ॥१८॥
 शक्र पञ्चशतैराशु शरैश्च प्राणहारिभि ।
 अन्यानापि सुरान्स्कन्दस्त्रिभिर्द्विपञ्चभि शरै ॥१९॥
 शूरो नाद प्रमुञ्चन्वै शक्र दूद्राय शभुज ।
 वसुभिश्च तथाऽऽदित्यीर्मरुद्भिश्च महाबलै ॥२०॥
 पृत शस्त्रकरैर्वाल सिंहै शरभराडिव ।
 ततस्तानामतान्दृष्ट्वा देवाञ्छङ्करवल्गभ ॥२१॥

आदित्य के तुल्य शर से जैसे युद्ध में रुह को भगवान् शम्भु हनन
 किया करते हैं वैसे ही पुन वाण ग्रहण करके उस शतक्रतु का विहनन
 कर दिया था । १५। दूसरे तीक्ष्ण वाण से जो अग्नि के ही समान शर
 था उन्होंने ने लीला ही से हरि के मुकुट का छेदन कर दिया था । १६।
 गुह ने पाँच वाणों से यमराज का—दम मरो से निर्हृति को और
 पन्द्रह शरों से वरुण का भेदन कर दिया था । १७। बीस शरों से वायु
 देव और पन्द्रह से रविदेव—तीस वाणों से सोम राजा का रणस्थल में
 तारण किया था । १८। फिर बहुत ही शीघ्र पाँच सौ वाणों से जो कि
 प्राणों के हरण करने वाले थे इन्द्रदेव को तथा अन्य गुरों को भी तीन-
 दो पाँच शरों से स्कन्द देव ने आघात किया था । शम्भु के आत्मज
 शूर ने नाद को छोड़ते हुए शक्र को विद्रुत कर दिया था । वसुगण—
 आदित्य—महाबलशाली महद्गणों से परिवृत बालक ने हाथों में दशत्र
 ग्रहण करने वाले सिंहों के सहित शरभराट् की ही भाँति फिर आगत
 हुए देवों को देखकर शङ्कर भगवान् का बल्गभ ने धुइ मृगों को
 बँसरी ही के समान दिवौकरी (देवा) को वहाँ से भगा दिया था यदेव

कर आमद्रुत कर दिया था । पुन इन्द्र ने वज्र के द्वारा स्कन्द के ऊपर प्रहार किया था । १६।२०।२१।

केसरीव मृगान्क्षुद्रान्दुद्राव च दिवोकस ।

पुन. स्कन्द सहस्राक्षो वज्रेण तमताडयत् ॥२२

ताडिते तु ततस्तस्माद्दुत्तन्नाश्चारुमूर्तयः ।

प्रयो देवाश्च वेदाश्च लोकाश्चाग्निदिवाकराः ॥२३

ततश्चेद सहस्राक्षं वृहद्गुरुवृहस्पति (?) ।

देवमन्त्री महाप्राज्ञो वृहस्पतिरथान्नवीत् ॥२४

अल युद्धेन देवेश महादेवस्य सूनुना ।

हित तवोपदेशेऽहं सहस्राक्षं शृणुष्व तत् ॥२५

यदीप्ससि मुख भोक्तु कुरुष्व वचन मम ।

अनेन सह सप्रीतिं कृत्वा राज्यमकण्ठकम् ॥२६

भुङ्क्ष्व त्व निश्चल कृत्वा दानवाश्च निपूदय ।

यस्य वज्राभिघातेन नातिः स्वल्पाऽपि जायते ॥२७

हन्तव्यः स कथं शक्र शतसख्यैभवाद्दृश' ॥२८

उसके ताडित होने पर उनसे सुन्दर आत्ममूर्तिया समुत्पन्न होगयी थी । तीनदेव वेद, लोक, अग्नि और दिवाकर हुए थे । इसके अनन्तर वृहद् गुरु वृहस्पति जी ने जो देवों के मन्त्री, महान् पण्डित थे, इन्द्रदेव से बोले ॥२२-२४॥ वृहस्पति जी ने कहा—हे देवेश्वर ! महादेवजी के पुत्र के साथ युद्ध मत करो । मैं आपके हित की उपेक्षा करूंगा । हे सहस्राक्ष ! आप इसका श्रवण कीजिए ॥२५॥ यदि आप मुझ का उपभोग करना चाहते हैं तो मेरे कथित वचन का पूर्णतया आप पालन कीजिए । इस स्कन्ददेव के साथ अच्छी प्रीति करके ही आपरा राज्य कण्ठक रहित रहेगा । और उस राज्य का उपभोग करिए । आप अपने राज्यासन के निश्चल करके ही दानवों का विपूदन कर डालिए । जिसका ऐसे अमोघ वज्र के आघात से भी त्रिबिम्बामत्र दुस नहीं होता है हे शक्र ! वह कैसे मारे जाने के योग्य हो सकता है । आप अकेले की चन

ही क्या सकती है आप जैसे सौ भी हों तो भी इनको नहीं मार सकते हैं ॥२५-२८॥

श्रुत्वा तस्य वचः शक्रस्तदा सुरगुरोर्द्विजाः ।

तमेव शरणं प्रायात्कुमारं पार्वतीसुतम् ॥२६

प्रसीद मे त्वं शरणगतस्य पादौ तवाह शिरसा वहामि ।

मुराधिपस्त्वं भव शर्वसूनो गृहाण राज्यं मम शम्भुकल्प ॥३०

एषोऽञ्जलिः पद्भ्यजचारुनेन कृत्तौत्तमाङ्ग (?) जहि मन्धुमुग्र ।

सता हि कोपः प्रणतेषु नित्यं विनाशमेत्यायमनः सुसिद्धम् ॥३१

अथेन्द्रवचनं श्रुत्वा भगवान्पण्णुत्तस्तदा ।

अत्रवीत्करुणाविष्टः शक्रं प्रति मुनीश्वराः ॥३२

करोमि किमहं राज्यं भोगैश्च प्राकृतं रलम् ।

अपर्याप्तं न मे किञ्चिदस्ति पित्रोः प्रसादतः ॥३३

निष्कण्ठकं त्वमेवेहं राज्यं कुरु शचीपते ।

मम सख्येन मकलाञ्छत्रं ह्यहं पुरंदर ॥३४

एव स्कन्दवचः श्रुत्वा पुनराह शचीपतिः ।

भगवन्नापरः कश्चिद्देवानां विदितो बली ॥३५

श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजो ! उस समय में महेंद्र देव ने उन वृहस्पति जी के वचन को सुनकर जोकि सभी सुरों के गुरु थे तुरन्त ही पार्वती के सुत कुमार स्कन्द की शरण में चला गया था ॥२६॥ इन्द्रदेव ने कहा—हे भगवन् ! आप मुझ शरण में आये हुए प्रसन्न हो जाइये । मैं आपके चरणों की शिर के बल वहन करता हूँ हे शर्वसूनो ! आप सब सुरों के अधिप हो जाइए । हे शम्भुदेव के महेश ! आप मेरे राज्य को भी ग्रहण कीजिए ॥३०॥ हे पद्भ्यज के तुल्य सुन्दर नेत्रों वाले ! मैं यह आप को हाथ जोड़ रहा हूँ । इस वृत्त उत्तमाङ्ग में उग्रमन्धु को (कोप को) त्याग दीजिए । श्रेष्ठ मन वाली की यह बात परम प्रसिद्ध है कि सज्जनों का कोप प्रणत भक्तों के ऊपर नित्य ही विनाश को प्राप्त हो जाया करता है ॥३१॥ इसके अनन्तर इन्द्र के इन वचनों का श्रवण

करके उस समय मे भगवान् पण्मुख करुणा से आविष्ट होते हुए हे मुनी
 श्वरो ! कहने लगे ॥३२॥ स्कन्ददेव ने कहा—मैं आपके राज्य को
 ग्रहण करके क्या करूंगा मैं इन प्राकृत भोगों को नहीं चाहता हूँ । मेरे
 माता पिता के प्रमाद से कुछ भी पदार्थ मेरे लिये अपर्याप्त नहीं है ।
 हे शचीपते ! आप ही अपने राज्य का सुख निष्कटक रूप से भोगिये ।
 हे पुरन्दर ! मेरे साथ सख्यमान रखने से आप अपने समस्त शत्रुओं
 को मार भगायेंगे ॥३३॥३४॥ इस प्रकार से कथित भगवान् स्कन्ददेव
 के वचन का श्रवण करके इन्द्र ने पुनः कहा—हे भगवन् ! दूसरा कोई
 बलशाली देवों को विदित नहीं है ॥३५॥

तस्मात्कुरु त्वमेयेह राज्यमीश्वरनन्दन ।

क्व वाल क्व च सग्राम क्व नीति क्व पराक्रम ॥६६

क्व ज्ञानमतुल देव क्व मति क्व च सौम्यता ।

क्व माया क्व च दाक्षिण्य क्व शान्ति क्व प्रसादता ॥३७

अल त्वमेव राज्यस्य गुणैरेभिरुदीरित ।

स्वरूपं स्वगुणैस्त्व हि वन्दिभिश्चारणैस्तया ॥३८

विद्याधरैश्च यक्षैश्च विविधैर्गुणकोटिभिः ।

स्तूयमानोऽमरै सिद्धैर्गन्धर्वाप्सरसा गणैः ॥३९

अह सेनापतिर्देव भवामि भवनन्दन ।

तिष्ठस्वोपरि कृत्स्नस्य त्रैलोक्य भुङ्क्स्व पण्मुख ॥४०

सर्वंग सर्वभूतस्त्व यथा देवो महेश्वर ।

एव शक्रवच श्रुत्वा पुनः प्राहाम्बिकामुत ॥४१

हे ईश्वर नन्दन ! इस कारण से यहाँ पर आप ही राज्य शासन कीजिए ।
 यहाँ तो बालक और कहा सग्राम-यहाँ नीति और यहाँ पराक्रम है । कहीं पर
 अतुल ज्ञान हे देव ! कहीं पर मति और कहीं पर सौम्यता, कहीं माया और
 यहाँ दाक्षिण्य, शान्ति तथा प्रसादता है । इन उत्तम गुणों के द्वारा तो
 आप ही राज्य के करने के लिये पूर्णतया उदारित होते हैं । आप अपने
 स्वरूपों से, अपने सद्गुणों से राज्य करने के योग्य हैं । वही, चारण,

विद्याधर, यक्ष और विविध गुण कोटिभो के द्वारा स्तूयमान हैं तथा अमर, सिद्ध, गन्धर्व और [अप्सराओ के गणा के स्तुत हैं। हे देव ! हे भवनन्दन ! मैं आपका सेनापति हो जाऊँगा। हे पण्णमुख ! सबके ऊपर आप स्थित हो जाइये और इस प्रलोक्य का उपभोग करिए। आप तो सर्वम गमन करन वाले, सर्वभूत स्वरूप हैं जैसे देव महेश्वर हैं। ऐसे महेन्द्रदेव के वचन का श्रवण करके पुन अश्विवा सुत बोले ॥३७-४१॥

अभय शक्र मा भैषी कुरु राज्यमकण्ठकम् ।
 इन्द्रम्व देवराजस्तव त्वमेव जगत प्रभु ॥४२
 दपंगर्वेवलोदीर्णा दानवा ये च तास्तदा ।
 यं पराजीयसेऽत्यर्थं सूदयेऽह त्वया स्मृत ॥४३
 बह्वालपरलं शक्र गदितेन पुन पुन ।
 निश्छयेन सखाऽह ते भवाम्प्रमुरसूदन ॥४४
 अथोवाच महादेवपुन सर्वोक्ष्य नि स्पृहम् ।
 नेष्ट त्वयाऽपि हीन्द्रत्व भव सेनापतिगुह ॥४५
 एवमस्त्विति त प्राह कार्तिकेय शचीपतिम् ।
 तत सर्वं सुरेविप्रा आदेशात्परमेष्ठिन ॥४६
 अभिपिक्तोऽथ विधिना सेनापत्ये तदा गुह ।
 यावदत्त कुमाराय सेनापत्य हराज्ञया ॥४७
 हन्तुमभ्यागतस्तूर्णं कुमार तारकस्तदा ।
 आगत त तदा वीक्ष्य लीलया पावतीसुत ।
 ददाहाऽऽशु महादेत्य तूल बह्निरिवाऽऽहवे ॥४८
 दग्ध्वा तु तारक घोर पतङ्गमिव पावक ।
 तत प्रीतमना स्कन्दो मातुरङ्गमुपाविशत् ॥४९
 महादेवोऽपि भगवान्वेधादीन्विष्णुना सह ।
 विमृज्य गणपे सार्धं क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥५०
 भगवान् स्कन्ददेव ने कहा—हे शुक ! आपनी मैं अभय का वरदान

करके उस समय मे भगवान् पण्मुख वरुणा से आविष्ट होते हुए हे मुनी-
श्वरो ! कहने लगे ॥३२॥ स्कन्ददेव ने कहा—मे आपके राज्य को
ग्रहण करके क्या करूँगा मैं इन प्राकृत भोगो को नहीं चाहता हूँ । मेरे
माता पिता के प्रसाद से कुछ भी पदार्थ मेरे लिये अपर्याप्त नहीं है ।
हे शचीपते ! आप ही अपने राज्य का सुख निष्कटक रूप से भोगिये ।
हे पुरन्दर ! मेरे साथ सख्यमान रखने से आप अपने समस्त शत्रुओं
को मार भगायेंगे ॥३३॥३४॥ इस प्रकार से कथित भगवान् स्कन्ददेव
के वचन का श्रवण करके इन्द्र ने पुनः कहा—हे भगवन् ! दूसरा कोई
बलशाली देवो को विदित नहीं है ॥३५॥

तस्मात्कुरु त्वमेधेह राज्यमीश्वरनन्दन ।

क्व वाल क्व च सग्रामः क्व नीतिः क्व पराक्रमः ॥६६

क्व ज्ञानमतुल देव क्व मतिः क्व च सौम्यता ।

क्व माया क्व च दाक्षिण्य क्व शान्तिः क्व प्रसादता ॥३७

अल त्वमेव राज्यस्य गुणैरेभिरुदीरितः ।

स्वरूपैः स्वगुणैस्त्व हि वन्दिभिश्चारणस्तथा ॥३८

विद्याधरैश्च यक्षैश्च विविर्धगुणकोटिभिः ।

स्तूयमानोऽमरै सिद्धैर्गन्धर्वाप्सरसा गणैः ॥३९

अहं सेनापतिर्देव भवामि भवनन्दन ।

तिष्ठस्वोपरि कृत्स्नस्य सै लोके भुङ्क्व पण्मुख ॥४०

सर्वगः सर्वभूतस्त्व यथा देवो महेश्वर ।

एव शक्रवचः श्रुत्वा पुनः प्राहाम्बिकासुतः ॥४१

हे ईश्वरनन्दन ! इस कारण से यहाँ पर आप ही राज्य शासन कीजिए ।
यहाँ तो बालक और कहा सग्राम-यहाँ नीति और कहा पराक्रम है । यहाँ पर
अतुल ज्ञान हे देव ! यहाँ पर मति और यहाँ पर सौम्यता, यहाँ माया और
यहाँ दाक्षिण्य, शान्ति तथा प्रसादता है । इन उत्तम गुणों के द्वारा तो
आप ही राज्य के करने के लिये पूर्णतया उदात्त होते हैं । आप अपने
स्वरूपों से, अपने सद्गुणों से राज्य करने के योग्य हैं । वन्दो, चारण,

विद्याधर, यज्ञ और विविध गुण कोटिभो के द्वारा स्तूयमान हैं तथा
 अमर, सिद्ध, गन्धर्व और [अप्सरसों के गणों के स्तुत हैं । हे देव ! हे
 भवनन्दन ! मैं आपका सेनापति हो जाऊंगा । हे पण्णमुख ! सबके
 ऊपर आप स्थित हो जाइये और इस भूलोक्य का उपभोग करिए ।
 आप तो सबसे गमन करन वाले, सर्वभूत स्वरूप हैं जैसे देव महेश्वर हैं ।
 ऐसे महेंद्रदेव के वचन का श्रवण करके पुनः अम्बिका सुत बोले
 ॥३७-४१॥

अभय शक्र मा भैषी. कुरु राज्यमकण्ठकम् ।
 इन्द्रस्त्व देवराजस्तव त्वमेव जगत प्रभु ॥४२
 दर्पगर्ववलोदीर्णा दानवा ये च तास्तदा ।
 ये पराजीयसेऽत्यर्थं मूढयेऽह त्वया स्मृत ॥४३
 बह्वालापरल शक्र गदितेन पुन पुन ।
 निश्छयेन सखाऽह ते भवाम्भसुरसूदन ॥४४
 अथोवाच महादेवपुन सर्वोक्ष्य नि स्पृहम् ।
 नेष्ट त्वयाऽपि हीन्द्रस्त्व भव सेनापतिगुंह ॥४५
 एवमस्त्विति त प्रगृह कार्तिकेय शचीपतिम् ।
 तत सर्वे सुरेदिप्रा आदेशात्परमेष्ठिन ॥४६
 अभिपिक्तोऽय विधिना सेनापत्ये तदा गुह ।
 यावदत्त कुमाराय सेनापत्य हराज्ञया ॥४७
 हन्तुमभ्यागतस्तूर्णं कुमार तारकस्तदा ।
 आगत त तदा वीक्ष्य लीलया पार्वतीसुत ।
 ददाहाऽऽशु महादैत्य तूल वह्निरिवाऽऽहवे ॥४८
 दग्ध्वा तु तारक धोर पतङ्गमिव पावक ।
 तत प्रीतमना स्कन्दो मातुरङ्कमुपाविशत् ॥४९
 महादेवोऽपि भगवान्बेघादीन्विष्णुना सह ।
 विसृज्य गणपे सार्धं क्षणादन्तहितोऽभवत् ॥५०
 भगवान् स्वन्ददेव ने कहा—हे शुक ! आपको मैं अभय का वरदान

देता हूँ । डरो मत अकण्ठक राज्य का उपभोग करो । आप देवों के राजा हैं—आप इन्द्रदेव हैं और आप ही इस जगत् के प्रभु हैं ॥४२॥ हर्ष गर्व और बल से उदीर्ण जो ये दानव हैं जिन्हों के द्वारा आप पराजित हो जाते हैं उनको मैं जब भी आपके द्वारा याद किया जाऊँगा सबको मार डालूँगा ॥४३॥ हे शक्र ! बहुत अधिक बातें करना तो व्यर्थ है और बार-बार वही कथन भी नहीं करना चाहिए । यह निश्चित है कि मैं आपका सखा हूँ और हे अरिसूदन ! मैं सखा ही रहूँगा ॥४४॥ इसके उपरान्त महादेव जी के पुत्रों को सर्वथा स्पृहा से शून्य देखकर इन्द्र ने कहा कि यदि आपको इन्द्र का पद अभीष्ट नहीं है तो हे गुह ! मेरे सेनापति हो जाइये । तब कार्तिकेय प्रभु ने शचीपति से कहा था— अच्छा, ऐसा ही होगा । इसके अनन्तर हे विप्रो ! परमेष्ठी के आदेश से सब सुरों के द्वारा अभिषिक्त हो गये थे और विधि के द्वारा गुहदेव सेनापति के पद पर स्थापित किये गये थे । जब तक कुमार के लिये भगवान् हर की आज्ञा से सेनापत्य का पद प्रदान किया गया था ॥४७॥ उसी समय मे तारक दैत्य शीघ्र ही कुमार को मारने के लिये वहाँ आगया था । उस समय मे पार्वती गुन ने समागत हुए उसको देखकर उस महादैत्य को लीला ही से बह्लि जैसे तूतको भस्म कर दिया करती है उसी भाँति गुह मे शीघ्र ही दग्ध कर दिया था । पावक जैसे पतङ्ग को भस्म कर दिया करता है वैसे ही उम महान् घोर तारक को दग्ध करने फिर प्रसन्न मन पाते इन्द्रदेव अपनी माता की गोद मे आकर बैठ गये थे । भगवान् महादेव भी विष्णु भगवान् के सहित ब्रह्मा आदि देवों को विदा करने अपने गणों के साथ एक ही क्षण में अन्तर्धान हो गये थे ॥४८-५०॥

॥ ब्रह्म-नारद संवादादि कथन ॥

कथितो भवता सून विवाहः परमेष्ठिनः ।
 उत्पत्तिः कार्तिकेयस्य तस्य चैव पराक्रमः ॥१॥
 सेनापत्यं यथा दत्तं श्रुतं सर्वमशेषतः ।
 भक्तियोगमथेदानीं वद सुत महात्मते ॥२॥
 तृप्तिर्नाद्याप्यभूद्यस्माच्छ्रुत्वा चैव पुनः पुनः ।
 जानासि त्वं भगवतो माहात्म्यं त्रिपुरद्विषः ॥३॥
 उपासितो यतः सम्पद्भगवान्वादरायणिः ।
 तत्प्रसादात्स्वया लब्धं ज्ञानं तदनारमेश्वरम् ॥४॥
 दुर्लभं मर्षाशास्त्रेषु मुनीनां च महात्मनाम् ॥५॥
 यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं नारदाय महात्मने ।
 प्रीतेन मनसा तेन तच्छ्रुत्वा द्विजोत्तमाः ॥६॥
 सत्यलोके सुखामीनं ब्रह्माणं तेजसा निधिम् ।
 श्रुत्वापिभर्तुनिभिर्मिद्धं वैदे साङ्गं उपासितम् ॥७॥

श्रुतिगणों ने कहा—हे मूतजी ! आपने कृपा करके परमेष्ठी प्रभु के विवाह का वर्णन करके मुना दिया है और आपने कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति कथि हुई और उनके किनना अनुन पराक्रम था यह भी मुना दिया है ॥१॥ जिस प्रकार से उनकी सेनापत्य पद प्रदान किया गया था वह भी सब हमने पूर्णतया श्रवण कर लिया है । हे मूतजी ! अब तो आप भक्तियोग के विषय में हमसे वनसाद्ये बघोकि आप तो यह महती विद्याल मनि से गुप्तशयन महापुरुष हैं ॥२॥ यद्यपि हम लोगों ने बार-बार आपके मुनारविन्द से मुना तो भी हमारे मन की तृप्ति अभी तक भी नहीं हुई है आप तो त्रिपुरद्विट् भगवान् के माहात्म्य की अक्षरी तरह से जानते हैं बघोकि आपने भगवान् वादरायणि की अक्षरी तरह से उपासना की है । उक्त प्रसाद से ही आपने उन परमेश्वर से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त किया है ॥३॥४॥ यह ज्ञान जो आरती प्राप्त है वह बड़े-

बड़े महात्मा और मुनियों को भी परम दुर्लभ होना है । तथा यह समस्त शस्त्रों में भी दुर्लभ है ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—पहिले समय में ब्रह्माजी ने महान् आत्मा बाने नारदजी को यह बतलाया था और उन्होंने परम प्रसन्न मन से ही इसका उद्देश किया था । ह द्विजोत्तमो ! उसी को मैं बतलाता हूँ आप लोग श्रवण करिय ॥६॥ सत्यलोक में तेज की निधि ब्रह्माजी मुख पूर्वक बैठे हुए थे और उस समय में ऋषि-मुनि, सिद्ध वेद अपने अङ्ग शास्त्रों के सहित उनकी उपामना कर रहे थे ॥७॥

सगीयमान गन्धर्वे स्तूयमान मरुद्गणं ।

दृष्ट्वा प्रणम्य विधिवन्नारदस्तमथाब्रवीत् ॥८

देवदेव जगन्नाथ चतुर्मुख सुरोत्तम ।

भक्तियोगस्य माहात्म्य देवदेवस्य शूलिन ॥९

प्रणम्य शरु शान्तमप्रमेयमनामयम् ।

पर ज्योतिरनाद्यन्न निर्गुण तमस परम् ॥१०

भक्तियोग प्रवक्ष्यामि शृणु नारद सुव्रत ।

भक्तियोगस्य माहात्म्य यथा शभोमया श्रुतम् ॥११

भक्तिभंगवत् शमोर्दुर्लभा खलु देहिनाम् ।

कथंचिद्यदि सा लब्धा तेषा नैवास्ति दुर्लभम् ॥१२

भवत्यैव प्राप्यते राजप्रभिरद्वैतव मत्पद च यत् ।

विष्णुत्वमपि मुक्तिं च नूनं प्राप्नोति नारद ॥१३

शुभानामशुभाना च कर्मणा रा शसवयम् ।

करोति भस्ममाद्भक्तिभंगस्त्राणि । यथेन्धनम् ॥१४

गन्धर्व गण उनका गान कर रहे थे तथा मरुद्गण स्तवन कर रहे थे । देवर्षि नारद जी ने उनका दर्शन किया था और फिर उनसे उत्तम प्रणाम किया था । विधि विधान पूर्वक प्रणाम करके नारद जी ने उनसे कहा था ॥८॥ श्री नारदजी ने कहा—ह देवों के भी देव ! जार जगत् के नाथ हैं । ह चतुर्मुख ! आर समस्त गुणगणों में अत्युत्तम हैं ।

थाप देवदेव भगवान् शूनी के भक्तियोग माहात्म्य को बतलाने वृषा कीजिए ॥९॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—मैं सर्वप्रथम परम शान्त स्वरूप वाले प्रमा के विषय के अयोग्य-आभय से रहित परम ज्योति—आदि और अन्त दोनों से रहित-निर्गुण और तम से परे रहने वाले भगवान् साङ्कर को प्रणाम करके उनके भक्तियोग को बतलाता हूँ । हे सुब्रह्म ! हे नारद ! थाप मुनिये । भगवान् शम्भु के भक्तियोग का माहात्म्य जैसा भी मैंने सुना है भगवान् शम्भु की भक्ति का योग देहवारियों के लिये बहूत ही दुर्लभ है । यदि किसी भी प्रकार से वह भक्ति प्राप्त करली गयी हो तो फिर उनको कुछ भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहा करता है ॥१०-१२॥ भक्ति ही के द्वारा राज्य प्राप्त किया जाया करता है—इन्द्र का यह और जो मेरा पद है वह प्राप्त कर लिया जाता है । हे नारद ! विष्णुत्व और मुक्ति भी निश्चय ही प्राप्त किया जाता है ॥१३॥ जिन तरह से अग्नि के द्वारा इन्धन की भस्म हो जाती है उसी भाँति शुभ और अनुभ कर्मों की राशि का मज्जय होना है उनको भगवान् भव की भक्ति भस्म कर दिया करती है ॥१४॥

म्लेच्छोऽपि वा यदि भवेद्भुवभक्तिः समन्वितः ।
 न तत्समश्रुत्वेऽपि नाग्निष्टोभादियज्ञकृत् ॥१५
 अपि पापानि घोरानि सदा कुर्वन्नरो यदि ।
 निष्यते नैव पापैस्तु भक्तो भवति चेच्छिवे ॥१६
 शिवभयना महात्मानो मुच्यन्ते ते न सशयः ।
 अपि दुष्कृतकर्मणि प्रसादात्कृतिनो मुने ॥१७
 गृह्णतूजयते यस्तु भगवन्तमुमापतिम् ।
 अथश्वमेधादधिक फलं भवति नारद ॥१८
 जोषितं च भ्रम्य ज्ञात्वा पद्मपत्र इवोदकम् ।
 मृतेर्दुःखं ताप्ररणास्ततः पुर्याच्छिन्ने मतिम् ॥१९
 क्षिप्ते मतिं प्रतुर्गणः गत्यादनिर्मायणात् ।
 मुच्यते मुनिशार्दूल मतिः शयैर्धृतदुर्लभा ॥२०॥

भवव्यालमुखस्याना भीरुणां देहिना मुने ।
तस्माद्भमोचकस्तेषां महादेव इति श्रुतिः ॥२१

कोई म्लेच्छ भी क्यों न हो यदि वह भगवान् की भक्ति से सम-
न्वित होता हो तो उसकी समानता रखने वाला चारों वेदों का ज्ञाता
भी न होता है और न अग्निष्टोम आदि यज्ञों के करने वाला ही हुआ
करता है ॥१२॥ यद्यपि सदा महान् घोर पापों को भी मनुष्य कर रहा
हो और वह भगवान् शिव का परम भक्त हो तो वह पापों से भी लिप्त
नहीं हुआ करता है ॥१६॥ भगवान् शिव के भक्त महान् आत्मा वाले
होते हैं और निश्चित रूप से मुक्त हुआ करते हैं—इसमें संशय नहीं
है । हे मुने ! चाहे दुष्कृत कर्मों के भी वे क्यों न करने वाले हो भगवान्
शूलि के प्रसाद से विमुक्त हो जाया करते हैं ॥१७॥ जो एकबार भी
भगवान् उमापति की पूजा किया करता है । हे नारद ! उसका पुण्य
फल अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक हुआ करता है ॥१८॥ पशु के पत्र
पर इवद की तरह ही इस जीवित को चञ्चल समझकर मृत्यु और
दुरन्त नरकों से बचने के लिये शिव के चरणों में अपनी भक्ति करनी
चाहिए ॥१९॥ भगवान् शिव के चरणों में अपनी मति करने वाला इस
अत्यनागिक भीषण संहार से हे मुनि शार्ङ्ग ! मुक्त हो जाया करता
है किन्तु शिव में मतिका होना अत्यन्त दुर्लभ है ॥२०॥ हे मुने ! इस
समारूपी सर्प के मुख में स्थित-डरपोक देहधारियों को उससे विमो-
चन कराने वाले महादेव ही है—ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है ॥२१॥

भक्तिः शिवे यदि भवेन्न कस्मात्कस्यचिद्भूयम् ।

भवार्णवं तरत्येव प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥२२

स्वर्गायिना मुमुक्षूणा ब्रह्मात्वमपि काङ्क्षिणाम् ।

भक्तिरेव विरूपाक्षे नान्यः पन्था इति श्रुतिः ॥२३

आदिमध्यान्तरहिते पिनाकिनि जगत्पती ।

सदा मनीषिभिः कार्या भक्तिरेव हि नारद ॥२४

सर्वमन्यत्परित्यज्य भक्तो भव हरे मुने ।
 मुक्तो भविष्यसि क्षिप्रं तस्य शंभोरनुग्रहात् ॥२५
 यस्य प्रसादलेशेन ब्रह्मत्व प्राप्तवानहम् ।
 विष्णुत्वमपि विष्णुश्च स शिव कर्नं सेव्यते ॥२६
 शिवे दान शिवे होमः शिवे स्नान शिवे जप ।
 अक्षयानि फलान्घेषामित्याह भगवाञ्छिव ॥२७
 कुरुक्षेत्रे निवसता यत्फल नैमिषे तथा ।
 प्रयागे च प्रभासे च गङ्गासागरसगमे ॥२८

यदि भगवान् शिव मे भक्ति हो तो फिर उसको किसी से भी किसी का भय नहीं होता है और वह इस समार सागर को परमेष्ठी के प्रसाद से तैर कर पार हो ही जाया करता है ।२२। स्वर्ग का निवास चाहने वाले मुक्ति की प्राप्ति की इच्छा रखने वाले तथा ब्रह्मत्व के पद को भी चाहने वाले मनुष्या को विस्पाक्ष प्रभु मे भक्ति का करना ही परमोत्तम साधन है तथा अन्य मार्ग नहीं हैं—ऐसा भी श्रुति के द्वारा प्रतिपादित है ।२३। हे नारद ! आदि-मध्य और अन्त से रहित जगत के पति पिताजी मे मनीषियों को सर्वदा भक्ति ही करनी चाहिये ।२४। हे मुने ! अन्य सभी साधनों के समुदाय का त्याग करके भगवान् हर के भक्त हो जाओ । उन परम वाग्निव शम्भु के अनुग्रह मे बहुत शीघ्र ही मुक्ति की प्राप्ति हो जायगी ऐसे ही आप शीघ्र मुक्त हो जायगे ।२५। जिनके लेश मात्र प्रसाद मे मैंने ब्रह्मा का पद प्राप्त कर लिया है और भगवान् विष्णु ने विष्णुत्व को प्राप्त किया है । वह ऐसे दयालु शिव भगवान् जिनके द्वारा नहीं मेवने किये जाते हैं अर्थात् दयालु देव का कौन मेवने नहीं करेगा ।२६। भगवान् शिव ने स्वयं ही अपने मुख से कहा है— कि जा बुद्ध भी दान दिया जावे वह दान—होम—स्नान और आप सब भगवान् शिव की सेवा मे समर्पित कर देना चाहिए । ऐसा करने वालों के फल अक्षय होते हैं ।२७। कुरु क्षेत्र धाम मे तथा नैमिष क्षेत्र मे जो निवास करने वाले हैं उनको जो भी पुण्य-कर्म मिलता है तथा

प्रयाग म—प्रभास मे और गङ्गासागर से सङ्गम स्थल मे निवास से फल होता है । वह सब शिव के केवल अर्चन से ही हो जाया करता है । २८।

रद्रकोट्यां गयाया च शालिग्रामेऽमरेश्वरे ।
 पुष्करे भारभूतेशे गोवर्णे मण्डलेश्वरे ॥२९
 तत्फल दिवसेनैव भक्त्या भर्गाचर्चनाद्भवेत् ।
 नास्ति लिङ्गाचर्नात्पुण्यमधिक भुवनत्रये ॥३०
 लिङ्गेऽर्चितेऽखिल विश्वमर्चित स्यान्न सशय ।
 मायया मोहितात्मानो न जानन्ति महेश्वरम् ॥३१
 अनुग्रहाद्भगवतो जानन्त्येव हि नारद ।
 य पूजित शिव दृष्ट्वा प्रणमेद्भक्तिभावन ॥३२
 पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फल भवति निश्चितम् ।
 ये पुन शान्तमनस शिवभक्ता जितेन्द्रिया ॥३३
 मर्त्य(यम)स्य वदन तेऽपि नैव पश्यन्ति नारद ।
 पृथिव्या यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ॥३४
 शिवलिङ्गे वसन्त्येव तानि सर्वाणि नारद ।
 तस्माल्लिङ्ग सदा पूज्य भक्तिभावेन नित्यश ॥३५

रद्र कोटि मे—गया मे—शालिग्राम मे—अमरेश्वर म—पुष्कर मे
 —भार भूतेश मे—गोवर्ण मे—मण्डलेश्वर म निवास मे जो भी फल
 प्राप्त होता है वह सम्पूर्ण प्रण्य—एक एक दिवस के समय म ही भक्ति
 साय मार्ग के अम्यर्चन ही प्राप्त हो जाया करता है । इन तीनों ही
 भुवना मे भगवान शिव के लिङ्ग के अम्यर्चन मे अधिक पुण्य किसी से
 भी नहीं होता है । ३०। एत लिङ्ग के अर्चन करने मे सम्पूर्ण विश्व सम-
 पित हो जाया करता है—इसमे तनिक भी संशय नहीं है । माया से
 जिनकी आत्मा मोहित है वे महेश्वर प्रभु को नहीं जानते है अर्थात्
 महादेवजी के महत्व का ज्ञान ही नहीं हुआ करता है । ३१। है नारद ।
 यह भी भगवान के अनुग्रह होने पर मनुष्य जाना करते हैं । जो कोई

भगवान् शिव को पूजित हुए देव नेता है और भक्ति भाव से दर्शन के पश्चात् उनको प्रणिपात किया करता है उस प्राणी को प्रण्डरीक नाम वाले यज्ञ करने का पुण्य फल निश्चित रूप में प्राप्त हो जाया करता है । जो योग शान्त मन वाले और जितेन्दीय पुष्प शिव के भक्त होते हैं हे नारद ! वे भी यमराज का मुण्ड नहीं देना करते हैं अर्थात् कर्मों के फल से विमुक्त होकर मुक्त हो जाया करते हैं । इस पृथ्वी में जो भी तीर्थ हैं और पुण्य स्थान हैं हे नारद ! वे शिव के लिङ्ग में निवास किया करते हैं । अनएव शिवलिङ्ग का सदा पूजन करना चाहिए और नित्य ही भक्ति की भावना में करना चाहिए ॥२२॥३५॥

म स्नात सर्वतीर्थेषु सर्वस्मादधिकश्च स ।
यन्नु लिङ्गाचर्चनं त्यक्त्वा देवानन्याश्च पुजयेत् ॥३६॥
रत्न विहाय मङ्गलमा यथा वाचमपेशते ।
चतुर्दश्यामथाट्म्या पीर्णमाम्या तर्धव च ॥३७॥
अमावास्या (या वा) त्रयोदश्या पूजयेदिन्दुशेखरम् ।
स स्नात सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षित ३८
शिवलोकमवाप्नोति देहान्ते दुर्लभ मुने ।
शिवाचर्चनरतो नित्य महापातकमभवे ॥३९॥
दोषं कर्तनं लिप्येत पञ्चव्रतमिवाग्भसा ।
दर्शनाच्छिवभक्ताना सकृत्सभाषणादपि ॥४०॥
अतिरात्रस्य यज्ञस्य फल भवति नारद ।
घ्राह्येण क्षत्रिया वीर्य शूद्रो वाऽन्त्यजजातिल ॥४१॥
शिवभक्त मदा पूज्य सर्वावस्था गतोऽपि वा । . . .
नाम्याऽऽचार परीक्षेत न बुल न व्रत तथा ॥४२॥

उसन सभी तीर्थों में स्नान कर लिया है और वह सबसे अधिक है । जो लिङ्ग का अर्चन त्यागकर अन्य देवों का भजन किया करता है उसका यज्ञ अन्य देव का अर्चन इमी प्रकार से है जैसे कोई मूढ आत्मा वाग्य रत्न का परित्याग करके वाच की अपेक्षा करता है । चतुर्दशी—

अष्टमी—नवोदशी—पौर्णमासी और अमावस्या तिथियों में इन्दु शेखर का अर्चन करना चाहिए। ऐसा जो करता है वह सभी तीर्थों में स्नान कर चुका है और सभी यज्ञों में दीक्षित भी हो चुका है। ३६। ३७। ३८। हे मुने ! वह प्राणी देह के अन्त होने पर सीधा शिवलोक को प्राप्त हुआ करता है जोकि उसका प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ होता है। शिव के अर्चन में रत रहने वाला पुरुष महा पातकों के द्वारा होने वाले दोषों के किये जाने पर भी जल से पत्र पत्र के ही समान लिप्त नहीं हुआ करता है। शिव के भक्तों की भी बड़ी महिमा है इनके दर्शन करने से तथा इनके साथ एक बार सम्भाषण करने से भी हे नारद ! अतिरात्र यज्ञ का फल मनुष्य प्राप्त कर लेता है। चाहे कोई ब्राह्मण हो—क्षत्रिय—शूद्र—शूद्र अथवा अन्त्यज जाति में समुत्पन्न मनुष्य हो और भले ही सभी अवस्थाओं में भी वह वर्तमान क्यों न हो यदि वह शिव का भक्त है तो सदा ही पूज्य होता है। शिव भक्त के आचार व्रत की और कूल की कभी परीक्षा नहीं करनी चाहिए। ३९। ४०।

त्रिपुण्ड्राङ्कितभालेन पूज्य एव हि नारद ।

कर्मणा मनसा वाचा यस्तु भक्तान्वनिन्दति ॥४३

निरयान्निष्कृतिर्नास्ति तस्य मूढात्मनो मुने ।

शिवभक्तान्वर्जयित्वा सर्वेषां शासको यम ॥४४

य पुन शिवभक्तानां शिव एव न चापर ।

न शिवाश्रयिणो मौञ्जी न दण्डो न च कुण्डले ॥४५

नैव कापायवासासि भक्तिरेवात्र वारणम् ।

यदि भवता पशुपतौ पापकर्मसु ये रता ॥४६

यमस्य वदनं तेषां नैव पश्यन्ति नारद ।

ये पुन शान्तमनस शिवभवता जित्तेन्द्रिया ॥४७

मर्त्यधर्मं समासाद्य विज्ञेयास्ते गणेश्वरा ।

मृतस्य जीवतो वाऽपि शिवभक्तस्य नारद ॥४८

यमाद्भयं न तस्यारितं राजर्षेव तु मा कथा ।

आश्चर्यं कथयिष्यामि शृणु नारद यत्पुरा ॥४९

हे नारद ! त्रिपुण्ड के द्वारा अद्धित भान के द्वारा ही वह शिव का भक्त पूजने के ही योग्य हो जाया करता है । कर्म-भन और वचन से जो मनुष्य शिव भक्तों की निन्दा किया करता है हे मुने ! उस मनुष्य की नरक से कभी भी निष्कृति नहीं हुआ करती है और वह मूढ आत्मा वाला प्राणी है । शिव के भक्तों को छोड़कर ही अन्यो पर यमराज का शासन हुआ करता है । ४३।४४। जो शिव के भक्तों को ऐसा ही मानता है कि यह तो साक्षात् ही शिव है और अन्य कोई नहीं है । शिव के समाध्य ग्रहण करने वाले पुरुष के किसी भी चिह्न की आवश्यकता नहीं है । न उसे मौड़ी होने की जरूरत है—न दण्ड और कुण्डलों की ही उसे आवश्यकता होती है । कापान वस्त्रों के धारण करने का भी कोई आवश्यकता नहीं है शिव भक्त का कारण तो केवल उनके चरणों में भक्ति रखना ही हुआ करता है । यदि कोई पशुपति में भक्ति रखता है और पापकर्मों में भी रत रहता है तो वह हे नारद ! यमराज के सदन को नहीं देखा करता है । जो पुण्य परमशान्त मन वाले हैं और इन्द्रियों को जीतकर शिव के भक्त होते हैं उनको साक्षात् गणेश्वर ही समझना चाहिए उन्होंने मनुष्य धर्म को देखने में ही प्राप्त कर रखा है । हे नारद ! चाहे वह जीवित रहेगा मृत हो जावे जो शिव का भक्त है उसको यमराज का, कभी भय नहीं रहा करता है फिर साधारण राजा में भय की तो बात ही क्या है । हे नारद ! मैं एक परम आश्चर्य की बात बतलाऊंगा जो पहिले घटित हो चुकी है । उसका आप इस समय में श्रवण कीजिए । ४५।४६।

उज्जयिन्या नृपो ह्यासीग्नाम्ना सत्यध्वजो मुने ।

धर्मात्मा सत्यसकल्प प्रजापालनतत्पर । १५०।

भुक्त्वा समस्तामवनि कालेनाथ दिव गत ।

वसुश्रुत इति ख्यात पुत्रस्तस्य महात्मन । १५१।

महाकालार्चनतस्तन्निष्ठस्तत्परायण ।

न धर्मेण प्रजा शांति राजधर्मवहिष्कृत । १५२।

असाधून्सपरित्यज्य साधून्वै हन्त्यसौ नृप ।
 प्रजानां कुशल नास्ति सर्वत्र परिपन्थिन ॥१३॥
 यज्ञाश्च यज्वना दृष्ट्वा म्लेच्छा विध्वंसयन्ति तान् ।
 गते वर्षसहस्रे तु राज्ये तस्मिन्वसुश्रुते ॥१४॥
 मृत्युकालोऽथ सप्राप्तो देहिनामतिभीषण ।
 पापिष्ठ इति त मत्वा सप्राप्ता यमकिकरा ॥१५॥
 शिवभक्त इति प्राप्तास्त्रिनेत्रा शूलधारिण ।
 शिवदूतं समानीत विमान सावकामिकम् ॥१६॥

हे मुने ! उज्जयिनी पुरी में एक सत्यध्वज नाम वाला राजा हुआ था । वह राजा परम धर्मिमा था तथा सत्य सङ्कल्प वाला और अपनी प्रजा के परिपालन करने में सदा परायण रहा करता था ॥१३॥ उसने सम्पूर्ण भूमि के शासन करने का सुलभ भोगा था और जब उसका समय हो गया तो वह देवलोक को चला गया था । उस महान् आत्मा वाले नृप का पुत्र वसुश्रुत इय नाम से विख्यात हुआ था । यह वसुश्रुत महाकाल के अर्चन रत्न तथा उमी की निष्ठा रखने वाला और उसी में तत्पर रहा करता था । वह कभी भी अपने धर्म के अनुसार प्रजा का शासन नहीं किया करता था तथा राजा के धर्म से वहिष्कृत रहता था ॥११॥१२॥ यह नृप जो असाधु लोग थे उनको तो त्याग दिया करता था और सदा साधुओं का ही हनन किया करता था । उसके शासन काल में प्रजाओं का कुशल नहीं था । सभी जगहों पर परिपथी लोग थे ॥१३॥ म्लेच्छ लोग ऐसे बढ गये थे कि यज्ञों को और यजन करने वालों का विध्वंस कर दिया करते थे । उस राजा वसुश्रुत के एक महय वर्ष राज्य शासन कर लेने पर उसके मृत्यु का काल सम्प्राप्त हो गया था जो कि देहधारियों के त्रिये अत्यन्त भीषण हुआ करता है । वह परमाधिक पापिष्ठ है—तेमा मानकर यमराज के किङ्कर उमे यमपुरी ले जाने के लिये वहाँ पर धातर प्राप्त हो गये थे । वह शिव का परम भक्त है—तेमा ममेक्षकर शिवदूत तीन नेत्रों वाले और शूल-

घारी भी वहाँ पर समागत हो गये थे । शिव के दूतों के द्वारा सब मनोरथों से पूर्ण एक विमान वहाँ पर लाया गया था ।५४।५५।५६।

यमदूतास्त्वतिक्रूरा पाशदण्डामिषाणय ।
 आहतुं मुद्यता सर्वे नृप त यमकिंकरा ॥५७॥
 गरुश्वराम्मत क्रुद्धा इष्टा तान्यमकिंकरान् ।
 त्रिशूत्रैर्भुं ग्दरैश्चक्रं मंदाभिर्भुं मलैन्तथा ।५८।
 ताडयित्वा भृश दूतात्यमशामनपालकान् ।
 नीत शिवपुर दिव्य पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।५९।
 अय ते किंकरा भवे यम गन्वेदमद्रुचन् ।
 शृणु धर्म यथा वृत्तमीश्वरस्य गरुश्वरै ॥
 सर्वानरमान्नाडयित्वा नीत पापो वमुश्रुतः ॥६०॥
 न यज्ञं यंजते देवान् विप्रान्नातिथीनपि ।
 न धर्मोऽपि प्रजा पाति कथ शिवपुर गत्त ।६१।
 न त्व धर्मं विजानामि धर्मदण्डधरो भवान् ।
 नन्माद्भवीहि (!) भगवन्तत्राऽऽत्तारिणो वयम् ।६२।
 एव तेषां वच श्रुत्वा धर्मराट् गूर्यनन्दन ।
 वच प्रोवाच गम्भीर त्रिरगन्प्रति नारद ।६३।

ने जो कुछ किया है उस धर्म को आप सुनिए । उन्होंने हम सबको भारपीट कर महान् पापी जी बहुश्रुत नृप था वह छीनकर ले गये हैं । वह तो ऐसा दुष्टात्मा था कि न तो कभी यज्ञ किया करता था—न देवों का भी भजन किया करता था—न विप्रों और अतिथियों का सत्कार करता था और धर्म के द्वारा अपनी प्रजा के जनो का भी पालन नहीं किया करता था फिर भला बताइये वह शिवतोष में कैसे चला गया है ? १६०।२१। सो आप तो धर्म को भली भाँति जानते ही है क्योंकि आप तो धर्मदण्ड के धारी हैं । इससे हे भगवान् ! आप हमको बतलाइये क्योंकि हम सब तो आपके ही आदेश के पालन करने वाले रहते हैं । १६२। धर्मराज ने जो सूर्य का पुत्र था उन किङ्करो के वचन का श्रवण करके हे नारदजी ! वह किङ्करो के प्रति परम गम्भीर वचन बोला—१६३।

देवामुरमनुष्याणा सर्वेषा प्राणिनामपि ।

शारताऽह नास्ति सदेह शिवभक्तगृते किल । १६४।

माहात्म्य शिवभक्ताना को वा विन्दति तत्त्वत ।

तेषा नियन्ता भगवान्महादेवो च चापर । १६५।

शिवभक्ता महात्मान सदा शर्वाचिने रता ।

अप्याश्रमाचारहीनास्त्यजध्व तान्प्रयत्नत । १६६।

वर्णाश्रमाणामाचारा अपि नैन विवर्जिता ।

शक्रे यदि भक्त स्यान्न शाम्य पूज्य एव हि । १६७।

भवद्भि परिहर्तव्या शिवभक्ता प्रयत्नत ।

पापवर्णस्यपि रतारतेषामेते न विद्यते । १६८।

विभेमि शिवभक्तेभ्य सिंहादिव यथा मृगा ।

श्वेतस्याऽऽहरणे पूर्वमह देवेन घातित । १६९।

तत प्रभृत्यह शारता तद्रूक्षाना न विवरा ।

याज्ञौ वमुश्रुतो राजा न प्रजा पादयग्यदि । १७०।

यमराज ने कहा—मैं सभी देवामुर मनुष्यों का और प्राणियों का भी धारता हूँ—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। किन्तु शिवभक्त को छोड़कर ही मैं सबका शासक हूँ। १६४। कौन पुरष है जो भगवान् शिव के भक्तों की निन्दा करने वाले हैं क्योंकि तात्त्विक रूप से उनका नियन्ता भगवान् महादेव ही होने हैं अन्य दूसरा कोई भी नहीं हैं। १६५। भगवान् शिव के भक्त सदा ही शिव के अभ्यर्चन में निरत रहा करते हैं। चाहे वे आश्रमों के आचार से हीन ही क्यों न होवे उनको प्रयत्नपूर्वक त्याग दिया करो। १६६। वर्षों और आश्रमों का आचार वाले ही होवे और शिवाचन से रहित हो तो उनको पकड़ लाया करो। यदि भगवान् शङ्कर के चरणों में भक्ति करने वाला हो तो वह शासन करने के योग्य नहीं होता है और वह पूज्य ही हुआ करता है। १६७। आप लोगों को प्रयत्नपूर्वक शिव के भक्तों को परित्याग ही कर देना चाहिए। चाहे वे पापकर्मों में निरत भी क्यों न होवे किन्तु उनको पाप नहीं लगा करता है। १६८। जैसे मृग सिंह से भयभीत रहा करते हैं उसी भाँति मैं शिव के भक्तों से डरता रहा करता हूँ। पूर्व में मैं श्वेत के आहरण में देव के द्वारा घानित हो गया था। १६९। तभी से लेकर हे किङ्करो ! मैं शिव भक्तों के शामक नहीं हूँ। हे किङ्करो ! जो यह राजा बहृश्रुत है वह यदि प्रजा का पालन नहीं भी कर रहा था तो भी मन-बाणी और शरीर में भगवान् शङ्कर का भक्त था। १७०।

तथापि शङ्करे भक्तो मनोवाक्कायकर्मभिः ।

प्रमादात्तस्य देवस्य पाप स्पृशति ता कथम् । ७१।

सङ्कल्पशयनि यो देव महापाल त्रिलोचनम् ।

सर्वपापविनिर्मुक्तो याति शैव परपदम् । ७२।

य मदार्जायते देव महावा । तमोश्वरम् ।

गणेश्वर म मन्मथ्यो भवद्भिरिति किवरा । ७३।

एव यमस्य वचन श्रुत्वा ते (तु) यमकिवराः ।

तूष्णीमासाद्य ते सर्वे बभूवुर्विगतज्वराः । ७४।

तरमात्पूज्यो महादेवस्तद्भक्तश्च विशेषत ।
 भक्तानां पूजनाच्छुभुः प्रीतो भवति नारद ॥७५॥
 शिवस्य नित्यतृप्तस्य किं नाम क्रियते जनैः ।
 यत्कृता शिवभक्तानां तेन प्रीतो भवेच्छिव ॥७६॥
 देवान्सर्वान्पितृज्यं भज नारद शकरम् ॥७७॥

उन देव शम्भु के प्रसाद से उसको पाप कैसे स्पर्श कर सकता है ॥७५॥ जो एक बार भी महाकाल भगवान् त्रिलोचन का दर्शन कर लिया करता है वह सभी प्रकार के महापातको से विमुक्त होकर अन्त में भगवान् शिव के परम पद को प्राप्त हुआ करता है ॥७६॥ जो उस महाकाल ईश्वर का मदा ही अर्घ्यार्चन किया करता है हे किकरो ! उसे आप लोग माघारण प्राणी न मानकर भगवान् शिव का गणेश्वर ही समझना चाहिए ॥७७॥ उन यमराज के किकरो ने इस प्रकार के यमराज के वचन का श्रवण करके वे सब चुपचाप होकर विगत ज्वर हो गये थे ॥७८॥ इसी कारण से भगवान् शिव के भक्त या सदा ही पूजन करना चाहिए और जो शिव के भक्त हो उनका विशेष रूप से अर्चन करना चाहिए । हे नारद ! अपने भक्तों के पूजन से शम्भु परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥७५॥ नित्य ही तृप्त भगवान् शिव के लिये मनुष्यों के द्वारा क्या किया जाता है । शिव के भक्तों के लिये जो भी दिया जाता है भगवान् शिव उसी से परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥७६॥ अतएव हे नारद ! अन्य सब देवों का परित्याग करके केवल एक भगवान् शिव का ही भजन करो ॥७७॥

॥ पंचाक्षर मंत्र प्रभावादि कथन ॥

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण पत्र पुष्पमथापि वा ।

य. प्रयच्छति शर्वाय तदनन्तफल सकृत् ॥१॥

सप्तशोडशमहा मन्त्राः शिववक्त्राद्विनिर्गताः ।

पञ्चाक्षरस्य मन्त्रस्य कला नाहंति षोडशीम् ॥२॥

दोक्षितोद्दोक्षितो वाऽपि विवानादन्यथाऽपि वा ।

पञ्चाक्षर जपेद्यस्तु शिवाम्यानुचरो भवेत् ॥३॥

अपिकृन्वा भ्रूणहृत्या पापानि सुवहून्यपि ।

पञ्चाक्षरजपात्मद्यो मुच्यते नात्र सगय ॥४॥

न हि पञ्चाक्षरजपात्तद्धे योऽस्ति भुवनत्रये ।

एव ज्ञात्वा जपेद्विद्वान्विद्या पञ्चाक्षरी शुभाम् ॥५॥

पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण विल्वपत्रं शिवाचनम् ।

करोति श्रद्धया यस्तु म गच्छेदंश्वर पदम् ॥६॥

दर्शनाद्विल्वक्ष्म्य स्पर्शनाद्वन्दनादपि ।

अहोरात्रकृता पाप नश्यते ऋषिभक्तम् ॥७॥

श्री ब्रह्माजी ने कहा—पाच अक्षरी के मन्त्र से अर्थात् “ॐ नमः शिवाय” —इस मन्त्र के द्वारा जो कोई पत्र-पुष्प और जल वा सम्पूर्ण भगवान् शिव के लिये किया करता है उसका एक क्षर के करने ही से उमका अनन्त फल हुआ करता है । १। भगवान् शिव के मुखारविन्द से मान करोड मन्त्र विनिर्गत हुए थे किन्तु वे सभी मन्त्र मित्रात् भी इस पंचाक्षरी मन्त्र की मोलहवी कता के समान भी नहीं होते हैं । २। विद्वान् से दीक्षित हो अथवा अदीक्षित हो वैसा भी क्यों न हो जो प्राणी इस पंचाक्षरी वाचें मन्त्र का जाप किया करता है वह अशुभ श्री शिव का अनुपर हो जाया करता है । ३। भ्रूण हृत्या करते भी तथा वृद्ध ने अन्य वापों को भी बच्चे भी इस पांच अक्षरी वाचें मन्त्र को जपता है उसका जो तुम्हें ही मुक्त हो जाया करता है —इसमें कुछ

लेश मात्र भी सन्देह नहीं है ।४। इन तीनों भुवनों में इस पाँच अक्षरों वाले मन्त्र से अधिक कुछ भी श्रेय नहीं है । इस प्रकार से समझ कर ही विद्वान् पुरुष को इस परम शुभा पञ्चाक्षरी विद्या का जाप करना चाहिए ।५। इस पञ्चाक्षरी मन्त्र के द्वारा विल्व के पत्रों से जो भगवान् शिव का समर्चन किया करता है और परम श्रद्धा की तो भावना से जो करता है वह ईश्वरीय पद को प्राप्त किया करता है ।६। हे ऋषि सनातन ! विल्व वृक्ष की बड़ी महिमा है क्योंकि यह भगवान् शिव का परम प्रिय वृक्ष है । इसके दर्शन से — इसके स्पर्श करने से और इसकी वन्दना करने से भी एक अहोरात्र का किया हुआ पाप नष्ट हो जाता करता है ।७।

अन्तकाले नरो यस्तु विल्वमूलस्य मृत्तिकाम् ।
 आलिम्पेत्सर्वगात्राणि मृतो याति परा गतिम् ॥८
 विल्ववृक्ष समाश्रित्य द्वादशाहमभोजनम् ।
 यः कुर्वाद्भ्रूणहा पापान्मुक्तो भवति नारद ॥९
 विल्ववृक्षं समाश्रित्य त्रिरात्रोपोषितः शुचिः ।
 हरनाम जपल्लेख भ्रूणहत्या व्यपोहति ॥१०
 विल्वपत्रं च खण्डं च पूजयेदिन्दुशेखरम् ।
 माघे कृष्णचतुर्दश्या पूजयेदिन्दुशेखरम् ॥११
 भक्त्या विल्वदलमौनी हरनाम जपन्निशि ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तो याति शैवं परं पदम् । १२
 शुष्कैः पशुपितैः पत्रैरपि विल्वस्य नारद ।
 पूजयेद्विरिजानाथं गुच्यते सर्वपातकं ॥१३
 अर्घ्यं पुष्पफलोपेत यः शिवाय निवेदयेत् ।
 युगानामयुत साग्रं शिवलोके वसेन्नरः ॥१४

जो मनुष्य अन्त काल में विल्व वृक्ष के मूल की मृत्तिका से अपने समस्त अङ्गों का विनोदन किया करता है वह मृत होकर परागति को प्राप्त किया करता है ॥८॥ विल्व वृक्ष को समाश्रय करके जो द्वादश

दिन तक भोजन नहीं किया करता है हे नारद । वह भ्रूणहा पाप से मुक्त हो जाया करता है ॥६॥ विल्व वृक्ष का समाधय ग्रहण करके जो तीन रात्रि पर्यन्त शुचि होकर उपवास किया करता है और एक लक्ष भगवान् हर के नाम का जाप किया करता है वह भ्रूण हत्या के पाप को विनष्ट कर दिया करता है ॥१०॥ विल्वपत्रों से तथा उनके खण्डों से इन्दुजेश्वर भगवान् शिव का माघ मास की कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी में पूजन करना चाहिए ॥११॥ भक्ति की भावना से विल्व दलों के द्वारा मौनी होकर रात्रि में हर का नाम का जाप करना चाहिए । वह समस्त पापों से निर्मुक्त होकर अन्तकाल में भगवान् शिव के परमपद को प्राप्त हो जाया करता है ॥१२॥ हे नारद । गुप्फ, पर्युपित विन्व के पत्रों से भी यदि गिरिजा के नाथ का पूजन किया करता है तो मनुष्य सभी पातलों से मुक्त हो जाया करता है ॥१३॥ पुष्प और फलों से युक्त अर्घ्य को जो भगवान् शिव के लिये निवेदित किया करता है वह मनुष्य डेढ़ अयुत युगों तक शिवलोक में निवास किया करता है ॥१४॥

आप क्षीर कुशाग्राणि सघृन दधि तण्डुला ।

तिलैश्च तपपै सार्धमर्घ्योऽष्टाङ्ग इति स्मृत ॥१५

फलकोटि मुवर्णस्य यो दद्योद्देदपारगे ।

शिवाय रविनकामात्र प्रदत्त्वा (?) वाऽधिक भवेत् ॥१६

तस्मात्पत्रं फलैः पुष्पैस्तोयैरपि यजेच्चिद्धवम् ।

तदनन्तफलं प्रोक्तं भक्तिरेनाथ कारणम् ॥१७

लिङ्गस्य लेपनं कुर्याद्द्विर्गन्धैर्मनोरमैः ।

वर्षकोटिशतं दिव्यं शिवलोके महीयते ॥१८

सुगन्धालेपनात्पुष्पं द्विगुणं चन्दनस्य तु ।

चन्दनाच्चागराज्ञेयं पुण्यमष्टगुणाधिकम् ॥१९

कृष्णागरोविशेषेण द्विगुणं फलमिच्छते ।

तस्माच्चन्दनगुणं पुण्यं कुङ्कुमस्य विधीयते ॥२०

चन्दनागररूपं रैर्नाभिरोचनकुङ्कुमं ।

लिङ्गमेतैः समालिप्य गाणपत्यमनाप्नोति ॥२१

जल, दूध, कुशा के अग्रभाग, घृत, दधि चावल, तिल, सरसो इन सबका अर्घ्य आठ अङ्गो वाला होता है—ऐसा कहा गया है ॥१५॥ जो मनुष्य सुवर्ण की पलकोटि को किसी वेदो के पारगामी को देता है । शिव के लिये एक रत्तीमात्र ही अथवा अधिक दिया करता है ॥१६॥ इस कारण से पत्र, फल, पुष्प और अन्न से ही भगवान् शिव का भजन करना चाहिये । उसका अनन्त फल बतलाया गया है किन्तु इसमें भी एकमात्र भक्ति ही कारण होता है ॥१७॥ भगवान् के लिङ्ग का लेपन दिव्य गन्धो से जो बहुत ही मनोरम हो करना चाहिए । वह मनुष्य जो ऐसा किया करता है सो करोड़ दिव्य वर्षों तक शिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥१८॥ चन्दन के लेपन से सुगन्धित पदार्थ के लेपन से द्विगुण पुण्य हुआ करता है । चन्दन से भी आठ गुना अधिक पुण्य अमरु के लेपन से हुआ करता है—ऐसा ही जानना चाहिए ॥१९॥ जो कृष्ण अमरु होता है उसके लेपन से विशेष रूप से दुगुना फल हुआ करता है । उससे भी सौगुना फल पुष्प कुकुम का होता है ॥२०॥ चन्दन, अमरु, कपूर, नाभिरोचन, कुमकुम इन सबके द्वारा शिव लिङ्ग का विलेपन करके मनुष्य गणपत्य पद की प्राप्ति किया करता है ॥२१॥

सर्वीज्य तालवृन्तेन लिङ्गं गन्धैः सुलोपितम् ।
 दशवर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥२२॥
 मयूरव्यजन दद्याच्छिवायातीव शोभनम् ।
 वर्षकोटिशत दिव्य शिवलोके महीयते ॥२३॥
 चामर यः शिवे दद्यान्मणिरत्नविभूषितम् ।
 हेमरूप्यादिदण्ड वा तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२४॥
 चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीपरिवारितः ।
 विमान वरमारुह्य गणैर्यानि शिव पदम् ॥२५॥
 अरण्यसम्भवेः पुण्यैः पक्षैर्वा निरिस्रभवेः ।
 अपयुपितनिश्चिद्रैररवतैर्जन्तुवर्जितैः ॥२६॥

आत्मारामोद्भवैर्वापि पुष्पैः सपूजयेच्छिवम् ।
 पुष्पजातिविशेषेण भवेत्पुण्यमथोत्तरम् ॥२७
 तपःशीलगुणाढ्याय वेदवेदाङ्गामिने ।
 दश दत्त्वा सुवर्णस्य फलं हि तदवाप्नुयात् ॥२८

तालवृन्त से सबीजन करके शिव भगवान् के लिङ्ग को गन्ध वाले पदार्थों से लेपन करे ऐसा करने से मनुष्य दश महत्त्व वर्ष पर्यन्त शिव लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥२२॥ मयूर का व्यजन शिव के लिये देना चाहिये यह अतीव शोभन हुआ करता है । वह मनुष्य सी करीब वर्ष तक जोकि दिव्य वर्ष होते हैं शिवलोक में प्रतिष्ठित रहा करता है ॥२३॥ जो कोई शिव का भक्त मणि और रत्नों से विभूषित चमर उन पर दुआया करता है जिसका दण्ड हेमया रूप्य आदि वा हो उसका जो पुण्य-फल होना है उसे भी मुन लो ॥२४॥ चमरो में समा-सकन हाथों वाली दिव्य स्त्रियों के द्वारा परिवारित होता हुआ गणों के साथ परम श्रेष्ठ विमान पर समाहूत होकर वह मनुष्य अन्त में भगवान् शिव के पद को प्राप्त किया करता है ॥२५॥ जगलो में समुत्पन्न पुत्रों से, पत्नी से जो पर्वतों में समुत्पन्न हुए हों और वे अर्घ्युषित, निश्चिद्र अरक्त और जन्तुओं से वर्जित होने चाहिए अथवा आत्मारामोद्भव हो अर्थात् अपने वाग में पैदा हुए हों ऐसे पुत्रों में भगवान् शिव का पूजन करना चाहिए । पुष्प जाति विशेष में उत्तर पुष्प होना है । तपः शील और गुणाढ्य तथा वेद वेदाङ्गों का ज्ञान ब्रह्मण के लिये दश सुवर्ण के फल दान देकर वही पुष्प फल प्राप्त होता है ॥२६-२८॥

अकंठुर्णं क्त्वा पूजा यदि देवाय संभवे ।
 अर्घ्यपुष्पमहस्येभ्यः करवीर प्रशस्यते ॥२९
 करवीरमहस्येभ्यो विन्ध्यपत्रं विनिष्यते ।
 विन्ध्यपत्रमहस्येभ्यः शमीपत्रं विनिष्यते ॥३०
 शमीपुष्पमहस्येभ्यः शमीपुष्पं विनिष्यते ।
 शमीपुष्पमहस्येभ्यः कुशपुष्पं विनिष्यते । ३१

पुण्यपुष्पजहस्त्रेभ्योः पञ्चपुष्पं विशिष्यते ।

पञ्चपुष्पमहस्त्रेभ्यो वक्रपुष्पं विशिष्यते ॥३२

वक्रपुष्पमहस्त्रेभ्यो एक घत्त रकं तथा ।

घत्तूरकमहस्त्रेभ्यो बृहत्पुष्पं विशिष्यते ॥३३

बृहत्पुष्पमहस्त्रेभ्यो द्रोणपुष्पं विशिष्यते ।

द्रोणपुष्पसहस्त्रेभ्यः अ(भ्यो ह्य)पामार्गं विशिष्यते ॥३४

अपामार्गसहस्त्रेण श्रीमन्नीलोत्पल वरम् ।

नीलोत्पलसहस्त्रेभ्यः यो मालां संप्रयच्छति ॥३५

आक के पुष्पो से देव सम्भु के लिये की हुई पूजा यदि होवे तो उत्तम होती है और करवीर के पुष्प एक सहस्र आक के पुष्पो से भी प्रशस्त मानी गयी है ॥३६॥ एा सहस्र करवीर के पुष्पो से भी अधिक प्रशस्त बिल्वपत्र माना गया है । एक महस्र बिल्व पत्रों में भी प्रशस्त शमी के पुष्प माने गए हैं । एक शमी के पुष्पों से भी अधिक प्रशस्त कुन के पुष्प माने गये हैं कुन के सहस्र पुष्पो से अधिक प्रशस्त पञ्च पुष्प होने हैं और पञ्च के सहस्र पुष्पो से अधिक प्रशस्त वक्र पुष्प माने गये हैं । एक महस्र वक्र पुष्पों में भी अधिक प्रशस्त घतूरे के पुष्प माने गये हैं घतूरे के सहस्र पुष्पों में भी अधिक प्रशस्त बृहत्पुष्प माना गया है । बृहत्पुष्प महस्र में अधिक प्रशस्त द्रोण पुष्प होता है और एक सहस्र द्रोण पुष्पों में अधिक प्रशस्त अपामार्ग का पुष्प माना गया है । अपामार्ग के सहस्र पुष्पो में अधिक प्रशस्त श्रीमन्नीलोत्पल श्रेष्ठ होता है । नीलोत्पल के एक महस्र पुष्पों से भी अधिक प्रशस्त वक्र है जो एक माना समर्थ विद्या करता है ॥३०-३५॥

निशाम त्रिदिव्यद्रुव्यास मन्त्र पुष्पफलान्नु ।

बल्लभोऽतिमहस्तानि फलानि शतानि च ॥३६

सर्वेष्टिपुत्रे श्रीमन्निशामन्त्रपुष्पफलान्नु ।

करवीरममा सेवा जाती विष्णुपाटला ॥३७

उशान्तान्नाकुमुम गिराय च न गन्धमम् ।

नामनान्नाकु गुणां परा रकणमाः स्मृता ॥३८

धन्वूक केतकीपुष्प कुन्दयूथीमदन्तिका ।

शिरीष चार्जुन पुष्प प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥३६

कनकानि कदम्बानि रात्रौ देयानि शक्रे ।

दिवा शेषाणि पुष्पाणि दिवा रात्रौ च मल्लिका ॥४०

प्रहर तिष्ठते जाती करवीरमहनिशम् ।

केश कीटानविद्धानि शीणैर्युपितानि च ॥४१

स्वय पतिनपुष्पाणि त्येजेदुपहतानि च ।

मुकुलैर्नाचयेदीश यस्य कस्यापि नारद ॥४२

भगवान् शिव के लिये भक्ति से विधिपूर्वक जो अर्पण करता है उसका पुष्प फल श्रवण कीजिए । एक सहस्र करोड़ बलों तक और सौ करोड़ बल पर्याप्त वह श्रीमान् शिव के तुल्य पराक्रम वाता होकर शिवपुर में निवास किया करता है । करवीर के ही समान जाती और विजय पाटला का समझना चाहिए ॥३६॥३७॥ श्वेतमन्दार, कुमुम और सित पद्म भी उसी के समान होना है । नाग, चम्बक और पुत्राग घतूरे के पुष्प के ही तुल्य माने गये हैं ॥३८॥ शिव के समर्पण में प्रयत्नपूर्वक धन्वूक पुष्प, केतकी पुष्प, कुन्द, सूषिका, मदन्तिका, शिरीष और अर्जुन के पुष्पों का वर्जित रखना चाहिए । अर्थात् इन उपर्युक्त वृक्ष एवं लताओं के पुष्प शिव के भजन में ग्रहण नहीं करने चाहिए ॥३६॥ कनक और कदम्ब के पुष्प शक्रे के ऊपर रात्रि में ही देने चाहिए । शेष पुष्पों का दिन में अर्पण कर तथा मल्लिका के पुष्प दिन में और रात्रि में दोनों में ही अर्पित किये जा सकते हैं । जाती का पुष्प एक ही प्रहर तक ठहरता है और करवीर का पुष्प अर्धरात्रि तक ठहरा करता है । जो पुष्प वेद और योग से अवनिद्र हों, शीण हों, उपर्युक्त हों तथा स्वय ही गिरे हुए हो एक उपहन ह। उनका त्याग कर देना चाहिए अर्थात् ऐसे पुष्पों में पूजन नहीं करे । हे नारद ! जिस स्त्री भी वृक्ष की मुकुलों से अर्थात् कनिका में कभी भी शिव का अर्पण नहीं करना चाहिए ॥४० ४२॥

कलिकैनर्चयेद्देव चम्पकैर्जलजैर्विना ।
 न पशुं पितदोषोऽस्ति जलजोऽलचम्पकं ॥४३
 पुष्पाणामप्यलाभे तु पत्राण्यपि निवेदयेत् ।
 फलानामप्यलाभे तु तृणगुल्मोपधैरपि ॥४४
 औषधानामभावे तु भक्त्या भवति पूजितः ।
 बिल्वपत्रैरखण्डैस्तु सकृत्पूजयते शिवम् ॥४५
 सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोके महीयते ।
 घत्तूरकैस्तु या लिङ्ग सकृत्पूजयते नरः ॥४६
 गोलक्षस्य फल प्राप्य शिवलोके महीयते ।
 बृहतीकुसुमैर्भक्त्या यो लिङ्ग सकृदर्चयेत् ॥४७
 गवामथुतदानस्य फल प्राप्न शिव व्रजेत् ।
 मल्लिकोत्पलपुष्पाणि नागपु नागचम्पकं ॥४८
 अशोकश्वेतमन्दारकर्णिकारवकानि च ।
 करवीराकमन्दारशमीतगरवेमरम् ॥४९
 कुशापामार्गकुमुदकदम्बकुरवैरपि ।
 पुष्पैरेतैर्यथालाभ यो नर पूजयेच्छिवम् ॥
 स परफलमवाप्नोति तदैकाग्रमना शृणु ॥५०

चम्पक और जलज के बिना कलियों से कभी भूलवर भी देव की
 अर्चना नहीं करनी चाहिये । जलज, उत्पल और चम्पकों में कभी पशु-
 पित होने का दोष नहीं हुआ करता है ॥४३॥ यदि पुष्पों का लाभ
 नहीं तो ऐसी वधा में पत्रों को ही भगवान् को निवेदित कर देवे ।
 पत्रों के लाभ न होने पर भी तृण, गुल्म और औषधियों से तामर्चन करे
 और औषधों के भी अभाव में भक्ति से ही शिव पूजित हो जाया करते
 हैं । अखण्ड बिल्व पत्रों से एक बार ही शिव का पूजन करना चाहिये ।
 वह अक्षयी मर पापों से विदोष रूप में निर्मुक्त होकर रुद्रलोक में
 प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । जो मनुष्य एक बार लिङ्ग की पूजा
 घत्तूर के पुष्पों और पत्रों से किया करता है वह एक साल गौत्रों के दान

का फल प्राप्त करके शिवलोक में ही प्रतिष्ठित हुआ करता है । जो कोई मनुष्य भक्ति से बृहती के पुष्पो के द्वारा एकवार शिवनिष्क की पूजा करता है वह अयुन गौत्रो के दान कर फल प्राप्त करके शिव की सन्निधि में प्राप्त हुआ करता है । जो मनुष्य, मल्लिका, उत्पल, नाग, पुत्राग, चम्पक, अशोक, श्वेत मन्दार, शमी, तगर, केसर, कणिकाट, बक, करवीर, अर्क, कुश अपामार्ग, कुमुद, कदम्ब कुरव इन पुष्पो से जो भी यथा ममय प्राप्त होवें उनसे भगवान् शिव का जो मनुष्य पूजन किया करता है उसको जो भी पुण्य प्राप्त होता उसको एकाग्र मन वाला होकर श्रवण करो ॥५४-५०॥

सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः ॥५१

पुष्पमालापरिक्षिप्तैर्गीतवादित्रनिस्वनैः ।

तन्त्रीमधुरनादैश्च स्वच्छन्दगमनैस्तथा ॥५२

रुद्रकन्यासमाकीर्णैः समन्तादुत्सोभितैः ।

दाधूयमानश्चमरं शिवलोके महीयत ॥५३

अनेकाकारविन्यासैः कुमुदैश्च शिवगृहम् ।

य कुर्यात्पर्वकालेषु विचित्रकुमुदोज्ज्वलम् ॥५४

स पुष्पकविमानेन सहस्रपरिवारितः ।

दिव्यध्वीमुखसौभाग्यक्रीडारतिममन्वितः ॥५५

अक्षयाल्लभते लोकानतिरस्कृतशासनः ।

शिवादिसर्वलोकेषु यत्रेष्ट तत्र याति स ॥५६

सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले और करोड़ सूर्यों के समान दीप्यमान विमानों के द्वारा जाति पुष्पा की मालाओं से परिक्षिप्त होते हैं तथा गीत-वाहित्रा की ध्वनि से परिपूर्ण होते हैं एवं तन्त्री के मधुर नादा से युक्त होते हैं और स्वच्छन्द गमन करने वाले हैं । रुद्रा की विन्यासों से समशीर्ण और चारों ओर से सुगोभित विमान होते हैं— उनके ऊपर चमर डुनाये जाया करते हैं ऐसे विमानों से वे निवाचन गमन कर, शिव सोन की गमन किया करते हैं और वहाँ पर प्रतिष्ठित

रहते हैं। जो अनेक आकार वाले विन्यासों से और कुमुदों में पर्वकालों में भगवान् शिव के आयतन को विचित्र कुमुदा से उज्ज्वल किया करता है वह पुष्पक विमान के द्वारा महसों में परिवारित होकर दिव्य स्त्रियों के सुख सौभाग्य की क्रीडा रति से मयुत होता हुआ अक्षय लोको को प्राप्त किया करता है और उसका शासन वही पर भी तिरस्कृत नहीं होता है। वह शिवादि समस्त लोको में अपनी इच्छा के अनुसार ही गमन किया करता है ॥५१-५६॥

पूजादिभक्ति विन्यासैरर्चनादिषु सर्वत ।
 फलमेक सम ज्ञेय फल वित्तानुसारत ॥५७
 स्वयमुत्पाद्य पुष्पाणि य स्वय पूजयेच्छिवम् ।
 तानि साक्षात्प्रगृह्णाति देवदेवो महेश्वर ॥५८
 कृष्णागरो सत्पूर्वधूप दद्याच्छिवाय वै ।
 नैरन्तर्येण मासार्घ्यं तस्य पुण्यफल शृणु ॥५९
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ।
 भुक्त्वा शिवपुरे भोगास्तदन्ते पृथिवीपति ॥६०
 गुग्गुल धृतसयुक्त साक्षाद्गृह्णानि शकरः ।
 मासार्घ्यं धूपदानेन शिवलोके महीयते ॥६१
 कृष्णपक्षे चतुर्दश्या य माज्य गुग्गुल दहेत् ।
 स याति परम स्थान यत्र देव पिनाकधृत् ॥६२
 श्रीफल चाऽऽज्यसमिश्च दत्त्वाऽऽप्नोति परा गतिम् ।
 एभि सुगन्धितो धूप पद् सहस्रगुणोत्तरः ॥६३
 यस्त्वकं सपुटे कृत्वा मधु चार्घ्यस्य मन्त्रत ।
 निवेदयति सर्वाय सोऽश्वमेधफल लभेत् ॥६४

पूजा आदि-भक्ति विन्यासों के द्वारा अर्चना आदि में सब ओर से सबका समान एव ही फल होता है—ऐसा समझ लेना चाहिए। फल वित्त के ही अनुसार हुआ करना है ॥५७॥ जो स्वयं पुष्पों का उत्पादन करके और स्वयं ही भगवान् शिव का अर्चना किया करता है उनका

साक्षात् देवी के भी देव महेश्वर ग्रहण किया करते हैं ॥५८॥ शिव के लिये कपूर के साथ कृष्ण अमरु की धूप देनी चाहिये । इस तरह निरन्तरता से जो एक मास के अर्धभाग तक किया करता है उसका जो पुण्य-फल होता है उसे भी मुनसो ॥५९॥ एक सहस्र और सौ करोड़ कल्पों तक दिव्य भोगों का शिव के पुर में उपभोग करके उसके अन्त में वहाँ मत्सर में आकर पृथिवी पति राजा होगा है ॥६०॥ पृथ से संयुक्त गूगल की धूपको भगवान् शङ्कर साक्षात् ही ग्रहण किया करते हैं मास के अर्ध भाग तक ऐसा करने से अथवा धूपदान से मनुष्य शिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥६१॥ मास के कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि में घृत के सहित गूगल का दाह करना चाहिए । वह मनुष्य उभी परम स्थान को चला जाया करता है जहाँ पर पिनाकपारी देव विराजमान रहते हैं ॥६२॥ घृत से मिश्रित धीकन को मन्वित करके मनुष्य पराणति को प्राप्त हुआ करता है । इन पदार्थों से सुगन्धित धूप छै सहस्र उत्तर गुणों वाली होनी है ॥६३॥ जो आदमी आक के पत्र का सम्मुट बनाकर मन्त्र के द्वारा अर्घका मधु शिव को निवेदित किया करता है वह अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का फल प्राप्त कर लिया करता है ॥६४॥

शालितण्डुलप्रस्थेन कुर्यादन्न मुसमृतम् ।

शिवाय तच्चरु दत्त्वा चतुर्दश्या विशेषतः ॥६५

यावन्तस्तण्डुलास्तस्मिन्नैवेद्ये परिमथ्यया ।

तावद्धर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥६६

गुडसण्डघृतानां च भक्ष्याणां च निवेदनात् ।

घृतेन पाचिनाना तु दत्त्वा शतगुण भवेत् ॥ ६७

घृतदीपप्रदानेन शिवाय शतयोजनम् ।

विमान लभते दिव्य सूर्यकोटिसप्तप्रभम् ॥६८

यः कुर्यात्कार्तिके मासि शोभना दीपमानिकाम् ।

घृतेन च चतुर्दश्याममावास्या (यां वा) विशेषतः ॥६९

सूर्यायुतप्रतीकाशस्तेजसा भासयन्दिश ।
तेजोराशिर्विमानस्थ सूर्यवद्द्योतते सदा ॥७०

शिरसा धारयेद्दीप सर्वैरात्र्या विशेषतः ।
ललाटे वाऽथ हस्ताभ्या शिरसा वाऽथ नारद ॥७१

सूर्यायुतप्रतीकाशैर्विमानं सार्वकामिकैः ।
कल्पायुतशत दिव्य शिवलोके महीयते ॥७२

शालि-तण्डुल प्रस्थ से अन्न को सुसंस्कृत करना चाहिए । उसका चह भगवान् शिव के लिये विशेष रूप से चतुर्दशी में देवे । उस नैवेद्य में परिसंख्या में जितने भी चावल होंगे उतने ही सहस्र वर्षों तक वह शिव लोक में प्रतिष्ठित रहा करता है ॥६५॥६६॥ गुड, खांड और घृतों के भक्ष्य पदार्थों के निवेदन करने से जो केवल घृा में पाचित पदार्थ है उनको समर्पित करके सौगुना पुण्य फल प्राप्न किया करता है ॥६७॥ भगवान् शिवजी की सेवा में घृत के दीपक दान से शतयोजन वाला विमान प्राप्न करता है जो परम दिव्य और करोड सूर्यों के समान दीप्ति वाला होता है । ६८॥ जा आदमी कार्तिक मास में परम शोभन दीपो की मानिवा किया करता है । चतुर्दशी में घृत से दीपक जलाता है तथा विशेष रूप से अमावस्या में दीप दान करता है वह अयुत सूर्यों के प्रतिवाश वाले विमानों के द्वारा जिनमें सभी कामनाओं की पूर्ति के माघन विद्यमान थे गमन किया करते हैं और सौ अयुत कल्पों तक दिव्य शिव लोक में प्रतिष्ठित हुआ करते हैं ॥६९-७२॥

शिवस्य पुरतो दत्त्वा दपणं च सुनिर्मलम् ।

चन्द्राशुनिर्मलः श्रीमान्गुभगः कामरूप धृत् ॥७३

कल्पयुतसहस्र तु शिवलोके महीयते ।

कृत्वा प्रदक्षिण भवत्या शिवस्याऽऽयतन नरः ॥७४

अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोति नारद ।

कू नारामप्राप्तं स्तु शिवागतनकर्मणि ॥७५

उपयुक्तानि भूतानि खननात्पातनादियु ।
 कामतोऽकामतो वाऽपि स्याद्वराणि चराणि च ॥७६
 शिव यान्ति न सदेह प्रसादात्परमेष्ठिन ।
 क्रोशमात्र शिवक्षेत्र समन्तात्परमेष्ठिन ॥७७

भगवान् शिव के आगे मुनिर्मल दर्पण को समर्पित करके जो अर्चन करता है वह स्वयं चन्द्र किरण के समान निर्मल होकर कामदेव के तुल्य सुन्दर स्वरूप को धारण करने वाला श्रीमान् मुभग सहस्र आयुत वरूप पर्यन्त शिव लोक में प्रनिष्ठा प्राप्त किया करता है । मनुष्य भक्ति भावना से शिव के आयतन की प्रदक्षिणा करके हे नारद ! एक सहस्र अश्वमेध यज्ञों के यजन करने का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है । शिव के आयतन कर्म में कूप-आराम और प्रसा (प्याऊ) आदि से खनन और उखाटन आदि में जो भूत उपयुक्त होते हैं, चाहे इच्छा में और भले ही बिना ही इच्छा के रथावर और परमव परमेष्ठी के प्रसाद से शिवकी सतिधि को प्राप्त किया करते हैं—इसमें लेशमात्र की मन्देह नहीं है । परमेष्ठी प्रभु के गर्भी ओर एक कोश भर तर शिव का क्षेत्र होता है । तात्पर्य यह है कि शिवालय के चारों ओर एक कोश तर शिव का ही क्षेत्र माना जाता है ॥७६-७७॥

देहिना तत्र पञ्चत्व शिवगामुज्यरारणम् ।
 मनुष्यस्यापिते लिङ्गे क्षेत्रमनिमिदं मृतम् ॥७८
 स्त्रायमुवे योजनं स्यादार्षे चंद्र तदधरम् ।
 पापाचारोऽपि यस्तत्र पञ्चश्व याति नारद ॥७९
 गोऽपि याति शिवस्थानं यद्देवैरपि दुर्लभम् ।
 तस्मात्सर्वप्रयत्नतः तत्र स्नानादिकं चरेत् ॥८०
 तस्मादावसय कुर्याच्चिद्धक्षेत्रममीपतः ।
 शिवलिङ्गसमीपस्य यत्तोय पुरतः स्थितम् ॥८१
 शिवगङ्गेति मज्ञेय तत्र स्नानादिना व्रजेत् ।
 य कुर्याद्दीर्घमां वाऽपि ब्रूय वाऽपि शिवधामे ॥
 शिवल्लुप्तमयुक्त शिवभोके महीपते ॥८२

इस शिव के क्षेत्र में देहधारियों की मृत्यु यदि हो जाती है तो वह शिव के सामुज्य प्राप्त कराने का कारण हुआ करता है। मनुष्य के द्वारा स्थापित किये हुए शिव लिङ्ग का यह क्षेत्रमात्र बताया गया है। स्वायम्भुव में एक योजन (योजन ४ कोस का होता है) और ऋषियों के द्वारा यदि स्थापित शिव लिङ्ग हो तो उनका क्षेत्र स्वायम्भुव से आधा हुआ करता है। हे नारद ! कंस ही पाप पूर्ण आचार वाला भी कोई वहाँ पर मृत हो जावे तो वह भी शिव के स्थान को गमन किया करता है जो कि देशों के द्वारा भी प्राप्त करना अत्यन्त दुर्लभ हुआ करता है। इसीलिये सभी प्रयत्नों से वहाँ पर स्नान आदि करना चाहिये और इसी कारण से शिव के क्षेत्र के समीप ही अपना निवास रखना चाहिये। शिव के लिङ्ग के समीप में जो जल आगे स्थित है वह शिवगङ्गा इस सजा वाली है। वहाँ पर स्नानादि करके ही गमन करे। जो कोई शिवाश्रय में कुशा या दीघिका (बावड़ी) बनवाता है वह अपने इक्कीस कुलों के महित जिवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥७८-८२॥



॥ शिवार्चन साहस्र्यादि कथन ॥

पुष्पं वा यदि वा पत्रं सकृदलिङ्गे समर्पितम् ।

तदनन्तकालं प्रोक्तं हेतुर्भवति मुक्तये ॥१॥

तुष्टे शिवे पदार्थः को दुर्लभो हि नृणां प्रभो ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शिवप्रीत्यर्थं माचरेत् ॥२॥

तावद्दातुं शिवः शक्तस्तथावच्छिन्तयितुं प्रभुः ।

तत्सर्वं न नरः सौम्यं शिवप्रीत्यर्थं माचरेत् ॥३॥

ऋद्धिसिद्धौ न दूरस्थे शिवप्रीत्यर्थं कर्मणाम् ।

नराणां नरनाथे किं प्रीते तु दुर्लभं भवेत् ॥४॥

शिरसा शिवनिर्माल्यं भक्त्या यो धारयिष्यति ।
 अशुचिभिन्नमर्यादः सर्वावस्था गतोऽपि वा ॥१६
 स्वैरी चैवाप्रयुक्तात्मा नियमैश्च बहिष्कृतः ।
 तस्य पापानि नश्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥१७
 मोहान्न धारयेच्छंभोर्निर्माल्यं न च भक्षयेत् ।
 न स्पृशेदपि पादेन लङ्घयेन्नापि नारद ॥११
 निर्माल्यलङ्घनाच्छंभोश्चाण्डाल. सोऽभिजायते ।
 पृथूदक महत्तीर्थं गङ्गा च यमुना तथा ॥१२
 नर्मदा सरयू. क्षिप्रा तथा गोदावरी नदी ।
 सदा सन्निहितास्त्वेवं शंभोः स्नानोदके मुने ॥१३
 शंभोः स्नानोदकं सेव्य सर्वतीर्थमयं हि तत् ।
 धारणात्पापसंघातैस्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥१४

पार्वती पति के निर्माल्य को जो भक्ति भाव से शिर पर धारण करता है वह राजसूय यज्ञ के भजन करने का ही उत्तम पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है । ८८ शिर से भक्ति भावना के साथ जो शिव के निर्माल्य को धारण करेगा चाहे वह अशुचि हो अथवा मर्यादा का भेदन करने वाला सभी अवस्थाओं में रहने वाला भी क्यों न हो । स्वैरता से समाचरण करने वाला—अप्रयुक्त आत्मा वाला और नियमों से बहिष्कृत ही उसके सभी पाप विनिष्ट हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता ही नहीं है । १६।१७। जो मोह से शिव के निर्माल्य को धारण नहीं किया करता है अथवा उसका भक्षण नहीं करता है । हे नारद! उस शिव निर्माल्य को पैर से कभी स्पर्श नहीं करे और न उसका कभी उल्लङ्घन ही करना चाहिए । ११। शम्भु के निर्माल्य के लक्षण करने से वह मनुष्य चाण्डाल होकर उत्पन्न हुआ करता है । हे मुने! पृथूदक यह तीर्थ-गङ्गा-यमुना-नर्मदा-सरयू-क्षिप्रा तथा गोदावरी नदी शम्भु के स्नानोदक में सदा सन्निहित रहा करती है । १२।१३। शम्भु के स्नान । जल सदा ही सेवन करना चाहिए क्योंकि वह सभी तीर्थों से परिपूर्ण

हैं। उसके केवल धारण करने ही से समस्त पापों के सघातों से मनुष्य उसी क्षण में मुक्त हो जाया करता है। ११४।

लिङ्गे श्वायं भुवे वारणे रत्नजे रसनिर्मिते ।
 सिद्धप्रतिष्ठिते लिङ्गे न चण्डोऽघिकृतो भवेत् ॥१५॥
 पादोदकं च निर्मात्र्य भक्तैर्धार्यं प्रयत्नत ।
 न तान्मृशन्ति पापानि मनोवाकायजान्यपि ॥१६॥
 किं लिङ्गं प्रोच्यते तात केन वा तदघिष्ठितम् ।
 भगवन्ब्रूहि मे सर्वमाश्चर्यं ह्येतदुत्तमम् ॥१७॥
 अव्यक्तं लिङ्गमित्युक्तमानन्दतमसपरम् ।
 महादेवस्य यत्नेन लिङ्गी स्यात्तेन शकर ॥१८॥
 एकार्णवे पुरा घोरे नष्टे श्यावरजङ्गमे ।
 मम विष्णो प्रबोधार्थमाविर्भूत शिवात्मकम् ॥१९॥
 तदाप्रभृत्यहं विष्णुर्भक्त्या परमया मुदा ।
 लिङ्गमूर्तिधर शान्तपूजयावो वृषध्वजम् ॥२०॥

स्वायम्भुव लिङ्ग मे—वाण मे—रत्नों से निर्मित मे—रस के द्वारा (पारे से) निर्मित मे—सिद्धों के द्वारा प्रतिष्ठित मे कभी चण्ड अघिकृत नहीं हुआ करता है। १५। शिव का पादोदक निर्मात्र्य भक्तों को मदा ही धारण करना चाहिए और प्रयत्न पूर्वक धारण करे। उन मनुष्यों को मन वाणी और शरीर से कभी भी पाप स्पर्श नहीं किया करते हैं। १६। श्री नारद जी ने कहा—हे तात ! लिङ्ग किसको कहा जाता है और किसके द्वारा वह अघिष्ठित होता है। हे भगवान ! यह सभी आप हमारे सामने बतलाइये। यह एक उत्तम आश्चर्य ही है। १७। श्री ब्रह्माजी ने कहा—जो अव्यक्त है वही लिङ्ग कहा गया है। वह आनन्द स्वरूप होता है और तय से परे है। यत्न से महादेव का लिङ्गी होना चाहिए उससे शकर होना है। १८। प्राचीन समय में पहिले जिय समय में परम घोर एक अर्ण कही था और सभी श्यावरज या जगज्ज भ्रष्ट हो गये थे तो मेरे विष्णु के प्रबोध प्रदान करने के लिए शिवात्मक

अविभूत हुए थे । तभी स लेकर मैं और विष्णु देव भविष्य से परमान्वित आनन्द के साथ लिङ्ग मूर्ति के धारण करने वाले एव परम शान्त वृषभ ध्वज भगवान् वा पूजन किया करते हैं । १२०।

लिङ्ग कथमभूत्पूर्वमानन्दमजर ध्रुवम् ।

प्रबोधार्थं च युवयोर्देवैस्तु महंसि पद्यज ॥२१॥

आसीदेकाणवे घोरे निर्विभागे तमोमये ।

शेते च भगवान्विष्णुस्तप्तजाम्बूनदप्रभ ॥२२॥

तत्समीपमहं गत्वा सरस्भादिदमुक्तवान् ।

कस्त्व किमर्थं वा शेषे शीघ्रमृत्तिष्ठ दुर्मते ॥२३॥

कुरु युद्ध मया साधंमहमेव जपत्यति ।

अथ वा भज मा देव त्रैलोक्यस्याभयप्रदम् ॥२४॥

एव गद्वचन श्रुत्वा प्रहसन्मधुसूदन ।

मामन्नवीदभेयात्मा कथं गर्वायसे मुधा । २५।

कर्ताऽहं सर्वलोकानां पालकोऽहं न सशय

सहर्ताऽहं पुत्रश्चान्ते तान्योऽस्मि सहशो मया । २६।

एव विवादे सजाते मम देवेन शार्ङ्गिणा ।

प्रादुर्भूत तदा लिङ्गमावयोर्दर्पहारि तत् । २७।

कालाग्निप्रयुतप्रस्य ज्वालामालासमाकुलम् ।

आदिमस्यान्तरहित क्षयवृद्धिविर्वाजितम् । २८।

श्री नारदजी ने कहा—यह लिङ्ग पूर्व में आनन्द स्वल्प और ध्रुव एव अजर कैस हुआ था जो कि दोनों पुत्रों के प्रबोधार्थ कराने के लिए ही हुआ था । हे पद्यमन् ! यह सब आप बताने के लिये परम सुयोग्य हैं । १२१। श्रीब्रह्माजी ने कहा—जिम समय मैं यहाँ पर एक मान सबन अर्धन ही था और यह स्वत परत घोर एव तमोमय था उस समय में तपाये हुए सुवर्ण के समान प्रभा वाले भगवाद् विष्णु उसमें शयन किया करते हैं । उनका समीप में मैंने जाकर सरम्भ से इस प्रकार से कहा था—हे दुर्मते ! आप कौन हैं और क्यों शयन कर रहे हैं । शीघ्र ही

उठिये । मेरे साथ युद्ध करो क्योंकि मैं ही प्रजापति हूँ । अथवा देव मेरा यजन करो क्योंकि मैं जललोक्य को अभय प्रदान करने वाला हूँ । १२२-२४। इस तरह के वचना का श्रवण करके मधुसूदन हसते हुए मुझसे कहने लगे क्योंकि वे तो अमेवात्मा थे । उन्होने कहा — क्यों वृथा गर्व कर रहे हो ? १२५। इन समस्त लोकों का मैं कर्ता हूँ और मैं ही इनके पालन करने वाला भी हूँ — इसमें कुछ भी सशय नहीं है । अन्त काल मैं ही इनके सहार का भी करने वाला हूँ और मेरे सहस्र अन्य कोई भी नहीं है । १२६। इस तरह से विवाद के हो जाने पर जो कि मेरा देव शार्ङ्गों के साथ हो गया था । उसी समय मे हम दोनों के दर्प को हरने वाला लिङ्ग प्रादुर्भूत हो गया था जो कालाग्नि प्रयुतप्रत्य था और ज्वालाओं की मालाओं से समाकुल था । वह आदि-मध्य और अन्त से भी रहित तथा क्षय एव वृद्धि से वर्जित था । १२७-२८।

तस्मिँल्लिङ्गे महादेव म्वयज्योति सनातन ।

सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात् । १२६।

अर्धनारीश्वरोऽनन्तस्तेजोराशिर्दुःरासद ।

ज्येष्ठत्व युवयोस्तावदास्ता किञ्चिह्रवीम्यहम् । ३०।

मूल ममास्य लिङ्गस्य यदि पश्यति माधव ।

नून भविष्यति ज्येष्ठ इति देवेन भापितम् । ३१।

मूर्धानमस्य लिङ्गस्य यदि पश्यति पद्मज ।

भविष्यति ततो ज्येष्ठ इति देवेन भापितम् । ३२।

एव शभोनिगदितमुररीकृत्य नारद ।

गतोऽस्मि मस्तक द्रष्टु तस्य लिङ्गस्य पुत्रक । ३३।

आवयोर्बर्षमाहस्र गच्छनोर्मोहितात्मनो ।

गत देवऋषे नून विस्मयाविष्टचित्तयो । ३४।

हरिर्मूलमहृष्टं व त देव पुनरागत ।

यथा हरिस्तथैवाहमागतो वै मूने तदा । ३५।

तमेव शरणं गत्वा संस्तूय विविधैः स्तवैः ।

प्रीतो भूत्या महादेवो वाक्यमेतदुवाच ह ।३६।

उस लिङ्ग मे स्वयं ज्योति—सनातन महादेव ही थे जो सहस्र शीशों वाले—सहस्राक्ष और सहस्रपात् पुत्र थे । वे अर्धनारीश्वर—अनन्त—तेज की राशि—दुरामद थे । तुम दोनों का ज्येष्ठत्व तब तक ही जब तक मैं कुछ बोलता हूँ । हे माधव ! मेरे इस लिङ्ग का मूल देखें तो आप निश्चय ही ज्येष्ठत्व को प्राप्त हो जायेंगे—मह देव ने उस समय मे कहा था ।२६।३०।३१। पद्मन (ब्रह्मा) यदि इस लिङ्ग के मूर्धा को देख लेते हैं तो वह ज्येष्ठ हो जायेंगे—यह भी देव ने कहा था ।३२। हे नारद ! इस प्रकार के शम्भु के कथन को स्वीकार करके मैं मस्तक को देखने से लिये गया था जो कि हे पुत्र ! उस लिङ्ग का था ।३३। हे देवधरे ! मोहित आत्मा वाले तथा विस्मय से आविष्ट चित्त वाले हम दोनों को इस तरह से एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे ।३४। श्री हरि ने उस लिङ्ग के मूल को नहीं देखा था और वे यो ही पुनः समागत हो गये थे । उस समय मे जैसे हरि आये थे वैसे ही मैं भी आ गया था । उन्हीं की शरण मे जाकर विविध स्तवों से उनकी स्तुति की थी तब महादेवजी परम प्रसन्न होकर यह वाक्य बोले थे ।३५।३६।

मत्प्रसादेन सर्वस्मादधिको भव माधव ।

मद्भक्तानां त्वमेवाग्यः पूज्यो मान्यस्त्वमेव हि ।३७।

लिङ्गे मा पूजय हरे लिङ्गमूर्तिधरो ह्यहम् ।

अत ऊर्ध्वं न संदेहः सर्वे चान्ये दिवोकसः ।३८।

लिङ्गाराधनतः क्षिप्रमज्ञानं नाशयाम्यहम् ।

लिङ्गार्चनस्तानां च नास्ति सत्तारजं भयम् ।३९।

एव हरेर्गार दत्त्वा मामुवाच महेश्वरः ।

विरश्चं तत्र दास्यामि गृहाण वरमुत्तमम् ।४०।

चराचरस्य जगतो मान्यो भव पितामह ।

गृहाण चतुरो वेदाश्चतुर्भिर्गदनीविधे ।४१।

इत्यावाभ्या वर दत्त्वा देवदेव पिनाकघृत् ।

त्रिश्वेश्वर स्वयम्ग्योति क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ।४२।

ईश्वर ने कहा था—३ माघव ! अब आप मेरे प्रमाद से आप सत्रस अधिक हो जाइय । मेरे भक्तों के लिये भी आप ही अग्र म रहने वाले होंगे और आप ही पूज्य एव मान्य होंगे । ह हरे ! मेरा पूजन लिङ्ग में ही करिए क्योंकि अब मैं लिङ्ग की मूर्ति का धारण करने वाला हो गया हू । इनके आगे सभी अन्य दवगण भी लिङ्ग के ही आराधना करने म रति जाने हाग । जो मेरी आराधना करने वाले हैं उनके अज्ञान को मैं शीघ्र ही विनष्ट कर देता हूँ । जो लिङ्ग के अर्चन में निरत रहा करते हैं उनको कभी भी सत्तार से समुत्पन्नमय नहीं हुआ करता है ।३७।३८।३९। इस प्रकार से हरि को वरदान प्रदान करके महेश्वर ने मुझसे कहा था—ह विरञ्जे ! मैं तुमको भी उत्तम वरदान दू गा । आप उसको ग्रहण कीजिए ।४०। हे पितामह ! आप इस चराचर जगत् के मान्य हा जाइए । देखिये ! आप अपने चार मुखों से चारा वेदों को ग्रहण कीजिए ।४१। इस तरह से हम दोनों को वरदान देकर देवों व भी देव पितावधारी प्रभु विश्वेश्वर स्वयं ज्योति एव ही क्षण म वही पर अन्तर्धान हो गये ।४२।

तत प्रभृति विष्ण्वाद्या देवा दंत्याश्च दानवा ।

गन्धर्वा मुनय सिद्धा यक्षा नागाश्च किनरा ।४३।

सपूज्य परम लिङ्ग परा सिद्धि गता मुने ।

नास्ति लिङ्गार्चनादान्यच्छ्रयोऽस्मिन्भुवनत्रये ।४४।

ज्ञात्वा त्वमेव देवयें लिङ्गार्चनरतो भव ।

क्षेत्रेषु चैव तीर्थेषु वनेषूपवनेषु च ।४५।

यानि लिङ्गानि दिव्यानि स्थापितानि गुरामुरे ।

द्रष्टव्यानि पुर्वंस्तानि श्रद्धयैव हि नारद ।४६।

मुक्तिभाजो भवन्त्येव तेऽपि शंभोरनुग्रहान् ।४७।

कानि स्थानानि दिव्यानि येषु सनिहित. शिव. ।
 आचक्ष्व तानि मे ब्रह्मन्याहात्म्य चापि कृत्स्नशः ।४८।
 माहात्म्य दिव्यलिङ्गानां तीर्थानामपि नारद ।
 अत्र ते कथयिष्यामि श्रूयतामघशास (नाश) नम् ।४९।

हे मुने ! तभी से लेकर विष्णु आदि देवगण—दैत्य—दानव—
 गन्धर्व—मुनि—सिद्ध—यक्ष—नाग—किन्नर इन सबने परम लिङ्ग
 की पूजा करके परासिद्धि को प्राप्त हो गये थे । इन तीनों भुवनो में
 लिङ्ग के अर्चन से अन्य कोई भी श्रेय नहीं है । हे देवर्षे ! आप भी
 इसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करके लिङ्ग के अर्चन में निरत हो जाइये ।
 क्षेत्रो मे—वनो मे—उपवनो मे—तीर्थो मे जो दिव्य लिङ्ग गुरामुरो ने
 स्थापित किये हैं । ब्रह्मपुरषो को उनका दर्शन करना ही चाहिए और
 हे नारद ! बहुत ही श्रद्धा की भावना से ही उनका दर्शन करे । वे लोग
 जो दर्शन किया करते हैं मुक्ति को प्राप्त करने वाले हो जाया करते हैं ।
 यह भवगान् पम्भु का ही परम अनुग्रह उा पर हुआ करता है । श्री
 नारदजी ने कहा—वे दिव्य स्थान कौन से हैं जिनमें भगवान् शिव
 नित्य सन्निहित रहा करते हैं । हे ब्रह्मन् ! उनको आप मुझे बतला
 दीजिए और पूर्ण रूप में उनका माहात्म्य भी बतला दीजिए । श्री ब्रह्मा
 जी ने कहा—हे नारद ! दिव्य लिङ्गों का माहात्म्य और उन तीर्थों का
 भी माहात्म्य यहाँ पर मैं आपको बतला दूँगा उसका श्रवण आप साव-
 धान होकर श्रवण करिये क्योंकि यह समस्त अधो का विनाश करने
 वाला है ।४२—४९।

या मा शैवी परा भूतिः शिवभक्त्या ह्यपा पतिः ।
 नारायण. स्वय साक्षादहं चान्यादच देवताः ।५०।
 वसन्ति सागरे नूनं तीर्थराजेति स स्मृतः ।
 जम्बूद्वीपं महापुण्यं तत्रापि लवणोदधिः ।५१।
 अहोरात्रतृप्त पापं दर्शनादेव नश्यति ।
 स्पृष्ट्वा त्रिरात्रस्य पापं नाशयत्येव सागरः ।५२।

सप्तरात्रकृत पापं प्रोक्षणादेव नश्यति ।
 पानेन पक्षजनित स्नानात्पक्षद्वयस्य च ।५३।
 ऋतुद्वये तथाऽष्टम्या पूर्वास्नानं च वार्षिकम् ।
 भानावनुदिते नित्यं यः स्नाति लवणोदधौ ।५४।
 कपिलाया फल तस्य दत्ताया श्रोत्रिये ध्रुवम् ।
 उपोष्य रजनीमेका रविसंक्रमणं प्रति ।५५।
 स्नात्वा शतसुवर्णस्य दत्तास्य फलमाप्नुयात् ।
 व्यतीपाते दिनच्छिद्रे अ (ह्य) यने विपुत्रेषु च ।५६।

जो भगवान् शिव की परामूर्ति है वह शिव की भक्ति से वरुण-
 नारायण और स्वयं साक्षात् में तथा अन्य देवगण उम सागर में निवास
 करते हैं और वह तीर्थराज इस नाम से कहा गया है । जम्बूद्वी महात्
 पुण्य से परिपूर्ण है । वहाँ पर भी शीर सागर है । अहरोत्र वृत्त पाप उमके
 दर्शन से ही नष्ट हो जाया करता है । स्पर्श करने पर वह सागर तीन
 रात्रियो म किये हुए पाप का विनाश कर दिया करता है । सात रात्रि
 में किया हुआ पाप प्रोक्षण करने ही से नष्ट हो जाता है । पान करने
 से एक पक्ष में किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है और स्नान करने से
 एक मास में किया हुआ पाप नष्ट होता है । दोनो ऋतुओ में—अष्टमी
 तिथि और वार्षिक पर्वों में स्नान सूर्य के उदित न होने पर ब्रह्म मुहूर्त
 में जो नित्य ही इस लवणोदधि में स्नान किया करता है उसका फल
 वैसा ही होता है जैसा कि किसी श्रोत्रिय त्रिप्र को कपिला गौ के दान
 देने में पुण्यफल हुआ करता है । सूर्य के संक्रमण करने के समय में
 एक रात्रि तक उपवास करके और स्नान करके जो शत सुवर्ण के दान
 का फल होता है वैसा ही पुण्य हुआ करता है । व्यतीपस्त में—दिन के
 छिद्रे में—अयन में और विपुत्रेषु में स्नान करने का बड़ा महत्त्व है ।
 ।५०-५६।

युगादौ च नरः स्नात्वा विधिवत् लवणोदधौ ।
 गोमहस्यस्य दत्तास्य पुण्योत्थे फलं हि यत् ।५७।

तत्फलं लभते मर्त्यो भूमिदानस्य च ध्रुवम् ।
 दानानि यानि लोकेषु विख्यातानि मनीषिभिः ॥५८॥
 तेषां फलमवाप्नोति ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
 वडवानलमुक्तोऽसौ पूतो भवति नारदः ॥५९॥
 अतोऽस्माद्धि परं नास्ति मुतीर्थमवनीतले ।
 गङ्गा गोदावरी रेवा चन्द्रभागा च वेदिना ॥६०॥
 एतासां सगमो यत्र स्नानं कुर्यान्महोदधौ ।
 यानि पापानि घोरानि भ्रूणहत्यादिकानि च ॥६१॥
 नाशयान्ति क्षणादेव सगमस्य प्रभाषतः ।
 अश्वमेधसहस्रस्य फलं च भवति ध्रुवम् ॥६२॥
 समुद्रतीरे परमं तेजोलिङ्गं दुरासदम् ।
 यत्र सिद्धा पुरा वत्स मुनयः सप्तकोटयः ॥६३॥

युग के आदि दिन में विधिपूर्वक मनुष्य स्नान लवणोदधि में करके
 सुरक्षेत्र में एक सहस्र गौओं के दान देने में जो फल होता है वही पुण्य
 पत्र मनुष्य प्राप्त किया करता है और भूमि के दान का पुण्य-फल भी
 प्राप्त हो जाता है। मनीषियों के द्वारा लोगों में जो भी दान विख्यात
 किये गये हैं उन सबका फल चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में प्राप्त होता है।
 हे नारद ! वह मनुष्य वडवानल से मुक्त होकर पूत हो जाया करता
 है ॥५७॥५८॥५९॥ इसीलिये इस तीर्थ में परमतीर्थ इस अवनीतल में
 दूसरा कोई भी नहीं है। गङ्गा—गोदावरी—रेवा—चन्द्रभागा—
 वेदिना इन नदियों का जहाँ पर सङ्गम होता है वही पर महोदधि
 में स्नान करना चाहिए। गङ्गामें स्नान का बड़ा भारी अधिक प्रभाव
 होता है। उगमें जो भी महात् घोर भ्रूण हत्या आदि पाप होने हैं वे
 सब एक ही क्षण में नाश हो जाया करते हैं। एत सहस्र
 अश्वमेध यज्ञ के यजन करने का फल भी निश्चिन रूप में हुआ करता
 है। समुद्र के तट पर परम दुरासद तेजोलिङ्ग विराजमान हैं।
 हे वत्स ! जहाँ पर पहिले सिद्ध और सात करोड़ मुनिगण निवास किया
 करते थे ॥६०—६३॥

सप्तकोटीश्वर नाम तत्र प्रभृति नारद ।
 तस्य लिङ्गस्य माहात्म्य मया वक्तुं न शक्यते ॥६४
 स्मरणादस्य लिङ्गस्य गोसहस्राफल लभेत् ।
 समुद्रे विधिवत्स्नात्वा सप्तकीरिश्वर शिवम् ॥६५
 ये द्रक्ष्यन्ति महात्मानो मुक्तिभाजो भवन्ति ते ।
 राजसूयस्य यज्ञस्य सहस्रगुणित फलम् ॥६६
 तथा गोमेधयज्ञस्य दर्शनात्तत्फल त्वह ।
 सप्तकोटीश्वरो देवो दृष्टश्चेद्भूवि मानवं ॥६७
 धन्यास्ते ये च लोकेऽस्मिन्स्तेषां मुक्तिं करे स्थिता ।
 तत्र स्नानं जपो होमो दानं च पितृतर्पणम् ॥६८
 सर्वं तदक्षयं प्रोक्तं सप्तकोटीश्वरे शिवे ।
 सप्तकोटीश्वरं प्राप्य कथं शोचन्ति जन्तव ॥६९

हे नारद ! तभी से लेकर उस लिङ्ग का नाम सप्त कोटीश्वर पढ़ गया था । उस लिङ्ग का माहात्म्य मेरे द्वारा तो वर्णित नहीं किया जा सकता है ॥६४॥ इस लिङ्ग के केवल स्मरण से ही एक सहस्र गोओं के दान का फल प्राप्त हो जाता करता है । उस समुद्र में विधिपूर्वक स्नान करके सप्तकोटीश्वर शिव का जो दर्शन करेंगे वे महान् आत्मा वाले मनुष्य मुक्ति के भागी हुआ करते हैं और उनको राजसूय यज्ञ का जो फल होता है उसमें सहस्र गुना पुण्य फल हुआ करता है ॥६५॥६६॥ तथा गोमेध यज्ञ का फल यहाँ पर दर्शन से ही हो जाता करता है । यदि मानवों के द्वारा सप्त कोटीश्वर देव का भूगणित में दर्शन कर लिया गया है तो परम शोभाय की बात है । वे पुरुष इस लोका में परम धन्य हैं और मुक्ति तो उनके हाथों में स्थिर रहा करती है । यहाँ पर स्नान, जप, होम, दान और पितृ तर्पण ये सभी सप्त कोटीश्वर शिव के स्थान में अर्पण किये गये हैं । यह आश्चर्य की बात है कि सप्त कोटीश्वर लिङ्ग की प्राप्ति करके जन्तुगण कौन शोच दिया करते हैं ॥६७ ६८॥

सर्वानुग्राहको रुद्रस्तस्तिर्लिङ्गे व्यवस्थितः ।
 न तच्छैलमय लिङ्गं न तद्धैम न राजतम् ॥७६
 न तद्रत्नमय लिङ्गं ज्ञातव्यं मिति नारद ।
 किं तज्ज्योतिर्मय लिङ्गं शंभु पदमनामयम् ॥७७
 सप्तकोटीश्वर लिङ्गं प्राहुर्वेदविदो बुधाः ।
 अहं नारायणो देवः शक्रश्चन्द्रो दिवाकरः ॥७८
 मरुतो मुनयः सिद्धाः खेचरा भूचराश्च ये ।
 अर्चयित्वा परं लिङ्गं सप्तकोटीश्वरं शिवम् ॥
 प्राप्तवन्तः परां सिद्धिं तस्मिन्लिङ्गे च नारद ॥७९

उस लिङ्ग में व्यवस्थित रुद्र सब पर अनुग्रह करने वाले हैं । वह शैलमय, हैम, राजत, रत्नमय लिङ्ग नहीं है हे नारद ! ऐसा ही जान लेना चाहिए किन्तु वह ज्योतिर्मय लिङ्ग है जो भगवान् शिव का अनामय पद है ॥७७॥७८॥ वेदों के ज्ञाता बुध पुरुष इसको सप्त कोटीश्वर लिङ्ग ही कहा करते हैं । मैं, नारायण देव, इन्द्र, चन्द्र, दिवाकर, मरुद्गण, मुनि, सिद्ध, खेचर और जो भूचर है वे सब सप्तकोटीश्वर शिव लिङ्ग का अम्यर्चन करके उस लिङ्ग में हे नारद ! परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं ॥७९॥७९॥

॥ महाकाल माहात्म्य कथन ॥

सज्जयिष्यां महाकाल ये वै पश्यन्ति मानवाः ।
 अवाप्नुयुः परं लोकं यत्र गत्वा न शोचति ॥१
 महाकालस्य लिङ्गस्य दिव्यलिङ्गं तदुच्यते ।
 स्पर्शनात्तस्य लिङ्गस्य सशरीराः शिवं ययुः ॥२
 तज्ज्ञात्वा च मया तत्र पापाणः कुक्कुटाकृतिः ।
 निक्षिप्तश्च महाकाले ततोऽभूत्कुम्भदेवः ॥३

तत्रैव नगरे रम्ये शूलेश्वर इति स्मृतः ।

तस्य दर्शनमात्रेण ह्ययमेघफल लभेत् ॥४

शूलेश्वरस्य पूर्वे तु अकार लिङ्गमुत्तमम् ।

तत्र कुण्ड महादिव्य पूरितं पुण्यवारिणा ॥५

स्नान समाचरस्तत्र प्रयतात्मा समाहितः ।

द्वितीयेऽह्नि तृतीयेऽह्नि दशमे वाऽपि नारद ॥६

पक्षे मासेऽथ पण्मासे स्वप्ने पश्यति शकरम् ।

दिव्य ज्ञानमवाप्नोति देवानामपि दुर्लभम् ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—उज्जयिनी पुरी में महाकाल शिव है । जो मनुष्य उनका दर्शन किया करत है वे परमोत्कृष्ट लोक की प्राप्ति किया करते हैं जहाँ पर पहुँच कर फिर कुछ भी चिन्ता नहो किया करते हैं । १। महाकालेश्वर का जो लिङ्ग है वह दिव्य लिङ्ग कहा जाता है उस लिंग के केवल स्मरण करने ही से मनुष्य शरीर के सहित ही शिव को प्राप्त होगये है ॥२॥ यह जानकर मैंने एक कुक्कुट की आकृति वाला पापाश महाकाल में निक्षिप्त कर दिया था तभी से वह कुक्कुटेश्वर हो गये हैं । ३। उसी पक्ष रम्य नगर में शूलेश्वर कहे गये हैं । उनके दर्शन मात्र से ही हयमेघ यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है ॥४॥ इन शूलेश्वर के पूर्व में अकारेश्वर नामक उत्तम शिवलिङ्ग है । वहाँ पर एक महान् दिव्य कुण्ड है जो परम पुण्य जल से भरा हुआ है ॥५॥ वहाँ पर स्नान का समाचरण करता हुआ प्रयत आत्मा वाला समाहित होकर द्वितीय दिन में, तीसरे दिन में, दसवें दिन में हे नारद । पक्ष में, मास में अथवा पण्मास में या स्वप्न में शङ्कर को देखा करता है । वह फिर परम दिव्य ज्ञान की प्राप्ति किया करता है जो कि ज्ञान देवगणों को भी अत्यन्त दुर्लभ हुआ करता है ॥६॥७॥

य पश्येल्लिङ्गमोकार स्नात्वा कुण्डे समाहितः ।

दीक्षासहस्रस्य फल प्राप्य याति परा गतिम् ॥८

तत्र वागस्त्यमुनिना तपसाऽऽराधित शिव ।
 प्रादुर्भूतश्च भगवानगस्त्येश्वरनामत ॥९
 प्रसिद्धो दशनात्तस्य ब्रह्महत्या व्यपोहति ।
 तत्रैव शक्तिभेदाख्य तीर्थं मुनिविपेवितम् ॥१०
 तत्र स्नात्वा भद्रवट यस्तु पश्यति मानव ।
 सबपापविनिर्मुक्त स्कन्दलोके महीयते ॥११
 तीर्थानि कोटिश मन्ति उज्जयिन्या समन्त ।
 तेषा माहात्म्यमखिल स्कान्दे स्कन्देन भाषितम् ॥१२
 कुरुक्षेत्रे तु देवर्षे स्थाणुर्नाम महेश्वर ।
 तपस्तप्त्वा मया तत्र प्राप्त ब्रह्मत्वमुत्तमम् ॥१३
 वालखिल्यादयस्तत्र सिद्धिं प्राप्ता परा द्विजा ।
 तत्राऽऽमीत्पुलह पूर्व मशक स्थाणुमन्दिरे ॥१४

जो पुरुष समाहित होकर कुण्ड में स्नान करके ॐकार लिङ्ग का दशन किया करता है वह एक सहस्र दीक्षाओं का पुण्य, फल प्राप्त करके परागति को प्राप्त किया करता है ॥८॥ वहाँ पर ही अगस्त्य मुनि ने तप के द्वारा भगवान् शिव की आराधना की थी और अगस्त्येश्वर के नाम से भगवान् प्रादुर्भूत हुए थे । वे इसी नाम से ही फिर प्रसिद्ध होगये थे । उनके दशन में मनुष्य ब्रह्महत्या का व्यपोह कर दिया करता है । वहाँ पर ही मुनियों के द्वारा निपेवित शक्ति भेद नाम वाला तीर्थ है ॥९॥१०॥ वहाँ पर स्नान करके जो मनुष्य भद्रवट को देखना है वह सभी पापों से निर्मुक्त होकर स्कन्द लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥११॥ उज्जयिनीपुरी में चारों ओर करोड़ों ही तीर्थ विद्यमान हैं । उनका सम्पूर्ण माहात्म्य स्कन्द भगवान् ने स्वयं ही स्कन्द पुराण में भाषित किया है । हे देवर्षे ! कुरुक्षेत्र में स्थाणु नाम वाले महेश्वर हैं । वहाँ पर मैंने तपश्चर्या का तरा करके ही यह उत्तम ब्रह्मत्व पद प्राप्त किया है । वालखिल्य आदि द्विजा ने वहाँ पर परा-

सिद्धि प्राप्ति की थी । वहाँ पर पूर्व में स्थाणु मन्दिर में पुलह मशक था ॥१२-१४॥

मृतस्तु विविधान्भोगान्भुक्त्वा दिव्यमनोरथान् ।

तदन्ते मत्सुतो जातः स्थाणुः (नि)प्रभावतः ॥१५

सर्वदेवमयो यत्र स्थाणुर्नाम महेश्वरः ।

इष्ट सकृच्च मनुज शैव पदमावाप्नुयात् ॥१६

तीर्थराज इति ख्यातः प्रयागो मनिमत्तमाः ।

गङ्गायमुनयोस्तत्र भगवो लोकविश्रुतः ॥१७

ताम्र स्नात्वा दिव गत्वा भोगान्भुक्त्वा यथेप्सया ।

आस्ते महेश्वरो यत्र सर्वानुग्राहकः परः ॥१८

दर्शनादक्षयाल्लोकान्प्राप्नोति मनुजोत्तमः ।

अन्यतीर्थं परं गुह्यं गयातीर्थं मिति स्मृतम् ॥१९

यत्र शमोभवत्श्रवणो सुप्रतिष्ठितो ।

पितृगामक्षया तृप्तिस्तत्र पिण्डप्रदानतः ॥२०

मृत होकर उसमें विविध भोगों का उपभोग करके और दिव्य मनोरथों को प्राप्त करके उसके अन्त में वह स्थाणु मूर्ति के प्रभाव से मेरा पुत्र हुआ था ॥१५॥ जहाँ पर सर्व देवमय स्थाणु नाम वाले महेश्वर विराजमान हैं । मनुष्य एकबार भी उनका आराधन करके इष्ट बना लेता है तो वह गिव के पद को प्राप्त किया करता है ॥१६॥ हे मुनि-श्रेष्ठो ! प्रयाग तीर्थराज इस नाम से विख्यात हुआ था । वहाँ पर गङ्गा और यमुना इन दोनों परम पवित्र नदियों का लोको में प्रसिद्ध सङ्गम हुआ था ॥१७॥ वहाँ पर स्नान करके दिवलोक में गमन करके और यथेप्सा में भोगों का उपभोग करके मनुष्य सद्गति को प्राप्त करता है । जहाँ पद पर और सभी पर अनुग्रह करने वाले महेश्वर विराजमान हैं ॥१८॥ उत्तम मनुज उनके दर्शन करने से अक्षय सौकों की प्राप्ति किया करता है । अन्य तीर्थ परम गुह्य हैं गया तीर्थ इस नाम से कहा गया है । जहाँ पर भगवान् शम्भु के चरण सुप्रतिष्ठित रहा करते हैं । वहाँ

लिङ्गे स्वायम्भुवे वाणे रत्ने च रत्ननिमित्ते ।
 मिद्धप्रतिष्ठिते लिङ्गे न चण्डस्याधिकारत ॥५॥
 वाणलिङ्ग स्वय भूमिश्चन्द्रकान्तिस्त्रयैव च ।
 चान्द्रायणसम पुण्य शमोर्नैवेद्यभक्षणात् ॥६॥
 वृष चण्ड वृष चैव सोमसूत्र पुनर्वृषम् ।
 चण्ड च सोमसूत्र च पुनश्चण्ड पुनर्वृषम् ॥७॥

उन तीर्थ में देवकन की इच्छा करने वालों के द्वारा प्राय प्रांत उपोष्य होता है । मूत्र विवृ तृष्टि के लिये है और महर्षियों ने उसे विषय कहा है ॥१॥ जिनको प्राप्त करके सूर्य अस्तता को प्राप्त होता है यदि वह त्रिमुहूर्तिका होवे तो समस्त धर्म कृत्यों में उसको सम्पूर्ण नियम जाननी चाहिए ॥२॥ अष्टमी, एकादशी, पष्ठी, तृतीया, चतुर्दशी ये तिथियां पर मयुक्त ही ग्रहण करनी चाहिए । दूसरी तिथियां पूर्व तिथि से मिश्रित ही ग्रहण करे ॥३॥ बृहत्तया, रम्भा, सावित्री, बट पंतुकी, वृष्णाष्टमी समुक्तो नियम समूहा ही करनी चाहिए ॥४॥ वाणलिङ्ग में, स्वायम्भुव म, रत्न में, रत्न निमित्त में और मिद्धा के द्वारा प्रतिष्ठित लिङ्ग में चण्डका अधिकार से नहीं है । वाणलिङ्ग स्वय भूमि तथा चन्द्रकान्ति है । भगवान् शम्भु के नैवेद्य के भक्षण में चान्द्रायण के ही समान पुण्य होता ॥५॥६॥ वृषचण्ड और वृषही सोमसूत्र है तथा पुन वृष है चण्ड और सोम सूत्र-पुन. चण्ड और पुन वृष है ॥७॥

आर च आरनाल च वाग्प्रपात्र मसूरिका ।
 चणनास्तिनतैला च मन्त्रवीर्यहराणि षट् ॥८॥
 वामपादके विनिशप्य गृहीत्वा वामपाणिना ।
 धृत्या च दक्षिणे पाणी तैले दद्यान्नलाञ्जनिम् ॥९॥
 गुणद्वन्द्वन्धवारद्वय रगद्वन्द्वु निरोधक ।
 अन्धकार निरोधत्वाद्गुरुराब्दा निगद्यते ॥१०॥
 गुण्यागी लभेन्मृचु मन्त्रत्यागी दग्धिनाम् ।
 गुरमन्त्रपरित्यागात्तदोर्जाय नरक प्रजेत् ॥११॥

एकमर्घ्यं प्रदातव्यं मध्याह्ने भास्वर प्रति ।
 उभयोः सध्वयोरपस्त्रि क्षिपेदसुरक्षयात् ।१२।
 भ्रातृद्वयं न कुर्वीत न कतव्यं पितासुतम् ।
 अनग्निकं न कर्तव्यं न कुर्याद्गर्भिणीपतिम् ।१३।
 निरग्निकं स्मृतस्तावद्यावद्भार्या न विन्दति ।
 साग्निको भार्याया युक्त इत्यथ मनुरब्रवीत् ।१४।

आर—आरनाल—वास्यपात्र—ममूरिका—चणकतिल तैल ये छै
 मन्त्र के वीर्य के हरण करने वाले होते हैं ॥८॥ वाम पार्श्व में विशेष
 रूप से निक्षिप्त करके वाम हाथ में ग्रहण करे । फिर दक्षिण हाथ में
 धरकर तैल में जलात्रलि देनी चाहिए ।६। 'गु' यह शब्द
 अन्धकार वाचक है अर्थात् अन्धकार को बनलाता है और 'ह'
 यह शब्द निरोध करने वाले अथ का वाचक है । क्योंकि
 अज्ञान रूपी अन्धकार के निरोधक होने से ही गुरु शब्द कहा
 जाता है ।१०। गुरु के त्याग करने वाला मृत्यु को प्राप्त हो जाता है
 और मन्त्र का त्याग करने वाला दरिद्रता को प्राप्त किया करता है ।
 गुरु और मन्त्र को परित्याग करने से सिद्ध पुरुष भी नरक का गमन
 करने वाला हुआ करता है ।११। मध्याह्न में भास्वर देव को एक ही
 बार अर्घ्य देना चाहिए । दोनों सध्वयो में अमुरा केक्षय होने से तीन
 बार जल की अजलि का प्रक्षेप करना चाहिए ।१२। दो भाइयों को नहीं
 करना चाहिए और पितासुत को नहीं करना चाहिये । अनग्निक
 को न करे और गर्भिणी के पति को न करे ।१३। निरग्निक तभी तक
 कहा गया है जब तक भार्या को प्राप्त नहीं करता है । जो भार्या से
 युक्त होना, है वह साग्निक होना है—ऐमा मनुमहर्षि ने कहा है ।१४।

प्रणाममेकहस्तेन एक वाऽपि प्रदक्षिणम् ।
 कालसेवा तथाऽज्ञाने अब्दपुण्यं विनश्यति ।१५।
 सभाया यज्ञशालाया देवतायतने गुरौ ।
 प्रत्येकं च नमस्कारो हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ।१६।

गोक्षीर गोघृत चैव मुग्धधान्य तिला यवा ।
 एते चैवाक्षारगणा अन्ये क्षारगणा स्मृता ॥७॥
 मक्षिका मशका वेश्या याचकाश्चैव मूपका ।
 गणका ग्रामणीश्चैव सप्तैते परभक्षका ॥८॥

एक हाथ से प्रणाम करना और एक प्रदाक्षिणा तथा अकाल म
 काल सेवा—इनमे एक वर्ष का पुण्य विनष्ट हो जाया करता है ॥१५॥
 सभा म—गणशाना म—देवतायतन म—गुरु म प्रत्येक को नमस्कार
 करना पुराकृत पुण्य का हनन किया करता है ॥१६॥ गो का का दूध—
 गाय का घृत—मुग्धवाय यव—तिन—य सब अक्षारगण कहे गये
 हैं अन्य क्षारगण होते हैं । मक्षिका—मशक—वेश्या—याचक—मूपक—गणक
 —ग्रामणी—ये सात पर भक्षक होते हैं ॥१७ १८॥

॥ देवेन्द्र चरित कथन ॥

मन्वन्तराणि वक्ष्यामि शृणुध्व मुनिपु गवा ।
 मनव पडतीतास्ते सप्तमो वर्तते किल ॥१॥
 तेषा स्वायभुवस्त्वाद्यस्तत स्वारोचिष स्मृत ।
 उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाष्टुपस्तथा ॥२॥
 स्वायभुव तु कल्पादावन्तर वयित मया ।
 स्वारोचिषेज्जरे देवाम्नुपिता नाम ते स्मृता ॥३॥
 विषाश्चिन्नाम देवेन्द्र ऋषीन्वक्ष्यामि नाप्रतम् ।
 उर्जन्तम्भस्तथा प्राणो दान्तोज्य ऋषभस्तथा ॥४॥
 तिमिर शार्ङ्गरीयाश्च सप्तैत ऋषय स्मृता ।
 उत्तरे त्वन्तरे देवा मुषामानो द्विजोत्तमा ॥५॥
 प्रतदंता णिवा मत्यान्ताश्च वशवतिन ।
 एतेषा च गणा प्रोक्ता भवद्वादशभिर्गणै ॥६॥

सुदान्तिर्नाम देवेन्द्रो महाबलपराक्रमः ।

रजो गोत्रोऽर्धवाहश्च सवनश्चानघस्तथा ।७।

हे मुनि पुङ्गवो ! अब आप लोग मन्वन्तरो को श्रवण कीजिए । अब तक छै मनु व्यतीत हो गये हैं । इस समय मे सातवा मनु वर्त्तमान है । १। उन सब मन्वन्तरो मे स्वायम्भुव मनु सबसे प्रथम मनु हुए थे । इसके पश्चात् स्वारोचिष मनु हुए थे । इनके पश्चात् उत्तम—तामस—रैवत और चाक्षुष हुए थे । २। कल्पादि मे स्वायम्भुव अन्तर मने कह दिया है । स्वारोचिष अन्तर मे तुपिता देव हुए थे ऐसा कहा गया है । ३। विजाश्रित नाम वाला देवेन्द्र हुए थे । अब मैं ऋषियो को बतलाऊंगा । उस समय में ऊर्जं स्तम्भ—प्राण—दान्त—ऋषभ—तिमिर और शबरीवान्—ये सात (सप्तपि) ऋषि कहे गये है । हे द्विजोत्तमो ! उत्तर अन्तर मे सुधामान देव हुए थे पुतर्दन—शिव—सत्य और इसके पश्चात् बभवर्त्ती हुए थे । इनके गण भी कहे गये हैं जो आपके द्वादश गणों से मुक्त थे । ४। ५। ६। सुदान्ति नाम वाला देवेन्द्रथा जो महान् बल और पराक्रम से समन्वित था । रज—गोत्र—अर्धवाह—सवन—अनघ—सुतया—शुक्र—इन नाम नामो वाले सात ऋषि हुए थे—ऐसा बतलाया गया है । ७।

सुतपाः शुक्रनामाऽथ सप्तैत ऋषयः स्मृताः ।

मर्त्याश्च मुधियश्चैव तामसस्यान्तरे सुराः ।

ज्योतिर्धर्मः पृथुः कल्पश्चैत्राग्निः सवनस्तथा ।८।

पीवरश्च समास्याताः सप्तैत ऋषयो मताः ।

स्याच्छिविर्नाम देवेन्द्रः सिद्धचारणसेवितः । ९।

देवराज्यं परित्यज्य परं वैराग्यमाश्रितः ।

ज्ञात्वाशाश्वतो सर्वं बृहस्पतिमथाद्रवीत् । १०।

भगवन्कि करोमीदं राज्यं तुच्छमुखं यतः ।

कंवल्यं लभते केन तन्मे ब्रूहि गुरो स्फुटम् । ११।

अमृत्यनन्तगुणावाम परानन्दैकविग्रह ।
 ध्यात कैवल्यपद पु सा महादेवो न चापर ।१२।
 मोहपाशनिवद्ध ना महामोहान्मता हरेत् ।
 स्मरणान्मोचकस्तेपामुमापतिरिति श्रुति ।१३।
 यद्ब्रह्म परम ज्योति प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम् ।
 सर्वानुग्राहिण शम्भु तमाशु शरण व्रज ।१४।

तामस मन्तर मे मनुष्य और सुधागण मुर हुए थे । ज्योति-धर्म—पृथु-कल्प—चैत्राग्नि—सवन और पीवर ये मात ऋषि माने गये हैं । शिविनाम वाला देवेन्द्र था जो मिद्ध और चारणो के द्वारा सेवित था । १८।६। वह देवराज्य का परित्याग करके परमाधिक वैराग्य के आश्रय लेने वाला हो गया था । इस सबको अशाश्रित समझ कर ही बृहस्पति जी से कहा था ।१०। हे गुरुवर्य ! हे भगवान् ! इस परम तुच्छ सुख वाले राज्य से मैं करूँगा । अब आप मुझे यही बताने की कोशिश कीजिए कि कैवल्य की प्राप्ति किससे हो जाता है ।११। देवगुरु बृहस्पति जी ने कहा—अनन्त गुणो का निवास—परानन्द ही जिनका एक विग्रह है अर्थात् आनन्दमय स्वरूप वाल महादेवजी का ध्यान किया जावे तो वे ही कैवल्य के प्रदान करने वाले हैं अन्य कोई भी नहीं है ।१२। वह देवेश्वर मोह के पास मे बधे हुआं की जो महामोहात्मा है उसका हरण कर दिया करते हैं । श्रुति के द्वारा प्रतिपादन किया जाता है कि उमापति के बल स्मरण से ही उन पाशो से मोचक हो जाया करते हैं । १३। जो ब्रह्म पर ज्योति—प्रतिष्ठाक्षर और अव्यय हैं तथा सभी पर अनुग्रह करने वाल है उन्हीं भगवान् शम्भु के तुम शरण म चले जाओ । १४।

स ज्योतिषा पर ज्योनिरानन्द तमस परम् ।
 न यस्मादधिक किञ्चित्तत्त्वा विद्धि शाकरम् ।१५।
 ता जानीहि पर ब्रह्म विश्वात्मान महेश्वरम् ।
 तदात्मकतया सर्वा जानीह्यसुरमूदन ।१६।

आत्मान ये हि मत्पन्ते विभिन्न त्रिपुरद्विप ।
 ते पश्यन्तेव त देव नाऽऽवर्तन्ते पुन पुन ।१७।
 सर्वास्मादधिक शभु परमात्मा महेश्वर ।
 इति ये निश्चितधिय कृतार्थास्ने सुराधिप ।१८।
 दर्शन तस्य काङ्क्षन्ते हरिब्रह्मादय सुरा ।
 योगिनो नियतात्मानस्तमीश शरण ब्रज ।१९।
 महदादिविशेषान्त जगद्यस्मिल्लेय ब्रजेत् ।
 पुनरुत्पद्यने यस्मात्ता जानीहि पिनाकिनम् ।२०।
 लीलाविलसिता यस्य विश्वमेतच्चराचरम् ।
 तदभावाच्च विलयस्ता जानीहि महेश्वरम् ।२१।

वे ज्योतियो के भी परम ज्योति हैं तम से परे और आनन्द स्वरूप हैं । उनसे अधिक कुछ भी तत्त्व है ही नहीं । वह इमी शाङ्कर तत्व को समझो जो सर्वोपरि विराजमान है ।१५। उनको आप परम ब्रह्म—विश्वात्मा महेश्वर ही जान लो । यह जो भी कुछ दृश्य है वह सभी उनकी आत्मा का ही स्वरूप है—ऐसा ही है अरिपूदन । आप जानलो । १६। जो लोग त्रिपुरद्विक् श्री शिव से अपन आपको भिन्न मानता है वे उस देव को देखते हैं अर्थात् दर्शन प्राप्त कर लिया करते हैं तो वे फिर धारम्भार इस ससार में जन्म लिया करते हैं ।१७। शम्भु परमात्मा महेश्वर सभी से अधिक हैं । हे सुराधिप । ऐसी जिनकी निश्चित बुद्धि है वे समझ लो कि पूर्णतया कृतार्थ ही हो गये हैं ।१८। हरि—ब्रह्मा आदि मुरगण भी जिनके दर्शन प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हैं तथा योगिगण भी नियतात्मा को देखना चाहते हैं तो आप भी उसी ईश की धरणागति में चने जाओ ।१९। जिसमें महत् स आरम्भ करके विद्वेष पर्यन्त सय को जगत् प्राप्त होता है और फिर भी उही से इसकी उत्पत्ति हुआ करती है उन भगवान् का ही ज्ञान प्राप्त करे अर्थात् धरणा में जाओ । यह सम्पूर्ण स्यावर और जन्म जगत् जिसकी एक तीना

का विनाश जैसा है और उनके अभाव से विलय को प्राप्त होता है
उन्हीं महेश्वर प्रभु की शरण में जाओ ।२०।२१।

यस्याऽऽजया स्थितो ब्रह्मा जगज्जननकर्माणि ।
हरिश्च पालने रुद्र सहारे च म शूलभृत् ।२२।
यस्य प्रसादलेशेन मर्त्या मरणधमिण ।
भवन्त्येव हि तेऽमर्त्या भजन्ते वृषभध्वजनम् ।२३।
क्षण मुहूर्त्तमयवा ध्यात संपूर्जित स्मृत ।
प्रददात्याशु कवलय यस्त भज महेश्वरम् ।२४।
यस्यैव मूर्तीयन्तिस्रो ब्रह्मविष्णु हरा इति ।
सर्गरक्षागुणलद्योस्तमीश शरण व्रज ।२५।
यस्यान्त स्थानि भूतानि येनेद भ्राम्यते जगत् ।
ब्रह्मेति च जगुर्वादास्ता रुद्र शरण व्रज ।२६।
यज्ञैर्प इज्यते दवो मुक्तये वेदवादिभि ।
कर्मणा फलस्तेषा शरण व्रज तं हरम् ।२७।
ये विनिद्रा जिनश्वासा ध्यायन्ति क्षीणकर्मिण ।
तेषा प्रजायते यत्तत्तत्त्व विधि च शाकरम् ।२८।

जिन महेश्वर भगवान् की आज्ञा से ही इस जगत् के जनन करने के कर्म में स्थित रहा करते हैं । श्री हरि भी उ ही की आज्ञा से परिपालन करने के कर्म से जुटे रहा करते हैं एव रुद्र इसके सहार का कर्म किया करते हैं और सर्वदा सलग्न हैं वही भगवान् शूलधारी प्रभु हैं । १२२। जिन के प्रवाद के लेश मात्र से मरण के धम वाले मनुष्य जो वृषभध्वज का भजन किया करते हैं वे अमर्त्य हो जाया करते हैं ।२३। एक क्षणभर या एक मुहूर्त्त भर जो बयान किये जान पर या सम्पूजित होने पर तथा स्मृत होने पर जो शीघ्र ही कवलय पद को दे दिया करते हैं उ ही भगवान् महेश्वर का भजन करो ।२४। उन्हीं की ये तीन ब्रह्मा—विष्णु और मूर्तियाँ हैं और सर्ग—रक्षा तथा लय करने के गुणों के ही कारण हैं तो उसी ईश की शरण में गमन करो ।२५। जिनके

अमृत वरण में समस्त भूत हैं और जिसके द्वारा यह जगत् भ्रमाया जाया करता है—वेद जिसको ब्रह्म कहकर गान करते हैं उन्हीं भगवान् रुद्रदेव की शरण में जाओ ।२६। जो देवयज्ञों के द्वारा यजन किया जाता है और वेदवादियों के द्वारा मुक्ति प्राप्त करने को जिनका भजन किया जाता है और जो उनके कर्मों का फल प्रदान करने वाला है उन्हीं भगवान् हर की शरण में चले जाइये ।२७। जो निद्रा का त्याग करने वाले तथा श्वासों पर विजय पाने वाले क्षीण कर्मों वाले जिनका ध्यान किया करते हैं और उनको वही तत्त्व उत्पन्न हो जाया करता है वही तत्त्व शाश्वर तत्त्व है—यह समझ लेना चाहिए ।२८।

अज्ञानरज्जवा बद्धाना मनुष्यदिशरीरिणाम् ।

महादेवाहते नान्या शक्र पश्यामि मोचकम् ।२९।

तस्मात्त्वा तपसा शक्र समाराधय शकरम् ।

प्रसन्नो दास्यति पद तव कैवल्यमुत्तमम् ।३०।

एव गुरोर्निगदिता श्रुत्वा सुरपतिस्तदा ।

समाराधयितुं देव ययौ वदरिकाश्रमम् ।३१।

तत्र गत्वा जटी भूत्वा भस्मनिष्ठो जितेन्द्रिय ।

मन्दाकिनीजले स्नात्वा भस्म चैवभिमत्त्र्य च ।३२।

अग्निरित्यादि मन्त्रंश्च समुद्धृत्य च विग्रहम् ।

पूजायामास देवेश पुष्पैः पत्रैर्मनोहरैः ।३३।

शंवी विद्या जपन्नास्ते शिवध्यानैः कृतत्पर ।

एव गतानि वर्षाणि सहस्राणि चतुर्दश ।३४।

तपसा देवराजस्य प्रसन्नोऽभूत्तत शिव ।

प्राह त्रिपुरहा शक्र वर ब्रूहि शतक्रतो ।३५।

अज्ञान की डोरी से बंधे हुए मनुष्य आदि शरीरधारियों को मोचन करने वाला श्रीमहादेव जी से अन्य किसी को भी नहीं देखता हैं ।२९। इस कारण में हे इन्द्रदेव ! आप प्रयश्चर्या के द्वारा भगवान् शकर की ही समाराधना करिए । वह प्रसन्न होकर आपको उत्तम पद को प्रदान

कर देंगे । उस समय मैं इस प्रकार के श्री गुरुदेव के भयन का श्रवण करके सुरपति महादेवजी की समाराधना करने के लिये वह एकाग्रम मे चले गये थे । ३०।३१। वहाँ पहुँचकर सुरपति जटाधारी ही गया था । केवल भस्म मैं ही निष्ठा रखने वाले और जितेन्द्रिय हो गये थे । वहाँ पर मन्दाकिनी सङ्गा के जल में स्नान करके उन्होंने उस भस्म को अभिमन्त्रित किया था । ३२। “अग्नि”—इत्यादि मन्त्रों से अपने शरीर को उद्दलित किया था । फिर उनका पत्रा और मनोहर पुष्पों से दक्षेश्वर का पूजन किया था । ३३। वे वहाँ पर शैवी विद्या का जाप करते हुए केवल भगवान् शिव के ही ध्यान में परायण होकर स्थित रहे थे । इस प्रकार से करत हुए सुरपति को चौदह महत्त्व रूप व्यनीत हो गये थे । ३४। इसके अनन्तर देवराज की उस तपस्या से भगवान् शिव प्रमत्त हो गये थे । तब त्रिपुर के शत्रु भगवान् शम्भु न इन्द्र से कहा था—
हे शनकतो ! वरदान माँग लो । ३५।

तपसाऽनेन तीव्रेण प्रसन्नोऽहं तवानघ ।
ईप्सितं ते प्रदास्यामि तव यद्यपि दुर्लभम् । ३६।
मयि प्रसन्ने तु हरे न किञ्चिदपि दुर्लभम् । ३७।
एव शभोर्वाच श्रुत्वा म्नुत्वा तं विविधं स्तवैः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणम्याऽहं महेश्वरम् । ३८।
भगवन्कृतवृत्त्योऽस्मि भवतो दर्शनाच्छिव ।
अलमन्यैर्वरं शभो भक्तिर्भवतु मे त्वयि । ३९।
तव भवयमृताम्वादपरानन्दस्य देहिन ।
भवेत्कष्टं कुत शभा पूजनामो यता हि नः । ४०।
तावदेवास्थिर नेत परिभ्रमति वस्तुषु ।
न यावत्त्वयि देवेश भक्तिमवति देहिन । ४१।
तावदेव मवाम्भोधिर्दुस्तरौ देहिन हरा ।
तव पादाम्बुजे भक्तिं परा यावन्न लभ्यते । ४२।

कर देग । उस समय म इस प्रकार के थी गुरुदेव के वचन का श्रवण करक सुरपति महादेवजी की सभाराधना करने के लिये वह एकाग्रम में चल गये थे । ३०।३१। वहाँ पत्रुचकर सुरपति जटागरी हो गया था । केवल भस्म म ही निष्ठा रखन वाले और जितन्द्रिय हो गये थे । वहाँ पर मन्दाकिनी यज्ञा के जल म स्नान करके उन्होंने उस भस्म को अभि-मन्त्रित किया था । ३२। "अग्नि"—इत्यादि मन्त्रों से जपन शरीर को उद्भूत किया था । फिर उनके पत्रा और मनाहर पुष्पा से दवेश्वर का पूजन किया था । ३३। ये वहाँ पर यैवी शिवा का जाप करते हुए केवल भगवान् शिव क ही ध्यान में परायण हागर स्थित रहे थे । इस प्रकार स करत हुए सुरपति को चौदह सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये थे । ३४। इसके अनन्तर दकराज की उत तपस्या में भगवान् शिव प्रसन्न हो गये थे । तत्र त्रिपुर क शत्रु भगवान् शम्भु न इन्द्र थे गहा था— हे शतक्रतो ! वरदान माँग ला । ३५।

तपसाग्नेन तीघ्रण प्रमन्नोऽहं तयानघ ।
 ईप्सितं ते प्रदास्यामि तत्र यद्यपि दुर्लभम् । ३६।
 मयि प्रमन्ने तु हरे न किञ्चिदपि दुर्लभम् । ३७।
 एवा शभोर्वाञ्ज श्रुत्वा स्तुत्वा त विविधं स्तवी ।
 वृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणम्याऽहं महेश्वरम् । ३८।
 भगवन्वृतवृत्योऽस्मि भवतो दर्शनाच्छिव ।
 अलमन्यैर्वरै शभो भक्तिर्भवतु मे त्वयि । ३९।
 तत्र भात्यमृतास्वादपरानन्दम्य देहिन ।
 भवेत्तष्ट पुन शभा पूणशामो यता हि म । ४०।
 तावदयाम्बिर चेत परिभ्रमति वस्तुषु ।
 न यावत्तत्रि देवेश भक्तिमवति देहिन । ४१।
 नान्यदेव जयाम्भोचिर्दुस्तरो देहिन हर ।
 तत्र शशाम्भुजे भक्ति परा यायन्न सम्पते । ४२।

हे अनव ! तुम्हारी इस तीव्र तपस्या से मैं परम प्रसन्न हो गया हूँ । अब मैं यद्यपि कुछ परम दुर्लभ भी होगा उम भी आपके अभीष्ट को प्रदान कर दूँगा । ३६। मुझ हर के प्रसन्न हो जाने पर आपको अब कुछ भी दुर्लभ नहीं है । ३७। इस प्रकार के भगवान् शम्भु के वचनों का श्रवण करके सुरपति ने सर्व प्रथम अनेक स्तवों के द्वारा उन का स्तवन किया था और फिर दोनों हाथों को जोड़कर उनको प्रणाम किया था और फिर भगवान् महेश्वर से कहा था । ३८। इन्द्रदेव ने कहा—हे शिव ! हे भगवन् ! मैं आपके दर्शन प्राप्त करके आज कृत्य-कृत्य हो गया हूँ । क्योंकि मैंने साक्षात् आपके दर्शन प्राप्त कर लिये हैं । अन्य वरदानों की अब कोई भी आवश्यकता नहीं है केवल आपके चरणों में मेरी भक्ति बनी रहे । ३९। आपकी भक्ति के अमृत का आस्वादन से देहधारी को परम आनन्द प्राप्त होता है । फिर कष्ट तो उसको ही नहीं सकता है क्योंकि आप तो पूर्ण काम प्रभु है । ४०। तब तक ही यह अस्थिर विज्ञ सासारिक भोग्य वस्तुओं में श्रमता रहता है । हे देवेश ! जब तक इस देहधारी की आपके चरणों में भक्ति नहीं हुआ करती है । ४१। हे हर ! देहधारियों को यह ससार रूपी सागर भी तभी तक दुस्तर हुआ करता है जब तक आपके पदाम्बुज में इसको पराभक्ति प्राप्त नहीं हुआ करती है । ४२।

तावत्पतति ससारगर्ते जन्तु. पुनः पुनः ।

यावन्न तव कारुण्यलेशो भवति शंकर । ४३।

ससारविपवृक्षो य. सर्वतोऽर्तिभयंकरः ।

तव भक्तिकुठारेण च्छिद्यते नान्यथा शिव । ४४।

इति शक्रवचः श्रुत्वा कारुण्यादवलोक्य तम् ।

समुत्स्पृश्य तु पाणिभ्या गाणपत्य ददौ शिवः । ४५।

विरश्चिप्रमुखा देवा जायन्ते कर्मगौरवात् ।

प्रलये च विनश्यन्ति भवन्ति च पुन. पुनः । ४६।

स्वर्गं गत्वा गता श्वभ्र तिर्येक्त्व च मनुष्यताम् ।
 पुनर्विरञ्ज्यादि पदमेव चक्रारम्परा १४७।
 शभोगंशोश्वरा ये च चाऽऽवतान्ते भवे प न ।
 भोगान्यथेप्सितान्भुक्त्वा शभो सायुज्यमाप्नुयु १४८।
 स्वेच्छाविग्रहण सर्वे स्वेच्छाचारा गणेश्वरा ।
 शिवेन सह ते भोगाभुक्त्वा यान्ति शिव पदम् १४९ ।

यह जन्तु इस समार के गर्त्त म तभी तक वारम्बार गिरा करता है । हे शङ्कर ! जब तक आपकी कृपा का फल हमे प्राप्त नहीं होता है १४३। सत्तार का यह विष वृक्ष जो सभी आर से महान् भयकर होता है । हे शिव ! आपकी भक्ति रूनी कुठार से इसका छेदन किया जाया करता है । अन्य किसी भी प्रकार से इसका छेदन होता ही नहीं है १४४। दत्त प्रकार के दत्त के वचना का श्रवण करके वही कृपा से उसकी ओर भगवान् शिव ने अपनी दृष्टि डाली थी और दोन अपने हाथों से उसके अङ्गा का नस्पर्ण किया था शिव न उन अपना गणपत्य पद प्रदान कर दिया था १४५। विरञ्जि प्रमुख देवता ब्रह्मों के गौरव से जन्म ग्रहण किया करते हैं और जब प्रलय का काल होता तो ये सब विनष्ट हो जाया करते हैं । इसी प्रकार से ये सब वारम्बार हुआ करते हैं । ये स्वर्ग म जाकर श्वभ्र वायु धारण करते हैं — तिर्यकत्व को भी प्राप्त किया करने हैं और मनुष्यता प्राप्त करत हैं । ये फिर विरञ्जि आदि के पद का प्राप्त किया करते है । इसी प्रकार से यह चक्र भी परम्परा चला करती है १४७। भगवान् ब्रह्म के जो गणेश्वर होत हैं वे इस तरह से इस समार म फिर आवृत्ति नहीं हुआ करते है । वे तो यथेष्टित भोगों का उपभोग करके भगवान् ब्रह्म के सायुज्य को ही प्राप्त किया करते हैं १४८। गणेश्वर सब अपनी इच्छा से ही विग्रह धारण करन वाले हुआ करते हैं और स्वेच्छा म ही आचार करने वाले होते हैं । वे तो भगवान् शिव के ही साथ भोगों को भोगकर जन्तु से शिव क पद को प्राप्त कर लिया करते है १४९।

एव दत्त्वा वर शम्भुर्गाणपत्य मुदुर्लभम् ।
 मुरराजाय शिवये तत्रैवान्तहिताऽभवत् ॥१०
 गाणपत्य वरं लब्ध्वा शिविर्भगवतो द्विजाः ।
 आज्ञया तस्य देवस्य जगाम स्वपुरी ततः ॥११
 महादेवाचंनरतो महादेवकथारतः ।
 स्यित्वा मन्वन्तर तत्र चण्डो नाम गणोऽभवत् । १२
 वृषध्वजस्त्रिनेत्रश्च जटाजूटेन्दुमण्डितः ।
 शुद्धस्फटिकसकाशश्चतुर्बाहुस्त्रिशूलभृत् ॥१३
 अक्षमालाधरः खड्गो सर्वेषामभयप्रदः ।
 द्वीपिचमाम्बरधरः सर्वाभरणभूषितः ॥
 रराज शाकरपदे नन्दीश्वर इवापरः ॥१४
 एतद्भः कथितं सर्वं शिवेस्तु चरितं द्विजाः ।
 सर्वेषापक्षयकरं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ॥१५
 श्रद्धया ये पठन्तीदं शिवेस्तु चरितं द्विजाः ।
 प्राप्नुवन्त्यश्वमेधस्य फलमित्यत्रवीद्विभिः ॥१६

दत्त प्रकार से भगवान् शम्भु ने वरदान करके और परम दुर्लभ गणि पत्य पद प्रदान करके मुरराज के कल्पाण के लिये वही पर अन्त-हित हो गये थे ॥१०॥ हे द्विजो ! शिवि गणपत्य पद का वरदान प्राप्त करके जो भगवान् से मिला था उन्ही देवेश्वर की आज्ञा से वह फिर अपनी पुरी को चला गया था ॥११॥ वह फिर सदा महादेव जी की अर्चना में ही निरत हो गया था और सर्वदा महादेवजी की कथा में रत हो गया था । एक मन्वन्तर तक वहाँ रह करके वह फिर चण्ड नाम वाला शिव का गण बन गया था ॥१२॥ उसका स्वस्त्र फिर वृषध्वज—त्रिनेत्र जटाजूट में पशुधारण कर परम मण्डित—शुद्ध स्फटिक मणि के सटप—पार मुत्रार्थो वाला और त्रिशूल के धारण करने वाला हो गया था ॥१३॥ वह अशोषी माला से धारण करने वाला—सर्वाभरणधारी और सभी को अभय के प्रदान करने वाला हो गया था । हाथी के पंभ

के द्वारा अङ्गो को ढाकने वाले—समस्त आभूषणों से भूषित शंकर पद दूसरे नन्दीश्वर के ही समान शोभित हो गये थे । १५४। ई द्विजो । यह सम्पूर्ण शिविका चरित्र मैं आप लोग को बता दिया है । यह सभी पापा का क्षय करने वाला है और मनुष्य को सभी सिद्धियाँ के देने वाला है । १५। आ इस शिवि के चरित को मध यज्ञ के भजन करने का पुण्य—फल प्राप्त कर लिया करते है—ऐसा रवि देव न कहा था । १५६।

॥ नित्यादि प्रति संचर कथन ॥

विभुर्नामा भदेदिन्द्रो रंक्तस्यान्तरे द्विजा ।

वंकुण्ठाद्या देवा गणाश्चत्वार ईरिता ॥१

हिरण्यरोमा विश्वश्रीरुध्वंवाहुस्तथै च ।

ऐन्द्रवाहु सुवाहुश्च पर्जन्यश्च महामुनिः ॥२

मत्तैत ऋषय प्रोक्ता प्रियव्रतकुलोद्भवा ।

मनोजय सुरेन्द्रोऽभूच्छाक्षुषेऽप्यन्तरे द्विजाः ॥३

आयोः प्रसूता भावाद्या कथिता देवतागणा ।

सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुत्तमो बुधः ॥४

अत्रिनामा सहिष्णुश्च सत्तैत ऋषय स्मृताः

पुत्रो विवस्वतो विप्रा मनुर्वैवस्वत स्मृत ॥५

साप्रत वर्तते योऽसौ तत्र देवान्प्रवीम्यहम् ।

मरुद्भ्रूणास्तथाऽदित्या रुद्राश्च वसव स्मृता ॥६

पुरंदरस्तु देवेन्द्रो बभूवासुरदर्पहा ।

वसिष्ठ कश्यपश्चात्रिर्जमदग्निश्च गौतम ॥७

श्री सूतजी ने कहा—हे द्विजो । रंक्त मन्वन्तर में त्रिभुनाम वाला इन्द्र हुआ था । वंकुण्ठा आदि देवता हुए ये जो चार गण ही कहे गये हैं

११। हिरण्य सेमा-विश्वश्री-ऐन्द्र बाहु-ऊर्ध्व बाहु-सुबाहु-पञ्चग्य और महा-
मुनि—मेरी सात ऋषि बताये गये हैं जो प्रिय व्रत राजा के कुल में
प्रसूत होने वाले थे ! हे द्विजो ! चाक्षुग मन्वन्तर में, मनोजव सुरेन्द्र
हुआ था । २। ३। आयु से भावाद्य प्रसू से हुए थे जो देवगण कहे गये हैं ।
सुमेधा-विरजा-हविष्तार उत्तम-बुध-अत्रिनाम वाला सहिष्णु-ये सात ऋषि
कहे गये हैं ? हे विजो ! विवस्वान् का पुत्र वैवस्वत मनु कहा गया है ।
। ४। ५। इस समय में जो वर्तमान है । उसमें जो देवगण है उनको भी
बतलाता हूँ । मरुद्गण-आदित्यगण-रुद्रगण-वसुगण—ये सब देवता
बताये गये हैं । ६। असुरों के हर्ष का हनन करने वाला पुरन्दर देवेन्द्र
है । वसिष्ठ-कश्यप-अत्रि-जमदग्नि—गौतम—विश्वामित्र—भरद्वाज—
पेसे ऋषि गण है । ७।

विश्वामित्रो भरद्वाजः सप्तैत ऋषया मताः ।
मन्वान्तराण्यतीतानि वर्तमान मया द्विजाः ॥८
कथितान्यथ वक्ष्यामि शृणुष्वं प्रतिसंस्मरम् ।
चतुर्धा कथितं सोऽपि पुराणोऽस्मिन्द्विजोत्तमाः ॥९
निरागं नैमित्तिकश्चैव प्राकृतात्यन्तिकं तथा ।
योऽयं भूतक्षयो लोके निर्यं निर्यस्तु स स्मृतः ॥१०
कल्पान्ते यस्तु सहारो नैमित्तिक इहोच्यते ।
महदाद्य विशेषान्तं स यदा याति सक्षयम् ॥११
प्राकृतः प्रतिसर्गोऽयं कथ्यते मुनिभिर्द्विजाः ।
आत्यन्तिकस्तु प्रलयो ज्ञानादेव स जायते ॥१२
तच्च ज्ञानं महेशस्यभक्तिलभ्यमिति श्रुतिः ।
चतुर्भुगसहस्रान्ते संप्राप्ते भूतगक्षये ॥१३
अनावृष्टिस्तत्तस्तीव्रा जायते शतवर्षिणी ।
पृथगुल्मलताः सर्वाः पृथिव्या यान्ति सक्षयम् ॥१४

हे द्विजो ! मैंने अतीत और वर्तमान मन्वन्तर बतला दिये हैं इसके
पश्चात् मैं प्रति संस्मर ही बतलाऊंगा । उसका आप सोच धरपण करिये ।

हे द्विजोत्तमो ! इस पुराण मे वह भी चार प्रकार का बताया गया है । १८।६। नित्ये—नैमित्तिक—प्राकृत और आत्यन्तिक ये उसके चार भेद हैं । जो लोक मे भूतो का क्षय होता है वही नित्य कहा गया है । १०। कल्प के अन्त मे जो सहार होता है वही नैमित्तिक कहा जाता है । महत् से आदि लेकर विशेष के अन्त तक वह सब क्षय को प्राप्त होता है वही प्राकृत प्रतिसर्ग हे द्विजो ! मुनियो के द्वारा कहा गया है । अत्यन्तिक प्रलय जो होता है वह ज्ञान से ही हुआ करता है । ११।१२। और वह ज्ञान भगवान् महेश के भक्ति से तन्य हुआ करता है—वही श्रुति है । चारो युगो के एक सहस्र के अन्त के प्राप्त होने पर जो भूतो का सक्षय होता है । उसमे बहुत तीव्र अनाहा होती है जो एक सौ वर्ष तक चला करती है । इस पृथ्वी मे वृक्ष गुन्म और लता आदि सभी सक्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं । १३।१४।

गभस्तिमाली भगवानथ सप्तरथोऽभवत् ।

रश्चिभिः सागराम्भासि तदा पिवति भास्करः ॥१५

दीप्ताश्च रश्मयतेन भवन्ति मुनिपु गवाः ।

भवन्ति सूर्याः सप्तैते सर्वतो रश्मिसकुलाः ॥१६

तेषा रश्मिप्रतापेन दग्धा भवन्ति मेदिनी ।

द्वीपश्च पर्वतैः सार्धं सागरैश्च द्विजोत्तमाः ॥१७

सूर्यतेजोग्निदधाना भूताना च परस्परम् ।

एकत्वमुपजातानामग्निरेकस्ततोऽभवत् ॥१८

ज्वालाभिरखिल विश्वं निर्दहत्वाशु पावकः ।

स दग्ध्वा पृथिवी सर्वा रुद्रतेजोविजृम्भितः ॥१९

दिव दग्ध्वाऽथ पाताल दन्दहीति द्विजोत्तमाः ।

उत्तिष्ठन्ति शिखास्तस्य शतयोजनमायताः ॥२०

तेजसा तस्य कालाग्नेरग्निः सवर्तकः स्वयम् ।

दग्ध्वा स चतुरो लोकान्सयक्षोरगराक्षसन् ॥२१

इसके पश्चात् भगवान् गमस्ति माली अर्थात् सूर्य सात रथो वाले हो जाया करते हैं । उस समय मे भगवान् भास्कर सागर के जलो को पीजाया करते हैं । १५। हे मुनि पुङ्गवो ! उससे उसको किरणें बहुत ही क्षीप्त हो जाया करती है । मे सात सूर्य सभी ओर से रश्मियो से सकुल हो जाया करते हैं । १६। उनकी किरणों के प्रताप से यह सम्पूर्ण पृथ्वी दग्ध हो जाती है । हे द्विजोत्तमो ! सभी पर्वत—द्वीप और सागरो के सहित पृथ्वी जली हुई सी हो जाया करती है । १७। सूर्य की अग्नि मे दग्ध हुए भूतो का परस्पर मे एकत्व को प्राप्त हो जाने वाले होने से एक ही अग्नि हो जाया करती है । १८। यह पावक अपनी ज्वालाओ से सम्पूर्ण विश्व को निर्दग्ध कर दिया करता है । रुद्र के तेज से विजृम्भित वह समस्त पृथ्वी को दाघ करके फिर दिग् लोको को जलाकर हे द्विजोत्तमो ! इसके पश्चात् वह पाताल लोक को जला दिया करता है उस अग्नि की शिखार्यें सी योजन तक ऊँची उठा करती है । १९। २०। उस कालाग्नि के तेज से सम्बर्त्तक स्वयं चारो लोको को दाघ करके यज्ञ—उरग और राक्षसो को जला देता है ।

तप्तायःपिण्डवत्सर्वं जगदेतत्प्रकाशते ।

उत्तिष्ठन्ते ततो मेघास्तडिद्भश्च समन्ततः ॥२२

सर्वर्तकोपमाः सर्वे नानावर्णा भयकराः ।

जायन्ते भास्कराद्घोरा राविणो मुनिपुंगवाः ॥२३

ततो वर्षं प्रमुश्वन्ति विन्दुभिर्गजसनिर्भः ।

ग्रहमणा प्रेरिता वृष्टिर्जायते शतवापिकी ॥२४

जलोर्ध्वनाशमाशान्ति तदा कल्पान्तपावकाः ।

द्वीपंश्च पर्वतयुंक्ता पृथिवी पूर्यते जलैः ॥२५

विलीयते धरा चैव सर्वा एव द्विजोत्तमाः ।

तस्मिन्नेकार्णवं घोरे देवदेवः प्रजापतिः ॥२६

योगनिद्रा समास्थाय शेते ध्यायन्महेश्वरम् ।

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो मुनिपुंगवाः ॥२७

अतः शृणुष्व वक्ष्यामि प्राकृतः प्रलयो यथा ।

कालाग्निरुद्रो भगवान्परार्धद्वितये गते ॥२८

यह सम्पूर्ण जगत् उस समय में एक तपे हुए लोहे के गोले के ही समान प्रकाशित हुआ करता है । इसके पश्चात् फिर मेघ उठते हैं जिनमें सभी ओर विद्युत् चमका करती है ।२२। सभी मेघ साम्बलक के ही समान होते हैं जिनके विभिन्न और विविध तो वर्ण होते हैं और बहुत अधिक भयङ्कर हुआ करते हैं । हे मुनि श्रेष्ठो ! वे भास्करा से अधिक घोर ध्वनि करने वाले हुआ करते हैं ।२३। इसके पश्चात् वे मेघ गजा के समान विंगल बूंदों से वर्षा किया करते हैं । यह वृष्टि ब्रह्मा जी के द्वारा प्रेरित होती है और सौ वर्ष तक निरन्तर हुआ करती है ।२४। वे कल्प के अन्त की पावक उस समय में जलों के समुदायों से नाश को प्राप्त हो जाया करती हैं । द्वीपों और पर्वतों से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी जल से परिपूर्ण होकर भर जाया करती है ।२५। हे द्विजोत्तमो ! उस समय में यह समस्त पृथ्वी जल में विलीन-सी हो जाया करती है । वह तो ऐसा समय होता है कि सर्वत्र एक मान सागर ही दिखलाई दिया करता है और वह परम घोर होता है । उसमें देवों के देव प्रजापति योग निद्रा में शयन करते हुए महेश्वर भगवान् का ध्यान किया करते हैं । इसीको नैमित्तिक प्रलय कहा गया है हे मुनि श्रेष्ठो ! यह भी उन चारों में से एक प्रलय है ।२६।२७। अब इससे आगे मैं यह बतलाऊंगा कि प्राकृत प्रलय कैसे होता है । परार्ध द्वितय के समाप्त होने पर भगवान् कालाग्नि रुद्र इस ब्रह्माण्ड को भस्मसप्त करके ताण्डव नृत्य करने के लिये समास्थित हो गये थे ।२८

॥ शिव तीर्थ कथन ॥

हेतुना केन भगवान्कालकालो महेश्वरः ।
 श्रोतुमिच्छामि भगवन्ब्रूहि मे कमलोद्भव ॥१
 आसीन्मुनिवरः पूर्वं नाम्ना श्वेत इति स्मृतः ।
 तीर्थोदकानि सेवेत यमाश्च नियमास्तथा ॥२
 माहेश्वराग्रणीः शान्तो महादेवार्चने रतः ।
 तं नेतुमागतः कालो दण्डहस्तो भयंकरः ॥३
 दृष्ट्वा काल स विप्रेन्द्रो भयव्याकुलितेन्द्रियः ।
 स्पृष्ट्वा कराभ्या तल्लिङ्गं ध्यायमानो महेश्वरम् ॥४
 प्रहसन्नद्रवीत्कालः श्वेतं मुनिवरं मुने ।
 प्राप्ते मयि कथं ब्रह्मन्स्वस्थास्तिष्ठन्ति जन्तवः ॥५
 चरन्ति मद्भयात्सर्वे ब्रह्मचर्यं तपासि च ।
 तीर्थं दानं प्रशसन्ति निरताः स्वेषु कर्मसु ॥६
 यजन्ति मद्भयाद्देवान्यज्ञाश्च विविधास्तथा ।
 तस्मादुत्तिष्ठ नेप्यामि मम पाशवश गतः ॥७

श्री नारदजी ने कहा—फिस हेतु से कालकाल महेश्वर भगवान हैं । हे भगवान् ! हे कमलोद्भव ! यह मे श्रवण करना चाहता हूँ । आप मुझे बतला दीजिए । श्री ब्रह्माजी ने कहा—पुराने समय में एक महान श्रेष्ठ मुनि वर थे जिसका नाम श्वेत कहा गया था । वह सवा तीर्थों के ही जलो का सेवन किया करने थे तथा यमों के नियमों का भी पूर्ण पालन किया करते थे । शीशों में वे मुक्तिया थे और महादेव जी की अर्चना में रति रखने वाले परम शान्त मूर्ति थे । उनको लेने के लिए हाथ में दण्ड धारण कर महात् भयङ्कर काल जाया था । उस वान को देखकर यह विप्रेन्द्र भय से ध्याकुल इन्द्रियो बाना हो गया था । उनने अपने दोनों करों में भगवान् महेश्वर का ध्यान करते हुए उनके लिङ्ग का स्पर्श कर लिया था । उस गमय में दूंगते हुए वान ने

श्वेत मुनि वर से कहा था—हे मुने ! हे ब्रह्मन् ! मेरे आ जान पर जन्तु गण कैम स्वस्थ रह सकते हैं ? ।२।३।४।५। मेरे ही भय के कारण स सब ब्रह्मचर्य और तप का समाचरण किया करते हैं । मेरे ही डर से लोग तीर्थरत्न दान की प्रशंसा किया करते हैं और अपन कर्मों में निरत रहते हैं । मेरे ही भय होने से दवा का—यज्ञा का जोषि अनेक प्रकार का होत है भजन किया करते हैं । अतएव अब उठिय मैं आपको ल जाऊँगा । अब तो आप मेरे पास न प्राप्त हो गये हैं अत चलना ही पड़ेगा ।६।७।

दा(त्रा)तार नैव पश्यन्ति(श्यामि) तवाद्य मुनिपु गवा (व)।

एव निशम्य वचन स वै कालस्य नारद । ८

अथाब्रवीद्यम भीत पाशहरत करालिनम् ।

कथमीशाचनरत त्व मा न्तुमिहाहमि ॥९

शिवाचं नरताना च त्वत्त कस्माद्भय वद ।

एवमुक्तो यम कोपादुद्धन्ध्य मु(दभान्त्सीन्मु)निपु गवम् ॥१०

पाशैर्दंढतरं शीघ्र घ्यायमान महेश्वरम् ।

अथ देवो महादेव प्रादुर्भूतखिनोकभृत् ॥११

त दृष्ट्वा दवदवश प्रहृष्टोऽभूत्तदा मुनि ।

श करारज्यात्रवीत्काल मम भक्त विमाचय ॥१२

स्वतन्त्र एव मद्भक्त स कथ नीयत त्वया ।

यदुक्त दवदेवन तदतिक्रम्य मूर्खज ॥१३

पुनर्य वन्ध नृपति स्वपुरीगमनाद्यत ।

अथ दवा महादेवा विदवश्वर उमापति ॥१४

हे मुनि पुत्रवा ! आज जाकर जाता का नहा दयत है । हे नारद !

इस तरह के काल के वान को मुनरर इसक अब तर नयनी। मुनि न हाथा म पाश ग्रहण करन जा । महान करान काल म बारा— ईश क अर्चन म निरत मुनहा जाय कैम न जायत आत्य यह है कि पुत्रारन का नी त वान की शक्ति जाकर अन्तर बँड हा गरवी है ? ।५।६। वा

शिवार्चन में निरत है उनको किमसे भय हो सकता है—आप ही इसे बतलाइये । इस प्रकार से कहे गये यमराज ने क्रोध से उस मुनि पुङ्गव को बाँध लिया था और महेश्वर को ध्यान में भी वह निरत था तो भी मजबूत पाशों से यम ने नीघ्न ही पकड़कर बद्ध कर दिया था । इसके अनन्तर त्रिलोकी को धारण करने वाले देव प्रादुर्भूत हो गये थे । और भगवान् शंकर को देखकर जो स्तक्षात् देवों के भी देव थे वह मुनि परम प्रहृष्ट हुए थे । इसके पश्चात् शङ्कर भगवान् उस काल से बोले —मेरे भक्त को छोड़ दो । मेरा भक्त तो सदा स्वतन्त्र होता है उसको तुम कैसे ले जा रहे हो ? देवदेव ने जो भी कहा था उसका भी अतिक्रमण करके यमराज ने उस नृपति को पुनः बाँध लिया था और वह अपनी पुरी को गमन करने के लिये सप्रघत हो गया था । इसके उपरान्त यह हुआ था कि देवेश्वर महादेव जी ने जो विश्व के ईश्वर और उमा के पति हैं उन्होंने उस काल को भस्म सात् कर दिया था और श्वेत मुनि को पाशों में विभोचित कर दिया था । ८।१४।

अकरोद्भस्मसात्काल श्वेतः पाशीर्विमोचितः ।

दत्तं भपुवता तस्मै गाणपत्यं च शाश्वतम् ॥१५

देव्या सह महादेवः क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ।

अनेन हेतुना शम्भुः कालकाल इति स्मृतः ॥१६

अहं च विष्णुना सार्धं स्तुत्वा देव महेश्वरम् ।

प्रसाद्याथ पुनर्जातः कालः शभोरनुग्रहात् ॥१७

अन्यतीर्थं पुण्यतमं ज्वालेश्वरमिति स्मृतम् ।

रेवातीरे मुनिश्रेष्ठ महापातकनाशनम् ॥१८

कोटिदाः सन्ति तीर्थानि तस्मिञ्ज्वालेश्वरे शिवे ।

तत्र स्नात्वा देवऋषे दृष्ट्वा ज्वालेश्वर शिवम् ॥१९

कुलैकविशमुद्धृत्य (?) शिवलोके महीयते ।

अन्य श्रीपर्वत श्रेष्ठं सिद्धानामालय शुभम् ॥२०

तत्र सिद्धाश्च मुनयो दृश्यन्ते सर्वतो गिरी ।

सदा सनिहितः शंभुलिङ्गे श्रीमल्लिकार्जुने ॥२१

भगवान् शिव ने उस राजा को शाश्वत गाणपत्य पद प्रदान कर दिया था । १५। फिर देवी के ही साथ महादेव जी क्षण भर में ही अन्तर्हित हो गये थे । इसी हेतु से भगवान् शम्भु काल क भी काल कह गये हैं । १६। मैंने विष्णु भगवान् क ही साथ ही महेश्वर देव की स्तुति करके उनको प्रसन्न करके सन्तुष्ट किया था । इसके पश्चात् पुनः शम्भु के अनुग्रह से ही काल समुत्पन्न हुआ अर्थात् सजीव हुआ था । १७। एक परम पुण्यतम तीर्थ है जो जालेश्वर इस नाम से कहा गया है । हे मुनि श्रेष्ठ ! यह तीर्थ रेवा नदी के तट पर है और महान् से भी महान् पातका का विनाश कर देने वाला है । १८। उन जालेश्वर शिव के समीप में करोड़ा अन्य तीर्थ भी हैं । हे दक्ष ! उनमें स्नान करके और जालेश्वर देव का दर्शन करके इक्कीस अपने कुलो का उद्धार करके स्वयं शिव लोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है । एक अन्य परम श्रेष्ठ श्री पर्वत है जो परम शुभ और सिद्धों का आलय है । १९। २०। वहाँ पर सभी आर गिरि में सिद्ध और मुनिगण दिखलाई दिया करते हैं । श्री मन्त्रिकार्जुन में भगवान् शम्भु सदा ही सन्निहित रहा करते हैं वह लिङ्ग ऐसा ही शिवलिङ्ग है । २१।

दृष्टे तस्मिन्परे लिङ्गे जीवन्मुक्तो नरो भवेत् ।
 मनुष्या पशव कोटिमृगाश्वमशकादयः ॥२२
 श्रीपर्वते मृता सर्वे यान्ति श भो पर पदम् ।
 केदारो परम तीर्थ प्रिय देवस्य शूलिनः ॥२३
 तत्र स्नात्वाोदक पीत्वा सपूज्य च पिनाकिनम् ।
 गाणपत्यमवाप्नोति देवानामपि दुर्लभम् ॥२४
 वृषध्वजे पर तीर्थ देविकायास्तटे मुने ।
 यत्र स्नात्वा शिव दृष्ट्वा ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥२५
 गादावरी नदी यत्र निर्गता प्रापहारिणी ।
 तत्र देवाधिदेवेशस्त्रियम्बः इति स्मृत ॥२६

तत्र स्नान जपो दान ब्रह्मयज्ञमख कृत ।
 सर्वं तदक्षय प्रोक्त नून ब्रह्मगिरौ मुने ॥२७
 तत्र स्नात्वा शिव दृष्ट्वा देवदेव त्रियम्बकम् ।
 स्फुन्दनन्दिसमो भूत्वा क्रीडते शिवसनिधौ ॥२८

उम पर लिङ्ग के दर्शन कर लेने पर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाया करता है । श्री पर्वत की बहुत बड़ी महिमा है वहा पर मनुष्य हो या पशु हा तथा चोटि कीटि मृग—अश्व जोर मशक आदि प्राणी है वे सब वहाँ पर मृत्युमते होकर भगवान् शम्भु के परम पद को ही प्राप्त कर लिया करते हैं । वेद्वार भी एक परमोत्तम तीर्थ है जो देवेश्वर का अत्यधिक प्रिय है । वहा पर स्नान करके तथा वहाँ का जल पान करके और पिनावी प्रभु का अभ्यर्चन करके मनुष्य गाणपत्य पद की प्राप्ति कर लिया करता है जोकि परम पद देवगणो को प्राप्त करना परम दुर्लभ हुआ करता है । २२। २३। २४। हे मुने ! देविका नदी के तट पर वृषध्वज म एव परमोत्तम तीर्थ है जहाँ पर स्नान करके और भगवान् शिव का दर्शन करके मनुष्य ब्रह्म हत्या के महा पाप का भी व्यपोह कर दिया करता है । २५। जहाँ पर गोदावरी नदी निकली है जोकि सभ¹ पापा का हरण कर देने वाली है वहाँ पर जो दवाधिदेव विराजमान हैं वे त्रियम्बक इस नाम से बहे गये है । २६। हे मुने ! वहाँ पर जो किया गया स्नान—दान—तपश्चर्या जोर ब्रह्म यज्ञ मख है वे सब ब्रह्म गिरि म निश्चय ही अक्षय बहे गये हैं । २७। वहा पर स्नान करके और भगवान् शम्भु का दर्शन करके जो देवा के देव त्रियम्बक हैं वह स्फुन्द तथा नन्दी व ही समान होकर भगवान् शम्भु देव की सन्निधि म ही क्रीणा किया करता है । २८।

ख्याया नातिदूरे तु गोकर्णं इति विश्रुत ।

जनुग्रहार्थं लोयाना तत्र सनिहित शिव ॥२९

नियतोऽनियतो वाऽपि यो वा को वाऽपि मानय ।

यस्तु पश्यति गाण रद्रस्यानुचरो भवत् ॥३०

देवस्य वायुदिग्भाग दाशी भद्रकालिका ।
 यागसिद्धिप्रदा नित्य दर्शनात्प्राणिना मुन ॥३१
 महाबलश्च भगवान्यत्राऽऽस्त गिरिनापति ।
 तस्य दश नमानेण गोमहश्चक्रवर्त्तनेत् ॥३२
 अयद्दक्षिणाक्षय मिन्युतीर्थे मन्दर ।
 तस्य दर्शनमानेण राजसूयफल तमन् ॥३३
 अन्यद्दारुवन पुम्य शकरस्यातिवल्लभम् ।
 गिरिजारतिना यत्र मोहिता मुनिपत्नय ॥३४

शृणु नारद वक्ष्यामि भवस्य चरित शुभम् ।
 श्रवणादेव मनुज शिवस्य दयितो भवेत् । ६।
 मृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च पुलस्त्य पुलह क्रतु ।
 जमदग्निर्भरद्वाजो गौतमो भागुरिस्तथा । ३७।
 वामदेवोऽङ्गिरा शङ्गो लिखितश्च बृहच्छ्रवा ।
 विश्वामित्रोऽप्य जावालिरन्य च मनयस्तथा । ३८।
 यज्ञैर्यजन्ति देवेश तपन्ति च तपस्तथा ।
 अज्ञात्वैव पर भाव देवदेवस्य शूलिन । ३९।
 तेषा मूर्धोत्थितो धूमस्तपसा क्लेशितात्मनाम् ।
 तेन धूमेन महता व्याप्तो ब्रह्माण्डमण्डप । ४०।
 शभोरुत्सङ्गा देवी धूमव्याप्त जगत्रयम् ।
 दृष्ट्वा पप्रच्छ विश्वेश कोतुकादीश्वरेश्वरी । ४१।

श्री नारदजी ने कहा था—हे तात ! भगवान् शम्भु के द्वारा मुनियों की पत्नियों को मोहित करदी गयी थी । इस वृत्तान्त को आप सक्षेप से ही मुझको बतलाने की कृपा कीजिए । मेरे हृदय में इसके श्रवण करने का बड़ा भारी कोतुक हो रहा है । ३५। श्री ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! आप श्रवण कीजिए । मैं भगवान् भव का शुभ चरित बतलाऊंगा । एक ही क्षण में मनुष्य भगवान् शिव का प्रिय हो जाया करता है । वह ऐसे ही । परम दयालु है । ३६। भृगु—अत्रि—वसिष्ठ—पुलस्त्य—प्रलह—ऋतु—जमदाग्नि—भरद्वाज—गौतम—भागरि—वामदेव—अङ्गिरा—शङ्ग—लिखित—बृहच्छ्रवा—विश्वामित्र—जावालि और अन्य मुनिगण उस समय में देवेश्वर का यजन यज्ञों के द्वारा किया करते थे और तपस्या का भी तपन करते थे । किन्तु ये देवदेव शूली के भाव को न जानकर ऐसा किया करते थे । तप से क्लेशित आत्मा वाले उनके मूर्धा में धूम उत्थित हुआ था । यह इतना महार धूम था जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मण्डप व्याप्त हो गया था । ३७। ३८। ३९। ४०। भगवान् शम्भु की गोद में बैठी हुई देवी ने तीनों भुवनों को धूम से व्याप्त देखकर उस ईश्वर की देवी न कोतुक से ही विश्वेश्वर से पूछा था । ४१।

आश्चर्यमिव मे भाति धूमव्याप्तमिदं जगत् ।
 धूमस्य कारणं ब्रूहि देवदेव महेश्वर ।४२।
 यत्र दारुवनं पुण्यं मम चातीव वल्लभम् ।
 तत्र तिष्ठन्ति मुनयस्तपोनिष्ठा जितेन्द्रियाः ।४३।
 अविदित्वैव या देवि शरीरं क्लेशकारिणि (शाम्) ।
 तेषां मूर्ध्नि स्थितो धूमो त्याप्योति सचराचरम् ।४४।
 कर्माणि यानि लोकेषु पुष्कलानि बहूनि च ।
 सर्वाणि निष्फलान्येव मामज्ञात्वैव पार्वति ।४५।
 एव देवम्य वचनं श्रुत्वा शवमथान्नवीत् ।४६।

देवी ने कहा—मुझे बहुत ही आश्चर्य सा प्रतीत हो रहा है कि यह सम्पूर्ण जगत् धूम से व्याप्त हो रहा है । हे देवी के भी देव ! हे महेश्वर ! इसका कारण क्या है—यह मुझे आप बतलाने की कृपा कीजिए ४२। ईश्वर ने कहा—जहाँ पर पुण्यमय दारुवन है वह मुझको अत्यधिक प्रिय है । वहाँ पर मुनिगण स्थित रह कर रहे हैं जो कि तप में निष्ठा रखने वाले हैं और इन्द्रियों को जीत लेने वाले हैं । हे देवि ! वे लोग मुझको न जानकर ही अपने शरीर को क्लेश करने वाले हैं । उनके मस्तक में स्थित धूम ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् को व्याप्त कर रहा है ।४३।४४। हे पार्वति ! मेरा ज्ञान प्राप्त न करके जो भी कर्म हैं और लोकों में ऐसे बहुत से कर्म हुआ करते हैं वे सब के सब निष्फल ही हुआ करते हैं क्योंकि उन कर्म करने वालों को मेरा बिल्कुल भी ज्ञान नहीं हुआ करता है । इस प्रकार के देवदेव के वचन पा श्रवण करके ही देवी ने भगवान् शम्भु ने कहा ।४५।४६।

देवदेव महादेव मुनीनां भावितात्मनाम् ।
 अज्ञानम्य यथा व्याप्तिस्तामह द्रष्टुमुत्सहे ।६३।
 एव देव्या वचं श्रुत्वा भगवान्नोत्तलोहितं ।
 विदयेपमथाऽऽस्थाय ययौ दारुवनं प्रति ।६८।

स्त्रीरूपधारी विष्णुश्च शकरेण समागतः ।

विष्णुना सह विश्वेशो देवदारुवनोकसः ।४६।

मोहयन्मायया संभुर्विवचार वने तदा ।

मुनिस्त्रिय. शिवं दृष्ट्वा मदनानलदीपिताः ।५०।

त्यक्तलज्जा विवस्त्राश्च ययुस्ता अनु शकरम् ।

स्त्रीरूपधारिणं विष्णु सर्वे मुनिकुमारका. ।५१।

अन्वगच्छन्त देवर्षे कामवाणप्रपीडिताः ।

तदद्भुत तदा ज्ञात्वा कुपिता मुनयस्तदा ।५२।

लिङ्गहीन हर कृत्वा यो (चक्रुर्गो) परोपधर हरिम् ।

तदा प्रभृति विपेन्द्र शिवा मेखलसञ्जिता ।५३।

उभयोश्चैव सयोग. सर्व पापहर. शिव.

इति श्रुत्वा तु देवपित्रह्मणो वचन तदा ।

जगाम कर्तुं तीर्थानि शिवभक्तिपुरस्कृत. ।५४।

देवी ने कहा—हे देवों के भी देव महादेव ! भावित आत्मा वाले मुनियों को अज्ञान की जो व्याप्ति हो गई थी उसको मैं देखने की अभिलाषिणी हूँ कि कैसा अज्ञान उन्हें है ।४७। इस प्रकार के देवी जगदम्बा के वचन को सुनकर नील लोहित भगवान् ने एक विरका वेष धारण करके वे फिर उस दारुवन में चले गये थे ।५८। सती का स्वरूप धारण करने वाले विष्णु भगवान् भी शङ्कर के ही साथ में वहाँ पर समागत हो गये थे । विष्णु भगवान् के साथ विश्वेश्वर ने सब देवों को जो दारुवन में निवास करते थे मोहित कर दिया था । जब वे सब माया से मोहित हो गये तो भगवान् शम्भु ने उस समय में वन में विचार किया था । जितनी भी वहाँ पर मुनियों की स्त्रियाँ थीं उन्होंने जब शिव को देखा था तो वे मदन की अग्नि से दीपित हो गयी थीं ।४९।५०। वे सब मुनि पत्नियाँ लज्जा का परित्याग करके नग्न होकर भगवान् शङ्कर के ही पीछे चली गयी थीं । हे देवर्षे ! स्त्री के रूप को धारण करने वाले विष्णु को देखकर सभी मुनियों के कुमार भी काम वाण से पीड़ित होकर उनके ही पीछे

चलने लग गये थे । उस समय म उस अद्भुत घटना को देखकर मुनि-
गण बहुत ही कुपित हो गये थे । १५१।१५२। हर को लिङ्गहीन करके माप
वेपथारी हरि को करके तभी से लेकर हे विषेन्द्र ! शिवा मेखल सजिता
हो गयी थी । १५३। दोना का सयोग सब पापो के हरण करन वाले शिव
हैं । उस समय म देवर्षि ने ब्रह्माजी के इस वचन को मुनकर शिव
की भक्ति स वह पुरस्कृत होकर तीर्थों को करने के लिय चले गये थे ।
॥५४॥

एतत्सौर पुराण ते यथावत्समुदीरितम् । १५५।
यच्छ्रुत्वा मनुज सम्यगोसहस्रफल लभेत् ।
किं तीर्थेस्तु प्रयागाद्य किं यज्ञैर्भूरिदक्षिणं । १५६।
यदि श्रुत श्रद्धानै पुराणमिदमुत्तमम् ।
यत्र देवाधिदेवस्य माहात्म्य कथ्यते विभो । १५७।
गिरीशस्य तु योगीन्द्रा किं तन सदृश भवेत् ।
श्रद्धान शिवे भक्तो नियत शृणुयादिदम् । १५८।
ब्राह्मणाञ्छिवभक्ताश्च पुरस्कृत्य समाहित ।
समाप्य सकल वेद पूजयद्वाचक नर । १५९।
वनकेन सुशुद्धेन तथा चन्दनखण्डकै ।
विश्वेश्वरो महादेव प्रीयतामिति भावत । १६०।
दद्यात्स्वर्ण यथाशक्ति वाचकाय सचन्दनम् ।
यद्येकशी (श) रमात्राजपि दत्ता भूमि शिवाधिना । १६१।
सा तारयति दातुर्हि पूर्वजान्सकलानपि ।
श्रुत्वा ग्रन्थमिम सम्यग्दद्याद्दानानि शक्तित् । १६२।
तान्यक्षयफ नाग्याहुर्मुनया ददवादिन । १६३।

यह मूल पुराण जैना नी था बैसा ठीक-ठीक हमने मुना दिया है ।
। १५५। जितना श्रवण करक मनुष्य एव सहस्र गौत्रा व दान करन का
पुण्य-फल प्राप्त किया करता है । फिर प्रयाग आदि तीर्थों व करने स
तथा बहुत जपित दक्षिणा या व जना के करन स क्या लाभ है । १५६।

इस उत्तम पुराण को यदि श्रद्धालु पुरुषों ने सुन लिया है जिसमें देवाधि-
 देव विभु का माहात्म्य कहा जाता है ।१७। हे योगीन्द्रो ! इसमें गिरिजा
 की महिमा भरी हुई है उसके सदृश अन्य क्या हो सकता है ? शिव म
 भक्ति रखने वाला श्रद्धालु नियत होकर इसका श्रवण करे और शिव के
 भक्त ब्राह्मणों को समाहित होकर आगे कर लेवे । सम्पूर्ण वेद को
 समाप्त करके जो वाचक मनुष्य हो उसकी पूजा करनी चाहिए ।१८।१९।
 विद्युद्द कनक से तथा चन्दन के पण्डो से भाव से विश्वेश्वर महादेव
 प्रसन्न हों ।६०। जो वाचन करने वाला हो उसको यथाशक्ति चन्दन
 के सहित स्वर्ण का दान करे । यदि शिवार्थी के द्वारा एक शीर मात्र
 भी भूमि दी गयी है ।६१। वह दाता को तार देती है और सब पूर्वजों
 को भी तार दिया करती है । इस ग्रन्थरत्न का श्रवण कर शक्ति से
 अच्छी तरह दान देने चाहिए । वेदवादी मुनिगण उन दानों को अक्षय
 फलों वाले कहते हैं ।६२।६३।

॥ सूर्य पुराण समाप्त ॥